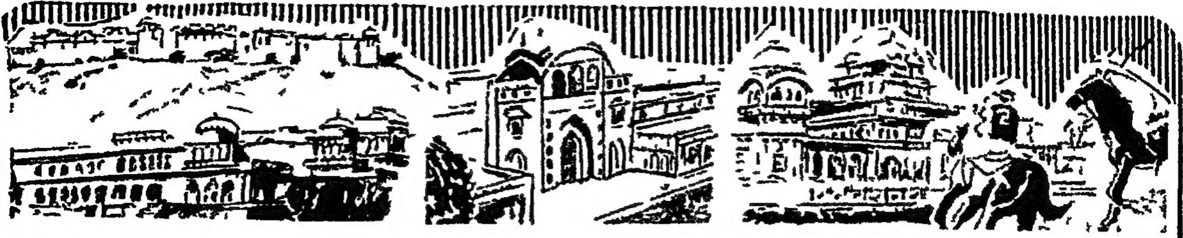


प्रकाशक
राजस्थान पत्रिका (प्रा) लि
जवाहरलाल नेहरू मार्ग,
जयपुर— 302004

मुद्रक
रोटरी प्रिन्टर्स,
केसरगढ़, ज ला नेहरू मार्ग,
जयपुर— 302004

JAIPUR JO THA (I) RAJ DARBAR AUR RANIVAS BY N K PAREEK
PUBLISHED BY THE RAJASTHAN PATRIKA (P) LTD. KESARGARH, J L NEHRU MARG, JAIPUR 302004
FIRST EDITION Rs-100=00



विषय-क्रम





चित्र सूची





भूमिका

पिछले ग्यारह वर्ष से राजस्थान पत्रिका के पाठक बडी रुचि के साथ "नगर परिक्रमा" स्तम्भ को पढ रहे है। प्रस्तुत रचना इसी स्तम्भ मे प्रकाशित सामग्री का एक सकलित एव सपादित अश है— "राज दरबार और रनिवास"।

यह एक ऐसी रचना है जो घुणाक्षर न्याय के अनुसार बिना रचे ही रच गई है। 1972 मे राजस्थान पत्रिका की पृष्ठ सख्या 8 करने के बाद नगर-परिक्रमा स्तम्भ शुरू किया गया तो हमारे वरिष्ठ सम्पादक कैलाश मिश्र उसमे रोजमर्रा की समस्याओ पर टीका-टिप्पणी किया करते थे। इसी बीच एक बार कैलाशजी जब छुट्टी पर गये, नन्दकिशोर पारीक उनके विशेष आग्रह पर यह स्तम्भ लिखने लगे। स्तम्भ मे उन्होने जयपुर शहर के विगत की कुछ बातो की चर्चा शुरू की और पाठको को उसमे रस आने लगा। मुझे लगा कि इस स्तम्भ को विगत का ही स्तम्भ क्यो न बना दिया जाय। नन्दकिशोरजी से बात की तो उन्होने भी प्रस्ताव का स्वागत किया और लिखते चले गये, यहा तक कि वे शहर के गली-कूचे तक छानते गये। एक-एक हवेली और एक-एक खानदान की बात करते गये। बात की बात मे ग्यारह साल व्यतीत हो गये। स्तम्भ अपने शहर के विगत को वर्तमान मे जीवित किए हुए है ओर अभी बहुत समय तक उसे सजीव रखने वाला है। मैने इसे घुणाक्षर न्याय की सज्ञा इसलिए दी है कि यह स्तम्भ किस तरह शुरू हुआ था और किस रूप मे बदल गया और सब कुछ अनायास ही हो गया।

नगर परिक्रमा की कहानी भले ही घुणाक्षर न्याय की कहानी हो, परन्तु चरितार्थ तभी हो सकी जब नन्दकिशोर पारीक जैसे घुण अपने शहर के विगत को कुरेदने मे लीन हो गये। वैसे हर शहर की अपनी एक कहानी होती है परन्तु वह अनकही इसलिए रह जाती है कि उसे कहने वाले नही मिलते। जयपुर की भी अपनी 250 वर्ष पुरानी कहानी है। इस तरह की कहानी को कहने के लिए एक ओर जहा लेखन का अभ्यास जरूरी है, वही अपने शहर की जानकारी होना भी बहुत जरूरी है। इस काम मे सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण तत्व है अपने शहर के प्रति गहरा लगाव होना। वही लगाव है जिसने महान सोवियत कवि रसूल हमजातोव से "मेरा दागिस्तान" जैसी पुस्तक लिखवा दी। इसी लगाव, लेखन की अनवरत साधना और शहर के चप्पे-चप्पे के ज्ञान ने नन्दकिशोर पारीक से नगर परिक्रमा लिखवा दी। एक ही व्यक्तित्व मे तीनो गुण एक साथ हुए बिना इस तरह के दुस्साध्य स्तम्भ का निर्वाह करना किसी समाचारपत्र के लिए सभव नही। यह काम केवल नन्दकिशोर पारीक ही कर सके और वही कर सकते थे।

नगर-परिक्रमा अपने आप मे एक अनूठा स्तम्भ है। मुझे नही मालूम कि दुनिया के अखबारो के पूरे इतिहास मे इस तरह का स्तम्भ कभी रहा है। पारीक ने अपने स्तम्भ मे न केवल जयपुर के राजा-रानियो और राजमहलो की चर्चा की है, बल्कि शहर के गली-कूचो और घर-बारवालो की भी विरूदावली बाची है। उन्होने सस्कृत के महामहोपाध्यायो से लेकर उर्दू-फारसी के आलिम-फाजिलो की भी स्तुति की है तो नामी-गरामी वैद्य-हकीमो का भी गुण-गान किया है। शहर के बडे बडे हुनरमदो और दस्तकारो का बखान भी नगर-परिक्रमा मे विस्तार से हुआ है। शहर की बसावट की सुन्दरता का वर्णन नन्दकिशोरजी ने इतने विस्तार मे किया है कि कोई कोट-कगूरा उनकी कलम से अछूता नही रहा। महलो, मन्दिरो, हवेलियो और



बाग- बगीचो का शब्द- चित्रण वे करते ही चले गये। जयपुर के भौतिक चित्रण के साथ साथ वे इसके आसन्न भूत के जन-जीवन की मधुर विशद झाकिया प्रस्तुत करते रहे जो हजारो वयस्क और प्रौढ नागरिको की याददाश्त को ताजा करती रही है।

नगर-परिक्रमा के माध्यम से नन्दकिशोरजी पिछले ग्यारह वर्षो मे लगभग 5,000 कालम के आकार मे कम से कम तीस लाख शब्द अपने शहर की विरुदावली में लिख चुके है। यह अपने आप मे एक स्तम्भ का कीर्तिमान हे। दूसरा गौरवपूर्ण कीर्तिमान एक पत्रकार के लिए यह है कि उनके लिखे हुए किसी भी तथ्य का प्रतिवाद नही हुआ। उन्होंने अपनी ओर से एक-एक तथ्य की जानकारी न केवल दस्तावेजो से की बल्कि घूम-घूम कर जानकार लोगो मे सम्पर्क साधा और उनकी प्रामाणिकता सिद्ध की। इस क्रम में वे स्वय इस शहर की कितनी ही परिक्रमाए कर चुके है।

प्रस्तुत पुस्तक मे नगर परिक्रमा की उस सामग्री का समावेश ह जिसमे जयपुर के राजमहलो, छत्तीस कारखानों, मन्दिरो और जनानी ड्योढी का सविस्तार वर्णन है। जयपुर के राजमहल अपने आप मे वास्तुकला के नमूने है और शेष नगर से पूर्णत भिन्न एव स्वतन्त्र इकाई के रूप मे विद्यमान हे। जयपुर रियासत के शासको का सम्पूर्ण कार्य-क्षेत्र, शासकीय एव व्यक्तिगत, इस दायरे मे आ जाता हे। रियासत के शासन मे तब छत्तीस कारखानों का अपना महत्त्व था। पुस्तक मे उनके कार्य-कलाप का समावेश है। जनानी ड्योढी अभी तक पर्दे मे ही रही हे जिस पर पहली बार नगर-परिक्रमा मे इतना प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत पुस्तक मे कुछ अन्य सामग्री भी जोडी गई है। इस सन्दर्भ मे कतिपय तथ्य ऐसे हे जिनका अभी तक कही उल्लेख नही हुआ है।

"राजदरबार और रनिवास" मे जो सामग्री शामिल है, भले ही वह एक अखबार के कालम मे छपी हुई हो, परन्तु इतिहास-लेखन के सभी तत्त्वो मे सम्पन्न हे। जयपुर के राजवश का इतिहास वह भले ही न हो, परन्तु इसमे सन्देह नही कि वह शहर के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अश है। इतिहास के विद्यार्थियो एव शोधकर्ताओ को भी इस पुस्तक मे बहुत कुछ लाभदायक सामग्री मिलेगी।कुल मिलाकर जयपुर को देखने, जानने और समझने के लिए यह एक उपयोगी सदर्भ बन गया है। पत्रकार होने के नाते लेखक का अन्दाजे-बया भी ऐसा है कि उसकी बात सामान्य पाठक से लेकर विद्वानो तक के सहज ही गले उतर जाती है।

यह पुस्तक नगर-परिक्रमा पर आधारित पुस्तक शृखला की प्रथम कडी है। वर्गीकरण के आधार पर शीघ्र अन्य पुस्तके भी सामने आयेगी। पुस्तके प्रकाशित करने का दायित्व "राजस्थान पत्रिका" ने अपने ऊपर लिया है। मै आशा करता हू कि पाठको को यह प्रयास पसन्द आएगा।

नगर-परिक्रमा के पाठको की यह पुरानी माग है कि स्तम्भ की सामग्री को पुस्तक का रूप दिया जाय। पाठको की इस रुचि का ज्ञान मै नन्दकिशोरजी को समय- समय पर कराता रहा हू, परन्तु किसी न किसी गतिविधि मे व्यस्त रहने के कारण वे पाण्डुलिपि भी तैयार नही कर पाये, जिसे छपने के लिए प्रेस मे दिया जा सके। जब वे पत्रिका के ही सपादक के रूप मे जोधपुर चले गये तो वहा भी सपादन कार्य मे रम गये। अन्तत उन्हे लगभग आदेश दे कर उस कार्य से मुक्त किया गया। इसी का सुफल है कि इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार हुई और छपकर प्रकाशित हो सकी। अब मै आशा करता हू कि इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही अन्य पाण्डुलिपिया भी तैयार मिलेगी और उनका प्रकाशन होता रहेगा। पाण्डुलिपि तैयार करने मे सचमुच उन्हे समय और श्रम लगाना पडा है, परन्तु वह बहुत ही सार्थक सिद्ध हुआ है। मूल सामग्री मे भी बहुत कुछ सुधार और परिवर्द्धन हुआ है। मै यही कह सकता हू कि नन्दकिशोर जी वास्तव मे यश के अधिकारी है। उनके जैसा पत्रकार पा कर जयपुर शहर गौरवान्वित है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ज्यो-ज्यो समय बीतता जाएगा, उनके इस चिरस्मरणीय कार्य का मूल्य बढता ही जाएगा।

—कर्पूरचन्द कुलिश

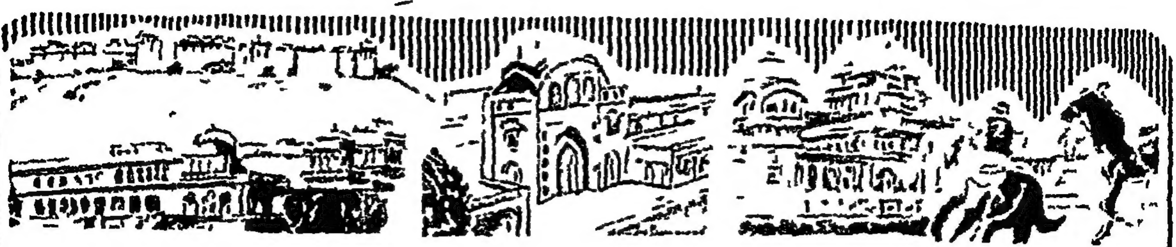


आशीर्वचन

जयपुर शहर जहान भर मे नामी है। अढाई सौ वरस से भी पहले आमेर के महाराजा सवाई जयसिह ने इसका सपना देखा था और उसी के अनुसार इसको सवाई जयपुर नाम से वसाया था। ढलते हुए मुगल सामाज्य और उसके वढते हुए हौंसले के जमाने मे आमेर उसको छोटी लगी थी। नए शहर के अलग-अलग मुकामो, चौकडियो, चौपडो, दुकानो, वाजारो, कटलो, वाग-वगीचो और हवेलियो की कितनी ही 'तरहे' वनी, पेश हुई और मजूर होने पर तामीर हुई। राजमहलो, जनानी ड्योढियो के रावलो, राजमन्दिरो, वागो, कारखानो, कचहरियो और राजसेवको के लिए मकानो से तो एक पूरी चोकडी आवाद की गई जो 'सरहद की चौकडी' कहलाई। दूसरी चौकडियो मे तरह तरह के कारोवार करने वाले व जातियो के लोग वसे जिनके नाम से मोहल्ले, रास्ते और गलिया मशहूर हुई। कुछ मोहल्ले जमाने के बडे रईसो, कलाकारो और दूसरे बडे आदमियो के नामो से भी जाने जाते है। सरहद की चौकडी एक तरह से अलग भी थी और आम आदमी की रोजमर्रा की जिन्दगी से जुडी हुई भी थी। निजी रहन-सहन और काम-धन्धे की आजादी मे इसका कोई बेजा दखल नही था। गरज यह कि शहर को ऐसे सलीके से वनाया व वसाया गया था कि इसको देखकर अव भी वडे-वडे इंजिनीयर दातो तले उगली दवाते है और देश-विदेश के सैलानी 'वाह' कह उठते है।

जयपुर के राजमहलो को देखकर गुप्त-काल से लेकर अव तक के राजसी रहन-सहन, राजकाज, कला, साहित्य, खेलकूद, मन वहलाव के तरीको और निर्माण-कला के विकास का एक वारगी जायजा लिया जा सकता है, अध्ययन किया जा सकता है। अलग-अलग समय मे क्या-क्या वदलाव आए और जमाना कहा से कहा आ गया, इन सब वातो को यहा के मकानात और साज-सामान को देखकर जानने व समझने का मौका मिल जाता है। कुछ वाते वचे-खुचे पुराने लोगो से पूछ-ताछ करने पर भी मालूम हो जाती है।

जयपुर शहर और यहा के राज-दरवार व रनिवास वगैरह के वारे मे श्री नन्दकिशोरजी पारीक ने कोई ग्यारह वरस पहले 'राजस्थान पत्रिका' के 'नगर-परिक्रमा' कॉलम मे लिखना शुरू किया था। शहर के हर वाजार, मोहल्ले, रास्ते, गली, हवेली और घर-गुवाडी मे जाकर इन्होने जानकारी हासिल की, मन्दिरो के दर्शन किए, महन्तो और पुजारियो से बाते की और राजमहलो को भी घूम-फिर कर देखा, कागजात टटोले, खुद वर्तमान राजमाता और महाराजा से भी साक्षात्कार किये व कार्यकर्ताओ के भी वक्तव्य लिये। इस तरह विश्वास के साथ इन सभी बातो का चिट्ठा अपने कॉलम मे दर्ज करके प्रकट करते रहे। लोगो ने इसको बहुत पसन्द किया, जो अखबार नही पढते थे— खबरे सुन-सुनाकर ही तसल्ली कर लेते थे वे भी इस कॉलम को पढने मे दिलचस्पी लेने लगे। इसे पढकर बूढो को अपने बीते दिनो की याद ताजा हो आती थी, जवानो को



जमाने के बदल की धूप-छाह नजर आती थी और बच्चो को परी-कथाओ का मजा मिलता था। मतलब यह कियहकॉलम सर्वप्रिय बन गया और हर जगह के बयान मे पारीकजी की बारीक नजर मे शायद ही कोइ मुद्दा बच पाया हो।

लेकिन अखबार के एक कालम को पढ़कर थोडी देर खुश हो लेना एक बात है और सदा के लिए जानकारियों का खजाना अपने पास रखना दूसरी बात। पास मे किताब हुई तो कभी भी फुरसत के समय उसका आनन्द लिया जा सकता है, किसी भी बात का हवाला देखना हआ, जिल्द उठाई देख लिया, जब जी चाहा वर्तमान मे अतीत मे घूम लिये। कुछ लोगो ने कतरनें भी इकट्ठी की, लेकिन वे कब तक टिक सकती है?

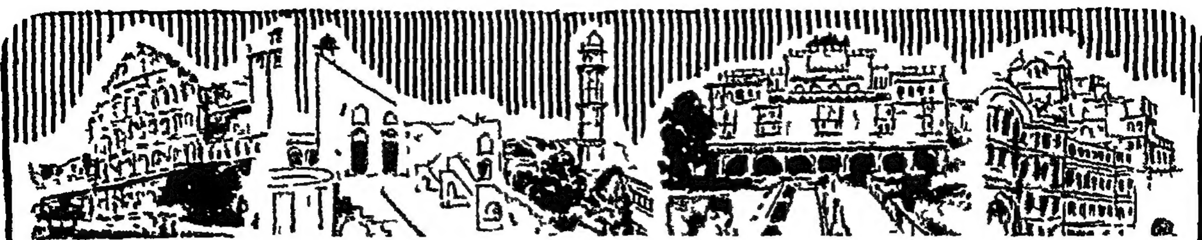
इसीलिए पारीकजी के मित्रो और शुभचिन्तको ने परामर्श दिया कि 'नगर-परिक्रमा' की सामग्री को सिलसिलेवार करके किताबो के रूप मे प्रकाशित किया जाय। पारीकजी को भी यह बात जची और ये इस बारे मे विचार करने लगे। लेकिन सरकारी नौकरी की जिम्मेदारी और दूसरे कामो के कारण इनको समय नही मिल पा रहा था। सरकारी नौकरी से पेशन पाने के बाद ये 'पत्रिका' के जोधपुर सस्करण का सम्पादन करने लगे। इससे ओर भी वक्त कम मिलने लगा। अब, जोधपुर मे छुट्टी पाकर इन्होने इसी काम को हाथ मे लिया है और पहली सचिका 'जयपुर जो था-राजदरबार ओर रनिवास' प्रस्तुत है। कॉलम की कतरनों को छाट कर सिलसिला बैठाने ओर जरूरी घटत-बढत करने मे समय तो लगता ही है, श्रम भी होता है।

कहने की आवश्यकता नही कि बनावटीपन से दूर, लेकिन साहित्यिक वाक्य-सरचना के साथ जिस बोलचाल की भाषा मेयहसामग्री सामने आई है, वह प्रशसा के योग्य ओर सतोष का विषय है। सदा-सदा के लिए एक प्रामाणिक सग्रह व प्रसन्नता का स्रोत है।

इस प्रसग मे श्री कुलिशजी की कोमल भावना ओर परख की प्रशसा करना भी आवश्यक है। जिस प्रफुल्लता और उत्साह के साथ पारीकजी ने इन विवरणो को प्रस्तुत किया है, वैसी ही उदारता के साथ कुलिशजी ने इस सब को सज धज के साथ छपाने का पूरा दायित्व अपने हाथ मे लिया है। ये दोनो ही बन्धु मेरे आत्मीय हैं। मै इनका निरन्तर अभ्युदय चाहता हू।

—गोपालनारायण बहुरा

बहुराजी का बाग,
टौंक रोड, जयपुर।



प्राक्कथन

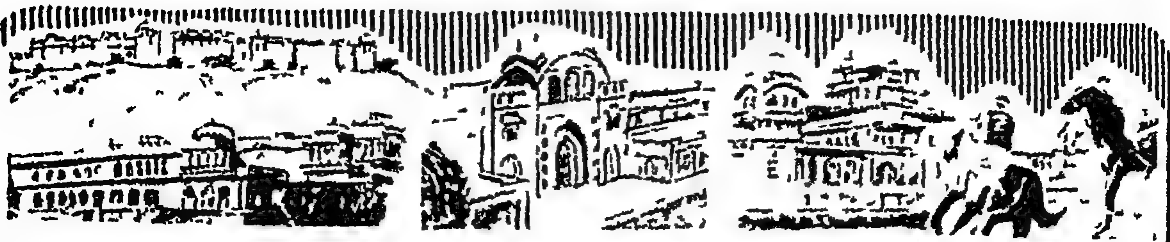
ग्यारह वर्ष से अधिक हुए जब राजस्थान के अन्यतम और लोकप्रिय दैनिक "राजस्थान पत्रिका" मे जयपुर विषयक वह सामग्री "नगर-परिक्रमा" स्तम्भ मे प्रकाशित होने लगी थी जो अब इस पुस्तकमाला का रूप ले रही है। 1972 मे जब यह स्तम्भ मैने लिखना आरम्भ किया तो अनुमान ही नही था कि यह कार्य इतना विशद और बहु-आयामी हो जाएगा। साल-डेढ साल ही हुआ होगा कि अनेक प्रबुद्ध पाठको के पत्र आने लगे कि यह सामग्री तो पुस्तकाकार निकलनी चाहिए। "पत्रिका" के सम्पादक और अग्रज से भी बढकर मुझे स्नेह और आत्मीयता देने वाले श्री कर्पूरचन्द कुलिश इस सारे लेखन के पीछे मेरे प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। दो-चार वर्षो से तो वे स्वय मुझे इसके लिए गाढी ताकीद करते रहे हैं। इसमे जो भी विलम्ब हुआ, वह मेरी ही व्यस्तता और अक्षमता के कारण हुआ। कुलिशजी के उलाहने और तकाजे न होते तो मेरी ओर से तो अब भी इस काम मे ढील ही होती रहती।

"पत्रिका" के पाठको ने जैसे "नगर-परिक्रमा" को अपनाया, वैसे ही इस पुस्तक को भी पसन्द किया तो आगे इस पुस्तकमाला मे वह सारी सामग्री निकाल देने का विचार है जो उक्त स्तम्भ मे आ चुकी है और अब भी आये जा रही है। इस विचार के पीछे कुलिशजी तो है ही, अन्यान्य मित्रो और उन हजारो पाठको का सम्बल भी है जो जयपुर की इस कहानी मे गहरी रुचि लेकर मुझे यह सिलसिला बनाये रखने को बराबर प्रोत्साहित करते रहे हैं।

इस पुस्तकमाला की पहली पुस्तक के लिए मैने "नगर-प्रासाद" को चुना है। नो चौकडियो (नवनिधियो) या आवासीय खण्डो के इस नगर मे नगर-प्रासाद की 'चौकडी सरहद' सबसे पुरानी और सबसे बडी हैं। जब तक राजा और उनकी रियासते थी, जयपुर की राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, सास्कृतिक, कलात्मक ओर धार्मिक गतिविधियो की धुरी यह नगर-प्रासाद ही था।

आज के राजस्थान की राजधानी वस्तुत एक ऐसा नगर है जिसकी रचना, इतिहास, सस्कृति, साहित्य, कला, हस्तशिल्प और जन-जीवन के रग सागोपाग वर्णन करने के योग्य हैं। जैसे-जैसे मै लिखता गया, रगभरे नगर का रग स्वय मुझ पर ऐसा चढता चला गया कि परिणाम सामने है। अब तो स्वभावत आल्हाद और सतोष होता है कि इस अनुपम नगर के सौन्दर्य का जैसा नख-शिख वर्णन मुझ जैसे अल्पज्ञ और अकिंचन पत्रकार से हो गया, वह जयपुर की विरुदावली की परम्परा का ही निर्वाह है।

जयपुर के वैभव का वर्णन करने की सचमुच एक परम्परा रही है। इस अप्रतिम नगर को नीव से बनाने और बसाने का वर्णन कर अनेक सस्कृत ओर हिन्दी कवियो ने अपनी लेखनी को सार्थक माना है। जयपुर के सस्थापक सवाई जयसिह के राजकवि देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट ने इस नगर का निर्माण अपनी आखो से देखा था और जयसिह की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही अपने 'ईश्वरविलास' महाकाव्य मे उन्होने नगर के विभिन्न निर्माण कार्यों और बसावट का विस्तार से वर्णन किया हैं। सस्कृत के ही एक अन्य राज्याश्रित कवि सीताराम



पर्वणीकर का "जयवश महाकाव्यम्" और यहा के ख्यातनामा राजवैद्य तथा "मिष्टभेषजमणिमाला" जैसे आयुर्वेद के सरस कवित्वमय ग्रन्थ के प्रणेता श्रीकृष्णराम भट्ट का "जयपुर विलास" यद्यपि समकालीन नही है —जयपुर बसने के सौ-डेढ सो वर्ष बाद लिखे गये है— फिर भी इनमे साहित्यिक सौष्ठव के साथ इस सुन्दर नगर का सविस्तार वर्णन है। नवीनतम सस्कृत काव्य श्रीकृष्ण भट्ट के ही वशज देवर्षि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का "जयपुर वेभवम्" है जो अपने "मन्जुकवितानिकुज" मे नगर वीथी, राजवीथी, उत्सववीथी नागरिक वीथी, उद्यान वीथी ओर अभिनन्दन वीथी के अन्तर्गत इस 'अद्वितीय सुन्दर, नित्योत्सवशाली, चित्र-लिखित सी जयनगरी' का हृदयग्राही चित्रण करता है।

हिन्दी के कवियो मे इस नवनिर्मित नगर मे चाकसू से आकर बसने वाले जन कवि बखतराम साह ने अम्बावति (आमेर) ओर सागानेरि (सागानेर) के बीच "सुरपुर सो" बसाये गये "सवाई जयपुर" का बडा सुन्दर और ब्यौरेवार वर्णन किया है। 1764 इ मे हिन्दी के एक जेन विद्वान भाई रायमल्ल ने जयपुर को एक तीर्थ ओर "जैनपुरी" तक लिखा क्योंकि यहा दिगम्बर जैनियो के जितने मन्दिर और जितनी जनसख्या है, उतनी देश के किसी अन्य नगर मे नही। 1739 इ मे लिखित "भोजनसार" मे भी गिरधारी नामक कवि ने ब्रजभाषा मे जयपुर का बडा समसामयिक, प्रामाणिक और प्रभावशाली वर्णन किया है।

पाश्चात्य यात्रियो ओर कला- ममज्ञो ने भी आरम्भ मे ही जयपुर की प्रशस्तिया लिखने मे कोई कसर नही छोडी। किसी ने "एकदम नवीन नगर" को देश के पुराने नगरो से भी सुन्दर बताया तो किसी ने इसे "भारत का सर्वोत्तम नगर" स्वीकार किया "जिसकी मुख्य सडके इग्लैड की अनेक सडको से उत्तम है।"

सक्षेप मे कहूगा कि इस दर्शनीय ओर वहुवभवशाली नगर का इसकी स्थापना के समय से आज तक निरन्तर यशोगान होता आया हे। मने नि सकोच इन सभी कवियो, लेखको आर यात्रियो के सस्मरणो से लाभ उठाते हुए उन सभी सदर्भ पुस्तको को भी देखने का प्रयत्न किया हे जो विभिन्न वर्ण्य विषयो के लिए प्रासगिक है। एक और बात जो जयपुर की इस कहानी को कुछ जमकर कहने और प्रामाणिक बनाने मे सहायक हुइ हे, सम्बन्धित आर जानकार लोगो से मेरे साक्षात्कार हे। यह लिखने के लिए मने सचमुच इस नगर की कई-कइ परिकमाए लगाई हैं। हिसाब तो नही रखा, किन्तु सकडो घरो के दरवाजे मेने खटखटाये हे, सैकडो ही मन्दिरों की देहरिया धोकी हैं और सैकडो ही पुराने लोगो तथा सकडो दिवगतो के वशधरो से व्यक्तिश सम्पर्क कर पते की बातो की जानकारी एकत्रित की हे। नाम गिनाना असम्भव हे आर मे यही कह सकता हू कि इन सभी महानुभावो का मै हृदय से आभारी हू। इन सबके सहयोग के बिना यह कार्य हो ही नही सकता था।

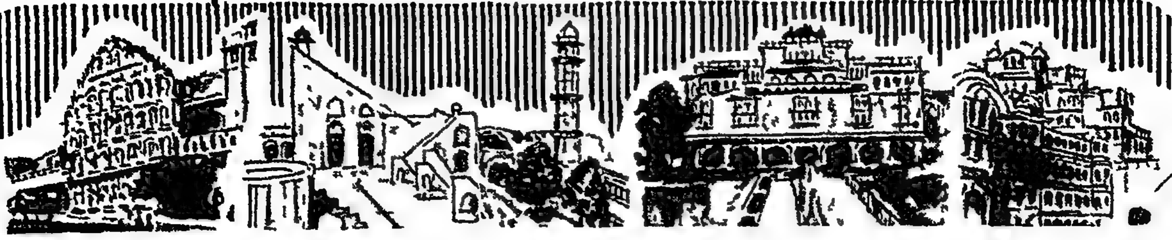
जयपुर नगर, इसके महलो और मन्दिरो, बाजारो आर गली-मोहल्लो, विद्वानो और साहित्यकारो, कवियो और शायरो, शासको और अधिकारियो, वेद्यो, सगीतज्ञो, दस्तकारो और हर उल्लेखनीय चल-अचल वस्तु के विषय मे इस लेखन से मुझे वास्तव मे बडे आनन्द की अनुभूति और आत्मतृप्ति की प्रतीति हुई है। इस आनन्द और सतोष को मे जयपुर के कवि शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त कर सकता हू

> भारतीय पेरिस पुरीव परिलोक्याभृश।
> जयपुरपुरी मे भूरिभाग्यैरभिधेयासौ।।

—भारत मे पेरिस की तरह दर्शनीय यह जयपुर नगरी वडे भाग्य से मेरी वाणी द्वारा वर्णनीय हुई है।

इस सामग्री से यदि पाठको का मनोरजन और जयपुर सम्बन्धी जानकारी मे किचित् भी वृद्धि होगी तो मे अपने श्रम को सफल मानूगा। यदि विद्वानो और शोधकर्ताओ को इस सामग्री से कुछ उपयोगी ओर ऐतिहासिक सूचनाये मिल सकेगी तो यह श्रम द्विगुणित साथक होगा।

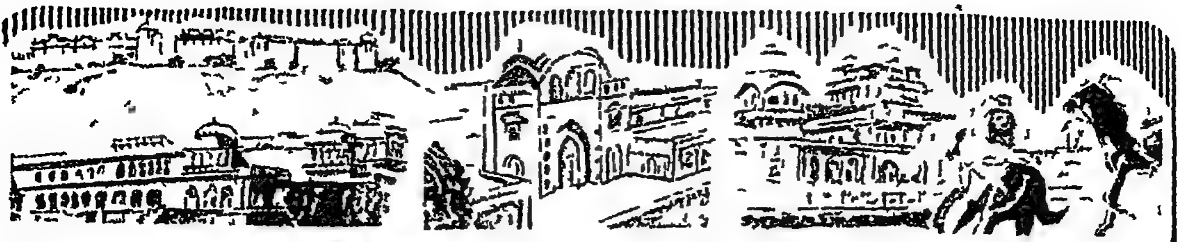
—नन्दकिशोर पारीक





प्रात -स्मरणीय पण्डित प्रवर पूज्य
पुरोहित श्रीहरिनारायण शर्मा, बी ए विद्याभूषण
की पावन और प्रेरक स्मृति मे—जिनके
चरणो मे बैठकर मैने उस सास्कृतिक
बोध के पहले-पहले पाठ पढे जिसे
जयपुर कहते है।

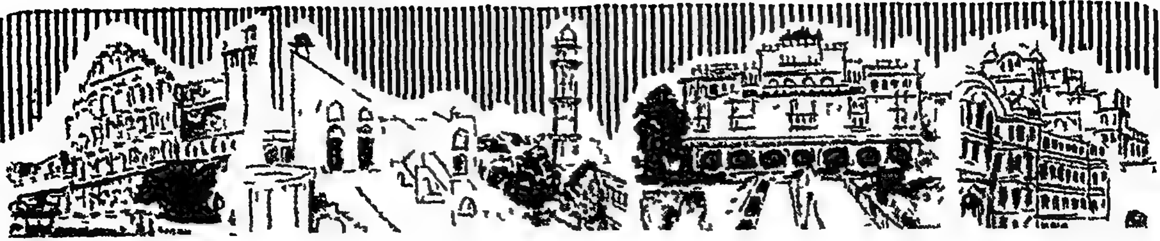
—नन्दकिशोर पारीक



आभार

- राजमाता श्रीमती गायत्री देवी और कर्नल महाराजा भवानीसिह ने इस पुस्तक के लिए कई उपयुक्त चित्र सुलभ कराने की कृपा की।
- महाराजा मानसिह (द्वि) सग्रहालय के निदेशक डा अशोक कुमार दास तथा वही के अधिकारी श्री यदुएन्द्र सहाय ने भी अनेक चित्रो की प्रतिकृतिया करने की अनुमति देकर उपकृत किया।
- श्रद्धास्पद प गोपालनारायण वहुरा के ऋण से तो मै कभी उऋण नही हो सकता। उन जैसा उदार मशोधक और मार्ग-निर्देशक पाकर मै भाग्यवान हू। पुस्तक मे जो कुछ भी अच्छा है, उनकी अनुकम्पा का फल है और जो भी कमी अथवा त्रुटिया है, वे मेरी अपनी अल्पज्ञता के कारण।
- श्री रामचरण प्राच्य विद्या सग्रहालय के सस्थापक श्री रामचरण शर्मा 'व्याकुल' ने भी अपने सग्रहालय को वस्तुत मेरे लिए खुला ही रखा और कई चित्र उपलव्ध कराए।
- सरकार और 'राजस्थान पत्रिका' मे भी मेरे सहयोगी एव मित्र श्री भगवान सहाय त्रिवेदी ने पाण्डुलिपि को आद्योपात पढा और अनेक उपयोगी सुझावो से लाभान्वित किया। श्री ओम थानवी (इतवारी पत्रिका) ने प्रूफ-सशोधन मे मेरा हाथ वटाया।
- पुस्तक के डिजाइनिग और मुद्रण मे पत्रिका के व्यवस्थापक और वित्त निदेशक वन्धुवर लक्ष्मीनारायण शर्मा और प्रवध सम्पादक श्री विजय भण्डारी की अनवरत रुचि मेरा सम्वल रही। पत्रिका के कॉम्पसेट विभाग के श्री देवीसिह, पेस्टिग विभाग के श्री श्रीरामकुमावत, श्री कल्याण सहाय शर्मा, श्री जगदीश प्रसाद शर्मा और प्रेस के अन्य साथियो के सहयोग को भी मै नही भुला सकता जिनके श्रम से ही पुस्तक का ऐसा मुद्रण सभव हो सका।
- राज्य के जनसपर्क विभाग के निदेशक श्री कन्हैयालाल कोचर, छायाकार आनन्द आचार्य और विख्यात फोटोग्राफर श्री सूरज एन शर्मा ने कतिपय दुर्लभ चित्र उपलव्ध कराए जिससे पुस्तक की रोचकता और उपादेयता मे वृद्धि हुई।
- श्री छाजूसिह चॉपावत का सहयोग तो इस कार्य मे सर्वथा अविस्मरणीय ही है।

  लेखक उपरोक्त सभी महानुभावो की उदार सहायता और हार्दिक सहयोग के लिए हृदय से आभारी है।



1.भारत का गुलाबी नगर

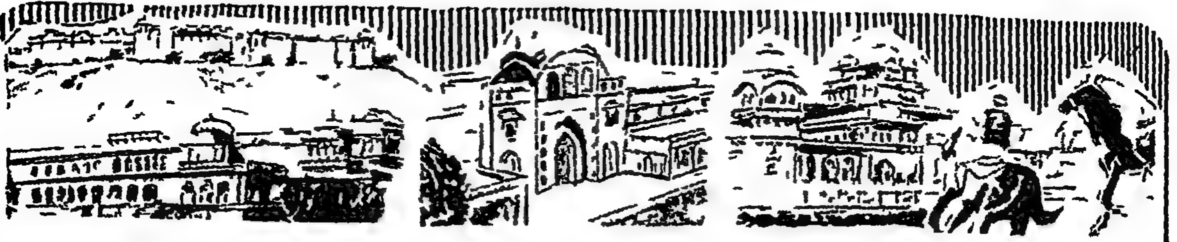
हमारे पुरातन देश मे काशी, काची और मथुरा जैसी प्राचीनतम महापुरिया और बम्बई- कलकत्ता जैसे आधुनिक महानगरो के साथ चण्डीगढ, गाधीनगर और भुवनेश्वर जैसे अधुनातन नगरीय केंद्र भी हैं। किन्तु, राजस्थान की राजधानी और भारत का गुलाबी नगर जयपुर इन सबमे न्यारा और निराला है।

जयपुर एक नयनाभिराम नगर मात्र नही एक सास्कृतिक बोध एव साकार स्वप्न है, जिसमे जीवन के रग- ढग सुरुचि और आनन्दानुभूति के मानदण्ड, योद्धा के शौर्य, विद्याव्यसनी की कल्पना और हस्तशिल्पो के हुनर का ताना- बाना इस प्रकार गुथा हुआ है कि एक अपने ही प्रकार की मौलिकता की सृष्टि हो गई है। जयपुर का अपना व्यक्तित्व है जो न केवल इस नगर मे विद्या, विज्ञान और कला- कौशल के त्रिवेणी सगम से उभरा है, वरन् उन मूल्यो का भी प्रतीक है जो जीवन को सुखद और समरस बनाने मे सहायक होते हैं। यही कारण है कि जयपुर को आज के वास्तुकार और स्थापत्य- ममज्ञ भी ससार के सबसुन्दर नगरो मे गिनते है। जयपुर उन इने- गिने नगरो मे से है जिन्हे देखकर दर्शक का उनकी आत्मा से तादात्म्य होता है।

आज से 256 वर्ष पूर्व जब समूचा उत्तरी भारत अपने इतिहास के अधकारपूर्ण युग में से गुजर रहा था, जयपुर की स्थापना की गई थी। लम्बी- चौडी और ऊची प्राचीर से घिरे इस नगर मे आज भी प्रवेश कीजिये, पहली झाकी में ही लगता है जैसे अरावली पर्वतमाला के केनवास पर किसी सिद्धहस्त कलाकार ने अपनी तूलिका से यह दृश्याकन किया है— शिखरात मदिरो और झके हुये झरोखों वाले उत्तुग प्रासादो का नगर, भव्य द्वारो और सुरम्य उद्यानो का नगर, कपोतो और मयूरो के स्वच्छद विचरण का नगर, रग- विरगे परिधानो से परिवेष्टित नर- नारियो का नगर, आधुनिकता और मध्ययुगीन तौर- तरीको वाला एक विचित्र विरोधाभास से भरा नगर।

भारत जैसे देश मे ढाई सौ साल की जिन्दगी कुछ भी नही, फिर भी पिछले चार दशको मे प्रगति ने जैसी दौड लगाई उसमे जयपुर भी पुराना हो चला है। यह सही है कि यह नगर सारी दुनिया के चक्कर लगाने वाले और अपनी सभ्यता और सस्कृति से ऊबे हुये पर्यटको को सैर- सपाटे और छुट्टी मनाने के लिये बहुत भाता है। जयपुर के गली- मोहल्लो मे आज भी जीवन घडी की सुई के साथ भागता हुआ नही लगता। एक अजब सतोष और बेपरवाही के वातावरण मे भरे- भरे है ये गली- मोहल्ले।

अपने अनेक पुराने तौर- तरीको के बावजूद जयपुर एकदम आधुनिक भी है। 1727 ई मे जब नगर- नियोजन प्राय अनजाना विषय रहा होगा, जयपुर के राजमार्ग ज्यामितिक सूत्रो और गणित की कसौटी पर खरे उतार कर बनाये गये थे। इन राजमार्गों के सगम एक नाप और आकार के चौराहो या चौपडो पर होते है



जिनके वीच मे फव्वारे जल की फुहारे छोडते हे। दोनो ओर सूत वाधकर एक-सी दूकाने और उनके ऊपर आवासीय, व्यावसायिक एव धार्मिक भवनो- हवेलियो और मदिरो— की पक्तितया चली गई हे जिन पर पुता गाढा गुलावी रग सारे नगर को सूर्योदय और सूर्यास्त के समय एक निराली गुलावी आभा से भर- भर देता है।

जयपुर की रचना मे आधुनिक कोण हैं तो स्थापत्य मे क्लासिकल गोलाइया या वृत्त भी। देश के स्वाधीन होने से पहले भी जयपुर अपनी सास्कृतिक और वौद्धिक विरासत तथा अग्रगामी प्रशासन के कारण तत्कालीन राजपूताना प्रदेश मे अग्रणी था। 1949 ई मे वर्तमान राजस्थान राज्य का एकीकरण हुआ तो इस राज्य को न जाने किस- किस वात मे पिछडा माना गया और आज तक माना जाता है, कितु यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पुरानी राजा-शाही के स्थान पर जिन जन- प्रतिनिधियो ने इस नये राज्य का राज- काज सभाला, उन्हे यहा पजाव के लिये चण्डीगढ, उडीसा के लिये भुवनेश्वर और गुजरात के लिये गाधीनगर जैसी नई राजधानी वनाने की आवश्यकता नही पडी। यहा तो जयपुर वना- वनाया था जिसने तुरन्त ही भारत के इस दूसरे सवसे वडे राज्य के सचिवालय और विधान सभा को भी उन इमारतो मे ही खपा लिया जिन्हे आजादी से वहुत पहले राजाओ ने ही वनवा दिया था। जयपुर की पुरानी कौसिल और भगवानदास वैरेक्स ही आज तक विधान सभा भवन और सेक्रेटेरियट वने हुये हे।

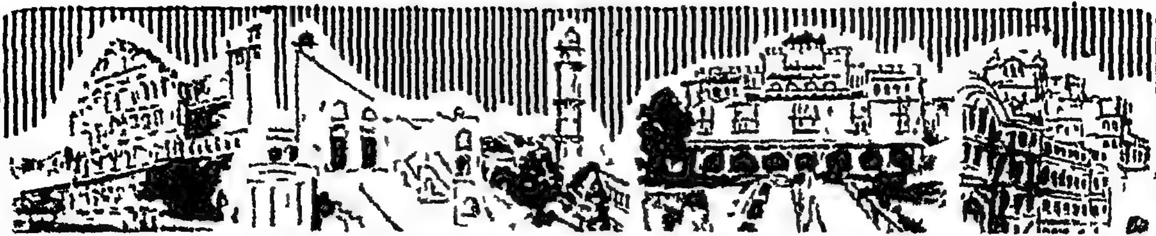
जयपुर की वह- चर्चित और प्रशसित नगर- रचना का आधुनिक नगर- नियोजको द्वारा अभी तक वैसा विस्तृत अध्ययन- अनुशीलन नही हुआ है जैसा होना चाहिये। अध्ययन और शोध यह वता सकते है कि इस नगरी की रचना, रूप- रग और निर्माण सामग्री के पीछे हिन्दुओ के कौन- से धार्मिक नियम और लुप्त- प्राय प्रतीक हे? यह इस वात का भी अपूर्व उदाहरण हे कि पौराणिक धर्म- ग्रथो के काल्पनिक वर्णनो को किस प्रकार ईट- पत्थर- चूने से साकार कर प्रशासनिक और सामाजिक आवश्यकताओ के अनुरूप और उपयुक्त वनाया जा सकता है, इतना कि वीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे भी यह नगर- रचना का आदर्श वना हुआ है।

जयपुर की मूल रचना मे सवाई जयसिह ने अपनी नई राजधानी के लिये एक चित्रोपम, नेसर्गिक और उभरा होने के कारण देदीप्यमान भू- क्षेत्र चुना। साथ ही यह ध्यान भी रखा कि इसमे जल- निकास की प्राकृतिक और उत्तम व्यवस्था हो, पेय- जल पर्याप्त मिले, सीधे- सपाट और प्रशस्त राजमार्ग और वीथिया हो, भवन- निर्माण सामग्री के लिये भी नगर- निवासियो को दूर न जाना पडे और सार्वजनिक एव निजी आवश्यकताओ के लिये आवासीय व्यवस्था तथा भावी विस्तार- विकास की पर्याप्त गुजाइश हो। आधुनिक नगर- नियोजक इन सव वातो का ध्यान रखते हुये भी कही न कही गफलत कर वैठते हैं।

हमारे देश मे वह शायद पहला ही अवसर था जव इस आकार- प्रकार और सज- धज का शहर नीव से वनाया गया और विद्याधर चक्रवर्ती की देखरेख मे "उस्ताओ" (वास्तुविदो) ने व्लू- प्रिन्ट के आधार पर सारी कल्पना को मूर्त्त रूप दिया। कितु स्वय सवाई जयसिह को यह श्रेय देना होगा कि उसने अपने इस नये नगर की कल्पना उस प्रकार नही की जिस प्रकार अकवर ने फतहपुर- सीकरी की की थी। जयपुर को केवल राजा, उसके अन्त पुर और राज- दरवार की आवश्यकताए ही पूरी नही करनी थी। इसे सच्चे अर्थो मे जनता का शहर वनाना था, जनता के रहने के लिए, विभिन्न काम- धधो का शहर।

नगर के नौ आयताकार भूखण्डो या चौकडियो मे से, जो कुवेर की नौ निधियो की प्रतीक हे, सात को नागरिको के लिये— उनके आवासो, दूकानो और वाजारो, मदिरो और मस्जिदो तथा उन कारखानो के लिये ही वनाया गया, जिनके कारण जयपुर की गिनती आगे चलकर भारत के प्रमुख प्रौद्योगिक केंद्रो मे हुई।

जयपुर का निर्माण आनन- फानन मे हुआ। 1727 ई मे (पौष कृष्णा 1 सवत् 1784 वि - उस दिन 18 नवम्वर पडा था) इसकी नीव रखी गइ और 1734 ई मे सवाई जयसिह से यूरोप मे खगोल विद्या की प्रगति के विषय मे विचार- विनिमय करने के लिये जयपुर आने वाले फादर जोस टाइफेन्थेलर ने इस नये- नये शहर को



"भारत का सबसे सुन्दर नगर" बताया जिसके राजमार्ग "सीधे और चौड़े हैं" और मुख्य सड़क जो पूर्व से पश्चिम को जाती है, "इतनी समतल और चौड़ी है कि छह या सात गाड़ियां एक साथ बराबर-बराबर चल सकती है।"

1832 ई. में आने वाले एक फ्रेंच यात्री ने जयपुर को ऐसा पाया था "(मुख्य मार्गों के) दोनों ओर महलों, मन्दिरों और मकानों के नीचे कारीगरों की दुकानें हैं जो प्रायः खुली हवा में अपना-अपना काम करते देखे जाते हैं- दर्जी, चर्मकार, स्वर्णकार, सिलेहगर, हलवाई, ठठेरे आदि आदि। दिल्ली में ऐसी एक ही सड़क है- चांदनी चौक, लेकिन जयपुर में सभी सड़कें ऐसी ही हैं। कहीं कोई झोंपड़ी, कोई जीर्ण-शीर्ण मकान और कूड़े-कचरे का ढेर नहीं। नगर वैसा ही दिखाई देता है जैसा यह वास्तव में है।"

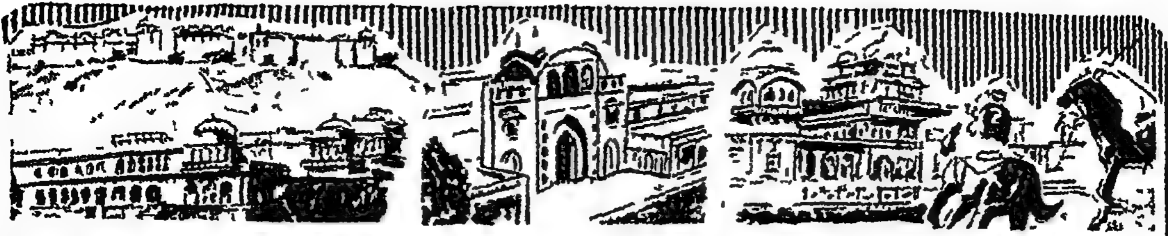
जयपुर की स्थापना के प्रायः एक सदी बाद आने वाले बिशप हीबर ने नगर को घेरने वाले परकोटे या प्राचीर की तुलना मास्को के क्रेमलिन की दीवारों से की।

जयपुर की स्थापना और इसके सौंदर्यीकरण एवं विकास का क्रम तत्कालीन परिस्थितियों में सचमुच विस्मयकारक है। जब जयपुर की नींव भरी जा रही थी, मुगलों का शक्तिशाली साम्राज्य छिन्न-भिन्न हुआ जा रहा था। नगर पूरी तरह बना भी न होगा कि नादिरशाह ने दिल्ली को उजाड़ और लूटकर वीरान बना दिया था और जिस रंगीले बादशाह मुहम्मदशाह को स्वयं जयपुर के संस्थापक ने "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कहा था, उसे घोर अपमानित और लांछित किया था। 1743 ई. में जयसिंह की भी मृत्यु हो गई, किंतु उनके बाद 75 वर्षों तक मरहठों और पिंडारियों के आतंक और आये दिन की लूटपाट के बावजूद जयपुर बराबर बनता और बढ़ता रहा।

यह सर्वथा आश्चर्य ही है कि जयसिंह के उत्तराधिकारियों ने, जो एक दिन के लिए भी न अपने जीवन के प्रति आश्वस्त थे और न "राज" के प्रति, निर्माण और कला-कौशल के विकास की ऐसी महत्वाकांक्षाओं को पूरा किया जिनकी पूर्ति शांतिकाल में भी बहुत कठिन होती है। जयपुर के अनेक भव्य मंदिर, जो इस नगर के स्थापत्य पर छाये हुये हैं, ईसरलाट नामक विजयस्तंभ जो आज भी नगर की आकाश-रेखा है, चन्द्रमहल के विभिन्न कक्ष, घाट की पर्वतीय उपत्यका में सीढ़ीनुमा उद्यानों की शृंखला और जयपुर के व्यक्तित्व का प्रतीक, कमनीय जाली-झरोखों का हवा महल 75 वर्षों के इसी युगान्तरकारी और अनिश्चय के काल में बने।

यही नहीं, जब मरहठे और पिंडारी आक्रामक नगर के प्रमुख प्रवेशद्वारों पर दस्तक दे रहे थे, यहां के नगर-प्रासाद में राधा-कृष्ण की लीलाओं पर आधारित "भारतीय समूह-चित्रों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण"— गोवर्द्धन-धारण और रासमण्डल— जैसे विशाल चित्र बनाये जा रहे थे और यहां के राजाओं के हूबहू आकृति-चित्र भी बन रहे थे जिन्हें "हिन्दू आकृति-चित्रों में सर्वोत्तम" माना गया है। खगोलवेत्ता, ज्योतिर्विद और भारतीय धर्मशास्त्रों के प्रबुद्ध पाठक सवाई जयसिंह का पुस्तकालय उसके समय में देश के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से था। इसमें सवाई प्रतापसिंह (1778-1803 ई.) ने भी काव्य, खगोल, धर्मशास्त्र, दर्शन और आयुर्वेद पर सैकड़ों ग्रंथ बढ़ाये जिनमें से अनेक टिकाऊ दौलताबादी कागज पर लिखे हुये हैं और भारतीय लिपिकारों की कला के बहुमूल्य नमूने हैं। यह सारी सांस्कृतिक एवं साहित्यिक थाती जिसमें अकबरी दरबार के एक रत्न, फैजी द्वारा किया गया महाभारत का सचित्र फारसी उल्था "रज्मनामा" भी है, जयपुर के पोथीखाने में आज भी सुरक्षित है।

जयपुर ने 1818 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि की और इसके बाद ही शांतिकाल का प्रादुर्भाव होने पर महाराजा रामसिंह (1835-80 ई.) ने जयपुर का आधुनिकीकरण किया। जयसिंह और उसके उत्तराधिकारियों का जयपुर सफेद और पीले रंगों में पुता था, रामसिंह ने इसे गुलाबी बनाया। इसी महाराजा ने वे सब आधुनिक संस्थायें स्थापित की जिनके कारण जयपुर प्रगतिशील रियासतों में अग्रणी माना जाने



लगा। जयपुर की जल- प्रदाय व्यवस्था, गैस की रोशनी, पक्की सडके, पहले- पहले स्कूल और कालेज, मेयो अस्पताल, कला- कौशल का ससार प्रसिद्ध विद्यालय, रामनिवास जैसा विशाल सार्वजनिक उद्यान, रामप्रकाश थियेटर और एलवर्ट हाल (सग्रहालय) की शानदार इमारत-- सव रामसिह की ही देन है।

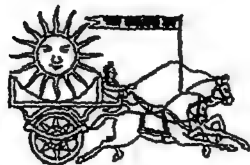
रामनिवास और रामबाग वनने से जयपुर का अपने परकोटे के वाहर वढाव- फैलाव आरभ हुआ था जो स्वर्गीय महाराजा मानसिह के समय मे खूब हुआ। महाराजा कालेज, महारानी कालेज, सवाई मानसिह अस्पताल और मेडीकल कालेज, महारानी गायत्री देवी गर्ल्स पब्लिक स्कूल, भगवानदास वेरेक्स (अव सचिवालय), तख्ते- शाही ओर राजस्थान विश्वविद्यालय के आधुनिक भवन इसी काल मे वने।

परकोटे से घिरा जयपुर का मूल नगर 1947 ई मे ढाई लाख की जनसख्या का था। अव तो जयपुर की जनसख्या दस लाख से भी ऊपर आकी जाती है। और यह सही है कि नगर का वढाव-फैलाव और जनसख्या का दबाव जयपुर की उस मौलिकता और एकरूपता को धूमिल करने का ही कारण बना है जो अठारहवी सदी मे बने-बसे इस नगर ने पूरी दो सदियो तक अक्षुण्ण रखी।

निस्सदेह जयपुर के स्थापत्य और शिल्प, गाढे गुलाबी रग और सफाई व्यवस्था पर इस वढाव-फैलाव से बडी आच आई है और वह जमाना गया जब जयपुर का प्रधान मत्री, सर मिर्जा इस्माइल आगरा विश्वविद्यालय मे दीक्षान्त भाषण (1943 ई) देते हुए यह कह सकता था कि आगरा भारत का सबसे गदा शहर है। जयपुर तब निहायत साफ-सुथरा और बडे सलीके का शहर था और इसी ताव मे सर मिर्जा दूसरे शहर के लिये ऐसा कह पाया था। आज तो जयपुर को स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद रखना ही इस नगर की सबसे बडी समस्या है।

जो हो, जयपुर मे आज भी जादुई असर है। बहुत साल नही हुए कि एक प्रमुख ब्रिटिश वास्तुविद, सर ह्यूज कासन ने पीकिंग और वेनिस के साथ जयपुर का नाम जोडकर ससार के तीन सबसे सुदर नगर घोषित किये थे। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के चार अन्य वास्तुविदो ने इस नगर-त्रयी का समर्थन करते हुए इस सूची मे चार और नगर जोडे थे। ये है पेरिस, रोम, न्यूयार्क और सान फ्रासिस्को।

जयपुर की यह विशिष्टता, मौलिकता और गरिमा आने वाले समय मे भी बनी रहे, यह देखना जयपुर के नागरिको का ही काम है।





2.अठारहवीं सदी का राज-प्रासाद

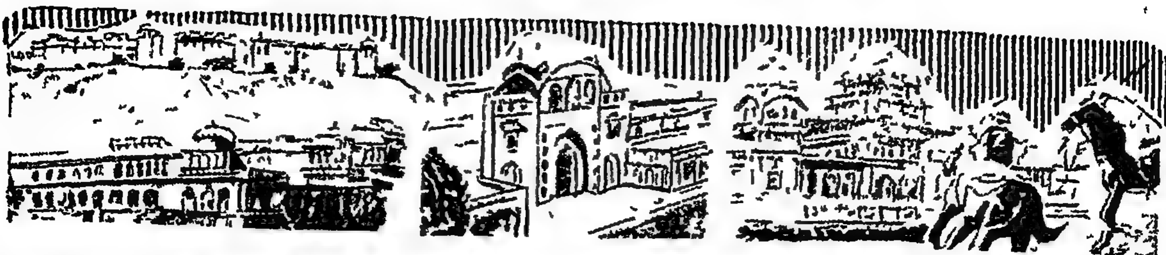
जयपुर शहर जिस माप, पमाने आर ढर्रे पर सवाई जयसिह ने वसाया वह आज भी वडे से वडे नगर-नियोजको के मन को मोह लेता हे। नक्शा ही कुछ ऐसा वना है कि पहिले-पहल आने वाला एक नजर मे ही लट्टू हो जाता हे और यहा के चोडे-मपाट हाट-वाजारो, नाक की सीध एक दूसरे के आर-पार जाने वाले रास्तो-गलियो, शहर की प्राकृतिक पृष्ठभूमि वनाने वाली पहाडियो और स्थापत्य तथा रग की एकरूपता को देखकर वाह-वाह कह उठता है। इस अप्रतिम नगर-रचना की तो कवियो आर लेखको, स्थापत्य कला के विशेषज्ञो, पर्यटको और सामान्य दर्शको, सवने जी भर कर तारीफ की है लेकिन ऐसे नायाव शहर के स्थापत्य या इमारती काम का जेसा लेखा-जोखा होना चाहिए, वह शायद आज तक नही हुआ है। सवसे वडी मिसाल जयपुर का नगर-प्रासाद या महाराजा का महल है जो नौ चोकडियो के इस शहर के वीचो-वीच मोदीखाना और विश्वेश्वरजी की चोकडियो के सामने समूचे उत्तरी क्षेत्र को घेरता है। परकोटे से घिरे शहर के कुल क्षेत्रफल का सातवा हिस्सा इस महल की 'सरहद' मे आता है। चूकि शहर की इमारतो मे तो पिछले पैंतीस वर्षों मे वडा फेर-वदल हो गया है और आये दिन होता जाता है, जयपुर के स्थापत्य पर विचार करने के लिए नगर-प्रासाद ही अव सवसे अच्छी ओर खालिस सामग्री हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

जयपुर मे नगर-प्रासाद का यह क्षेत्र एक तरह से शहर के भीतर वना हुआ एक आर शहर है, राजा-रानियो की नगरी, जिसमे अनेक भव्य महल, दर्जनो मंदिर, फव्वारो, नहरो तथा हौजो से सजाये हुए लम्वे-चोडे वाग-वगीचे, तालाव, कचेहरिया और "कारखाने", हाथियो के ठाण और घोडो के अस्तवल, ज्योतिष यत्रालय (जतर-मतर) और चौगान, चेलो की हवेलिया ओर नक्कारचियो व शागिर्दपेशा लोगो के आवासीय-गृह भरे है। कहते है जव राजधानी आमेर मे थी तो राजा लोग शिकार के लिये इधर के जगल मे आया करते थे और राजामल के तालाव के आगे ताल-कटोरा के तट पर एक शिकार की ओदी वनी हुई थी। सवाई जयसिह ने इसी ओदी को वादल महल का रूप दिया और जयपुर की नगर-रचना का यही से श्रीगणेश हुआ।[1] यह शिकार की ओदी और वागायत मिर्जा राजा जयसिह (1611-67 ई) के समय से वनी हुई वताई जाती है।[2]

डाक्टर वी एस भटनागर के अनुसार 1700-13 ई की अवधि मे तो जयसिह वालक था और दक्षिण मे रहा था। 1707-12 ई के दोरान जयसिह का अपना ओर आमेर का अस्तित्त्व भी खतरे मे पड गया था

1 नोट्स आन जयपुर, द्वितीय सस्करण जयपुर, 1916, पृष्ठ 16

2 यक हुतौ वाग तिह जै-निवास, नृप रच्या वडै जयस्यघ तास ।। 128।। -वुद्धिविलास, राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर, जोधपुर, पृष्ठ 20



क्योकि आमेर को बादशाह बहादुरशाह ने खालसा कर उसे मोमिनाबाद का नाम दे दिया था। 1716-20 ई का काल भी जयसिह के लिए सकटपूर्ण ही बना रहा था और इस अवधि मे उसने केवल आमेर के अपने महलो मे कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन कराने के साथ-साथ उस स्थान पर कुछ निर्माण कार्य कराये थे जहां आगे चलकर उसके नये नगर के स्वप्न को मूर्त्त रूप लेना था।[3] सरहद मे बसायी गयी राजा-रानियो की इस नगरी को नये नगर की चौकडियो ने घेरा जो इस देश मे शायद पहली बार पूर्णत नगर-निवासियो या जनता के लिए परिकल्पित और आयोजित थी।

जयपुर की स्थापना अथवा औपचारिक शिलान्यास की तिथि पौष कृष्णा 1 सवत् 1784 थी, इस विषय मे अब विद्वानो मे प्राय मतैक्य होता जा रहा है। किन्तु, वास्तव मे नगर का निर्माण इससे पहले ही आरभ हो गया था। जयपुर के नगर-प्रासाद सग्रहालय मे एक नक्शा[4] है जिसे नगर-निर्माण की प्रगति का सूचक माना जाता है। इस पर जो तिथि है, वह स्पष्ट नही है, किन्तु सवत् से सन् 1725 निश्चित होता है। इसका अर्थ हुआ कि औपचारिक शिलान्यास के दो वर्ष पूर्व ही जयपुर नगर का बनना आरभ हो गया था और चौकडी सरहद या नगर-प्रासाद का निर्माण तो अवश्य ही शुरू हो गया था। गिरिधारी कवि के अनुसार सवाई जयसिह ने अपनी नवीन राजधानी के लिए यह आदेश दिया था कि यह इस तरह बसाई जाय कि जयनिवास नगर के भीतर ही आ जाय।[5] ऐसा ही हुआ और 1725 ई मे नगर-प्रासाद मे जय निवास बनकर तैयार हो गया।

जयपुर का यह नगर-प्रासाद वस्तुत नगर-कोट है। सामरिक स्थापत्य मे आठ प्रकार के किले माने गये है और इनमे नगर-कोट वह है जो धराधार तो होता ही है, जनसकुल नगर से भी घिरा रहता है।[6] जब जयपुर की आयोजना हो रही थी तो राजा के निवास के लिए नगर का यह मध्यवर्ती क्षेत्र सर्वथा उपयुक्त माना गया क्योकि इसकी उत्तर दिशा नाहरगढ और गणेशगढ की पहाडियो तथा ताल कटोरा और राजामल के तालाब से, जिनमे तब मगरमच्छ भी खूब थे, सुरक्षित थी। दक्षिण मे मोदीखाना और विश्वेश्वरजी की दो चौकडिया तब शायद एक ही चौकडी के रूप मे बसाई जा रही थी। पश्चिम मे पुरानी बस्ती और उसके सामने तोपखाना देश की चौकडिया रहनी थी और पूर्व दिशा तो गलता व लाल डूगरी की पहाडियो से प्राकृतिक सुरक्षा प्राप्त थी। मूल परिकल्पना शायद यही थी। घाट दरवाजा, तोपखाना हजूरी और रामचन्द्रजी की चौकडिया बाद मे बनी।[7]

नगर-प्रासाद के उत्तर-पश्चिम मे पहाडी की चोटी पर जयसिह ने सुदर्शनगढ या नाहरगढ बनाकर अपने नये नगर की सुरक्षात्मक प्राचीरो को पुरानी राजधानी आमेर की रक्षा-व्यवस्था से जोड दिया था। सुदर्शनगढ से जयगढ तक पहाडी ही पहाडी पर पत्थरो से जडी सडक भी गई है। ये गिरि-दुर्ग युद्ध-व्यापार के लिये थे, जबकि इनसे और जनसकुल नगर से सुरक्षित नगर-प्रासाद जीवन के आनन्द और अठखेलियो के लिए था, जो अपने विभिन्न द्वारो और ऊची प्राचीरो से घिर कर दुगुना सुरक्षित हो गया था। यह धराधार दुर्ग-प्रासाद "विषमाख्य"-टेढी—मेढी सुरगो- से भी परिपूर्ण है।

नगर-प्रासाद की विशालता, भव्यता और सुन्दरता के लिए एक लेखक ने, जो दुनिया घूम कर आया था और जिसने चीन और जापान के सम्राटो के राजमहल तथा फ्रास और इगलैण्ड के प्रासाद भी देखे थे, 1921 ई मे लिखा था "मुझे समूचे महल के आकार और शान-शौकत का कोई अनुमान ही नही था। मै चलता रहा

3 कल्चरल हेरिटेज आफ जयपुर सम्पादक जयनारायण आसोपा, जयपुर, 1975, पृष्ठ 69

4 एल एस/14, महाराजा मानसिह 2 सग्रहालय, नगर- प्रासाद, जयपुर

5 भोजनसार, देखिये परिशिष्ट 4

6 जयपुर का इतिहास (1), हनुमान शर्मा, जयपुर, 1937

7 हिस्ट्री आफ जयपुर सिटी, ए के राय, नई दिल्ली -1978, पृष्ठ 28



चलता रहा लेकिन महलायत का जैसे यहीं अन्त ही नहीं था। महाराजा जयसिंह ने यह महलायत बनवाई थी और वे बड़े विलक्षण व्यक्ति रहे होंगे। आजकल बनने वाले महल तो उनके पासंग में भी नहीं ठहरते। बेशक मैंने महाराजा के निवास-कक्ष, सिलेहखाना, पोथीखाना अथवा ऐसी ही अन्य चीजें तो देखी ही नहीं। मैंने तो जो कुछ देखा, सब बाहरी-बाहरी इमारतें ही थीं।"[8]

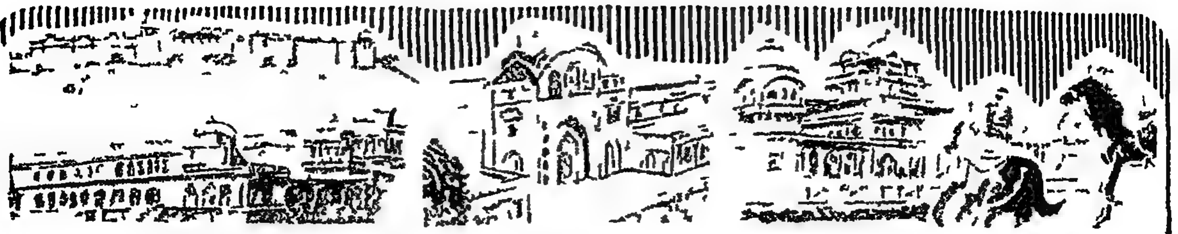
सवाई जयसिंह सफल एक सिपाही था और उसने एक वैज्ञानिक का दिमाग पाया था। उसकी बनाई हुई इमारतों की पहिचान यही है कि पैमाना बड़ा होकर भी हमेशा सादगी बरती गई है। जयपुर की पहिली-पहिली इमारतों में वह अलंकरण और कमनीयता रही नहीं है जो प्रतापसिंह के समय में बेहद बढ़ गई थी। जयसिंह ने अपने महल और इस शहर को बनाने में जिस शैली को अपनाया, वह भारतीय स्थापत्य-कला की मूल धारा से अलग नहीं थी, लेकिन आमेर, रामगढ़ और भाटे के पत्थर और यहां बनाई जाने वाली सुर्खी और कली या सेलखड़ी से तैयार होने वाले चूने ने इस शैली में कुछ ऐसी विशेषताएं पैदा कर दी थीं जो जयपुर की अपनी हैं और भारत में इनकी जगह नहीं मिलती। यहां की इस निर्माण सामग्री ने बड़े हल्के-फुल्के अंदाज में बड़ी से बड़ी इमारतें बनाईं और स्थापत्य कला के अनुपातों का ऐसा निवाह किया कि आज के विशेषज्ञ भी उन्हें देखकर दंग रह जाते हैं।

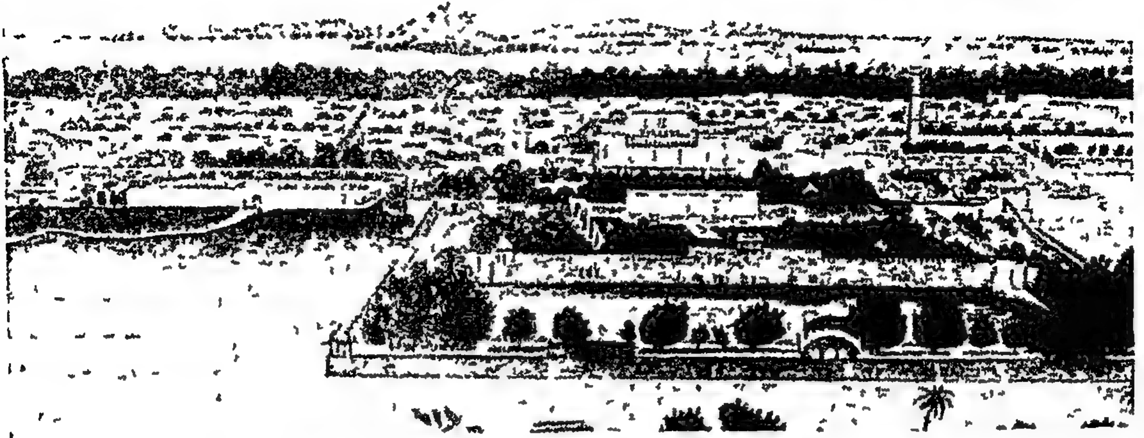
जयपुर के इमारती काम की इन खूबियों में शामिल हैं कामदार किनारों वाली या सादा मेहराबें, टोडों या टोडियों (ब्रैकेटों) पर झूलते हुए झरोखे, पालथी मारकर बैठी हुई चौकोर, अष्टकोण या आयताकार गुम्बदें, पतले खम्भों पर उठी हुई गवाक्षदार छतरियां, गोलों से उठाए गये ताज, विशाल पोल या द्वार, सीढ़ियों के बजाय घुमावदार रपटें, चबूतरों के साथ ऊंची कुर्सी, खुले हुए लम्बे-चौड़े चौक और उनके चौतरफ शुंडाकार खम्भों पर कितानयुक्त मेहराबों वाले लम्बे दालान जो कहीं-कहीं जालियों से बंद हैं, गिने जा सकते हैं। पत्थर के रोड़ों की ठोस चुनाई और इन पर चूने का मोटा पलस्तर जयपुर की इमारतों की पुख्तगी का बीमा होता है। संगतराशी या नक्काशी के बजाय स्टक्को की सजावट या बेल-बूटे होते हैं जो "मोट" या बारीक चूने-कली के घोल से घोट कर इस तरह चमका दिये जाते हैं कि पीढ़ियों तक उनकी चमक और आब बरकरार रहती है।

जयपुर के नगर-प्रासाद में बने महलों और मंदिरों में यह सभी विशेषताएं मौजूद हैं। इस विशाल राजमहल का परम्परागत प्रवेशद्वार है सिरह ड्योढ़ी का पश्चिम की ओर देखता दरवाजा, जिसे 'बादरवाल का दरवाजा' भी कहते हैं। अठारहवीं सदी के इस राजपूत राजप्रासाद को देखने के लिये इसी द्वार से प्रवेश करना चाहिए।

जयपुर वाले सिरहड्योढ़ी के दरवाजे या बादरवाल के दरवाजे को 'कपाट- कोट-का' भी कहते आये हैं। चूंकि राजमहल को घेरने वाली दीवार को सरहद कहते हैं, लिहाजा सारे शहर के बीच में एक छोटा शहर है और इसकी शहर-पनाह के पहले दरवाजे का नाम 'कपाट-कोट-का' हर तरह उचित है। यह पहला दरवाजा सवाई जयसिंह का ही बनवाया हुआ है। यह सही है कि सवाई जयसिंह की कई पीढ़ियों पहिले से आमेर और जयपुर के राजा मुगल बादशाहों की फरमाबरदारी में रहते आये थे, लेकिन जयपुर का शहर जब बनाया गया तो राजकीय सवारियों और जुलूसों, तीज-त्योहारों, मजलिसों और दरबारों का कुछ ऐसा करीना और सलीका कायम किया गया कि दिल्ली और आगरा की शाही शान-शौकत से होड़ होने लगी। इस दरवाजे से राजाओं के आवास चन्द्रमहल तक पहुंचने के लिए थोड़ी-थोड़ी दूर पर बने हुए दरवाजों या "पोळों" की शृंखला से होकर निकलना होता है। इस सारे रास्ते में कदम-कदम पर राजसी वैभव, दरबारी भव्यता और उस नफासत की प्रतीति होती है जो रेगिस्तान और पहाड़ी बीहड़ों से भरे राजस्थान के राजाओं ने मुगल दरबार के साथ

8 डायरी, जनरल अमरसिंह, जयपुर, 1921 (हस्तलिखित)







चौकडी सरहद या नगर-प्रासाद—एक कलाकार की कल्पना। इस प्राचीन चित्र म नगर के आवासीय क्षेत्रों को गौण रखकर नगर-प्रासाद के भवनों को ही प्रमुखता के साथ दिखाया गया है। पृष्ठभूमि में मोतीडूगरी के साथ वह देदीप्यमान भू-भाग है जिसे जयपुर बसाने के लिए चुना गया था (ऊपर)।नीचे है दुन्दभी पोल—नक्कारखाने का दरवाजा—का 1890 ई मे टी मर द्वारा कैमरे से उतारा गया चित्र।



अपने सम्पर्क मे सीखी और अपनाई थी।

वादरवाल के दरवाजे मे प्रवेश करते ही दायी तरफ दो दुमंजिले 'नोले' या गैरेज ह, जिनके कपाटो की विशालता और मजवूती देखने की चीज है। यह मचमुच गरेज है जिनमे ऐसे 'रथ' या गाडिया बन्द है जो घर का घर या हवेली की हवेली है। नीचे की मजिल एक चौकोर कमरे की तरह आर ऊपर गुम्वज और छतरियो वाली खुली वारहदरी। कभी राजा की मवारी मे ऐसा रथ दो-दो हाथियो को जोतकर खीचा जाना था और ऐसा ही एक रथ वनवाकर सवाई जयसिह ने मुगल वादशाह महम्मदशाह को भी भेट किया था तो बादशाह उसमें वडा खुश हुआ था।[9] हाथियो के इस रथ को "इन्द्र विमान" कहा जाना ह।

यहा से जलेव चोक मे दुदुभी पोल या नक्कारखाने के दरवाजे मे होकर प्रवेश किया जाता है। एक स्थापत्य-कला ममज्ञ का कहना है कि दुदुभी पोल भारत के मर्वोत्तम दरवाजो मे से एक है। दरवाजे की मेहराव को इमारत मे ऐसे जडा गया है जैसे चौखट मे तस्वीर जडी जाती है। दरवाजे के भीतर दोनो ओर दुमंजिले दालान वने ह और ऊपर के दालान पूर्व दिशा मे दोनो ओर खुले झरोखो मे खुलते हैं। ऊपर दालानो की छतो पर चारो कोनो पर, चार गुम्वजदार छतरियाँ और वीचो-वीच कमानीदार छत की एक लम्वी छत्री है जिसमे राजतत्र के जमाने मे "नौवत" वजती रहती थी।[10] ट्रैफिक की इतनी हडवड आर आवादी की ऐमी भव्वड तव नही थी और तडके ही या ठण्डी रातो मे इस नक्कारखाने मे वजने वाली शहनाइ और नोवत की आवाज मारे शहर मे मुनाइ पड जाती थी। दरवाजा क्या ह एक हवेली की हवेली है जो पहिले रगो की मजावट म भरा था। मर मिर्जा इस्माइल के जमाने मे इस खुवसूरत दरवाजे पर एक ही सस्ता रामरज का पीला रग पोत दिया गया जिससे इमकी पुरानी शोभा तो जाती रही, लेकिन इमारती खूविया आज भी मुह वोलती है। यह द्वार जयसिह के पुत्र माधोमिह प्रथम का वनवाया हुआ है।[11]

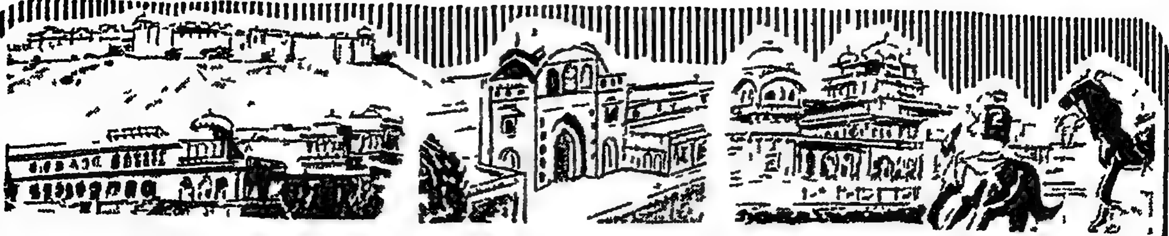
जलेव मे आशय रक्षा- दल मे है और जलेव चोक वह विशाल चोकोर चौक है जिसमे मिरहड्योढी या मर्दानी ड्योढी से आजीविका पाने वाले शागिर्द- पेशा लोग रहते थे ओर दरवार या राजा की मवारी का सारा ताम-झाम जुटाते थे। जयपुर के राजाओ की सवारी के जुलूस मे मारा लवाजमा 'कपाट कोट का' या वादरवाल का दरवाजा से लगाकर उदयपोल तक मिलसिलेवार खडा किया जाता था और जलेव चौक मे इसे क्रमवद्ध करने मे वडी मुविधा होती थी। क्षत्रियो के लिये दशहरा मवमे वडा पर्व है और पोथीखाने मे 22 अगस्त 1911 की एक सूची उपलब्ध है जिससे पता चलता हे कि दशहरे पर महाराजा की सवारी मे लवाजमे का मिलसिला किम प्रकार रहता था। इस सूची को अन्य पर्व-उत्सवो पर भी राजा की सवारी के औपचारिक क्रम के लिये प्रामाणिक माना जा सकता है। सूची मे लवाजमे की तरतीव इस प्रकार है

1 हाथी निसाण को (ध्वज के साथ हाथी), वेलदार।, हरकारो ।
2 गुडदा को पुरो (छोटी तोपो का समूह)
3 हाथी निमाण को मय जेठी कै (ध्वजवाही हाथी, पहलवान सहित)
4 ऊट जजर्वा को पुरो (छोटी तोपो से लदे ऊटो का समूह)
5 साड्या को पुरो (ऊटनियो का समूह)
6 हाथी निसाण को मय पहलवान कै

9 जयपुर एण्ड इटस एनविरन्स, हरनाथसिह, जयपुर, पृष्ठ 76

10 जयपुर वैभवम (नगरवी थी- पृष्ठ 75) मे कहा गया ह कि प्राचीन राजमर्यादा के अनसार राजा र शयन, स्नान, विश्राम आदि की मचना देने के लिय पाच वार यहा नावत वजा करती थी।

11 जयपुर एण्ड इटस एनविरन्स, हरनाथसिह, जयपुर, पृष्ठ 76



7 रथ श्री जी[12] को सो ड्योढी पर सू तो श्री जी डोला (पालकी) मे पधारै पाछै कपाट कोट कै दरवाजै बाहर रथ मै बिराजै पाछा नै गुरु लोग पालकिया मे सवार होकर रथ कै पाछै चालै। महन्त वालानन्दजी का हाथी सवार रथ की साथ अपणै घर के लवाजमै से चालै। रथ की साथ लवाजमो तफसील जैल– निसाण को हाथी, निसाण को घोडो, नक्कारा को घोडो, कोतल घोडो, पहरो पलटण को, अरवी वाजो

8 पूरब्या को पुरो (पूरविया सिपाहियो का समूह)

9 खासा चोडडी (खासा चदोवे के साथ चार डडाधारी)

10 रिसाला का नक्कारा, निसाण का घोडा

11 साड़्या खासा

12 हाथी किलाबा को (गले मे रस्से के अनेक लपेटो वाला हाथी), हाथी गदडा को (सफेद गद्दे को ले जाने वाला हाथी)

13 रोशन चौकी घोडा ऊपर तफसील जैल– नक्कारची, सनायची (शहनाई-वादक), झाझ हालो, बाकिया हालो और भूभाडा हालो

14 वाजा का घोडा, रिसाला को पुरो

15 चाबुकसवार आतिश का (राजकीय अश्वशाला के घोडो के प्रशिक्षक)

16 खासा बग्घी

17 इम्तियाजी (प्रतिष्ठित) सवार और मुतसदी (ओहदेदार) सवार

18 आरबी बिरादरी खासा

19 नक्कारा को घोडो धौसा को[13]

20 ठाकुर स्योडा का, ठाकुर गीजगढ का[14]

21 हथ-निसाण (झण्डे के ऊपर हाथ का पजा)

22 खास बरदारा को पुरो

23 हरकारा दाहिनी-बायी तरफ, दोनू बाजू पुरो

24 पुरा साटमार, वरछी_वरदार, चरखीवरदार, बल्लमबरदार, अडाणी-वरदार, पखाबरदार, जलेबदार, ढलैत, चौवदार, चपरासी –दोनू तरफ दाहिनी -बायी बाजू

25 रात होवै जद चरागची, महतावची -दोनू बाजू

26 राजा उदयसिह जी (ड्योढी के हाकिम) दाहिनी तरफ, ठाकुर रूपसिहजी बायी तरफ, गोविददासजी हाला

27 पुरो खासा घोडा कोतल दरमियान चौक (लवाजमे से ही बनने वाले चौक के बीच) मय जेवर

28 पहलवान मय चार आहीना-मुसला (लोहे के मुगदर)

29 खवर का दारोगा मय पचरग छडी कै

30 ड्योढी का दारोगा

31 पुरो खवास चेला को– सवारी श्री अन्नदाताजी–पुरो खवास–चेला को (दोनू ओर चवर मोरछल)

32 तख्ते-रवा, खासा कावड श्रीजल (गगाजल की), खासा कावड

33 भालाबरदार हर्‌या भाला का मय फूदा काला कै

---

12 महाराजा या दरबार।

13 यह मुगल बादशाहो से जयपुर के राजाओ को सम्मान-सूचक मिला था।

14 ये ठाकर हरावल मे चलने का विशेषाधिकार- प्राप्त थे।

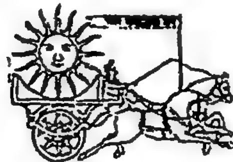


34 लैन-डोरी (विभिन्न समूहो मे फासला रखने के लिये। इसे जलेवदार पकड कर चलते थे)
35 रिसाला खास का डीला को पुरो
36 तवायची (घोडो की पहचान करने वाले) वख्शीखाना जागीर
37 तोख (एक प्रकार का निशान जिसके शीर्ष पर हाथ का पजा रहता था) को घोडो।
38 खास चाकी का सरदारा को पुरो
39 ऊट मुतरी को
40 रिसाला का सवारा को पुरो
41 जागीर का सवारा को पुरो
42 हाथी माही [15] को, मुरतव[16] को, खाना हौदा को, अम्बावाडी को, खवासी को, मोमजामा को (सवारी के दौरान यदि वर्षा आ जाती तो यह मोमजामा महाराजा के ऊपर चदोवे की तरह तान दिया जाता था)
43 हाथी नक्कारा को

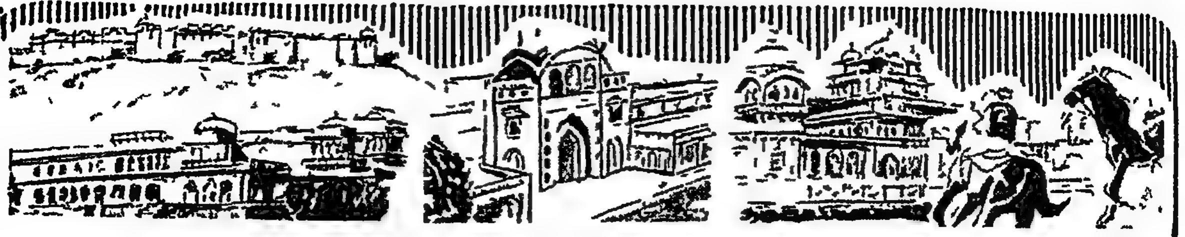
महाराजा रामसिह (1835-80ई) के जमाने तक इस चौक मे चारो तरफ एक- मजिली इमारत थी, लेकिन इस राजा ने आगे वरामदे वनवाकर ऊपर एक मंजिल और चढ़ा दी। इनमे जयपुर राज्य की वावन कचेहरिया कायम की गई जो मौके के लिहाज मे राजा और प्रजा, दोनो के लिये ही वडी सुभीते की जगह थी।

इस चौक के दक्षिणी पूर्वी कोने पर रामसिह ने ही कौंसिल की इमारत वनवाई जिसके प्रवेश द्वार की मेहराव न राजपूती है और न मुगल। उस समय तक अग्रेजो का खासा दौर-दौरा हो चुका था ओर रामसिह की वनवाई हुई सभी इमारतो मे रोमन शली की छाप नजर आती है। सवाई प्रतापसिह (1778-1803ई) के समय मे जयपुर की परम्परागत स्थापत्य शैली अपने चरम उत्कर्ष को पहुंच चुकी थी और फिर मध्यकाल और आधुनिक युग के सगम का समय था। कौंसिल की इस इमारत (अव राजस्थान विधान सभा भवन) को सिरह ड्योढी वाजार मे देखते है तो इसकी विशालता और भव्यता तो असर डालती है लेकिन वगल मे वादरवाल के दरवाजे, सामने सस्कृत कालेज, और आगे विश्वविख्यात हवामहल, गोवर्धननाथ जी के मंदिर और मदन मोहन जी के मंदिर जैसी इमारतो के "क्लासिकल कर्वस" (परम्परागत गोलाइयो) से इसके "माडर्न एंगल" (आधुनिक कोण) सचमुच मेल नही खाते।

जलेव चौक की एकरूपता दुदुभीपोल के सामने उदयपोल और उत्तर व दक्षिण की वाजुओ मे आमने-सामने वनी मोरियो से कायम रखी गई है। दक्षिण वाली मोरी से ज्योतिष यन्त्रालय और मुवारक महल का रास्ता हे और उत्तरी मोरी फीलखाने (हस्तिशाला) ओर वग्घीखाने के सामने गोविन्ददेवजी के प्रसिद्ध मन्दिर को ले जाती हैं। उदयपोल से सिरह की ड्योढी या खासमहल को जाने वाला रास्ता है।



15-16 'माही-मरातिव' भी शाही कृपा के पुरस्कार में प्राप्त सम्मान सूचक- चिन्ह थे। माही मे मछली का सुनहरा मुह वना रहता था और मरातिव झडे के ऊपर सुनहरी गोले थे।



जयपुरः नगर-प्रासाद

(मानचित्र प्रसिद्ध वास्तुविद् स्व बी एल धामा के सौजन्य से)

संकेत

1 उदयपोल
2 विजयपोल
3 जयपोल
4 गणपोल
5 दीवाने-आम
6 जनानी-गैलरी
7 अम्बापोल
8 दीवाने-खास
9 गणेशपोल
10 प्रीतम निवास
11 चन्द्रमहल
12 शस्त्रशाला व पोथीखाना
13 सरहद की ड्योढ़ी
14 मुबारक महल
15 मुबारक महल चौक
16 घटाघर
17 पुरबियों की ड्योढ़ी
18 रसोवड़ा की ड्योढ़ी
19 गेंडा की ड्योढ़ी
20 आनन्दकृष्णजी का मंदिर



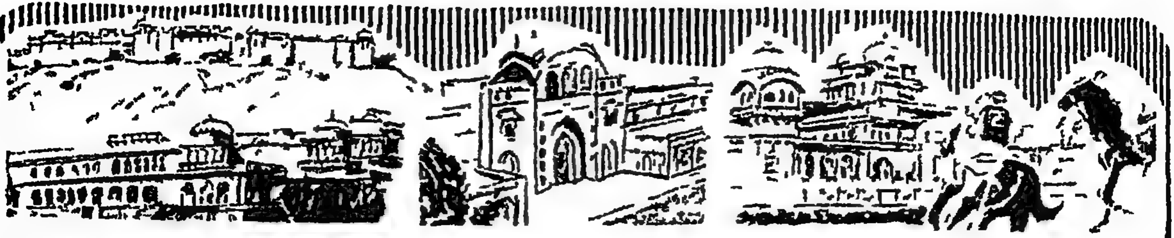
3. दीवाने-आम: बड़ा दीवानखाना

जयपुर के नगर-प्रासाद में प्रवेश करने का तीसरा द्वार है यह उदयपोळ। पलस्तर पर चितराम या रंगीन बेलबूटों के काम पर लोई की घिसाई से जैसा चिकनापन और स्निग्धता इस शहर की पुरानी इमारतों में लाई जाती थी, उसका यह दरवाजा एक बेहतरीन नमूना है। ऐसा लगता है जैसे समूचा द्वार चीनी मिट्टी से बना है। बहुत ठोस और मजबूत, साथ ही बहुत कमनीय और कोमल। दरवाजा चूंकि पूर्व की ओर देखता है, इसलिये इसका नाम उदयपोळ है। वैसे इसे सिरह की ड्योढी या दरवाजा भी कहते हैं। इसमें प्रवेश करते ही बायीं ओर एक दालान है जो महल के रक्षकों या प्रहरियों के उपयोग के लिये बना था। सारे शहर की रक्षा व्यवस्था के लिये तो परकोटा था ही, लेकिन महल की सुरक्षा के लिये हर दरवाजे पर प्रहरियों के लिये बने यह दालान सामरिक स्थापत्य की दृष्टि से बड़ा महत्त्व रखते हैं। यहां से दाहिनी ओर घूमते ही विजयपोळ है जिसके बाद फिर एक बड़ा चौक जिसमें दो बाजू बनी हुई दुमंजिली इमारत में कभी महकमा हिसाब और खजाना (अकाउन्ट्स ऑफिस व ट्रेजरी) के दफ्तर थे। यहां से बायीं ओर घूमने पर जयपोळ है और उसके आगे फिर एक छोटा चौक और गणपोळ या गणपति पोळ, जो उस विशाल चौक की आड़ बना हुआ है जिसमें बड़ा दीवानखाना या दीवानेआम है। इस तरह सिरह ड्योढी या बादरवाल के दरवाजे से यहां तक छह 'पोळ' पार करने पर "दीवाने- आम" और सातवीं अम्बापोल पार करने पर "दीवाने- खास" या "सर्वतोभद्र" प्रासाद आता है जिसे जयपुर वाले "सरबता" कहते हैं। शहर के बाहर से आकर जयपुर के राजाओं से मुलाकात करने वाले को कुल आठ दरवाजे पार करने पड़ते, तब कहीं वह ठिकाने पहुंचता। इसलिये जयपुर को "पोळों का शहर" भी बखाना गया है।

सवाई जयसिंह के समकालीन कवियों ने अपने ऐतिहासिक काव्य-ग्रन्थों में "सर्वतोभद्र" की तो चर्चा की है, लेकिन दीवाने-आम की नहीं। इससे यही अनुमान होता है कि दीवाने आम तब नहीं बना था और यदि बना भी था तो इसे वह महत्व नहीं मिला था जो "सर्वतोभद्र" को मिल गया था। अपने वर्तमान रूप में यह भव्य भवन महाराजा प्रतापसिंह (1778-1803ई) का बनाया हुआ है, जिसका समय जयपुर की स्थापत्य कला और निर्माण शैली के विकास का काल था। किसी किसी का मानना है कि दीवाने-आम माधोसिंह प्रथम ने बनवाया था।[1]

दीवाने- आम एक विशाल सभा भवन या दरबार हाल है जो एक चबूतरे या ऊंची कुर्सी पर बना है। यह तीन ओर से खुला और बरामदों से घिरा है जिनकी कामदार किनारों वाली मेहराबें संगमरमर के शुंडाकार

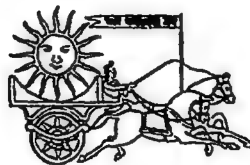
1 जयपुर एण्ड इट्स एनवायरन्स, हरनाथसिंह, जयपुर, पृष्ठ 80



स्तम्भो की दोहरी कतारो से उठी है। पीछे की दीवार मे दो-मजिली दीर्घाये या गैलरिया है जो जाली के पर्दों से वन्द हैं। दरबार या दूसरे समारोह होते तो रानिया और जनानी ड्योढी की औरते यहा वैठकर सारा नजारा देख सकती थी। अव तो यह शानदार हाल सव तरफ से वन्द कर दिया गया है और यह सवाई मानसिह द्वितीय सग्रहालय की प्रधान कला-दीर्घा वन गया है।

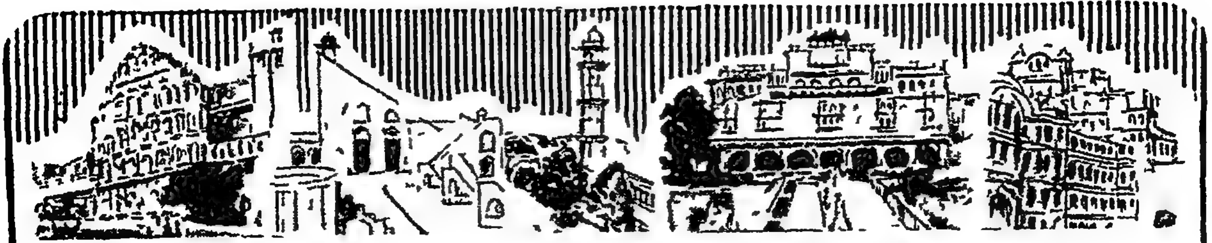
दिल्ली के लाल किले का दीवाने-आम वादशाहो का दरवार-हाल है और इसमे वडा है। उसमे सगमरमर का सिहासन भी है जिसमे कभी कीमती जवाहरात तक जडे थे। जयपुर के राजाओ के दीवाने-आम मे यह तो नही, लेकिन मेहरावो और छत मे रगो और सोने की कलम के काम जैसे डिजाइन वनाये गये हैं, वे जयपुर के कारीगर ही वना सकते थे। दिल्ली और आगरा के शाही दीवाने-आम से वढकर खूवी यह है कि उनमे जहा लाल वलुआ पत्थर के खम्भे है, यहा सगमरमर के सुघड स्तम्भ है जिन्हे जयपुर के सगतराशो ने सुन्दरतर बनाने मे कोई कसर नही छोडी है। साथ ही दिल्ली और आगरा मे जहा स्तम्भ दर्शको के लिये रुकावट पैदा करते है, वहा जयपुर के दीवाने-आम के स्तम्भो को कुछ ऐसे करीने से लगाया गया है कि भीतर वैठने वालो को बाहर झाकने मे और वाहर खडे रहने वालो को भीतर ताकने मे कोई अवरोध नही होता। इस वुलन्द इमारत की ऊची छत मे जो विशाल झाड-फानूस लटक रहे है, वे रोशन हो जाते हैं तो सव कुछ स्वप्न-लोक जैसा हो जाता है।

जयपुर के आखिरी राजा सवाई मानसिह द्वितीय (1922-1970ई) ने अपने वाप-दादा के इसी दीवाने-आम मे 16,081 वर्ग मील मे फैली और चौबीस लाख की आवादी वाली जयपुर रियासत को राजस्थान के राजप्रमुख की शपथ लेकर इतिहास के गर्भ मे विलीन होते देखा था। 30 मार्च, 1949 के दिन दीवाने-आम मे जो आखिरी दरवार हुआ वह उस सारे इलाके की किस्मत वदलने वाला था जिसे अव राजस्थान कहते है। जिस भवन मे कोई भी हिन्दुस्तान पगडी बाधे विना प्रवेश नही पाता था, उसमे सोने-चादी के सिहासन पर भारत के लौह-पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल "उघाडै-माथै"—नगे सिर—विराजमान थे। इस दरबार मे बहुत से "दरवारी" भी नगे सिर या सफेद टोपी धारी थे। जर्क-वर्क साफा वाधे हुए सवाई मानसिह और उनके साथ दूसरे राजा तो अपने कदीमी राज खुशी-खुशी छोड रहे थे, लेकिन ये टोपी वाले और नगे सिर वाले लोग बैठने के इन्तजाम को लेकर ही वहा लडने-झगडने लगे थे और कुछ तो खफा होकर "वाक-आउट" भी कर गये थे।[2] राजस्थान की फूट इतिहास-प्रसिद्ध है और जिन लोगो ने इस ऐतिहासिक दीवाने- आम मे राजाओ को अपदस्थ कर राज-काज सभाला, उन्होने और तो सभी पुरानी वातों को विसरा दिया, लेकिन फूट की प्राचीन और ऐतिहासिक परम्परा को कायम रखा।[3]



2 प्रत्यक्ष जीवन- शास्त्र, हीरालाल शास्त्री, जयपुर, 1970, पृष्ठ 255-56

3 पूर्व आधुनिक राजस्थान, डा रघुवीरसिह, राज विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, 1951, पृष्ठ 341-42



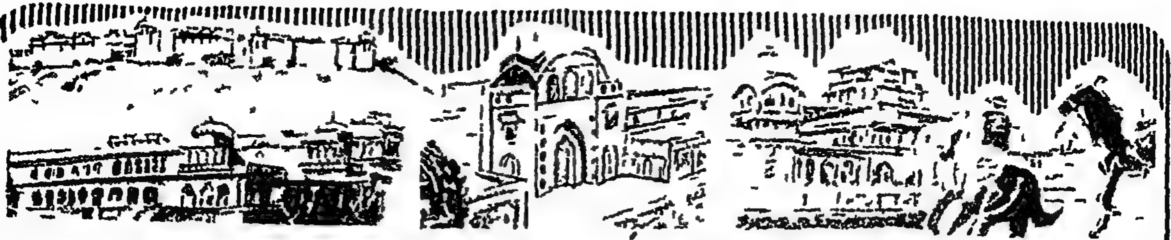
4.सवाई मानसिंह (द्वि.) संग्रहालय

जयपुर के मध्यकालीन सभा भवन, दीवाने- आम, मे अब जयपुर नरेश सग्रहालय की आर्ट गैलरी या कला दीर्घा है। राजस्थान वन जाने और उसमे जयपुर रियासत के विलय के दस वरस वाद, 1959 मे, महाराजा सवाई मानसिह ने पोथीखाना और सिलेहखाना से कुछ चीजे चुनकर यह सग्रहालय स्थापित किया था। यह चीजे पहिले भी महाराजा के मोअज्जिज मेहमानो को दिखाने के लिए कुछ कमरो मे प्रदर्शित थी, लेकिन इनका फिर से चुनाव कर और अपने पूर्वजो के सग्रह से अन्य कलात्मक वस्तुए, चित्र, प्राचीन वेशभूषा के नमूने, हस्तलिखित ग्रन्थो आदि को छाटकर यह सग्रहालय बनाया गया ताकि लोग जयपुर के इस सास्कृतिक वैभव को देखे, प्रेरणा ले और लाभ उठावे। महाराजा मानसिह चाहते थे कि जयपुर के राजाओ के प्राचीन पाण्डुलिपियो के विशाल सग्रह पोथीखाना के समूचे ग्रन्थो की सूची तैयार की जाय और उसे प्रकाशित भी करा दिया जाय जिससे विद्वानो और इच्छुक शोधकर्ताओ को सहायता मिले और जिसकी जैसी दिलचस्पी हो, वैसा अध्ययन-मनन करे। महाराजा की जिदगी के अतिम वर्ष मे ही यह जगी काम पडित गोपाल नारायण वहुरा ने अपने हाथ मे लिया, लेकिन पहिला सूची-पत्र महाराजा के देहान्त के वाद ही प्रकाशित हो सका--1971 ई मे।

सग्रहालय मे पोथीखाना की कुल 93 पाडुलिपिया प्रदर्शित की गयी है और इनके अलावा वीस पाडुलिपिया ऐसी है जिन्हे "कलात्मक" वस्तुओ मे गिना गया है, क्योकि हस्तलेख और चित्रो, दोनो ही दृष्टियो से, ये महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान है। सग्रहालय के अपने वजट से भी 179 पाडुलिपिया खरीदकर इस सग्रह मे जोडी गई है। यह सव सिर्फ एक वानगी है उस खजाने की जो पोथीखाने मे भरा है और जिसके सामने सोना-चादी, रुपया-पेसा, सव कुछ तुच्छ है।

सग्रहालय की इस कला दीर्घा मे आमेर-जयपुर शैली के लघु चित्रो के कुछ उत्कृष्ट नमूने प्रदर्शित किए गये है जो रागमाला, भागवतम्, देवी महात्म्य आदि ग्रन्थो को सचित्र वनाने के लिये तैयार किये गये थे। आरम्भिक और वाद की मुगल शैली के चित्रो के अलावा दक्खिनी कलम और मालवा, वीकानेर, बूदी, कोटा, जोधपुर और किशनगढ शैली के चित्र भी खूब है। किशनगढ का अठारहवी मदी का राधा और कृष्ण का वडा चित्र तो इस शैली का एक वेजोड नमूना है।

सवाई जयसिह ने खगोल विद्या के अध्ययन-अन्वेपण के लिये दुनिया भर से अरवी, फारसी, लेटिन और सस्कृत के जो ग्रन्थ एकत्रित किये थे, वे भी इस दीघा मे देखे जा सकते है। "आइने अक्वरी" की एक पुरानी प्रति के साथ इसका वह हिन्दी अनुवाद भी है जो महाराजा प्रतापसिह की आज्ञा से 1775 ई मे जयपुर के ही



गुमानीराम कायस्थ ने किया था। शालिग्राम के 146 स्वरूपो का दिग्दर्शन कराने वाली एक अलभ्य पाडुलिपि भी यहा है। उवेद के फारसी ग्रन्थ "मशन्वा-गोरवेह" मे सत्रहवी सदी के मुगल चित्र हैं आर यह भी एक दर्शनीय पाडुलिपि है।

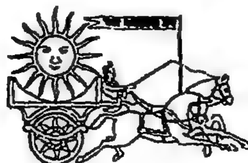
कला दीर्घा मे मुगल और उत्तर- मुगलकाल के वेहतरीन कालीन भी ह। सत्रहवी सदी के पूर्वार्द्ध में मिर्जा राजा जयसिह हीरात, लाहौर, आगरा और दूसरी जगहो से जो कालीन-गलीचे लाये थे, यहा इस तरह प्रदर्शित किये गये हैं कि उनके फूलो के डिजाइन और रगो की आव देखते ही वनती है।

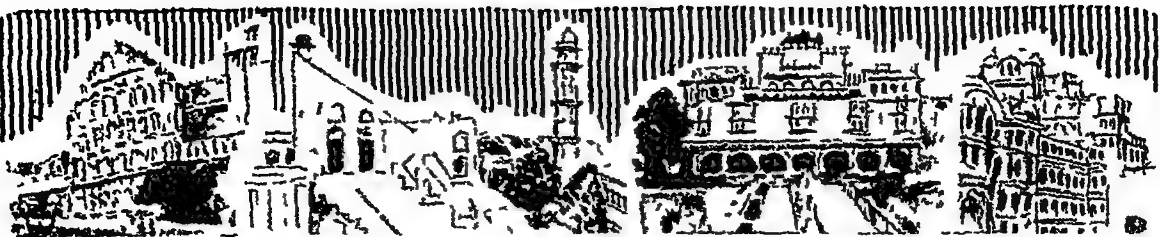
चित्रो, हस्तलिखित ग्रन्थो और कालीनो के साथ यहा राजा की सवारी की कुछ कलात्मक वस्तुये भी रखी गई है। इनमे सोने-चादी का हाथी का होदा, तख्ते-रवा, अम्बावाडी, पालकी ओर रानियो के वैठने की छोटी गाडी है, मखमल की पोशिश वाली, जिस पर वडी खूबसूरत कसीदाकारी है।

सिलेहखाने के अस्त्र-शस्त्र इस सग्रहालय का दूसरा विभाग है जो दीवाने-आम मे नही, आगे चलकर मुवारक महल के चौक मे एक दूसरे हिस्से मे प्रदर्शित किये गये है। यहा तरह-तरह के आकार की तलवारे है, जयपुर और राजस्थान के दूसरे हिस्सो की ही नही, फारस ओर मध्यपूर्व मे वनी हुई भी। किसी की मूठ मीनाकारी की है तो किसी मे जवाहरात जडे है और कइयो की तो म्याने ही ऐसी कला और कारीगरी से वनी ह कि वडी कीमती है। हाथी दात, सोने और चादी की मूठियो वाले खमवा, चाकू, छुरे और कटारे है, सीग और शखो से वने हुए वारूद रखने के वतन (कुप्पिया) ह, जिन पर हाथीदात और सीप की सजावट है। तरह-तरह की वन्दूके, राइफले और पिस्तौले है, देशी और यूरोपियन भी, धनुष और वाणो का भी खासा सग्रह है ओर है ढाल, गुर्ज, वाघनख, जिरेह वख्तर और न जाने क्या-क्या और कैसे-कैसे हथियार! लडाई के साज-सामान की कई सदिया सिलेहखाने मे आखो के सामने आ जाती है। लाठियो और वैतो-छडियो को भी यहा देखने लगे तो देखते ही रहे। अकबर के सेनापति राजा मानसिह का खाडा देखकर यह मान लेना पडता है कि जिस योद्धा के हाथ मे यह भारी-भरकम हथियार शोभा पाता होगा, उसी ने उस महान् मुगल सम्राट को इतने वडे साम्राज्य का स्वामी वनाया होगा।

जयपुर नरेश सग्रहालय का तीसरा विभाग एक प्रकार से वस्त्र प्रदर्शनी हे। यह मुवारक महल मे ऊपर है और इसमे कश्मीर की नायाब बुनाई और कसीदाकारी के शाल, वनारस और औरगावाद के किन्खाव, असली रेशम के दुपट्टे और ढाका की वह लाजवाव मलमल भी है, जिसकी अव कहानिया ही शेष रही हैं। सागानेर मे कपडो की छपाई का उद्योग अब भी बडे जोर-शोर से चलता है, लेकिन सागानेरी कपडो के जो पुराने नमूने यहा है, वैसी वूटिया और रग अब कहा बैठते है !

पुराने राजाओ की पोशाके और रानियो के जरी और गोटा-किनारी के काम से लडालूम, जर्क-वर्क वेस भी यहा दिखाये गये है। वीच-वीच मे कागज की कटाई के नमूने है, चौखटो मे जडे हुए। यह देखकर हैरत होती है कि सवाई जयसिह के वेटे ईश्वरी सिह के हाथ मे कैसा कमाल था जो कागज को काट-छाट कर सीता-राम और हनुमान, राधाकृष्ण और वह भी कदम्ब की छाव तले गैया के साथ इस तरह बना देता था जैसे किसी "परफोरेटिग" मशीन से वनाये गये चित्र हो।





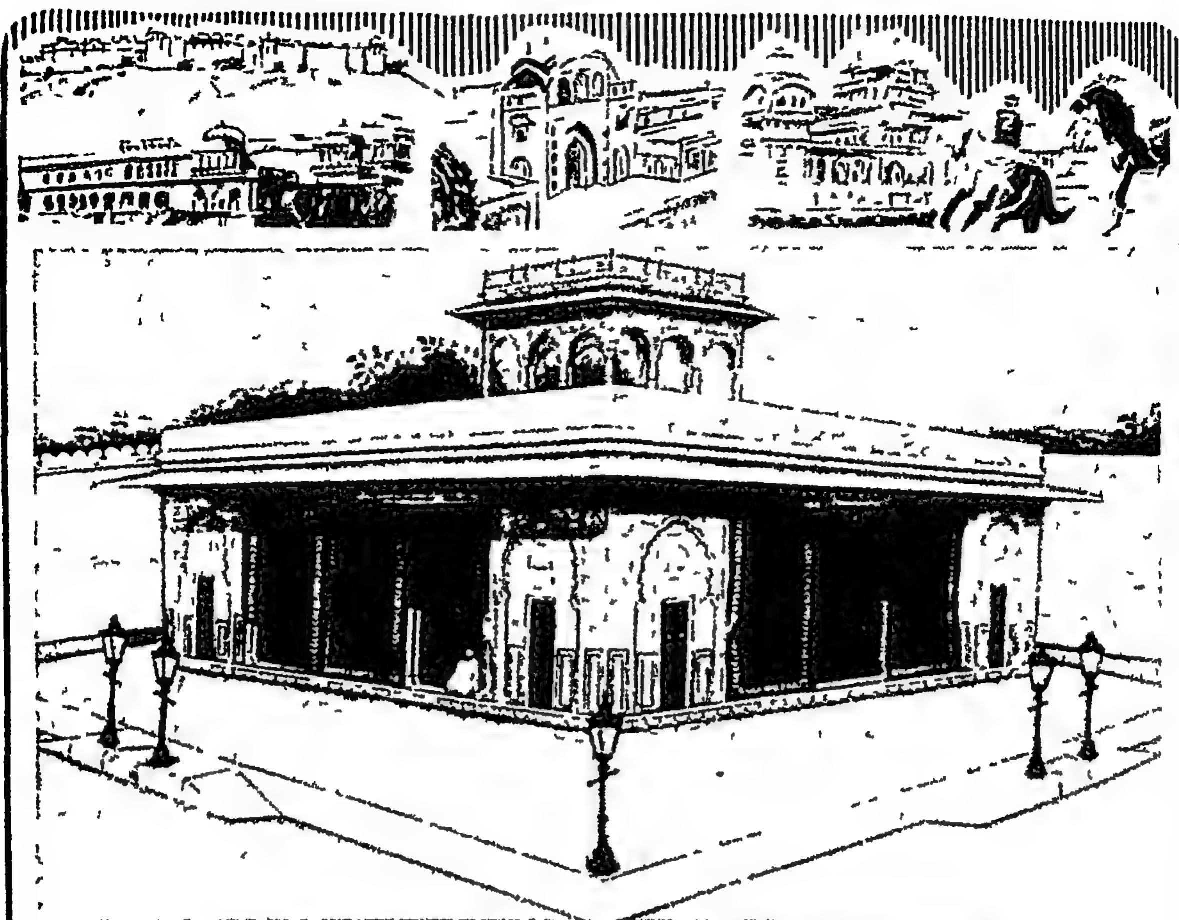
5.सर्वतोभद्र: दीवाने-खास

जयपुर के राजाओ का "दीवाने-खास" सर्वतोभद्र नामक प्रासाद हुआ करता था। कपाट कोट का या वादरवाल के दरवाजे से प्रवेश-द्वारो की जो शृखला आरम्भ होती है वह अम्वापोल पर जाकर पूरी होती है। यह दरवाजा दीवाने-आम ओर सर्वतोभद्र के वीच की ऊची और मोटी दीवार मे वना है। दीवाने-आम की कुर्सी नीची और सर्वतोभद्र की कुर्सी अपेक्षाकृत ऊची है। यह भव्य सभा भवन चौकोर है, जयपुर की इमारती शव्दावली मे पाच "गह" लम्वा और इतना ही चौडा। चारो कोनो को वद कर चार कमरे या कोठरिया वनाई गई है और वाहर चवूतरे पर लाल पत्थर के प्रकाश-स्तम्भ इसे वडी भव्यता प्रदान करते हैं। सगमरमर के दुहरे स्तम्भो पर कमानीदार मेहरावो वाला यह भवन खुला होकर भी वैसा खुला नही जैसा दीवाने-आम है। इसका मूल नाम "सवतोभद्र" इसी नाम की एक वेदी से लिया गया है और यह वैदिक नाप-जोख से ही बनाया गया है।

सरवता की उत्तर-पूर्व की कोठरी से सीढिया ऊपर जाती है। छत पर वीचो-वीच एक वारहदरी है जिसमे रगीन कलम का वडा सुन्दर काम है। कभी यही राजाओ के शरद-पूर्णिमा के दरवार हुआ करते थे।

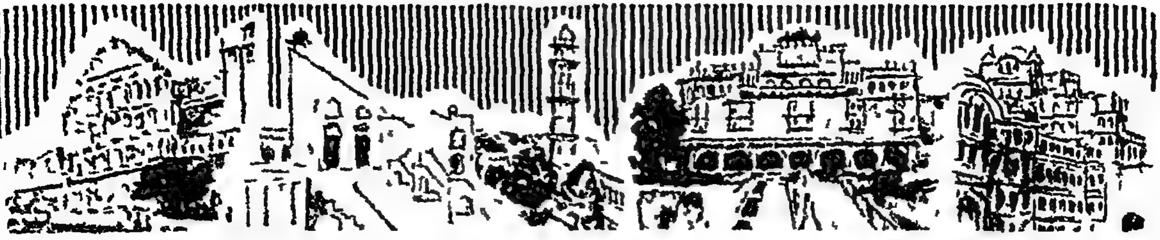
राज्य के सरदारो और जागीरदारो मे भी खास-खास, मुसाहिव और वडे ओहदेदार यहा राजा से साक्षात्कार और राज-काज के अहम मुद्दो पर विचार-विमर्श किया करते थे। राजाओ की गद्दीनशीनी, मोअज्जिज मेहमानो के सम्मान मे दावते और ऐसे ही खास-खास समारोहो के आयोजन दीवाने-खास मे हुआ करते थे। आम अनपढ लोगो ने इसे जहा सरवता कहा, वहा पढे लिखे मुशियो और हाकिम- अहलमदो ने मुगल चलन पर इसका नाम "दीवाने-खास" मशहूर किया। लेकिन भारतीय सस्कृति और हिन्दू परम्पराओ के प्रेमी सवाई जयसिह ने इसे "सर्वतोभद्र" नाम ही दिया था जो राज्य के अधिकृत कागजो और विद्वानो मे आज तक प्रचलित है।

"ईश्वर विलास" महाकाव्य के रचयिता कवि कलानिधि, देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट ने सवाई जयसिह के उत्तराधिकारी ईश्वरीसिह (1743-50ई) के युवराज घोपित किये जाने के जिस दरवार का सजीव और आखो देखा वर्णन किया है वह इसी सर्वतोभद्र मे हुआ था। सवत् 1790 की ज्येष्ठ शुक्ला 13 को सवाई जयसिह ने अपने वैभव की चरम सीमा पर पहुच कर यह दरवार किया था और उसका चहेता वेटा ईश्वरी सिह उसके वायी ओर वैठा था। जयपुर के दीवानी हजूरी दफ्तर का रिकार्ड वताता है कि इसमे "महाराज कवारजी को जुगराज (युवराज) की पदवी" दी गई और "उठते समय श्री महाराजाधिराज (जयसिह) ने महाराज कवारजी को नजर करने की समस्त मुतसद्दियो को आज्ञा प्रदान की कि वे दरवार मे महाराज कवर





सर्वतोभद्र या दीवाने-खास। यह भी उन्नीसवी सदी के एक चित्र की छाया है। अब तो इस सभा-भवन के चारो कोनो पर लाल पत्थर के भव्य प्रकाश-स्तम्भ बने हैं, किन्तु जब का यह चित्र है तब रोशनी मिट्टी के तेल से ही की जाती थी। इस भवन का बहिरंग भी तब बारीक सफेद सत के काम से सुसज्जित था। (ऊपर)। नीचे है सर्वतोभद्र में रखे हुए दो विशाल रजत पात्रो में से एक जिनमे महाराजा माधोसिंह गंगाजल भरकर इंग्लैण्ड ले गये थे।



जी की नजरे करे। आज्ञा अनुसार नजर की गई।"

इसी रिकार्ड के अनुसार अगले दिन "श्री महाराजाधिराज व श्री महाराजकवार जी सरवता महल मे जाकर विराजे दरबार किया, ठाकर लोग आये। परवाना सप्ती पर "राम सही" करी। इस प्रकार (महाराजकुमार) राज्य-कार्य करने लगे। पातशाहजी (मुगल बादशाह) ने खिताब जुगराज पद का बख्शा सो मौजमबेग (मुअज्जमबेग) गुजरबरदार (गुर्जबरदार) लाया और हाथी, घोडा, सिरोपाव, जवाहर भी लाया। गुजरबरदार को छह सौ रुपये दिये।"[1]

1743 इ मे सवाई जयसिह के मर जाने पर ईश्वरसिह इसी सर्वतोभद्र मे गद्दीनशीन हुआ और ' पातशाह जी श्री महमदशाह जी (मुहम्मदशाह) की हुजूर दिल्ली मे खिताब वडा महाराजाजी का मनसब बख्शने का हुक्म की फर्द आई सो नोबत बजाय खुशी मनाई। मुतसद्दी वगैरह की नजर लेकर अन्दर पधारे। रुपया 13 000 दरबार खर्च बाबत बहाल खिताब व मनसब बदस्तूर बडा महाराज मुआफिक फर्द करार मिति ज्येष्ठ वुदी 5 माल म 1800 किये गये।"[2]

तब से स्वर्गीय महाराजा मानसिह के उत्तराधिकारी वर्तमान कर्नल भवानीसिह तक की गद्दीनशीनी की रस्म इसी प्रासाद मे होती आई है। महाराजा प्रतापसिह के समय से आम दरबार तो दीवाने-आम मे होने लगे थे लेकिन महाराजा रामसिह ने अपने समय मे आने वाले बडे-बडे मेहमानो को इसी भवन मे खाने खिलाये। प्रतापसिह के समय मे तो सर्वतोभद्र का शायद और भी अच्छा उपयोग हुआ। पोथीखाने के ग्रन्थकार और सूरतखाने के मुसव्विर तब यहा बैठकर अपनी कृतियो को लिखते और बनाते। ऐसा उल्लेख पोथीखाने के कई ग्रन्थो मे है।

महाराजा माधोसिह के समय मे भी अंग्रेज वायसरायो और दूसरे मेहमानो को सर्वतोभद्र मे ही "स्टेट बैक्वेट" दी जाती थी। भारत की आजादी और राजस्थान के निर्माण के कई सालो बाद महाराजा मानसिह ने भी झाड-फानूस मे जगमगाते सर्वतोभद्र मे ही सोवियत कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रथम सचिव निकिता खुश्चेव और प्रधानमन्त्री बुलगानिन को "बैक्वेट" दी। जयपुर के राजाओ के मध्यकालीन महल मे रूस के ये कम्यूनिस्ट नेता जब दावत खाने पहुचे थे तो शहर मे जैसे भीड समा नही रही थी। "हिन्दी-रूसी भाई-भाई" का नारा लगाने मे जयपुर वाले भी पीछे नही रहे थे।

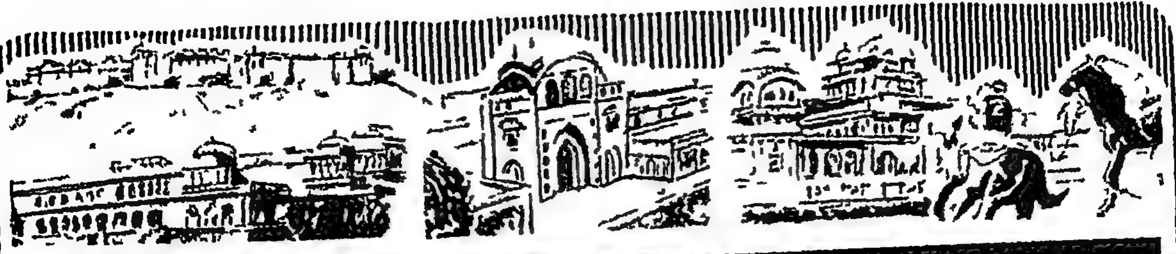
अब तो सर्वतोभद्र बस देखने भर की एक सूनी इमारत रह गया है। इसके खाली आगन मे महाराजा मानसिह ठोस चादी के उन दो लोटो को रखवा गये थे जिनमे महाराजा माधोसिह 1902 मे अपने उपयोग के लिये गगाजल भरकर इग्लैंड ले गये थे।[3] कहने को तो इन्हे लोटा कहते है, लेकिन यह दोनो वास्तव मे है बडे विशाल पात्र। दोनो बर्तन ढक्कनदार है जिन्हे 304 दिन की मेहनत से जयपुर ही के कारीगरो ने बनाया था। पाच हजार रुपया बनाने वालो को मजदूरी का मिला था। इन दोनो रजतपात्रो का वजन 57,000 तोला या सत्रह मन (लगभग 680 किलोग्राम) है और मन भी वह जिसमे 88 तोले का सेर हुआ करता था। "गिनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स" मे भी इन पात्रो का उल्लेख हो चुका है। ससार मे कदाचित् इनसे बडे चादी के बर्तन और कही नही है।

---

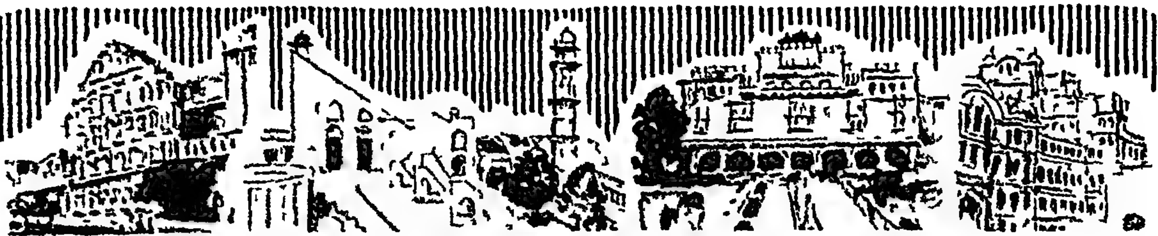
1 ईश्वर विलास महाकाव्यम्, जयपुर, 1958, पृष्ठ 75

2 वही, पृष्ठ 76

3 देखिये परिशिष्ट 5, महाराजा माधोसिह की इगलैण्ड यात्रा।



मुबारक महल, जिसमें महाराजा माधोसिंह के अन्तिम दिनों में महकमा ख़ास का दफ्तर था



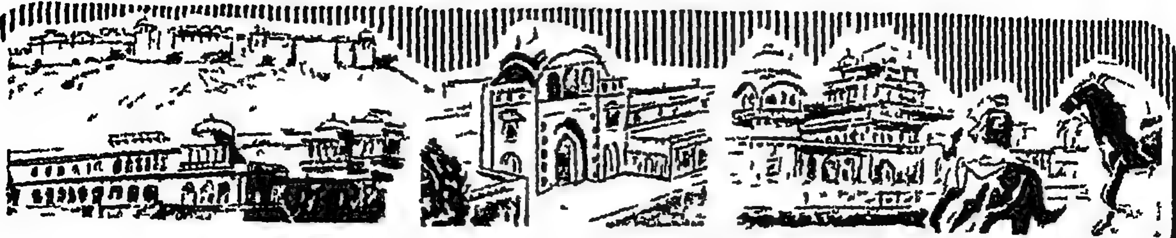
6.मुबारक महल

जयपुर के महलो मे मुबारक महल अपने ढग का एक ही है। चूने पत्थर मे बना है, किन्तु इसके वहिरग की छटा उन काठ के मकानो जैसी है जो काठमाण्डू या गगटोक मे देखे जाते है। यह प्रभाव पत्थर को तराश कर उसमे बारीक कुराई द्वारा पैदा किया गया है। दुमंजिले महल का अन्तरग जयपुर के अन्य मकानो जैसा ही है, पलस्तर से परिपूर्ण या फिनिश्ड, पर सुदृढ़ और सुरुचिपूर्ण। पूरी इमारत मे किवाडो की जोडिया भी ऐसी लगी हैं कि अन्तरग और वहिरग के शिल्प मे पूरा मेल खाती है।

यह महल नगर-प्रासाद के भवनो मे सबसे नया है। महाराज माधोसिह (1880-1922ई) ने यह अपने मेहमानो के उपयोग के लिये वनवाया था। बाद मे इसमे जयपुर रियासत का महकमा खास भी रहा और अब इसकी ऊपरी मंजिल मे जयपुर नरेश सग्रहालय का वस्त्र विभाग है और नीचे इस सग्रहालय और पोथीखाने के अधिकारीगण बैठते है। जिस विशाल चौक के बीचो-बीच यह महल है, उसके उत्तर-पूर्वी कोने मे सुमधुर आवाज की घडियो वाला घटाघर है, जो एक कुये के ऊपर बना है। यह महाराजा रामसिह ने बनवाया था। दक्षिण की ओर त्रिपोलिया के ठीक सामने एक विशाल द्वार है, "पूरबिया की ड्योढी।" पूर्व की ओर ऐसा ही विशाल दरवाजा 'गडा की ड्योढी' कहलाता है। बी एल धामा का मानना था कि कभी यहा गेंडा रहता था,[1] किन्तु ठाकुर हरनाथसिह ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि इस द्वार का सम्बन्ध गडे मे जोडना भ्रान्ति है। वास्तव मे गेडा "लफगडार" शब्द का विकृत रूप है जिसका अर्थ होता है घरेलू नौकर। यह युक्तियुक्त भी लगता है, क्योंकि इस दरवाजे के वाहर कभी ज्योतिष यन्त्रालय के समानातर खोजो या नादरो की हवेलिया थी। मिर्जा इस्माइल के समय (1941-44ई) मे ये सभी हवेलिया धराशायी कराई गई थी क्योंकि ये यन्त्रालय की आड बनी हुई थी। इस द्वार को आपचारिक रूप से वीरेन्द्र पोल भी कहते है।

मुबारक महल को सरवता या सर्वतोभद्र प्रासाद से जोडता है राजेन्द्र पोल नामक दरवाजा। इसे 'सरहद की ड्योढी' भी कहा जाता है। इस दरवाजे के निर्माण मे सगमरमर का प्रचुर प्रयोग किया गया है और इसकी दीवारे तथा मेहराव मे दर्शनीय नक्काशी है। सर्वतोभद्र तो सवाई जयसिह ने ही वनवा दिया था और उसमे प्रवेश के लिए इसी स्थान पर सरहद की ड्योढी भी थी। जब मुबारक महल वना तो उस पुराने और सीधे-सादे प्रवेश द्वार को राजप्रासाद के अनुरूप नही समझा गया और यह नया द्वार वनवाया गया। दरवाजा क्या है, पूरी इमारत या महल है। इसमे दोनो और मेहरावदार दालान वने है और बाहर की ओर सगमरमर के झरोखे झाकते है जिनसे इसकी भव्यता वहुत वढ गई है।

1 ए गाइड टू जयपुर- आमेर, बी एल धामा, जयपुर, 1955, पृष्ठ 47

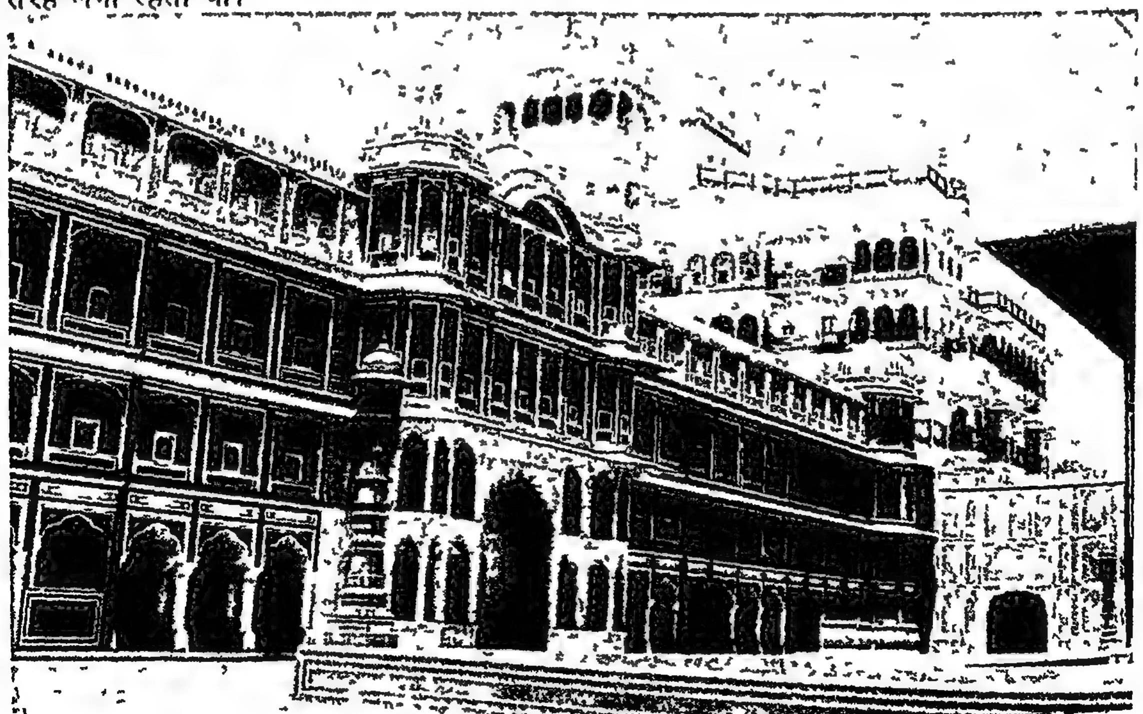


जयपुर अपने पीतल के काम के लिए प्रसिद्ध है ओर रामसिह के समय मे ही महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स ने इसमे बडी ख्याति पा ली थी। राजेन्द्र पोल जितनी दर्शनीय है, उतने ही दर्शनीय इसके विशाल कपाट है जिन पर पीतल की दर्शनीय सजावट है। अपने शिल्प सौन्दर्य और अलकृत शोभा के कारण राजेन्द्र पोल सचमुच राजसी है। इससे एक ओर मुबारक महल तथा दूसरी ओर सर्वतोभद्र, दोनो की सुन्दरता और भव्यता मे वृद्धि होती है।

राजेन्द्र पोल के बाहर दोनो ओर सगमरमर के हाथी खडे है जिन पर महावत भी सवार है। जिन सिलावटो ने यह हाथी बनाये उन्हे इस पशु की शरीर रचना और राज-दरबारो मे किये जाने वाले इसके शृगार का पूरा ज्ञान था। तभी ऐसी हूबहू प्रतिकृतिया बनी। यह हाथियो का जोडा यहा दिवगत महाराजा मानसिह ने अपने प्रथम पुत्र महाराजकुमार (अब कर्नल) भवानीसिह के जन्मोत्सव के अवसर पर रखवाया था।

महाराजा मानसिह ने ही मुबारक महल के चौक मे पश्चिम की ओर एक लम्बी दीर्घा बनवाना आरभ किया था जिसमे जयपुर नरेश सग्रहालय की विविध वस्तुओ को अधिक अच्छे ढग से प्रदर्शित किया जा सके। नगर-प्रासाद के इस नवीनतम भवन मे समय-समय पर अनेक विशिष्ट प्रदर्शनियो का आयोजन किया जाता है।

इस चौक मे दक्षिण की ओर पूरविया की ड्योढी के आगे जो मकान बने हुए है, उन्हे "चौकीखाना" कहा जाता है। जब "राज सवाई जयपुर" था तो मर्दानी ड्योढी के काम से जुडे कतिपय अधिकारी और कर्मचारी चौकीखाना मे ही रहते थे। उदाहरण के लिए महाराजा माधोसिह के विशेष कृपापात्र खवास बालाबख्श को चौकीखाने का ही एक मकान आवटित था, क्योकि वह महाराजा के शयन करने तक उनके साथ छाया की तरह लगा रहता था।



चन्द्रमहल के दक्षिण में प्रीतम निवास का प्रवेशद्वार



7. चन्द्रमहल

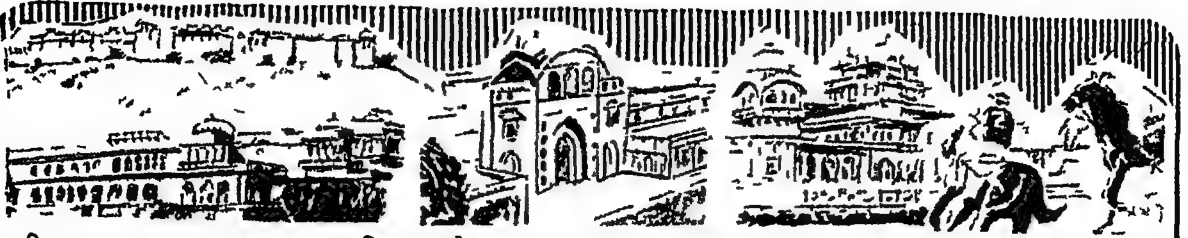
जयपुर के नगर-प्रासाद का मोर-मुकुट चन्द्रमहल है और इसकी सातवीं मंजिल "मुकुट मंदिर" ही कहलाती है। सर्वतोभद्र के पश्चिम में बड़े और ऊंचे दरवाजों के बजाय जयपुर के स्थापत्य की परम्परागत ताजदार "पोली" है जो अतीव सुन्दर और नयनाभिराम है। यह 'रिधसिध पोल' या गणेश पोल है जो चन्द्रमहल को सर्वतोभद्र से जोड़ती है। इसमें संदेह नहीं कि चन्द्रमहल जैसा आज है, उसमें सवाई जयसिंह से लेकर मानसिंह द्वितीय तक सभी राजाओं का कुछ न कुछ योगदान रहा है,[1] लेकिन अठारहवीं सदी के इस भव्य राजपूत राजप्रासाद के प्रधान निर्माताओं में जयसिंह, प्रतापसिंह और रामसिंह द्वितीय के नाम लिये जा सकते है। सवाई जयसिंह भव्यता के साथ सादगी का हिमायती था, पर प्रतापसिंह के समय में जयपुर की निर्माण-शैली जिस प्रौढता और परिपक्वता को जा पहुंची थी उसमें जयपुर के मजबूत चूने के पलस्तर में अलंकरण का भी बड़ा रिवाज हो गया था। यह "प्रीतम निवास" के विशाल आंगन में बनी हुई चार पोलों या "पोलियों" में ही स्पष्ट है जिनके अलंकरण में मयूर बने हुए हैं। यह कक्ष जयसिंह के बनवाये हुए "चन्द्र मंदिर" के पीछे है। प्रीतम निवास, रिधसिध पोल और भीतर का विशाल चौक प्रतापसिंह ने बनवाये थे। दोनों मिलकर चन्द्रमहल की सबसे नीचे की मंजिल है।

सवाई जयसिंह की आज्ञा से नगर-प्रासाद के इस सात मंजिले महल का निर्माण जयपुर के प्रधान नगर नियोजक विद्याधर चक्रवर्ती ने ही कराया था। विद्याधर को, जो महकमा हिसाब की एक शाखा का नायब दारोगा था, 1729 ई. में, जब जयपुर नगर का निर्माण पूरे वेग से चल रहा था, 'देश दीवाण' नियुक्त किया गया था। 1734 ई. में उसे अश्वमेध यज्ञ का सिरोपाव बख्शा गया था और इसी वर्ष में उसने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को 'सतखणा' महल या चन्द्रमहल बनाने के उपलक्ष में 'सिरोपाव कीमती साविक 85-3' प्राप्त किया था।[2]

चन्द्र मंदिर में बरामदे की भित्ति पर जयपुर के राजाओं के पूरे आकार के दर्शनीय चित्र बने है। संगमरमर के आंगन, स्निग्ध स्तंभ और सुरुचिपूर्ण रंग-सज्जा इस राजसी आवास की विशेषताएं हैं जो सवाई मानसिंह द्वितीय (1922-70 ई.) ने एक जर्मन कलाकार ए. एच. मूलर से कराई थी। 44 वर्ष राज करने और जयपुर जैसा शहर बसा देने के बाद इसी भवन में सवाई जयसिंह ने निनिमेष दृष्टि से भगवान गोविन्द को निहारते और ब्रजनाथ व गोकुलनाथ जैसे विद्वान पंडितों से भागवत-कथा सुनते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त की

1 परिशिष्ट 1, जयपुर के राजाओं की सूची।

2 हिस्ट्री आफ जयपुर सिटी, ए. के. राय, दिल्ली, 1978, पृष्ठ 242



थी। यह 3 अक्टूवर, 1743 की बात है।

चन्द्रमहल में रहनेवाले पहले राजा सवाई जयसिह की तरह जयपुर के अंतिम महाराजा सवाई मानसिह (द्वि) का पार्थिव शरीर भी यहा 1970 ई मे उसी स्थिति मे जनता के दर्शनार्थ रखा गया था।

चन्द्रमहल की दूसरी मजिल मे "सुख निवास" है जो एक खुली छत पर खुलता है। यह महल भी अपनी दीवारो पर रगीन वेल-वूटो और फूलो के डिजायनो मे सजा हुआ है। कुछ चित्र भी है। सुख निवास सवाई जयसिह ने अपनी चहेती रानी सुखकवर के नाम पर वनाया होगा जो ईश्वरीसिह की माता थी। आमेर मे भी "सुख मदिर" है। जयपुर के कवि शासक प्रतापसिह को यह अत्यन्त प्रिय था। वह प्राय इसी मे रहता और अपनी काव्य-रचना करता था। अपनी एक रचना "स्नेह वहार" के अन्त मे उसने लिखा है

जय जयनगर मुकाम,
धाम जहा गोविन्द कौ।
पते कियौ विश्राम,
सरन गह्यौ नद नद कौ।।
जब ही कियौ विलास,
सुख निवास के माहि यह।
बाचे बुद्धि-प्रकास,
दुख दारिद सब जाहि बह।।[3]

अपने एक अन्य ग्रन्थ "रग चौपड" की रचना भी प्रतापसिह ने इसी कक्ष मे पूरी की थी

श्री गुबिन्द प्रभु के निकट
जयपुर नगरहि मद्ध।
ब्रजनिधि दास पतै कियौ
सुख निवास मे सिद्ध।।[4]

भर्तृहरि के "वैराग्य शतक" के व्रज-भाषानुवाद को भी प्रतापसिह ने इन पक्तियो के साथ पूरा किया है

श्री राधा गोबिद के
चरन सरन विश्राम।
चन्द्रमहल चित चुहल मे
जयपुर नगर मुकाम।।[5]

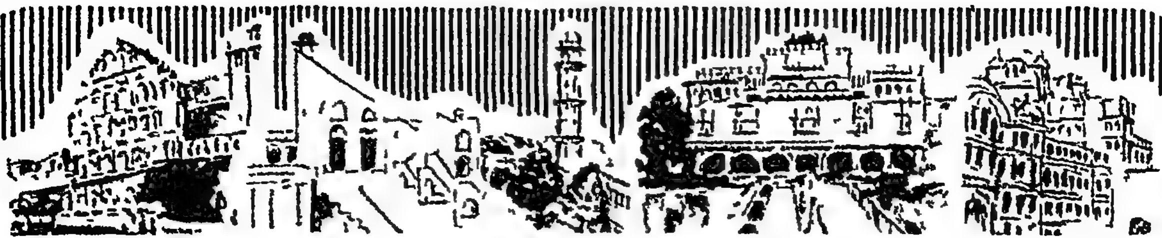
प्रतापसिह के ग्रन्थो मे रचना सवत् के साथ-साथ सुख निवास, चन्द्र महल और जयपुर नगर मुकाम का स्थान-स्थान पर हवाला दिया गया है। "स्नेह सग्राम" मे यह कवि नरेश कहता है

जयपुर नगर मुकाम
चन्द्रमहलहि अवलम्बत।
भयी सुग्रन्थ प्रतच्छ
सुच्छता पाई सवत्।।[6]

3 ब्रजनिधि ग्रथावली, प हरिनारायण शर्मा, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1933, पृष्ठ 49

4 वही, पृष्ठ 67

5-6 वही, पृष्ठ 128 तथा 21



जयपुर के कारीगरो ने चन्द्रमहल के कक्षो मे भी दीवारो और छतो मे काच की जडाई का काम किया है। यह सुन्दर और कमनीय होते हुए भी उस नफामत को नही पहचा जो आमेर मे मिर्जा राजा जयसिह के बनवाये हुए "जय मंदिर" और "जस मंदिर" मे है। उस शीशमहल के लिए जहा महाकवि विहारीलाल तक ने अपनी सतसई मे यह उल्लेख किया है—

> **प्रतिबिम्बित जयसाह द्युति,**
> **दीपित दरपण-धाम।**
> **सव जग जीतन को कियौ,**
> **काय व्यूह मन काम।।**

—वहा चन्द्रमहल के शीश महलो के विषय मे काव्य-रसिक सवाई प्रतापसिह और उसकी 'कवि वाईसी" भी मौन ही रहे है।

चन्द्रमहल की तीसरी मंजिल "रग मंदिर" कहलाती है। इसमे भी दीवारो, स्तभो और छत मे छोटे-वडे शीशे है। चौथी मंजिल पर "शोभा निवास" है, पाचवी पर "छवि निवास" और इसके भी ऊपर छठी मंजिल पर "श्री निवास" प्रासाद है। यह अलग-अलग नाम जैसे वताते है कि आधुनिक राजभवनो और दिल्ली के राष्ट्रपति भवन मे "द्वारका सूट", "अम्वर सूट" आदि नाम रखने की परम्परा नयी नही है। एक ही राजमहल के विभिन्न कक्षो को अलग-अलग नामो से मध्यकाल मे भी जाना जाता था और यह नाम भी शुद्ध भारतीय तथा कक्ष की शोभा के अनुरूप अधिक युक्तियुक्त होते थे। शोभा निवास मे रग और सुनहरी कलम के साथ विभिन्न आकार के शीशो की जडाई है। जयपुर के राजा इसी कक्ष मे वैठकर दीपावली पर लक्ष्मीपूजन किया करते थे।

चन्द्रमहल की सातवी मंजिल "मुकुट मंदिर" है। यहा से सारा जयपुर शहर तो आखो के नीचे आ ही जाता है, दूर की पहाडियो और उन पर वने दुर्गो और मंदिरो का भी विहगम दृश्यावलोकन होता है। एक ही नजर मे जयपुर की अप्रतिम नगर-रचना, अनूठे शिल्प-सौष्ठव और भव्य स्थापत्य-कला का दिग्दर्शन हो जाता है।

चन्द्रमहल की इस छत का उपयोग सवसे अधिक शायद महाराजा रामसिह ने किया था। इस राजा के शौको मे पतगवाजी भी एक था। चन्द्रमहल और जनानी ड्योढी के वीच रामसिह के कमरे मे एक कोठरी अव तक "पतगो की कोटडी" कहलाती है। दूर-दूर के पतग-डोर वनाने वाले तव यहा काम करते रहते थे। रामसिह ने अच्छी "तुकल" वनाने वालो और "माजा" सूतने वालो को इस हुनर मे कमाल हासिल करने के लिये जागीर तक दी थी। चन्द्रमहल की छत से जो तुकल उडाये जाते वे आदम कद पतग होते, जिनके पावो मे चादी की छोटी-छोटी घुघरिया फूदन वनकर लटकी रहती। ठुमकी के साथ जब तुकल हवा पर सवार होकर आसमान से वाते करने लगता तो यह वारीक घुघरिया भी ठुनक-ठुनक करती। आज तो वस अनुमान ही किया जा सकता है कि कैसा माहौल रहता होगा।

वैसे जयपुर मे पतगवाजी इस नगर की स्थापना के समय से ही चालू हो गई थी। तभी 1770 ई मे वखतराम साह ने इस नगर के हाट-वाजारो का वर्णन करते हुए लिखा है 'वस्त्रागर वुनगर वरकसाज, कहु वेचत गुडी पतगवाज।'[7] किन्तु वखतराम साह से वहुत पहले महाकवि विहारी ने आमेर मे भी पतगवाजी अवश्य देखी होगी। सतसई का यह दोहा[8] प्रसिद्ध है—

7 वुद्धिविलास, जोधपुर, 1964, पृष्ठ 19
8 विहारी सतसइ प्रयाग, 1950





सवाई जयसिंह (1699 1743 ई.)
जयपुर नगर का संस्थापक

दीवान विद्याधर



दीवान विद्याधर चकवर्ती प्रधान नगर-नियोजक



उडति गुडी लखि ललन की, अगना अगना माह।
वौरी लौ दौरी फिरति, छुवति छवीली छाह।।

सवाई जयसिह तो "श्री राजाधिराज" था और प्रतापसिह भी तुगा की लडाई मे महादजी सिंधिया को हराने के वाद वडा प्रतापी राजा होकर जिया था, लेकिन चन्द्रमहल मे रहने वालो मे रामसिह एक ऐसा राजा था जो सवसे पहिले इसान था। इस राजा की सादगी ओर वन्दापरवरी, दोनो की कहानिया ही इकट्ठी की जाये तो एक अच्छी खासी पोथी वन जाये। अपने पहिनने की वोतली रग की अगरखी ओर लाल पगडी को रामसिह खुद ही धो लेना और रग-सुखाकर पहिन लेता। महाराजा के पोशाकी कम नही थे और वह खास कपडो की देखभाल और उन्हे पहिनाने की ही तनख्वाह पाते थे, लेकिन रामसिह के सरल स्वभाव और अपना काम खुद करने की ताव देखिये कि अपने सिर की नाप के लकडी के "मतरो" पर स्वय ही पगडी वाध लेता। मतरा देखना हो तो आज भी परोहितजी के कटले मे चले जाइये, जहा 'वीद राजाओ' के साफे और पगडिया वाधी जाती है और इस वधाई के दाम भी अव तो अच्छे खासे देने पडते ह।

इसमे शक नही कि रामसिह जैसे वहु-प्रतिभा-सम्पन्न, शास्त्र और सगीत प्रेमी, वह पठित और वहुश्रुत, कला-कोशल के सरक्षक, परम्पराप्रिय और सुधारवादी राजा का उत्तराधिकारी होकर रहना एक आसान काम न था। लेकिन माधोसिह जैसा आदमी भी, जो न ऐसा पढा-लिखा था और न इतना ससस्कृत अपने 'गोपालजी' के भरोसे ही ऐसे वडे वाप का लायक वेटा सावित हुआ। रामसिह जो वडी विरासत छोड गया था, माधोसिह उसके प्रति वडा सजग और सचेष्ट था। अपनी जिन्दगी में उसने ऐसी कोई वात न की जिससे रामसिह के खडे किए हुए ढाचे मे थोडी भी गडवड हो। चन्द्रमहल मे सवेरे विस्तर छोडते ही वह सवसे पहिले उस कोठरी मे जाता जिसमे गोपालजी की मूर्ति विराजमान थी। फिर हाथ जोडकर भगवान से य वाते करता जैसे किसी भरोसे के दोस्त या दातार मालिक से वतराते हैं। वह क्या था आर क्या हो गया था इस वारे मे उसे कोई मुगालते भी नही थे। साफ दिल से वह गोपालजी से अर्ज करता "गोपाल' ई राज और इ प्रजा को तू ही मालिक छै। मैं तो आयो कोने, तू ही मन इ गद्दी पर ल्यायो छै। अव तू ही म्हारी लाज राखजे, इसी कोई वात मत होवा दीजे क म्हारे कोई धव्वो लाग जाय' गोपाल, माधोसिह की तू ही निभावैलो।।"

और, गोपालजी ने माधोसिह की वास्तव में लाज निभाई। मन-गढन्त मने-मनाये किस्सो मे वह जाने वालो की वात तो अलग है, लेकिन जिन लोगो न माधोसिह ओर उसके तौर-तरीको को देखा और खूव नजदीक से समझा-परखा है, वे आज तक मा ववश के गुण-गान करते नही थकते। उसके दान-पुण्य के चर्चे जैसे कभी खत्म ही नही होते- 'वैसा ओलादोला राजा कौन होगा।'

चन्द्रमहल, जिसके शीर्ष पर अव भी सवाइ जयपुर का सवाया पचरगा झडा ही फहराता है (यह सवाया झडा, जिसमे वडे ध्वज के ऊपर उसके एक चोथाइ आकार का छोटा ध्वज लगता है, जयपुर के सस्थापक सवाइ जयसिह की ही देन ह), ऐसे अनुपात से वना हे कि इसमे सव कही घूम कर देखे विना इसकी विशालता और भव्यता का अनुमान ही नही होता। अपने सामने दूर तक फैले सुरम्य उद्यान के साथ यह राजसी आवास सचमुच जीवन के सुख और रगीनियो को भोगने का एक आदर्श प्रासाद ही रहा होगा।

चन्द्रमहल के पश्चिम मे एक छोटे चोक के साथ "माधो निवास" नामक महल है। इसका पश्चिमी भाग माधोसिह प्रथम (1750-67ई) ने वनवाया था, शेष भाग रामसिह द्वितीय (1835-80ई) ने जोडा। इसके पश्चिम मे भी एक चौक है जिसके वीच मे तरणताल है। माधोनिवास उत्तर की ओर जयनिवास उद्यान मे खुलता हे। लाल वलुआ पत्थर का इसका द्वार कुराई के काम से सज्जित है, जिसमे दो हाथी भी उत्कीर्ण है। इसीसे इसका नाम "गजेन्द्र पोळ" है।



चन्द्रमहल के सामने जय निवास बाग, उसके फव्वारे तथा नहरें



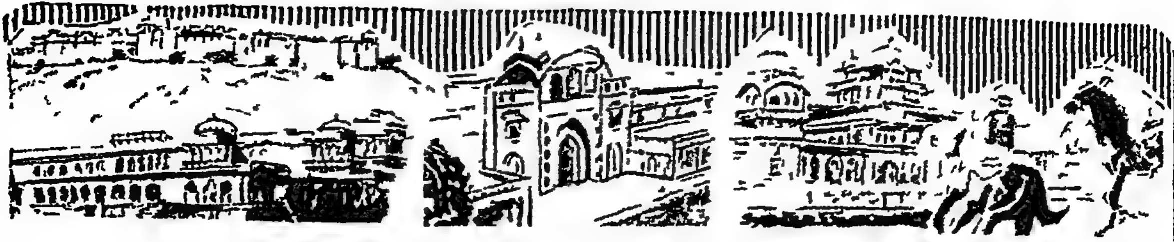
8. छत्तीस कारखाने

अपने महल के आसपास के चौकों में ही जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह ने छत्तीस कारखाने स्थापित किये थे। राज्य की "बावन कचेहरियां और छत्तीस कारखाने" जयपुर निवासियों की जुबान पर बार-बार आते थे। जब तक राजाओं का राज रहा, जयपुर में तो कोई छुट्टी या तातील तभी मुकम्मिल मानी जाती थी जब छत्तीस कारखाने भी बंद रहें और उनमें कोई काम-काज न हो।

जयपुर की समृद्धि और सम्पन्नता आमेर के राजा भारमल के अकबर की अधीनता स्वीकार करने के साथ आरंभ हुई थी और सवाई जयसिंह के समय में वह अपनी चरम सीमा पर थी। जयसिंह जैसे बहुश्रुत और दूरदर्शी शासक से यह बात भी छिपी नहीं थी कि मुगलों का गौरव अब अपने दिन गिन रहा है और अकबर ने जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, वह लड़खड़ा गया है। बाह्य रूप से मुगल बादशाह के प्रति वफादारी बरकरार रखते हुए जयसिंह ने अपनी कूटनीति और सूझबूझ से जो कुछ किया, उसका एक ही लक्ष्य था—आमेर या जयपुर को राजपूत राज्यों में प्रथम और सबसे बड़ी शक्ति बनाना। अपने इसी लक्ष्य को पाने के लिये उसने अपने राज्य के विस्तार के साथ (आमेर या नये जयपुर की सीमायें अब पूर्व में यमुना, पश्चिम में सांभर की झील, उत्तर में लोहारू और दक्षिण में लगभग चम्बल तक जा पहुंची थी) नई राजधानी की स्थापना की, अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया और सामंती राज-व्यवस्था का भी पुनर्गठन किया।

सवाई जयसिंह ने ही कारखानों की कल्पना की और इसे मूर्त रूप दिया। किन्तु, जैसा अन्य बातों में उसने किया, कारखानों की स्थापना में भी जयसिंह ने मुगलों की नफासत के साथ अपनी परम्पराओं को बरकरार रखा। अपने कलात्मक वस्तुओं के संग्रह और आवश्यकताओं को देखते हुए उसने कारखानों की संख्या 36 निर्धारित की। आधार तो मुगलों वाला ही था, किन्तु जयपुर में इन कारखानों की संख्या और इनके नाम सर्वथा नये थे— ऐसे जो जयपुर के जनसाधारण की समझ में आये। बखतराम साह इस सम्बन्ध में हमें बताता है

ऊचे दरवाजे सुगम वाट।
कंचन सम जटित बने कपाट।।
लगते बनवाये चौक ईस।
तहँ रहै कारखानै छत्तीस।। ।51।
यह हुतौ कारखानै तनौस।
पारसी नाम ता मध्य दोस।।

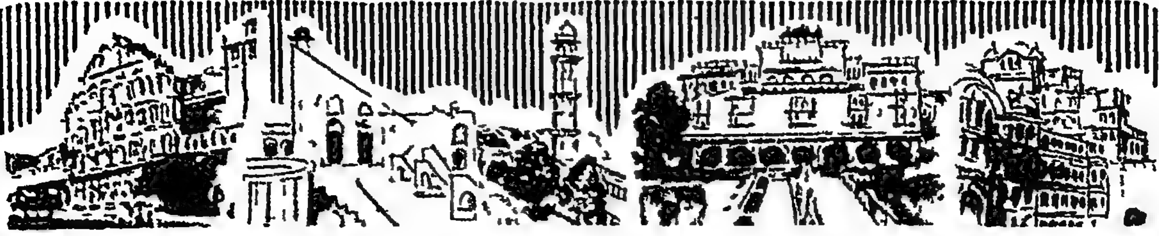


नृप काढि हिदवी नाम कीन।
गृह सख्या यह ठनी नवीन।।52।[1]

स्पष्ट है कि कारखानों की व्यवस्था तो स्पष्टत मुगल या फारसी अनुकरण पर की गई थी, पर उनके नाम दोपपूर्ण मानकर जयसिह ने "हिदवी" नाम ही रखे और उनकी सख्या अपनी आवश्यक्ता और सुविधा के अनुसार निश्चित की। पण्डित गोपालनारायण वहुरा के अनसार उन दिनो के कारखानो की पूरी सूची तो अभी तक उपलब्ध नही हो पाई है,[2] किन्तु जयसिह के पुत्र माधोसिह प्रथम ने इस ओर विशेष ध्यान दिया था। उसकी आज्ञा से दलपतिराय ने सस्कृत मे "राज-रीति निरूपण शतकम्" नामक ग्रथ लिखा था जिसमे "यवन परिपाट्यनुसार" कारखानो के नाम इस प्रकार दिये गये है

शय्यागार-सुखसेजखाना।
मज्जनगृह-गुसलखाना, हम्माम।
देवायतन-तसवीहखाना।
पुस्तकालय-कुतुवखाना।
चित्रागार-तसवीरखाना।
भैषज्य गृह-औपधिखाना, दवाईखाना।
फलागार-मेवाखाना।
कोष्ठागार-जखीरा, अम्वार, कोठार।
महौषधिशाला-मोदीखाना।
कुप्पशाला-रिकावखाना।
कास्यागार-ठठेरखाना।
महानस-ववर्चीखाना (रसोडा)।
जलगृह-आवदारखाना, पाणेरा।
तावूलगृह- तवोलखाना।
प्रतिश्रय-विलोरखाना, लगर।
कयशाला-इवतियाखाना।
सीवनागार-किरकिरायखाना।
नेपथ्यागार-तौशकखाना, कपडद्वारा।
सुगन्धागार-खुशवोयखाना, मोधखाना।
वर्णागार-रगखाना।
कलादागृह-जरगरखाना।
रत्नागार-जवाहरखाना, रत्नगृह।
प्रहरणकोश-कोटखाना, मिलहखाना।
सम्तरगृह-फराशखाना।
श्रीगृह-खजाना।
दानकोश-वेहला।
मन्दुरा-अस्तवल तवेला।

1 बुद्धि विलास, राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जोधपुर, 1964 ई
2. लिटरेरी हेरिटेज आफ दि रूलम आफ आमेर एड जयपुर, पृष्ठ 13



गजशाला-फीलखाना।
मदानिनी-गावखाना।
उष्ट्रशाला-शुतरखाना।
यानशाला-रथखाना।
पालकागार-पालकीखाना।
दारुकमालय-खातिमवदखाना।
दीपिकागार-शमअ, चिरागखाना।
ज्योतिरालय-मशालखाना।
लेखशाला-दफ्तरखाना।
मृगयागार-शिकारखाना।
शकुनिकालय-कोशखाना।[3]

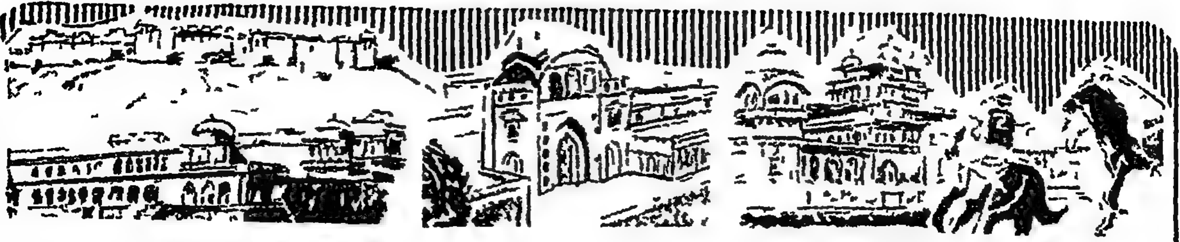
यह सूची, जैसा कहा जा चुका है, यवन परिपाटी के अनुसार है। सवाई जयसिंह ने इसी आधार पर अपने कारखाने स्थापित किये होंगे और सवाई माधोसिंह प्रथम ने कदाचित उनका पुनर्गठन किया होगा। कारखानों की स्थापना के पीछे उद्देश्य यही था कि विद्वान, कवि, लेखक, चित्रकार, गायक-वादक और नर्तक, कलाकार और शिल्पीजन को राजकीय संरक्षण दिया जाय तथा उन्हें प्रशिक्षित करके अच्छी से अच्छी कलाकृतिया और अन्य आवश्यकता की वस्तुएं तैयार कराई जायें।

बहुराजी ने अपनी पुस्तक में राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर, जयपुर के कपडद्वारा और अन्य सूत्रों से प्राप्त जानकारी के आधार पर 34 कारखानों की सूची दी है जो माधोसिंह प्रथम (1750-67ई) के समय में या उससे भी पहले स्थापित हुए थे। यह सूची इस प्रकार है

1 कपडद्वारा जिनमें (अ) किर्राकिरखाना (ब) जरगरखाना (स) तोशाखाना और (द) खजाना बेहला थे।

2 पोथीखाना
3 सूरतखाना
4 स्यालखाना
5 सिलहखाना
6 फराशखाना
7 पालकीखाना
8 फीलखाना
9 बग्घीखाना
10 शुतरखाना
11 रथखाना
12 तबेला, आतिश
13 ग्वालेरा या गोखाना
14 शिकारखाना
15 रसोड़ा
16 मोदीखाना

3 वही, पृष्ठ 416-17



17 तातेडखाना
18 तम्बोलखाना
19 ओखदखाना
20 इमारत
21 मिस्त्रीखाना
22 नक्कारखाना या नौबतखाना
23 गुणीजनखाना
24 कारखाना पुण्य
25 बागायत
26 खबर
27 तारकशी (गोटा-किनारी)
28 खुशबूखाना या इत्र की ओरी
29 नखास (घोडो का क्रय-विक्रय)
30 मशालखाना
31. पतगखाना
32 पातरखाना
33 रगखाना और
34 रोशन चौकी।

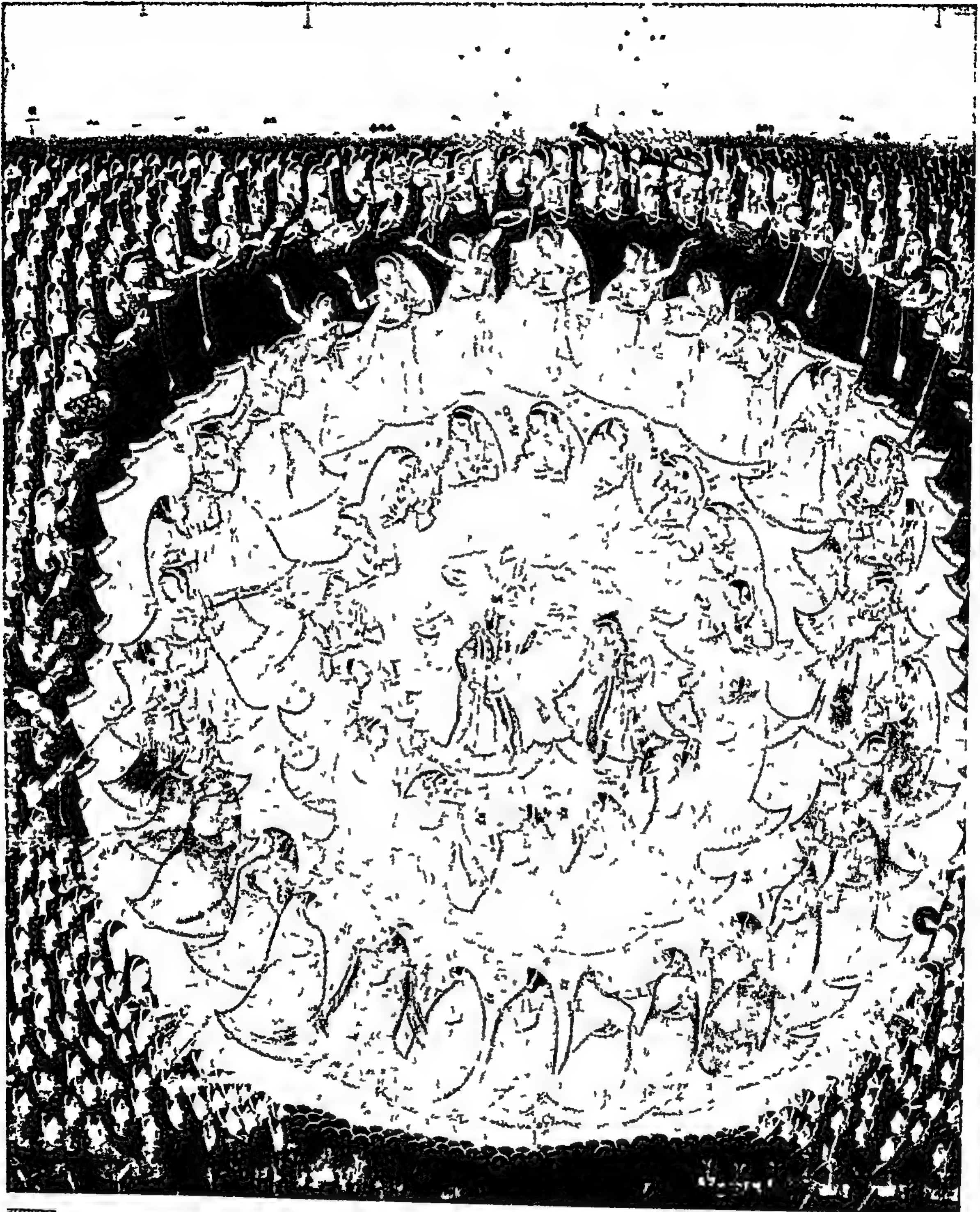
जैसा इन नामो से प्रकट है, कुछ कारखाने तो दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे, जैसे तम्बोलखाना, रसौडा, तातेडखाना आदि। कुछ राजसी लवाजमो और ताम-झाम मे योग देते थे, जैसे नक्कारखाना, मशालखाना आदि। बागायत का कारखाना राजकीय बाग-बगीचो की देखभाल के लिये था, कारखाना पुण्य दैनिक तथा विशिष्ट अवसरो पर दान-पुण्य की व्यवस्था करता था, ख्यालखाना और पतगखाना जैसे कारखाने राजा के व्यक्तिगत शौक को पूरा करते थे और ये दोनो सभवत रामसिह द्वितीय (1835-80ई) ने ही स्थापित किये थे।

सब कारखानो के काम को देखने के लिये एक विभाग था कारखाना-जात। इसके अन्तर्गत ये कारखाने अलग-अलग अथवा कुछ के समूह बन कर जयपुर रियासत के वर्तमान राजस्थान मे विलीन होने तक बराबर चल रहे थे। अब तो नगर-प्रासाद मे महाराजा सवाई मानसिह द्वितीय सग्रहालय बन गया है ओर कुछेक "खाने" जो अब भी अस्तित्व मे है, इस सग्रहालय के अन्तर्गत ही काम कर रहे है।

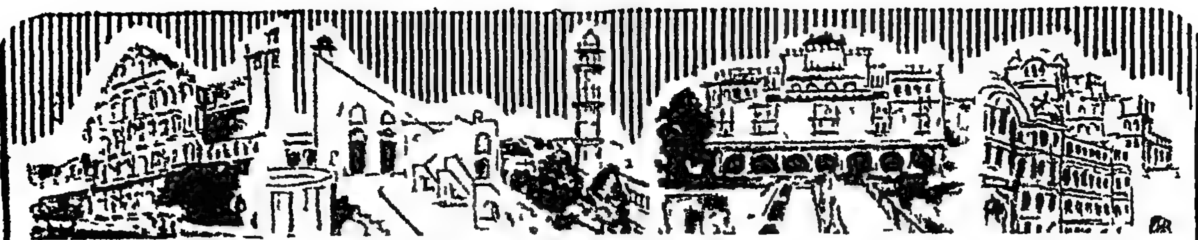
अब कुछ महत्त्वपूर्ण कारखानो का सक्षिप्त वर्णन करना भी प्रासंगिक होगा।

कपडद्वारा

सवाई जयसिह ने जो छत्तीस कारखाने स्थापित किये थे उनमे कपडद्वारा एक ऐसा कारखाना या विभाग था जिसका रिकाड 1949 तक की, जब तक "राज सवाई जयपुर" कायम रहा, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियो, रीतिरिवाजो और 'काण-कायदो' को जानने के लिए बडा महत्वपूर्ण है। "आइने-अकबरी" मे "कुरकीयारा का खाना" का उल्लेख है ओर उसी का हिदवी या जयपुरी रूप है कपडद्वारा। इसमे जरगरखाना, किरकिराखाना, तोशाखाना ओर खजाना बेहला नाम के चार उप विभाग हुआ करते थे। जरगरखाने मे सोने ओर चादी के जेवरात व बतन, कुसीदाकारी, तारकशी, सलमा-सितारा, गोटाकिनारी ओर कलाबूत के काम होते। किरकिराखाना मे जवाहरात ओर कीमती कपडे रहते। तोशाखाना मे राजाओ



रासमण्डल



की पोशाको का भडार रहता और खजाना वेहला एक ऐसा कोष या "डिस्क्रीशनरी फड" होता जिसमे से राजा जव चाहता, किसी भी काम मे खर्च कर देता और उस खर्च का बाकायदा हिसाव देने की जरूरत नही मानी जाती। कहते है माधोसिह द्वितीय जैसे राजा ने खजाना वेहला से रुपया उधार देकर कई वार कई मेठ-साहूकारो को डूवने से वचाया था। यही खजाना राजा के जेव- खर्च के लिए होता था।

कपडद्वारा मे जौहरी, मुकीम, सुनार, जडिये, दजी ओर दूसरे कारीगर तथा दस्तकार वरावर अपने-अपने काम मे जुटे रहते। इन कामो की विगत जो दिन-व-दिन के हिसाव-किताव की वहियो मे मिलती है, जयपुर के राज-परिवार के 'साहे की वातो' को जानने के लिए वडे काम की हे। साथ ही मुगल वादशाहो और दूसरे नामी-गरामी लोगो से राजाओ को आने वाले फरमानो, परवानो और चिट्ठियो का, जो तोशाखाने मे ही रहती, वडा ऐतिहासिक महत्व है। राज-परिवार मे शादी, गमी ओर दूसरे काम पडने पर जिन रिवाजो और रस्मो को निभाया जाता उनकी जानकारी भी कपडद्वारा के कागजात से ही मिलती है।

कपडद्वारा जैसे कारखाने का हाकिम राजा का अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति ही हो सकता था। महाराजा माधोसिह के समय मे जिस वालावख्श खवास की तूती वोलती थी, वह कपडद्वारा का ही काम देखता था, लेकिन "हुक्म श्रीजी जवानी खवास वालावख्श" रियासत के सारे महकमो मे चलता था। वालावख्श की ऐमी तूती वोलती थी कि वह राजा के वाद रियासत मे सव कुछ था, मुसाहिव न होते हुए भी मुसाहिवो से ज्यादा था। लेकिन कपडद्वारा का काम अत मे खवास वालावख्श को वडा भारी पडा। माधोसिह के समय मे "नाक का वाल" रहने वाले खवास जी को महाराजा के मरने के वाद गवन का कुसूरवार ठहराया गया। मोती डूगरी की गढी तव चारो ओर जगल से घिरी थी जिसमे खूखार जानवर रमते थे। खवासजी इसमे नजरवद रहे और वकाया की वसूली मे उनके घर का सामान तक नीलाम हो गया। सव खाया-पिया निकल गया।

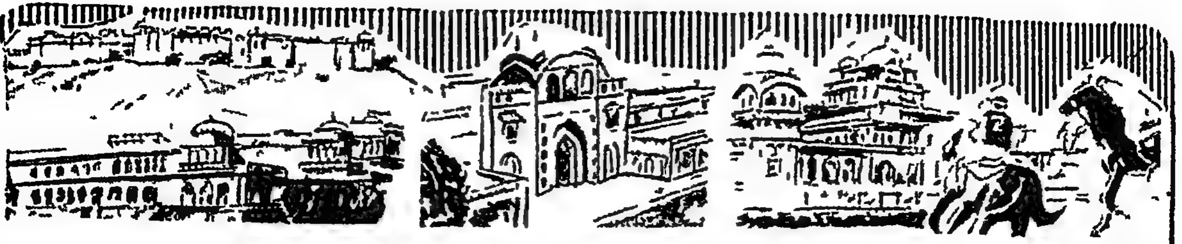
कपडद्वारा का मुशरफ या लेखा-लिपिक भी तव वडी हेसियत का आदमी माना जाता था और खवासजी के वक्त मे ही नेमीचद जैन या "नेमजी वावाजी" ने इस पद पर रह कर वडी प्रतिष्ठा पाई थी। उनके वाद उनका लडका केसरलाल कपडद्वारा का मुशरफ रहा। केसरलाल का छोटा भाई था जवाहरलाल जैन वैद्य। जवाहरलाल कुल तीस वरस का होकर ही 1909 मे मर गया, लेकिन जयपुर मे देवनागरी के प्रचार-प्रसार मे उसका योग ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा से उसका गहरा सवध था। और "मि जैन वैद्य" ने चार साल तक चद्रधर शर्मा गुलेरी के साथ "समालोचक" पत्र भी वडी लगन के साथ चलाया था। पढाई उस जमाने मे "एन्ट्रैस" कहे जाने वाले दसवे दर्जे तक ही थी, लेकिन विद्या-व्यसन ने जवाहरलाल जैन वैद्य को कई भापाओ का अच्छा अभ्यासी बना दिया था।

जवाहरलाल अपने वडे भाई केसरलाल के पास कपडद्वारा आता-जाता रहता था और महाराजा माधोसिह के पास भी उसकी अच्छी पहुच हो गई थी। जयपुर मे तव तक उर्दू-फारसी का वोलवोला था। जवाहरलाल जैन वैद्य ने न केवल महाराजा का झुकाव हिन्दी की ओर किया, वरन् "सरस्वती"-सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को एक से अधिक वार खजाना वेहला से उदार आर्थिक सहायता भी पहुचाई।

खवासजी के वाद कपडद्वारा के हाकिम का ओहदा "हाथी वावूजी" के वेटे वावू सतकोडी मुकर्जी को मिला था और फिर जोवनेर के ठाकुर नरेन्द्र सिह को,जो राजस्थान वनने के कई साल वाद विधान सभा के सदस्य भी चुने गये थे।

पोथीखाना

जयपुर- नरेश सग्रहालय की कला- दीर्घा मे जितनी पोथिया प्रदर्शित है, वह केवल एक बानगी है उस विपुल ज्ञान भडार की जो जयपुर के राजाओ के पोथीखाने मे सुरक्षित है। पोथीखाना इस राजघराने की एक वहुत पुरानी सस्था हे जो जयपुर वसने से पहिले आमेर मे ही कायम हो गई थी और सवाई जयसिह ने इसे



अपने द्वारा स्थापित छत्तीस कारखानो मे प्रमुख स्थान दिया था। पोथीखाने से आशय पुस्तकालय का हे, लेकिन इसे "कारखाना" मानना बडा महत्त्व रखता है। पुस्तकालय तो एक वार वनकर सजावट की चीज भी बना रह सकता है, लेकिन उसे "कारखाना" वनाने मे प्रयोजन यही था कि वह अनवरत चलता रहे और आगे वढता रहे। इसलिये पोथीखाने मे तभी से लेखक, कवि ओर कातिव (सुलेखक) जव तक रियासत रही, बराबर काम करते रहे। महत्त्वपूर्ण ग्रथो की प्रतिलिपियो के साथ- साथ मौलिक ग्रथो की रचनाये भी यहा बरावर होती रही। चूकि "सूरतखाना" और "ख्यालखाना" भी पहले पोथीखाने के हिस्से थे, इसलिये पहले मे चित्रकार और सूरतगर और दूसरे मे मिट्टी, कुट्टी, कागज, कपडे आदि के तरह- तरह के खिलौने वनाने वाले अपने- अपने हुनर का जौहर दिखाते रहते थे और पोथीखाने मे साहित्य, कला और दस्तकारी की त्रिवेणी बहती रहती थी।

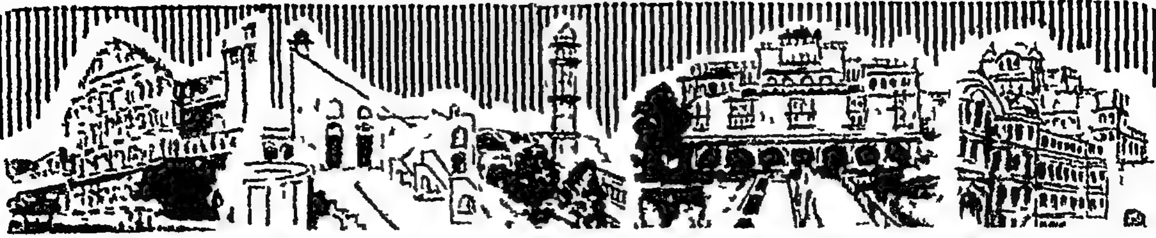
पोथीखाने के इतिहास और इसकी वहुमूल्य सपत्ति का विवेचन करते हुए कोई चाहे तो जिन्दगी खपा दे और एक नही, अनेक विशद ग्रथ तैयार कर अमर हो जाय। इसके पीछे सवसे वडा तथ्य यह है कि आमेर के राजा मानसिह प्रथम (1589-1614 ई) से लेकर महाराजा मानसिह द्वितीय (1922-70ई) तक आमेर- जयपुर के जितने भी राजा हुए उनमे चाहे सव विद्वान न हुए हो, लेकिन विद्यारसिक और पुस्तक- प्रेमी अवश्य थे। फिर, पोथीखाना तो कारखानेजात मे एक प्रमुख कारखाना था जिसका अपना काम एक निर्धारित कार्यप्रणाली और निश्चित प्रक्रिया के अनुसार चलता ही रहता था।

इसमे कोई सदेह नही कि सवाई जयसिह ने जव जयपुर वसाया तो उसे अपने पूर्वजो द्वारा सग्रहीत पाण्डुलिपियो, चित्रो और अन्य कलात्मक वस्तुओ का अम्बार मिला होगा। राजा मानसिह, मिर्जा राजा जयसिह (1621-1667 ई), रामसिह प्रथम (1667-1689 ई) और विष्णुसिह (1689- 1699 ई) मुगल साम्राज्य की सेवा मे अनेक सूवो मे रहे थे और उन्हे सैनिक अभियानो मे सव ओर जाना पडता था। ये सभी राजा वहुपठित और ग्रथो तथा कलाकृतियो के प्रेमी थे। जयपुर वसने से पहले आमेर मे भी इन ग्रथो, चित्रो एव अन्य कलाकृतियो का रख- रखाव किया जाता होगा। इस ओर शायद महाकवि विहारी के आश्रय- दाता मिर्जा राजा जयसिह ने विशेष ध्यान दिया और एक- एक पोथी और चित्र को सहेज कर रखवाया। पोथीखाने के अनेक ग्रथो और चित्रो पर उसी काल की मुहर लगी है। कई महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपिया मनोहर महात्मा के सुलेख मे है जो मिर्जा राजा का प्रमुख लेखक था और पुष्पिकाओ मे वह ग्रथ- लेखन के स्थान तथा तिथि का उल्लेख भी अवश्य कर देता था।

मिर्जा राजा का पुत्र रामसिह प्रथम अपने पिता द्वारा स्थापित महाविद्यालय मे काशी पढकर आया था और अपने पिता तथा स्वय अपने द्वारा जुटाये हुए ग्रथो की सार- सभाल मे गहरी दिलचस्पी लेता था। पोथीखाने मे खास मुहर सग्रह का एक वडा भाग रामसिह का ही जुटाया हुआ है। सवाई जयसिह के पिता विष्णुसिह ने भी इस परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए वहुत से ग्रथ जुटाये और जयपुर के सस्थापक ने तो पोथीखाने की समृद्धि मे वह योग दिया कि 44 वर्ष राज्य करने के बाद 1743 ई मे उसकी मृत्यु को "विद्या और विज्ञान की मौत" भी कहा गया।[4]

पोथीखाने के विशाल सग्रह को चार भागो मे बाटा जाता है। पहिला भाग तो "खास मुहर" सग्रह है जिसकी दौलत का अन्दाज इस वात से हो सकता है कि इसमे कोई आठ हजार हस्तलिखित ग्रथ और पाडुलिपिया है। खास मुहर से मतलव है राजा की अपनी व्यक्तिगत "सील" की हुई किताबे। चूंकि हर राजा कितावो का शौकीन था तो अपनी पसद और जरूरत की कुछ न कुछ कितावे रखता ही था। वह मरता तो उसकी खासा कोटडी या कमरे के साथ किताबो की आलमारी भी "कुल्फ" हो जाती या "सील" कर दी

4 एनाल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान, जेम्स टाड, 1832, पृष्ठ 298 (भाग 2)



जाती। अगले राजा की दिलचस्पी होती तो वह खोली जाती, वरना कुल्फ ही रहती। सवाई प्रतापसिह (1778-1803 ई) एक कुशल कवि और विद्वान था और उसके समय तक आते- आते कुल्फ की कई आलमारिया इक्ट्ठी हो गई थी। सवाई जयसिह के बाद इसी राजा ने शायद इन सबकी सार- सभाल कराकर सब ग्रथो को विपयवार तरतीव से रखवाया। ग्रथो की सुरक्षा के लिये उन पर छीट, पारचे, मिसरू और अतलस के कपडे के गत्ते लगाये गये और कइयो पर चरमीने की जिल्दे भी बाधी गई- चमडे की जिल्दे। खास मुहर के आठ हजार ग्रथो के इस सग्रह मे महाराजा रामसिह (द्वितीय) के समय तक की पुस्तके मिलती है जो 1880 ई मे मरा था।

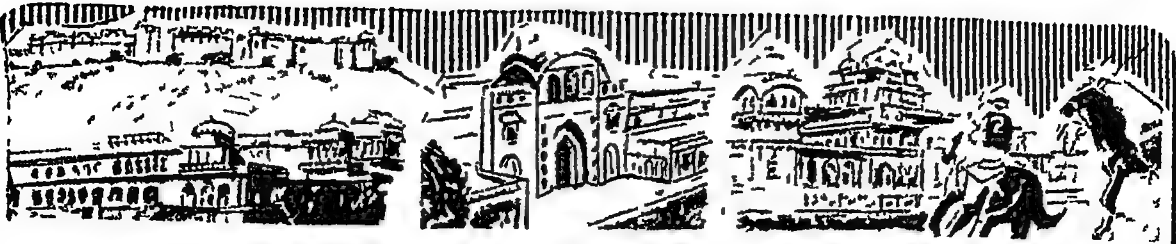
दूसरे भाग मे पोथीखाने का 'खासा सग्रह' है और इसमे लगभग साढे तीन हजार हस्तलिखित और अनेक वहमूल्य चित्रो से सुसज्जित ग्रथ है। यह वे ग्रथ है जो विभिन्न राजाओ ने अपने आश्रित कवियो, लेखको, शायरो, अनुवादको ओर कातिवो से लिखवाये, आज्ञा देकर खरीदवाये या जो उन्हे भेट और उपहार मे प्राप्त हुए। महाभारत का फारमी अनुवाद "रज्मनामा" इसी सग्रह का वेशकीमती ग्रथ है। यह मुगल सम्राट अकवर के लिये उसके नवरत्नो मे से एक --फेजी-- ने प्रस्तुत किया था ओर दूसरे रत्न अवुलफजल ने इसकी प्रस्तावना लिखी थी। यह प्रति अकवर के निजी पुस्तकालय की मानी जाती है क्योंकि इस पर अकवर से लेकर आगे के कइ बादशाहो तक की मुहरे लगी है। जहा तक अनुमान किया जाता है, यह तथा "शाही रामायण" जो फारसी मे अकवरी दरवार के दूसरे विद्वानो ने तैयार की थी, सवाई माधोसिह (प्रथम) के समय मे ही जयपुर आकर पोथीखाने की सपत्ति वनी। "रज्मनामा" मे 169 और "शाही रामायण" मे 172 चित्र है और पाठ से अधिक इन चित्रो के कारण इन दोनो ग्रथो की कीमत ऐसी हो गई है कि वादशाह ही चुका सकते है।

यहा यह कहना भी अप्रासंगिक नही होगा कि जयपुर के आखिरी राजा सवाई मानसिह ने इस धरोहर की वडी वेतावी और समझदारी के साथ हिफाजत की। 1965 मे जव पाकिस्तान का हमला हुआ ओर जोधपुर पर वम वरसाये गये तो महाराजा मानसिह को सवसे ज्यादा चिता पोथीखाने की हुई जो इतनी सदियो से नगर- प्रासाद मे सुरक्षित था। सवको तो वे भी कहा ले जाते, लेकिन "रज्मनामा" और "शाही रामायण" को वह फोरन यहा से ले गये और अपने पास ही इस तरह सुरक्षित कर दिया कि कोई आच न आये। धन- दौलत और महल- मालिये तो जाकर फिर लाट सकते है, लेकिन ऐसे अलभ्य और अमूल्य ग्रथ- रत्न यदि नष्ट हो जाये तो फिर कहा से आयेगे?

जयपर के सस्थापक सवाई जयसिह के गुरु रत्नाकर पुडरीक महाशव्दे का सग्रह पोथीखाने का तीसरा महत्त्वपूर्ण विभाग ह। इसमे भी लगभग ढाई हजार पाडुलिपिया बताई जाती है। यह सग्रह पोथीखाने की अपेक्षाकृत नई सपत्ति है। महाराजा माधोसिह (द्वितीय) के समय (1880-1922ई) मे जव विद्यावाचस्पति पडित मधुसूदन ओझा पोथीखाने के अध्यक्ष वने तो उन्होने पुडरीक जी का यह सग्रह सुरक्षा ओर वेहतर देखभाल के लिये यहा मगा लिया और अव यह पुडरीक सग्रह के नाम से पोथीखाने का ही अग है।

महाराजा रामसिह (1835-1880ई) का काल तो जयपुर का स्वर्णयुग था। उनके जमाने मे जहा सारा शहर सजाया- सवारा गया, वहा शिक्षा की भी वडी उन्नति हुई। महाराजा कालेज, सस्कृत कालेज और गर्ल्स स्कूल के साथ- साथ महाराजा पब्लिक लाईब्रेरी भी कायम हुई। एक तरफ महाराजा स्कूल ऑफ आर्ट्स एण्ड काफ्ट्स खुला तो दूसरी तरफ रामनिवास वाग मे एलवर्ट हाल और सग्रहालय की नीव लगी। सवाई जयसिह और माधोसिह प्रथम के समय मे जैसे जयपुर को दूसरी काशी माना जाता था, वैसे ही रामसिह के समय मे भी जयपुर की विद्या ओर विद्वानो की ख्याति दूर- दूर जा पहुची थी। दूर- दूर के विद्वान यहा आकर अपनी ज्ञानपिपासा शात करते थे। महाराजा माधोसिह (1880-1922ई) के समय मे भी जयपुर विद्या का जैसा केंद्र वना रहा उसकी आधार भूमि महाराजा रामसिह के समय मे ही तैयार हुई थी।

रामसिह ने अपनी आज्ञा से विविध विपयो पर अनेक ग्रथ लिखवाये और पोथीखाने की समृद्धि मे योग



दिया। सवाई जयसिह की परिपाटी पर चलते हुए उसने धार्मिक पोगापथी के निवारण और समाज-सुधार की ओर भी ध्यान दिया। जयसिह ने जैसे "वैदिक वैष्णव सदाचार" ग्रथ तैयार कराया था, वेसे ही रामसिह ने "सज्जन मनोनुरजनम्" लिखवाया जो धर्मशास्त्र का वडा शास्त्रीय विवेचन है और पुकार-पुकार कर कहता है कि सस्कृत कम से कम जयपुर मे तो अभी कल तक एक जीवित भापा थी।

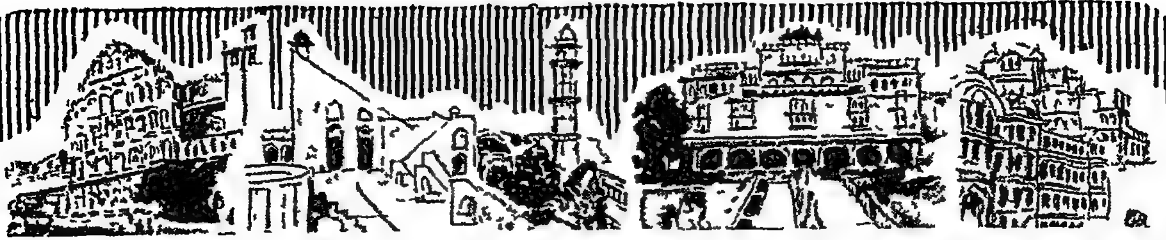
यह वह समय था जव भारत मे प्रिटिग प्रेस चालू हो गये थे। महाराजा रामसिह पोथीखाने मे मुद्रित पुस्तको का भी सग्रह करता, यह स्वाभाविक ही था। उसके सरक्षण मे कई महत्त्वपूर्ण ग्रथ लीथो मे छपे और ये सव पोथीखाने के चौथे विभाग मे है। रामसिह ही जयपुर का पहिला राजा था जिसका अग्रेजो के साथ वडा निकट का सम्पर्क हुआ था। वह कई वार कलकत्ता भी गया था और शिमला तो वार-वार जाता था। कलकत्ता की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ने "विवलियोथिका इडिका सिरीज" मे जितने महत्त्वपूर्ण ग्रथ प्रकाशित किये, वह सव रामसिह खुद खरीद कर लाया और "इडियन आर्ट सिरीज" की भी सारी पुस्तके खरीदी। यह दोनो ही ग्रथमालाये अपूर्व थी और यह सभी ग्रथ मुद्रित होने पर भी आज अलभ्य और वडे कीमती हो गए है।

"जयपुर पोर्टफोलियो ऑफ आर्कीटेक्चरल डिटेल्स" की वारह जिल्दे तो जयपुर के रेजीडेसी सर्जन टी एच हैण्डले ने इसी शहर मे रहते हुए तैयार की थी। इसी अग्रेज की मेहनत से "मेमोयर्स ऑफ जयपर एक्जीवीशन" भी चार भागो मे निकली जिसमे "रज्मनामा" के कुछ अश भी प्रकाशित हुए। यह वोनो माधोसिह (द्वि) के समय मे छपी थी। रामसिह जिस कमरे मे रहते थे, उसमे चार छोटी कोठरिया वनी हुई है जिनमे एक आज तक "किताबो की कोटडी" कहलाती है। इस कोठरी मे रामसिह के समय मे वनारस और कलकत्ता से जो भी महत्त्वपूर्ण ग्रथमालाये प्रकाशित हुई, सवकी कितावे मौजूद थी जो अव पोथीखाने की मुद्रित पुस्तको के सग्रह मे रखी हुई है।

इसी राजा ने जव रामप्रकाश नाटकघर वनाया तो सस्कृत नाटको के ही हिन्दी अनुवाद नही कराये, वल्कि दुनिया भर के नाटक एकत्रित करा लिए– सस्कृत, हिन्दी, अग्रेजी और उर्दू के नाटक। नाटको का ही एक वडा पुस्तकालय तैयार हो गया। नही कहा जा सकता कि केवल नाटको का इतना बडा, छटा-छटाया सग्रह, हिन्दुस्तान मे और भी कही होगा।

महाराजा माधोसिह (1880-1922ई) का जमाना देखे हुये तो अभी जयपुर मे वहुत लोग मिलेगे। माधोसिह का नाम कई वातो मे यार लोगो ने ख्वामखाह वदनाम कर रखा है। जो लोग यह समझते है कि माधोसिह निरक्षर भट्टाचार्य था, उन्हे यह तो नही कहा जा सकता कि माधोसिह विद्वान था, लेकिन उनकी जानकारी के लिये बताना होगा कि माधोसिह भी गजव का पुस्तक प्रेमी था। ईसरदा के ठाकुर का बेटा माधोसिह राजपूत स्कूल मे पढा था जो महाराजा रामसिह ने हवामहल के सामने मदनमोहन जी के मंदिर की एक बाजू मे कायम किया था। पाचवी और छठी क्लास मे पढ़ते हुए उसे "गुड करेक्टर" और "प्रोफीशियेन्सी" के लिए उस बिना भीड-भाड के जमाने के दस्तूर के मुताविक कुछ किताबे इनाम मे मिली थी। माधोसिह ने इन किताबो को शायद जयपुर के राज से भी ज्यादा प्यार किया और जिन्दगी भर सहेज कर रखा। महाराजा रामसिह ने अपनी मृत्युशय्या पर उसे दत्तक पुत्र बनाया था। वह राजा बनने के लिए जयपुर आया तो इन किताबो को लाना न भूला और 1922 ई मे उसके मरने के बाद उसकी "खासा कोटडी" मे जो चीजे मिली उनमे यह किताबे भी है, जिन पर अग्रेजी मे जमा-जमा कर "कियामसिह" (कायमसिह) नाम लिखा हुआ है, जो माधोसिह का राजा बनने से पहले, छुटपन का नाम था।

हैरत की बात है कि अनपढ माना जाने वाला यह राजा जहा कही भी जाता, किताबे खरीदना और उन्हे सभाल कर रखवाना नही भूलता। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली की यात्राओ मे माधोसिह की खरीदी और



लाई हुई किताबे पोथीखाने मे मौजूद है। 1902 ई मे माधोसिह एडवर्ड सप्तम की ताजपोशी मे शरीक होने के लिए इग्लैड गया और वहा भी किताबे खरीदने मे चूक नही की। 'सफर लन्दन मे आई' हुई किताबे भी पोथीखाने की सपत्ति है और माधोसिह के लिए कोई मुगालता न हो, इसके लिए यह बताना भी मुनासिब होगा कि इनमे कोई किताब सेक्स की नही है-- सब धर्मशास्त्र और दर्शन की पुस्तके है या है कालिदास के नाटको के अग्रेजी अनुवाद।

माधोसिह को भगवान ने सगत के लिए पडित मधुसूदन ओझा जैसा प्रकाण्ड पण्डित दिया था। ऐसा विद्वान सारे भारत मे पिछले एक हजार वर्ष मे तो शायद दूसरा हुआ नही। ऐसे पारस को छूकर कोई भी लोहा सोना बन सकता था, फिर माधोसिह तो आखिर आदमी था, बडा जागरूक आदमी।

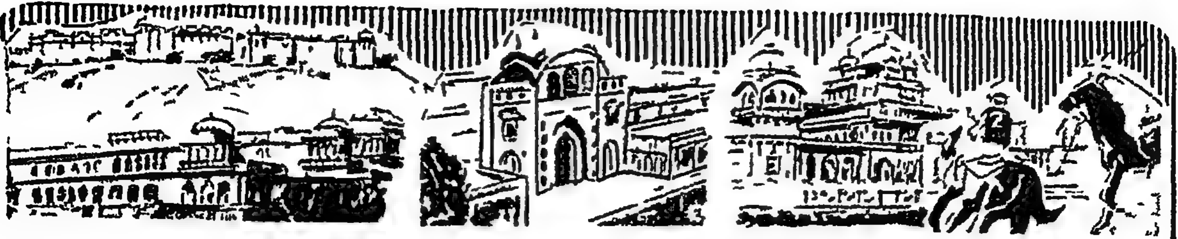
महाराजा सवाई मानसिह द्वितीय सग्रहालय ने सग्रहालय द्वारा प्रदर्शित एव पोथीखाने के खास मुहर सग्रह मे सुरक्षित ग्रथो के सूची पत्र प्रकाशित कर दिये है, फिर भी पोथीखाने का यह विवरण कुछ महत्वपूर्ण, अलभ्य और विशिष्ट ग्रथो का उल्लेख किये बिना पूरा नही किया जा सकता। "रज्मनामा" और "शाही रामायण" जैसी अमूल्य और दुर्लभ पाण्डुलिपिया तो है ही, वे मुद्रित पुस्तके सबसे अधिक दिलचस्प है, जो अपने खगोल विद्या के अनुशीलन के लिए सवाई जयसिह ने यूरोप से मगवाई थी। इनकी सूची इस प्रकार है [5] –

1 हिस्टोरिया कोलेस्टिस ब्रिटान्निका (तीन भाग)- फ्लेम स्टीडियस -1725 ई मे मुद्रित
2 ऑब्जरवेशन्स चाइनोइज (दूसरा भाग) पी गाबिल -1732 ई मे मुद्रित
3 एड एस्ट्रम -1557 ई मे मुद्रित
4 डिक्शनेरियम लेटिनम
5 डिस्क्रिपशन एण्ड यूज ऑफ सेक्टर एण्ड अदर इस्ट्रूमेट्स (ज्यामिति) -1636 ई मे मुद्रित
6 दि पाथ-वे टू नॉलेज -1551 ई मे मुद्रित
7 सीमेन्स कैलेण्डर (अग्रेजी)
8 कॉमन एक्सीडेस एक्जामिन्ड (अग्रेजी व्याकरण) चार्ल्स हूले -1663 ई मे मुद्रित
9 ट्रेट डी फिजीक्स -1675 ई मे मुद्रित
10 स्फीरा (लेटिन)- अलाय जोसेफ-डू-बुआय -1732 ई मे लिखित

इन्हीं की तरह जयसिह ने खगोल विद्या पर मुस्लिम ग्रथो का भी अच्छा सग्रह किया था। इनके अतिरिक्त जयसिह के गुरु जगन्नाथ सम्राट द्वारा अरबी भाषा के "मजिस्ती" का सस्कृत अनुवाद "सम्राट सिद्धात", युक्लिड की ज्यामिती का उसी का किया हुआ अनुवाद "रेखागणित", नयनसुखोपाध्याय का "उकारा ग्रथ", नित्यानन्द का "जीच नित्यानन्दी शाहजहानी", "जीच उलुगबेगी" का सस्कृत अनुवाद, नयनसुखोपाध्याय का "शरह- तजकरा बरजदी" का सस्कृत रूपान्तर, सोम सिद्धात, हयात ग्रथ (फारसी से सस्कृत मे उल्था), जातक सग्रह, मकरद ज्योतिष टिप्पणम्, मुहूर्तकल्पद्रुम, मुहूर्त शिरोमणि, वाराही सहिता, वृहज्जातकम्, प्रजापतिका सूर्य सिद्धात, सूर्य- सिद्धात विचार और सोम सिद्धात भाष्यम् जैसे ग्रथ इस ज्योतिषी एव खगोलविद् नरेश के समय के ही है जिन्हे उसने बार- बार देखा और पढा होगा। फिर वैदिक कर्म काण्ड, यज्ञ- हवन और धर्म- कर्म पर भी अनेक ग्रथ है, कुछ मगवाये हुए और कुछ अपने विद्वानो से तैयार कराये हुए। दर्शन, योग और भक्ति पर भी ग्रथो की भरमार है और इतिहास, काव्य तथा साहित्य पर भी प्रचुर मात्रा मे पाण्डुलिपिया है।

---

5 लिटरेरी हेरिटेज आफ दि रूलर्स आफ आमेर एड जयपुर, पृष्ठ 56



अग्रेजी की कहावत है कि किसी आदमी को जानना हो तो उन पुम्तको को जान लिया जाय, जिन्हे पढने का उसे शौक है। इस कसौटी पर जयपुर के सम्थापक सवाई जयसिह को सहज ही एक विलक्षण व्यक्ति मानना होगा, जो अपने समय तक के सारे सचित ज्ञान का अध्ययन और मनन करता था ओर जो कुछ पढता था, उसे व्यावहारिक प्रयोग द्वारा सिद्ध करके भी देखता था।

जयसिह का उत्तराधिकारी ईश्वरीसिह सम्कृत, फारसी, हिन्दी और राजम्थानी में ममान गति रखता था। अपने गद्दी पर वैठने के साथ ही उसने कवि- कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट को "ईश्वर विलाम" महाकाव्य लिखने का निर्देश किया था। उसके समय मे भी पोथीखाने मे आयुर्वेद, आगम, भेपज- निर्माण और माहित्य के ग्रथो की अच्छी वृद्धि हुई। स्वय ईश्वरीसिह कृत नारायणदाम की 'भक्तमाल का मम्कृत रूपान्तर भी पोथीखाने मे उपलब्ध है। ईश्वरीसिह के आत्मघात के वाद राजा वनने वाला उमका मौतेला भाई माधोसिह प्रथम भी जयपुर को "दसरी काशी" वनाये रखने मे सफल हुआ था। शेख सादी के "गुलिम्ता" का सम्कृत अनुवाद "पुष्प वाटिका", दलपतिराय द्वारा "राजरीति- निरूपण" की रचना ओर अनेक काव्य ग्रथो का प्रणयन उसके समय मे और उसी के आदेश से हुआ। उमका म्वय का 'पद्यावली सग्रह' और 'शव्द कोमुदी' व्याकरण भी उल्लेखनीय है। फिर सवाई प्रतापसिह का काल तो पोथीखाने का वम्तुत म्वर्ण- युग था। स्वय इस कवि- शासक ने वीस से भी अधिक ग्रथो की रचना की और उसकी कवि- वाईसी ने भी जयपुर के इस ज्ञान कोप को बहुत बढाया। 1778 ई मे चारो वेदो की सम्पूर्ण प्रतिया एक फ्रासीसी प्रतापम्हि के पोथीखाने से ही ले गया था। इस फ्रासीसी विद्वान ले क एन्टोनिओ लुई हेनरी पोलियर ने 1789 ई मे अपना सग्रह ब्रिटिश म्यूजियम को दे दिया। इसी के आधार पर रोसेन ने सक्षिप्त वेद प्रकाशित कराया था। वेदो की ये प्रतिया राजा राममोहन राय ने भी इग्लैड जाने पर देखी थी।[6]

सवाई जगतसिह के समय मे तो पद्माकर जैसा रससिद्ध कवि जयपुर ही मे रहता था। जयसिह तृतीय सोलह वर्ष की आयु मे ही काल- कवलित हो गया था, कितु सीताराम पर्वणीकर ने "जयवश महाकाव्य" उसी के समय मे लिखा।

रामसिह द्वितीय ने तो अपनी प्रगतिशील नीतियो और सुधारो से जयपुर को राजपूताना मे अग्रणी वना दिया था। पोथीखाना तव एक सजीव कारखाना था और इस काल मे धर्मशास्त्र के वहुत ग्रथ तैयार हुए। महाराजा माधोसिह के समय की कुछ वाते ऊपर आ चुकी है। यहा इतना और जोडना उचित होगा कि अग्रेजी मे 'मेमोरियल्स ऑफ जयपुर एक्जीवीशन (चार खण्ड), 1883, जयपुर एनेमल्स, 1886, रूलर्स ऑफ इंडिया एण्ड चीफ्स ऑफ राजपूताना 1897, जयपुर पोर्टफोलि ओ ऑफ आर्कीटेक्चरल डिटेल्स (वारह खण्ड) 1898, एशियन कारपेट्स 1905, नोट्स ऑन जयपुर, 1909 और कैटलॉग ऑफ जयपुर म्यूजियम, 1893 जैसे सदर्भ- ग्रथ इसी राजा की प्रेरणा, उदारता और आर्थिक सहायता से म्विन्टन जैकव, हैडले और एच एल शावर्स जैसे अग्रेजो ने तैयार कर प्रकाशित कराये थे।

पोथीखाने और सग्रहालय का आज जो भी रूप है, वह महाराजा मानसिह द्वितीय की देन है। वे "ए हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन स्टेट फोर्सेज" भी लिखकर 1967 मे ओरियन्ट लौंगमैन्स से प्रकाशित करा गये है। उनकी महारानी गायत्री देवी भी "गोरमेट्स गेटवे" (1965 मे प्रकाशित) और "ए प्रिन्सेज रिमम्बर्स" (महारानी की आत्मकथा) की लेखिका है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि जयपुर मे पोथीखाने जैसी सम्पदा इसलिये जुट पाई और सुरक्षित रही कि यहा के राजा न केवल पुस्तक प्रेमी थे, वरन् कई स्वय अच्छे कृतिकार और लेखक थे।

जयपुर के राज- दरबार के कवीश्वरो को विभिन्न महाराजाओ से जागीरे मिली हुई थी। वे समय- समय

6 "वैदिक गवेषणा" (बगाली) से यह उल्लेख "लिटरेरी हेरिटेज आफ दि रूलर्स आफ आमेर- जयपुर" में उद्धृत है।



पर आकर महाराजा को अपनी रचनायें सुनाते थे। महाराजा की सालगिरह तथा पर्व- उत्सवो पर आयोजित होने वाले दरबार इनके लिए उपयुक्त अवसर होते थे। महाराजा रामसिह के समय मे जैसे बेडा खवास-चेलान की दैनिक हाजरी होने लगी, वैसे ही कवीश्वरो को भी हाजरी करने का आदेश दिया गया।

दिवगत महाराजा मानसिह के समय मे महाराजा ने मेयो कालेज के अपने सहपाठी और ताजीमी सरदार पुरोहित प्रताप नारायण कविरत्न को पोथीखाने का मुन्तजिम बना दिया तो वे प्रति सप्ताह काव्य- गोष्ठी का आयोजन करने लगे। स्वय कवि थे अत काव्य- रचना मे उनकी स्वाभाविक रुचि थी। बाद मे सतकोडी मुकर्जी और जोबनेर के ठाकुर नरेन्द्रसिह पोथीखाने के प्रभारी बने तो उन्होने इस आयोजन को बद कर दिया, लेकिन उनके बाद गोपाल नारायण बहुरा फिर से हर गुरुवार को काव्य- गोष्ठी करने लगे। उनके समय मे भी बेडा कवीश्वरान मे महामहोपाध्याय प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, अम्बाशकर चतुर्वेदी, जवाहरलाल चतुर्वेदी, पद्माकर के वशज विनोदीलाल भट्ट प मनोहरलाल शुक्ल प्रभृति बडे रससिद्ध कवि थे जो इन काव्य-गोष्ठियो मे भाग लेते थे। इन सबकी स्फुट रचनाये पोथीखाने मे सुलिखित और सुरक्षित हे।

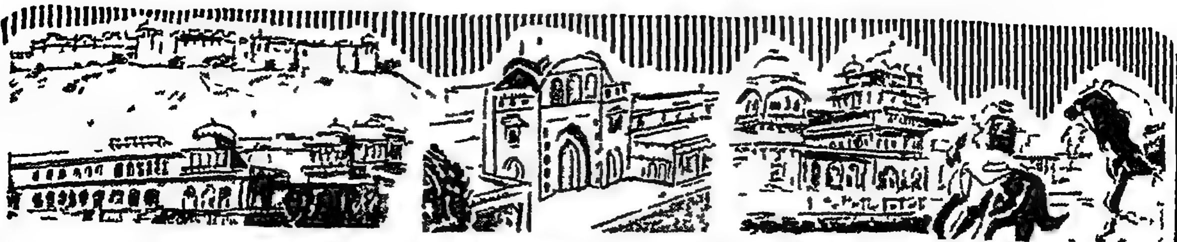
भट्ट मथुरानाथ शास्त्री को भी इन गोष्ठियो मे आना होता था, किंतु उन्होने आवेदन किया कि वे कवीश्वरो मे नही है, अत उनकी हाजरी माफ की जाय। अपने आवेदन मे भट्टजी ने अपने पूर्वज कवि कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट का हवाला दिया जो माधोसिह प्रथम के जमाने मे किसी बात से रुष्ट होकर जयपुर से चले गये थ। माधोसिह ने उनको तब यह लिखकर मनाया था कि "आप म्हाका माई- बाप छो। म्हे आपका कहया बारै नही चाला (आप हमारे माइ- बाप की तरह हो, हम आपके कहने के अनुसार ही चल सकते है, उससे परे नही)"१

इस दस्तावेज को पर्याप्त समझा गया और भट्टजी की हाजरी माफ हो गइ, किन्तु महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की उनकी अखिल भारतीय ख्याति के बाद भी हाजरी माफ नही हुई। हा, यह आदेश अवश्य हो गया कि चतुर्वेदीजी को समय- समय पर व्याख्यान देने के लिए बाहर जाना पडता है, अत वे जब भी जयपुर से बाहर जाये तो पोथीखाने मे सूचना देकर जा सकते है।

सूरतखाना

जयपुर के राज-दरबार को सवाई जयसिह ने जिस बौद्धिक धरातल पर जमा दिया था उसमे कवियो और लेखको की लेखनी के साथ चित्रकारो की तूलिका ने भी ऐसा कमाल दिखाया कि आज तक उसके रग और रेखाये चमक-दमक रही है। सूरतखाना जयसिह के छत्तीस कारखानो मे से एक था, हालांकि यह था तब पोथीखाने का ही एक हिस्सा। और, जैसा स्थापत्य-कला मे हुआ, चित्रकला मे भी जयपुर की कलम का जोहर सवाई प्रतापसिह (1778-1803इ) के समय मे ही अपने चरम उत्कर्ष को पहुचा। औरगजेब की नीति से परेशान होकर जब शाही सरक्षण पाने वाले मुसव्विर और सूरतगर दिल्ली और आगरा को छोडकर अन्यत्र आश्रय खोजने लगे तो यह स्वाभाविक ही था कि जयपुर जैसे दरबार मे उन्हे सबसे अधिक सरक्षण मिलता। टूटते-बिखरते मुगल साम्राज्य का सास्कृतिक उत्तराधिकार तब की हिन्दू रियासतो और राजपूत रजवाडो को ही मिला था और जयपुर का दरबार इनमे सबसे आगे था। यद्यपि जयपुर मे विकसित शैली मे "स्वतन्त्र कल्पना का अभाव और प्रतिलिपियो का प्रभाव अधिक" रहा, तथापि उत्तर मुगल-काल के उस सास्कृतिक पुनर्जागरण मे यह कलम उत्तरोत्तर सजती और प्राजल होती गई जो अन्तत मुगल प्रभाव से अपने आपको सर्वथा मुक्त कर एक स्वतन्त्र शैली मानी गई—जयपुर शैली— जिसने भारतीय चित्रकला की महान् परम्परा को कुछ ऐसे चित्र भेट किये जो आकृति-चित्रो के भी सर्वोत्कृष्ट नमूने ह और समूह-चित्रो के भी।

पोथीखाने की तरह जयपुर के सूरतखाने के वैभव को भी ससार के सामने प्रकट हुए अधिक समय नही हुआ ह। महाराजा मानसिह (द्वि)की नाबालगी मे जयपुर की रीजेसी कौंसिल ने पहली बार सूरतखाने की छह



बडी तस्वीरो को फर्स्ट आल इडिया आर्ट एक्जीबीशन मे प्रदर्शित करने के लिए भेजा था। कला प्रेमियो को यह तो पता था कि राजपूत शैली भी कोई शैली है और बहुत विकसित शैली है, लेकिन जयपुर के इन चित्रो को देखकर तो वे दग रह गये। इनमे दो आदमकद चित्र थे, सवाई जयसिह और महाराजा प्रतापसिह के। जिस तरह इन्हे बनाया गया था उसमे आकृति चित्रो के परम्परागत नियमो का पालन करते हुए इन दोनो ही राजाओ की हूबहू अनुकृति थी। यह मेल मुगलो के दरबारी चित्रकारो मे कही नही हो पाता। दोनो ही राजा गले मे जो कठे और मोतियो के हार पहने हुए है, वह चित्रकार ने इस प्रकार उभार कर पहनाये है और ऐसे मोती, पन्ने, माणक आदि जडे है जैसे वास्तविक हो। रेखाये इतनी सशक्त और सजीव है कि जयसिह और प्रतापसिह जैसे सामने आ जाते है। युवा जयसिह के मुख मण्डल पर विद्या और बुद्धि की कान्ति है और उस गहराई और कुटनीतिज्ञता की छाप भी जिसके सहारे उसने आमेर के नगण्य-से राज्य को राजस्थान मे सबसे बडी शक्ति बना दिया था। मलमल के सफेद अगरखे की एक-एक तह, एक-एक सलवट कलाकार ने बडी कुशलता से बनायी है।

प्रतापसिह का चित्र इससे कुछ बडा है और अधिक परिश्रम-साध्य भी। उसका चेहरा देखकर इतिहासकार टाड का यह कथन याद आ जाता है "प्रतापसिह एक साहसी राजा था, लेकिन उसके प्रबल शत्रुओ और आतरिक कुचको के सामने न साहस काम दे सकता था और न समझ ही।" इस आकृति चित्र मे कलाकार ने बहुत सीमित साधनो से आश्चर्यजनक सफलता पाई है। वीरोचित से अधिक भावुक मुखमण्डल है और अपने समय और साधनो की मजबूरिया चेहरे पर साफ बोलती है। सुप्रसिद्ध कला-मर्मज्ञ नानालाल चमनलाल मेहता, आई सी एस ने लिखा है कि जयपुर की इन दो शबीहो को "अब तक ज्ञात हिन्दू आकृति-चित्रो का सर्वोत्तम नमूना माना जाना चाहिए।"[7]

जयपुर के विख्यात चित्रकार और कला-पारखी रामगोपाल विजयवर्गीय के शब्दो मे प्रतापसिह का चित्र अत्यन्त सुन्दर और कला की दृष्टि से अनुपम है। इस राजा ने राधा-कृष्ण, रासलीला, नायिका भेद, राग-रागिनियो और ऋतुओ के चित्र स्वय बनवाये और इसकी रचनाओ पर चित्रकारो ने स्वतन्त्र रूप से भी अनेक चित्र बनाये। "इनके समय मे चित्रकारो को इतना प्रोत्साहन मिला कि जयपुर मे चित्रो का एक नया युग-निर्माण हुआ। सुवर्ण का ऊचा उठा हुआ काम, मोतियो की जडाई, माणक और पन्नो के छोटे-छोटे नगो की यत्र-तत्र चित्रो मे सजावट इन्ही के समय मे प्रारम्भ होती है। बडे-बडे चित्र इनके निर्देश से बनाये गये थे।"[8]

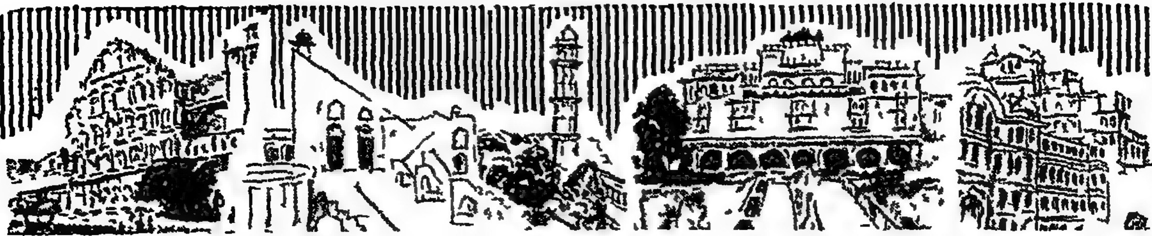
विजयवर्गीय के अनुसार जयपुर के चित्रो मे मुगल चित्रो का प्रभाव इतना अधिक है जो अन्य राजस्थानी राज्यो मे नही मिलता। इसका कारण मुगल दरबारो मे यहा के राजाओ का आवागमन तथा वह सम्बन्ध है जो पूर्व से ही चला आता था। यहा के चित्रकार मुगल चित्रो की प्रतिलिपि करने मे इतने सिद्धहस्त हुए कि मूल और प्रतिलिपि मे कोई भेद प्रतिलक्षित नही होता। ऐसे अनेक चित्र विद्यमान है जो मुगल चित्रो की प्रतिलिपि होते हुए भी मूल ही जान पडते है। इन चित्रो की परिश्रम-साध्य रचना बहुत सुन्दर और नाना अलकरणो से परिपूर्ण है।

जयपुर के कलाकारो का सबसे बडा कमाल जयसिह और प्रतापसिह के चित्र नही, वे दो समूह चित्र है जो प्रतापसिह के ही समय मे बने और जिनमे राधाकृष्ण के महारास और गोवर्धन-धारण की लीलाओ का चित्रण है। एन सी मेहता ने इन दोनो को एक ही कलाकार की कृतिया माना है और उन्हे भारतीय चित्रकला का "सर्वश्रेष्ठ उदाहरण" भी बताया है।

---

7 स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिग, बम्बइ, 1926, पृष्ठ 32

8 राजस्थानी चित्रकला, रामगोपाल विजयवर्गीय, जयपुर, 1953, पृष्ठ 25



इनमे "रासमण्डल" का अकेला चित्र ही यहा की कलम की धाक जमाने के लिये काफी है। चित्र के बीचो-बीच राधाकृष्ण और उनके चारो ओर तीन वृत्तो मे नृत्यागनाए और वादिकाये है। नानालाल चमनलाल मेहता ने "स्टेडीज इन इंडियन पेटिंग" मे कई बडे-बडे पन्ने इस चित्र की खूबियो को उजागर करने के लिए भरे है, लेकिन हम यहा रामगोपाल विजयवर्गीय के कथन को ही उद्धृत करना काफी समझेगे।

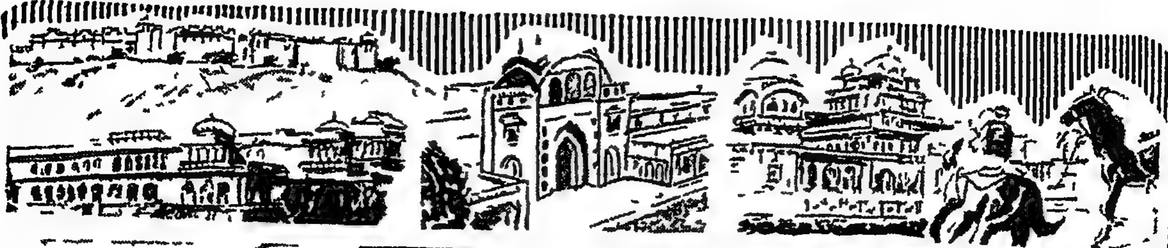
वे कहते है "इस चित्र का सुवर्ण आलेखन, रगो की समान पुताई, रेखाओ की लावण्ययुक्त गति कला की दृष्टि से चरम सीमा तक पहुच गई है। ऐसा सुन्दर चित्र अब तक राजस्थान मे दूसरा नही बन सका और न बनने की आशा की जा सकती है। इस चित्र का भाव पक्ष, रूप माधुरी, लावण्य और स्फूर्ति और गति सौन्दर्य आदर्श कहा जा सकता है। ऐसा भाववाही चित्र बनाना आज के चित्रकारो की सामर्थ्य से बाहर है। इसमे कृष्ण की किशोर अवस्था का चित्रण, वैभव की अनुपम छटा तथा वह महानता है जो भक्त को भगवान मे मिलती है। श्रद्धा से स्वत ही इस चित्र के सामने हृदय द्रवीभूत-सा होने लगता है। श्रीकृष्ण के ताल पर उठते चरण युगल, ऊर्ध्वगामी पाणिपल्लव तथा अगुलियो की भाववाही मुद्राये बडी आनन्ददायक प्रतीत होती है। रग इतने चिकने, इतने समान, इतने मनमोहक है कि दृष्टि जिस आलेखन पर जाती है, ठिठककर वही रह जाना चाहती है। नाक मे लटकते मोती, कपोलो को छूते कुन्तल, हवा के मन्द वेग मे फहरता दुपट्टा नृत्य के गति सौन्दर्य को प्रत्यक्ष कर देता है। राधा के सौन्दर्य मे लावण्य की ऐसी अनुपम छटा है कि स्वास्थ्य और यौवन की दीप्ति से प्रफुल्ल मुख, उस पर अलकारो की सजावट असाधारण माधुर्य की सृष्टि कर देती है। नृत्य की ताल पर उछलते अग-प्रत्यग बाहुलताओ के भंगिमायुक्त प्रसार, कुसुम-कलियो-सी खिली हुई अगुलिया ऐसा रूपक उपस्थित करती है जो शब्द-सामर्थ्य के बाहर है। ऐसे ही स्थानो पर चित्रकार कल्पना शक्ति की प्रतियोगिता मे कवि से भी आगे निकल जाता है। वह इतना कह जाता है कि शब्दो की उडान उस रूपक को बाध नही सकती। सारे चित्र की पृष्ठभूमि मे हरित रग का आलेखन प्राण भरता है और दृष्टि उस समतल हरीतिमा पर लौट-लौट जाती है। दोनो ओर खडी सखिया अपने अको मे वाद्य लिये गाने की मुद्रा मे अधर खोले हुए है तथा पाणि-पल्लव स्वर-सचार की गति पर उठने के प्रयत्न मे है। रेखाओ मे इतना बल है कि एक भी रेखा निकाल दी जाय तो चित्र अपूर्ण-सा प्रतीत होने लगे। जयपुर की चित्रकला अकेले इस एक चित्र पर अभिमान कर सकती है। यह कृति कवियो की काव्य-निधि की भाति अमर कही जा सकती है।"[9]

इसमे सदेह नही कि यह अमर कलाकृति प्रतापसिह के काल मे बनी, लेकिन इसका चितेरा कौन था, यह नही कहा जा सकता। उस समय के चित्रकारो मे साहबराम बडा सरनाम है, लेकिन वह आकृति-चित्रो या पोरट्रेट का उस्ताद था। स्वय प्रतापसिह का चित्र उसका बनाया हुआ है। अन्य चित्रकारो मे छाजू, बक्सा, हरनारायण, गोविन्दा, गोपाल और गैदा के नाम मिलते है।

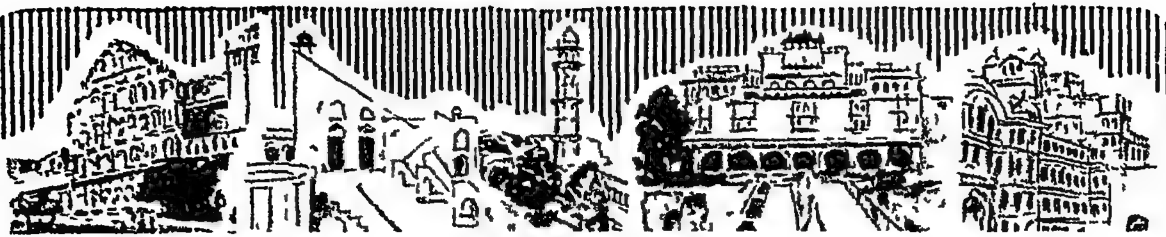
प्रतापसिह कवि और विद्वान था और उसके सरक्षण मे काव्य रचना के समानान्तर चित्रनिर्माण की भाव-धारा भी प्रवाहित होती थी। उदाहरण के लिये पोथीखाने का "बहादुरविजय रासौ" नामक काव्य है। इसके रचनाकार चुन्नीलाल भट्ट थे। इसमे कामबख्श के विरुद्ध बादशाह बहादुरशाह की चढाई का वर्णन है। कवि ने जब यह रचना की तो प्रतापसिह की चित्रकार-बाईसी के ग्यारह चित्रकारो ने मिलकर आठ फुट लम्बा और ढाई फुट चौडा इसी विषय का चित्र बनाया जो आज भी चित्र-दीर्घा की शोभा बढाता है। इस पर सुनहरी अक्षरो मे तीन प्रमुख चितेरो के तो नाम भी है।

एन सी मेहता के अनुसार "गोवर्धन-लीला" का विषय हिन्दू चित्रकारी का एक प्रिय विषय है और जयपुर के सूरतखाने मे इसका जो चित्र है वह अतुलनीय और सर्वोत्तम है, जिसे "रासमण्डल" ही पछाड सकता है। इसके मध्य मे किशोर कृष्ण है, वही छवि जो रासमण्डल मे है और जो सिद्ध करती है कि दोनो चित्र

9 राजस्थानी चित्रकला, रामगोपाल विजयवर्गीय, पृष्ठ 26



सवाइ प्रतापसिह (1778-1803 ई)। इस कृष्ण-भक्त महाराजा के इस विशाल पूर्णाकार चित्र मे ललाट पर ऊर्ध्व तिलक के स्थान पर त्रिपुण्ड बख्शीराम व्यास ने शैव-वैष्णव विवाद के समय लगवाया था



एक ही तूलिका का कमाल है। कृष्ण की कनिष्ठिका पर गिरिराज गोवर्धन उठा हुआ है और उसके नीचे खडे है ग्वाल-बाल, गोप-गोपिकाये और गाये जिन्हे वह यमुना-तीर पर चराते थे। चित्र के बाये कोने मे बादलो की उमड-घुमड के ऊपर इन्द्रलोक है। इन्द्र तो अपमानित होकर कृष्ण के चरणो मे झुका जा रहा है और दूसरे देवी-देवता भी ब्रज- भूमि मे आ रहे है। यद्यपि यह चित्र भी भीड से भरा है, लेकिन एक-एक गोप-गोपिका की मुद्रा देखते ही बनती है। गाये भी कलाकार ने सच्चे प्यार और गहरे ज्ञान के साथ बनाई है। देवताओ के विभिन्न वाहन—इन्द्र का ऐरावत, गणेश का मूसा, शकर का बैल— तथा सारस और अपनी-अपनी गैया-मैयाओ का दूध पीने के लिए आतुर उछलते-कूदते बछडे-बछडी इतने सजीव, इतने प्राणवान है कि दृष्टि ठगी-सी रह जाती है। सारा दृश्य इतना भावात्मक और जीवन से भरपूर है कि वर्णन करना कठिन है। रासमण्डल और गोवर्धन-धारण उन ऊचाइयो के प्रतीक है जिन पर जयपुर के चित्रकार अठारहवी सदी के अन्त मे पहुच चुके थे। कल्पना और चित्राकन की दृष्टि से ऐसे महान् समूह चित्र कब-कब देखने मे आते है?

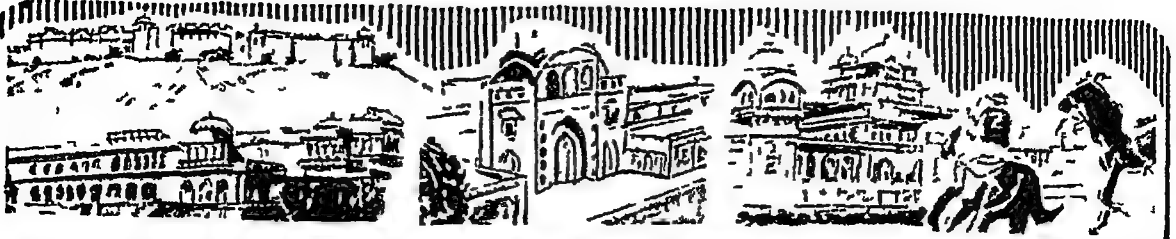
इन चित्रो के स्तर तक पहुचने वाला नाचती हुई गोपियो का एक और चित्र सूरतखाने की धरोहर है। इसकी प्रतिकृतिया आनन्द कुमारस्वामी के "इंडियन ड्राइग्स" (दूसरी सिरीज) की शोभा बढा चुकी है। चित्र का आकार और रगो की आब गजब ढाती है। इन्हे जितना देखा जाय और जितना इनके विषय में लिखा जाय, सब कम और नाकाफी है।

जयपुर दरबार के चित्रकारो ने रेखाओ के आलेखन में बडी सिद्धि और कुशलता पाई। "स्याह कलम" से बने चित्रो मे रगो की समानता और सुवर्ण के दमकते आलेखन उनकी विशेषता रही। छह फुट लम्बे और तीन फुट चौडे दो और चित्र जो पहिली आल इण्डिया आर्ट एक्जीबीशन मे भेजे गये थे, शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतु के प्रतीक है। विशेषज्ञो ने इन चित्रो की तुलना तिब्बत की "बैनर पेंटिंग" और जापानी "काकीमोनो चित्रकला" की तकनीक से की है। एक मे एक तरुणी जिसका लिबास राजपूत और मुगल पोशाको का मिला-जुला रूप है, एक आम के पेड के नीचे खडी है और एक मृग छौना अपनी भोली-भाली आखो से उसके सामने खडा, उस मृगनयनी के रूप को निहार रहा है। शीत के चित्र मे मृग छौने का स्थान सारस ने लिया है और आम के वृक्ष की जगह फूलो से लदा चम्पक है। यहा तरुणी के दाये हाथ मे एक मैना भी है।

"मीनियेचर" या लघु- चित्र तो सभी जगह बने है, लेकिन ऐसे बडे- बडे चित्र जयपुर के सूरतखाने की ही शोभा है। जिस प्रकार पोथीखाने को चार भागो मे बाटा गया है, उसी प्रकार सूरतखाने के भी तीन विभाग किये जा सकते है। पहिले मे वह चित्र आते है जो बाहर से उपलब्ध हुए और यहा सग्रहीत किए गए। इनमे मुगल शैली के दिल्ली और आगरा से प्राप्त चित्र तथा बूदी की विख्यात कलम के चित्रो का सग्रह बडा महत्वपूर्ण है। इन चित्रो मे बहुत-से ऐसे व्यक्तियो को देखा जा सकता है जिनका मुगल दरबार मे बडा रुतबा था और जिनका उल्लेख इतिहास मे मिलता है। दूसरे विभाग मे ऐसे चित्र है जो सवाई जयसिह और उसके परवर्ती राजाओ ने यहा के सूरतगरो और मुसव्विरो को आज्ञा देकर बनवाये। रास मडल और गोवर्धन- धारण के महान चित्र इसी श्रेणी मे आते है, साथ ही राजाओ के आकृति- चित्र भी। जयसिह के बेटे माधोसिह प्रथम (1751-1768ई) के बहुत चित्र बने, तरह-तरह के "पोज" में और प्रतापसिह के भी। तीसरे विभाग मे वह चित्र है जो समय समय पर कलाकारो ने अपनी इच्छा से बनाकर राजाओ को भेट किए। जयपुर के अनेक इतिहास- पुरुषो के चित्र जो और कही नही मिल सकते, सूरतखाने के सग्रह मे पाये जाते हैं।

पोथीखाने की तरह सूरतखाने को भी प्रतापसिह ने ही व्यवस्थित रूप दिया और हजारो चित्रो के सग्रह के विषयवार मुरक्के (एलबम्स) बनवाये।

प्रतापसिह के बाद रामसिह के समय मे चित्रकारो को बहुत सरक्षण और प्रोत्साहन मिला। इस राजा ने कलाकारो को अपने मनोभावो को इच्छानुसार व्यक्त करने दिया और ऐसी कलाकृतियो की भरपूर कीमत भी



दी। राजराजेश्वरजी के मदिर मे भगवान शिव का जो विशाल चित्र है, वह इसी प्रकार के चित्रो मे से है। इसी समय मे महाभारत और भागवत की कथाओ पर आधारित चित्र भी बहुत बने और बहुत-से तो रामसिह की मृत्यु हो जाने के कारण अधूरे ही रह गये जो उसी हालत मे दीवारो पर टाग दिये गये है। यह आधे- अधूरे चित्र जयपुर की चित्रकला के अतिम प्रतिनिधि है और इनसे पिछली सदी मे यहा के कलाकारो की तकनीक समझने मे वडी सहायता मिलती है।

रामसिह के समय मे रामचन्द्र मुसव्विर (चित्रकार) का वडा नाम था। शहर मे एक गली जहा यह चित्रकार रहता था, आज तक मुसव्विर रामचन्द्र की गली कहलाती है। इसे महाराजा ने पाच रुपये रोजाना की जागीर और पालकी का सम्मान दिया था। रामचन्द्र के वशजो मे गगावख्श भी नामी कलाकार हो गए हे।

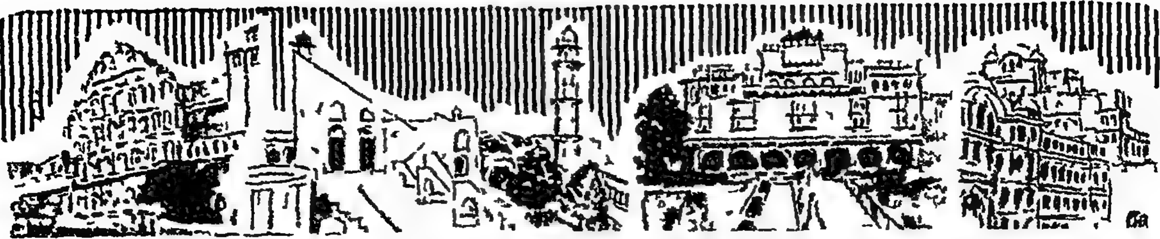
इस महाराजा के शिवभक्त होने के कारण उन दिनो वख्शीराम व्यास नामक एक शैव व्राह्मण वडा शहजोर हो गया था। उसकी शह से वैष्णव सम्प्रदायो के महन्तो, पुजारियो और अनुयाइयो को भी अपने साम्प्रदायिक ऊर्ध्व तिलक के स्थान पर शैव मत का त्रिपुण्ड ही लगाने को वाध्य किया गया। व्रह्मपुरी से गोकुलनाथजी ओर पुरानी वस्ती से गोकुलचन्द्रमाजी की मूर्त्तियो को लेकर उनके गोम्वामियो ने इसी कारण जयपुर छोडा था। वख्शीराम व्यास को ही महाराजा ने जव पोथीखाना- सूरतखाना का हाकिम वना दिया तो उसने सवाई प्रतापसिह और सवाई जगतसिह जैसे राजाओ के आदमक्द चित्रो मे भी उनके ललाट पर उनके वैष्णव तिलक के स्थान पर त्रिपुण्ड ही लगवा दिये। इन दोनो राजाओ के विशाल चित्रो मे यह साफ देखा जा सकता है। जयपुर मे शैवो की इस मदान्धता और मनमानी पर वडी तीखी जन- प्रतिक्रिया हुई थी और सरे-वाजार स्त्रिया ऐसे गीत गाती निकलती थी–

राजा थारा राज मै
वध गयो वख्श्यो व्यास।
ऊभा नै आडा कर्‌या,
जाज्यो सत्यानास।।

(राजा तेरे राज मे बख्शीराम व्यास ऐसा वढ गया है कि 'ऊभे' (खडे) तिलको को उसने 'आडा' (लम्वा) करा दिया है। भगवान करे, उसका सत्यानाश जाये।)

जिस प्रकार रामसिह की वनवाई हुई इमारतो मे यूरोप का प्रभाव स्पष्ट हे, उसी प्रकार इस काल के चित्रो मे भी यूरोपीय शैली की छाप होना स्वाभाविक था। मुगल-काल का 1857 मे पूरी तरह पटाक्षेप हो चुका था और राजाओ के राज- दरवार अग्रेजो से अपने सम्वन्ध बढाने मे लगे हुए थे। इसलिये इस समय अग्रेज पुरुषो और महिलाओ के चित्र भी यहा काफी वने और उनके पालतू कुत्ते- विल्ली भी इन तस्वीरो मे दिखाये गये। धार्मिक विषयो के चित्र तो बनते ही रहे, लेकिन उनमे यूरोपीय शैली का प्रभाव आ गया। इस पर भी इस काल के चित्रो मे कलाकारो का परिश्रम देखते ही वनता है। वडे- वडे चित्रो मे "छाया प्रकाश का अनुपात दिखाना, समान रग लगाना और रेखा- सौंदर्य पर अधिकार रखना बहुत कठिन होता है", पर रामसिह के समय मे ऐसी कृतिया सरलता से वनाई गई। चित्रकारो का अभ्यास यहा इतना परिपक्व और प्रौढ हो गया था कि बतरस का आनन्द लेते हुये प्रेमी- युगल, ऊट- सवारो, हाथी- घोडो पर बैठे शासको और राजकुमारो के बडे से बडे चित्र आसानी से बन जाते। लेकिन जयपुर के चित्रकारो की तूलिका का यह आखिरी जौहर था। 1880 मे रामसिह के मरने के बाद यह परम्परागत शैली विलुप्त हो गई। रामसिह स्वय इसी सूरतखाने मे अपने कैमरे से प्रिस एलबर्ट (बाद मे एडवर्ड सप्तम) का फोटो उतार चुके थे। इसके बाद तो कैमरा ही हावी हो गया और सूरतखाना पुराने चित्रो का एक सुरक्षित सग्रह वनकर रह गया।

यहा यह उल्लेखनीय हैं कि फोटोग्राफी का चलन हो जाने पर महाराजा रामसिह ने फोटाखाना स्थापित



कर दिया था, जिसमे आज भी वे अनेक प्रिंट देखे जा सकते है जो शुरू- शुरू मे बनाये गये थे, अनेक तो स्वय महाराजा द्वारा।

फर्राशखाना और मशालखाना

अन्य कारखानो मे फर्राशखाना जिसमे मशालखाना भी शामिल था, अपने आप मे बडा उपयोगी कारखाना हुआ करता था। ब्याह-शादियो मे अब तो भाडे पर शामियाने, तम्बू- कनाते लगाने वाली बहुत दुकाने है, लेकिन जो जमाना गुजर गया उसमे यह सब सरजाम मागे ही मिला करते थे। अलग-अलग जात-बिरादरियो की पचायतो मे भी यह सामान हुआ करता था। राज के फर्राशखाने मे विभिन्न अवसरो के अनुकूल तम्बू-डेरे, शामियाने, कनाते, जाजम, दरिया, कालीन और तरह-तरह का सामान रहता था। अभी तक वहा ऐसे शामियाने है जो चौकोर कमरे की तरह खडे होते है और जिनके बाकायदा लकडी के दरवाजे-खिडकिया भी खुलते-जुडते है। खासा शामियानो मे जरी के जर्क-बर्क शामियाने भी होते है, इतने बडे-बडे तम्बू की सैकडो लोग आ जाये।

फर्राशखाने मे अकबर के सेनापति राजा मानसिह की 'रावटी' दर्शनीय है। रावटी छोटे कक्ष को कहते है। इस रावटी का चदोवा और कनाते जरी के सुनहरी काम से सुसज्जित है जिनकी सुन्दरता देखते ही बनती है। दो-मंजिले शामियाने भी है। दूसरी मंजिल लकडी के फटे या फाटके लगाकर बनाई जाती है ओर बाकायदा सीढिया चढ कर उसमे पहुचा जाता है। ऊपर की मंजिल महिलाओ के लिये होती है।

महाराजा रामसिह के समय मे तो गैस की रोशनी हो गइ थी ओर फिर बिजली आई, कितु पहले मशाले ही रात के अधेरे को चीरती थी। गैस आ जाने पर भी शिकार आदि के लिए बाहर डेरे होते तो रोशनी का इतजाम मशालखाने का ही रहता था।

जयपुर के नागरिक ब्याह-शादी के अवसर पर फर्राशखाने से शामियानो, कनातो, दरियो आदि की माग करते और अपने-अपने रुतबे और वसीले से उन्हे यह मिल जाते, वेसे ही जैसे रथखाने से रथ, बहली और बग्घीखाने से बग्घिया मिल जाती थी।

फर्राशखाने को महाराजा मानसिह (द्वि) के समय मे ठाकुर भैरोंसिह तवर ने फोल्डिग फर्नीचर जुटाकर आधुनिक रूप दिया था।

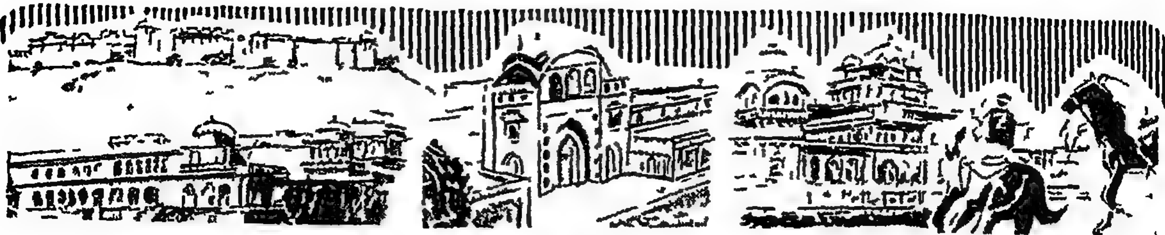
फर्राशखाने के साथ पालकीखाना, फीलखाना (हस्तिशाला), आतिश (अश्वशाला) और शुतरखाना भी थे। पहले तीन तो नगर-प्रासाद मे ही थे, कितु शुतरखाने-ऊटो के टोलो-को आगरा रोड पर घाट दरवाजे से आगे रखा जाता था। इनमे ऐसे टोले भी थे जिन पर "जुजरबे" या छोटी तोपे रखी जाती थी।

बग्घीखाना

जयपुर की सीधी- सपाट और चौडी सडके सरनाम रही है लेकिन यह उल्लेखनीय है कि महाराजा रामसिह (1835-1880 ई) की जवानी तक इस शहर के सभी बाजार और रास्ते-मोहल्ले रेत से भरे थे। जब रामसिह बालक और कर्नल लडलो (या "लड्डू साब") यहा पोलीटिकल एजेंट था तो पहले-पहल कुछ सडके बनी। सबसे पहले सागानेरी दरवाजे से पुराना घाट तक की सड़क बनवाई गई और इसके कुछ समय बाद आमेर से काला महादेव तक जिसमे कुछ भाग तो पत्थर जडे थे और कुछ भाग मोरीडे के ककर से सपाट बनाये गये थे। जयपुर से टोक जाने वाली सडक तो रामसिह की मृत्यु से छह वर्ष पूर्व ही बनकर तैयार हुई थी।[10] इसका नया नाम "सवाई रामसिह रोड" बहुत उपयुक्त है।

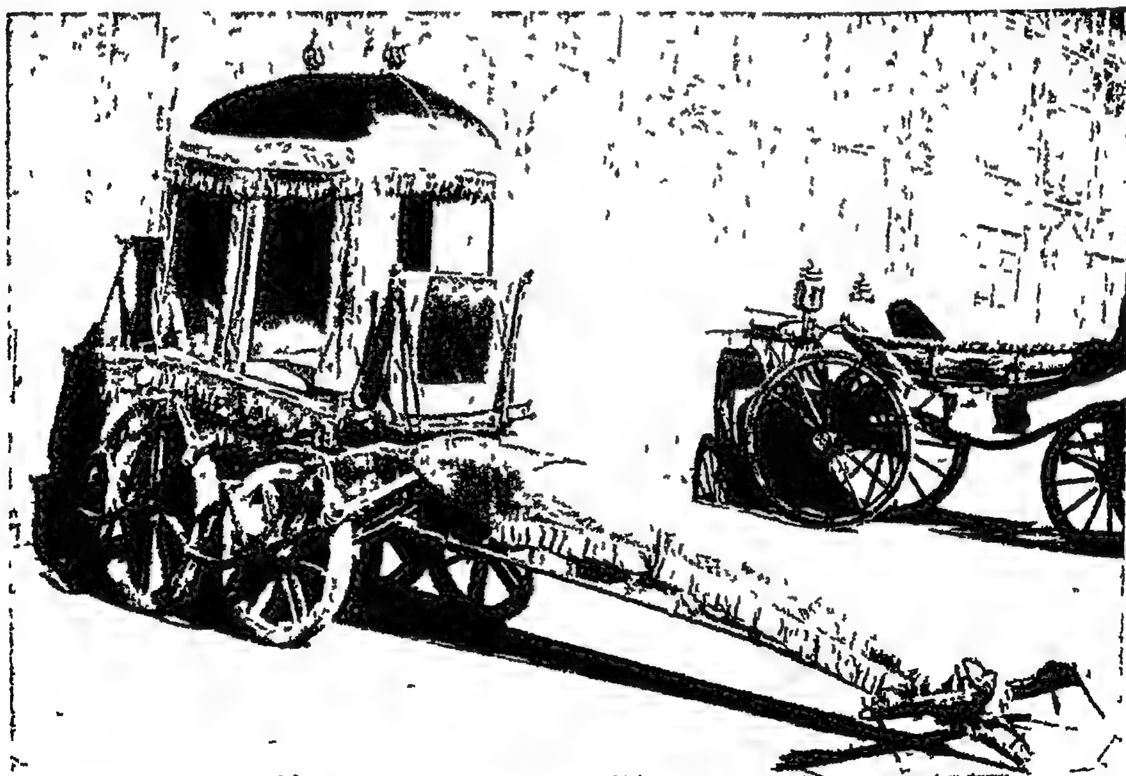
शहर के भीतर भी मुख्य बाजारो की सडके रामसिह के शासन काल के अतिम वर्षों मे ही बनी थी। बीच

10 ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर, ठा फतहसिह, जयपुर, 1899 पृष्ठ 242-44



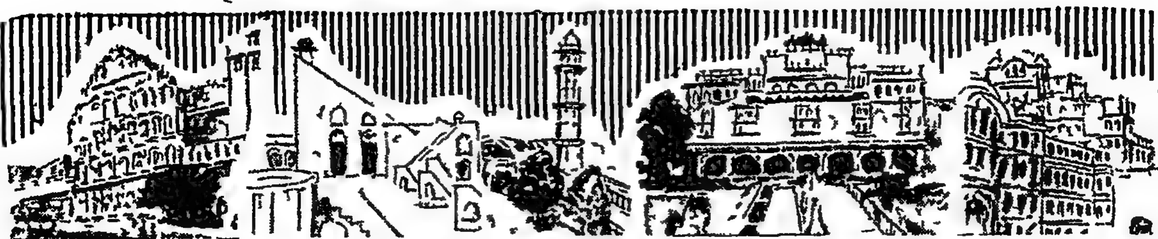
मे चौडी सडके और दोनो ओर पैदल चलने वालो के लिये पटरिया या फुटपाथ बनाये गये थे। तभी यह नियम भी लागू किया गया कि सडक पर हाथी, घोडे, ऊट और सवारी गाडिया चलेगी और पैदल सब पटरी पर। इस नियम की पाबन्दी कराने के लिये चालीस- चालीस गज की दूरी पर पुलिस के सिपाही तैनात किये गये जो सवेरे दस बजे तक और शाम को चार से आठ बजे तक अपनी ड्यूटी बजाते थे।[11]

सडक बनी तो बडे लोग रथ बहलियो की जगह बग्घियो मे बैठ कर चलने लगे। वैसे जयपुर के राजाओ के लिये हाथी, घोडे, पालकी या तामझाम की सवारी ही उनकी मान- मर्यादा के अनुरूप मानी जाती थी, किंतु रामसिह आधुनिक दृष्टिकोण का राजा था और हर बार अपने महल से बाहर निकलने पर लवाजमे को लेकर चलना उसे व्यर्थ का आडबर और अटपटा लगता था। इसलिए झालाना, भावसागर और खातीपुरा के जगलो मे शिकार के लिए जाता तो वह सिरह ड्योढी या त्रिपोलिया के मुख्य द्वार से न निकल कर चतर की आड, गोविन्ददेवजी की ड्योढी और दूसरे पिछवाडे के दरवाजो से अकेला ही या दो-चार साथी-सगी लेकर निकल जाता और बैलो की जोडी से खीची जाने वाली बहलो मे भी सवारी कर लेता। अच्छी सडके बन जाने पर महाराजा की खासा सवारी भी बग्घी या विक्टोरिया हो गई। औरो की बग्घिया जहा एक घोडे या जोडी से खिचती, वहा महाराजा की बग्घी के चार एक-से सफेद घोडे जुनते। पीछे दो सेवक खडे चलते जिनके हाथ मे चवर- मोरछल होते। आगे बग्घीवान के बराबर कोचबाक्स पर चेला खवासो मे खासम खास कोई बैठता।



रथखाने का एक मग्गड तथा बग्घीखाने की एक खासा बग्घी जिनमे महाराजा बैठते थे

11 वही, पृष्ठ 290



कोचवाक्स की यह बैठक बडे रुतबे और इज्जत की बात होती।

जयपुर के छत्तीस कारखानो मे बग्घीखाना महाराजा रामसिह के समय मे ही बना और बढा। ब्याह-शादियो मे जैसे लोगो को रथखाने से रथ, बहली या सग्गड मिल जाते थे, बडे लोगो को बग्घीखाने से बग्घिया मिलने लगी। माधोसिह के समय मे सैकडो की सख्या मे बग्घिया थी और चालीस पचास तो 1949 तक, जब जयपुर रियासत राजस्थान मे मिली, अच्छी हालत मे थी। इनमे सबसे शानदार नाव की शक्ल की वह खासा बग्घी थी जो प्रिस आफ वेल्स ने अपनी जयपुर यात्रा की यादगार के रूप मे महाराजा रामसिह को बम्बई से भेजी थी। इसमे बैटरी से जलने वाली शानदार "लाइट्स" भी लगी है। दशहरे की सवारियो मे जिन लोगो ने इसे देखा है, उन्हे इसकी चमक-दमक आज भी याद है।

माधोसिह अपने जीवन के अतिम दिनो (1920-22 ई) मे कार मे बैठने लगा था, फिर भी इस राजा की मनपसद सवारी चार घोडो की बग्घी ही थी। दुर्गापुरा, खासाकोठी, आमेर, ओदी रामसागर या रामगढ–कही भी यह राजा जाता तो बग्घी मे ही जाता। फासला लम्बा होता तो निश्चित दूरियो पर "कोतल" घोडे खडे मिलते जिन्हे वहा बदला जाता।

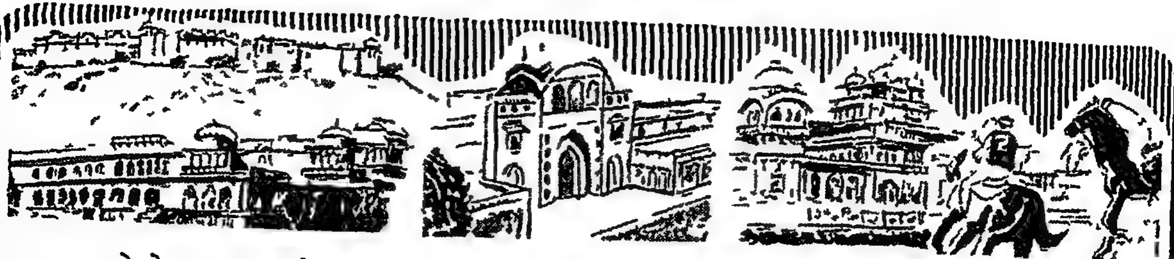
औपचारिक सवारियो या जुलूसो मे माधोसिह के सामने छोटी सीट पर होम मिनिस्टर सर पुरोहित गोपीनाथ और खास मर्जीदान खवास बालाबख्श बैठते, कोचबाक्स पर रूपनारायण या गौरीशकर चेला। महाराजा मानसिह की सवारियो मे यह इज्जत पहले गोरधन उस्ता और फिर नाहरगढ रोड के निवासी राय ब्रजमोहनलाल पल्लीवाल को मिली थी। राजाओ की शान-शौकत की चमक-दमक मे यह सामान्य जन भी बडी ठसक से अपनी भूमिका निभाते थे।

रथखाना

जयपुर मे जो जमाना गुजर गया उसमे राज के हाकिम-ओहदेदारो की हैसियत इस बात से आकी जाती थी कि उनके यहा रखथाने से बहली (भैल) या सग्गड तैनात है। आज भी बडे और छोटे अफसरो को जीप या कार मिलती है और उनके निजी उपयोग या दुरुपयोग को लेकर टीका-टिप्पणी भी होती है, लेकिन सरकारी कार या जीप शायद वैसा "स्टेटस सिवल" नही, जैसा पहले राज की बहली या सग्गड हुआ करते थे। तीज-त्योहारो को जिन हाकिमो या ओहदेदारो की घरवालियो को जनानी ड्योढी का बुलावा आता और साथ मे लिवाने के लिये झूलदार बानाकस का रथ या ढकी- ढूमी बहली और सग्गड आता तो अडौस- पडौस मे चर्चे हो जाते कि हाकिम साहब का रुतवा बुलन्द हो गया है। सरकारी सवारी को टुचकारी देने वाले तब बडे तकदीर वाले माने जाते और उनकी इज्जत भी बडी होती। लोगो के ब्याह-शादी होती या कोई और "आरा-मोसर" और रसूकात होते तो रथखाने से बहली या सग्गड मागे मिल जाते। बात की बात मे काम निकल जाता।

महाराजा रामसिह की जवानी तक सडके तो कुछ थी नही और जयपुर के छत्तीस कारखानो मे रथखाना सचमुच बडा अहम कारखाना था। वर्तमान असेम्बली भवन के बराबर बडे भारी चौक वाला और चारो ओर रथ-बहलिया रखने के मकानो से घिरा यह उस काल का स्टेट गैरेज था। बाद मे सडके बनी और रथ-बहलियो-सग्गडो का स्थान बग्घियो ने ले लिया तो रथखाना अपना महत्व खोने लगा और इस जगह महाराजा मिडिल स्कूल खुल गया जिमे जयपुर वाले आज तक रथखाना स्कूल ही कहते है।

रथखाने की स्थापना बाकायदा सवाई जयसिह के समय मे ही हो गई थी। उस महान राजा के "इन्द्र विमान" नामक एक दो-मजिला रथ बनवाने की चर्चा पहले हो चुकी है जिसे दो हाथी खीचते थे। यह रथ उसने मुगल बादशाह मुहम्मदशाह को भेट किया और बदले मे "माही- मरातिव" का सम्मान पाया। जैसा रथ बादशाह को भेट किया, वैसा ही रथ जयपुर के रथखाने मे भी रखा गया जो आज तक सुरक्षित है। पहले



यह दशहरे के अवसर पर देखा जाता था। दशहरे के दूसरे दिन फतहटीबा पर "सलक" का जो मेला लगता था, उसमे इन्द्र विमान को हाथी खीच कर वहा तक ले जाते थे। लकडी पर मृगाक के काम से सुशोभित इस हस्ति- रथ मे नीचे महिलाओ और ऊपर पुरुषो के बैठने की व्यवस्था थी।

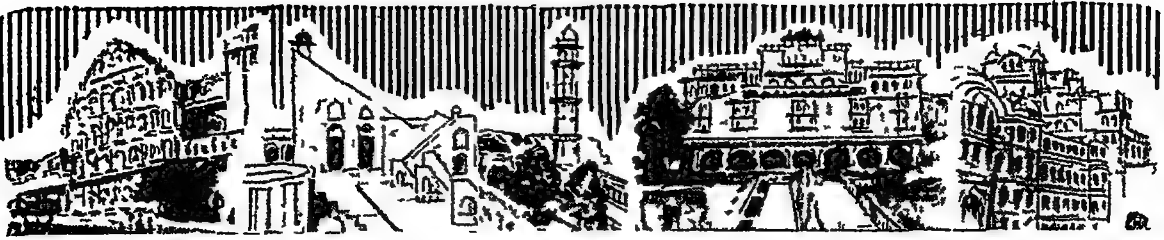
रथखाने मे झूलदार रथ थे, हिडोले की तरह झूलते हुए और "अम्बावाडी" नामक हाथी के हौदे की तरह इन रथो को हाकने वाले गाडीवान और पीछे बैठने वाले चाकर या प्रहरी पर भी छाया के लिये छज्जे झुके होते। कमानीदार रथो या "कबाण्यो" के रथो मे यह व्यवस्था विशेष रूप से होती। सग्गड पर छाया के लिये सपाट छत होती, रथ की तरह गुमटीदार या कमानीदार नही। वहली या भैल-सग्गड से जरा छोटी होती और चार की सवारी के लिये "तोगा" भी बडी खुली- खुली सवारी होता। सामान ढोने के लिये रथखाने मे छकडे होते जिन्हे खीचने वाले बैल ऐसे हृष्ट- पुष्ट की मक्खी फिसलती। एक हल्की- फुल्की गाडी जो बिना माच की होती, "ठोकर" कहलाती। ठोकर और सग्गड शिकार मे भी काम आते। शिकार मे शिकारियो की पोशाक प्राय हरी होती थी और सग्गड पर भी ऐसे अवसरो पर हरी झूल ही डाली जाती थी। इन सबके अतिरिक्त एक और काम की गाडी थी "बिरगवान" (शायद ब्रैकवान) जिस पर काफी सामान लादा जा सकता था। इन भारी-भरकम वाहनो को घोडे या ऊट खीचते। बाहर गोठ-घूघरी होती तो सामान बिरगवान मे भरकर पहुचाने मे सुविधा होती। और तो और, जयपुर मे बहुत लोगो को अभी तक महाराजा माधोसिह का जमाना याद है जब ढके हुए रथो मे पीतल के चमचमाते कलशो मे, जिन पर लाल कपडा ढका होता, खासा कोठी, मेहदी वाले कुए और मीठी कुई का पानी ड्योढी मे लाया जाता, क्योंकि शहर के अधिकतर कुओ का पानी तो खारा था।

आतिश

जयपुर के राजाओ की खासा घुडसाल जिसे जयपुर वाले आतिश के नाम से जानते है, कोतवाली चौपड से त्रिपोलिया तक फैली है और अब महारानी गायत्री देवी मार्केट बन गई है। "आत" तुर्की शब्द है जिसका अर्थ घोडा होता है। आतिश के मैदान मे सुबह- शाम खासा घोडो को छोडकर कसरत कराई जाती थी। महाराजा रामसिह (1835-1880ई) से पहले जयपुर को कोई 75 वर्षों तक जो बुरे दिन देखने पडे थे उनमे आतिश का हुलिया भी बुरी तरह बिगड गया था। मैदान गन्दगी और कूडे-कचरे से पटा पडा था और घोडो के ठाण भी टूट-फूट गये थे। रामसिह ने सारे जयपुर को सुधारा-सवारा तो आतिश के भी दिन फिरे। अस्तबल के सारे ठाणो की मरम्मत करवाई गई, मैदान को साफ कराकर समतल बनाया गया और त्रिपोलिया के पास दरवाजा भी निकलवाया गया। पहले आतिश का एक ही दरवाजा था जो इस दरवाजे के सामने आज भी है। नये दरवाजे पर एक खूबसूरत कमरा भी तामीर कराया गया जिसमे पिछले दिनों तक स्वतन्त्र पार्टी का कार्यालय था, लेकिन कभी इसमे जोधपुर के महाराजा सर प्रताप जैसे मोअज्जिज मेहमान भी ठहराये जाते थे। प्रिस आफ वेल्स (एडवर्ड सप्तम) की जयपुर यात्रा के समय सर प्रताप एक अर्से से जयपुर मे ही थे, और तव वे आतिश के इसी महल मे रहा करते थे। यह 1876 की बात है।

महाराजा रामसिह ने आतिश के प्रशासन को भी सुधारा और व्यवस्थित रूप दिया। खासा घोडो के लिये राजकोष से अच्छे दाने के साथ चीनी, घी और गुड तक बधा हुआ था, लेकिन गबन के अभ्यस्त अहलमदो-क्लर्कों, चौकीदारो और सईसो की मिली-भगत से बेचारे घोडे भूखो मर रहे थे। उनका दाना-पानी सब ऊपर का ऊपर हजम हो जाता था। सईस-चाकरो की आदते इतनी बिगड गई थी कि घोडो को कसरत कराना तो दूर, बाहर भी नही निकाला जाता था और सभी जानवर मुरदार हो रहे थे।

रामसिह ने अपने विश्वस्त अधिकारी नियुक्त कर इस भ्रष्टाचार, सुस्ती और लापरवाही का काम तमाम किया। घोडो को बाधने के लिये पत्थर के सुघड खूटे हर अस्तबल मे लगाये गये और उनके बाहर पर्दे लटकाये



गये ताकि सर्दी, गर्मी और बरसात मे जानवरो की हिफाजत रहे और उन्हे कीडे-मकौडे, मच्छर-मक्खी भी तग न करे। चारा और दाना निश्चित मात्रा और नियत समय पर देने के कडे कायदे लागू किये गये। सारे मैदान मे हरी दूब लगवाई गई और घोडो को नियमित रूप से दौडाया जाने लगा। कुछ ही दिनो मे सभी जानवर तरो- ताजा और चुस्त दिखाई देने लगे और आतिश के बजट का भी रग ऐसा बदला कि जहा हमेशा घाटे का रोना रहता था, वहा अब बचत होने लगी।

महाराजा ने अस्तबलो के साथ घोडो के साज रखने के भण्डार तथा चाबुक सवारो (घोडो को प्रशिक्षित करने वाले), सईसो और पशु-चिकित्सको के आवास भी बनवाये।

आतिश के मैदान मे महाराजा माधोसिह ने एक सुन्दर बारहदरी या पेवीलियन भी बनवाई जो आज तक वहा है। 1875 ई मे जब ग्वालियर के जियाजीराव सिंधिया जयपुर आये तो आतिश का ऐसा माहौल था कि उन्होने महाराजा रामसिह के साथ यहा घोडो और घुडसवारो के करतब देखे। स्वय सिंधिया ने भी घुडसवारी के साथ भाले के वार के करतब दिखाये और रामसिह भी अपने मेहमान से पीछे न रहे। जोधपुर के सर प्रताप ने भी ऐसे ही जौहर दिखाये।

आतिश 1957 तक महाराजा मानसिह के पोलो के घोडो या टट्टुओ का अस्तबल ही था जिसमे गर्मियो मे बिजली के पखे तक चला करते थे। अब तो यह एक व्यस्त और बडा अडा-भिचा बाजार हो गया है।

ग्वालेरा

जयपुर की राजकीय डेयरी को "ग्वालेरा" कहा जाता था। नगर-प्रासाद मे यह जनानी ड्योढी के सामने ही एक लम्बा-चौडा नोहरा है जो कभी गाय-बछडो से भरा रहता था। दुधारू गाये तो रहती ही थी, कुछ गाये "दर्शनी" भी होती थी। माधोसिंह की राते चाहे कैसी भी राग-रग की रही हो, दिन श्रीगोपालजी और उनकी प्रिय गायो के दर्शन से ही आरम्भ होता था। ग्वालेरा से दर्शनी गायो का टोला सवेरे-सवेरे वहा हाक कर ले जाया जाता जहा माधोसिह शैया-त्याग करता। गोपालजी के दर्शनो के तत्काल बाद गो-दर्शन का पुण्य कमाकर राजा अपना नित्य कर्म करने चला जाता।

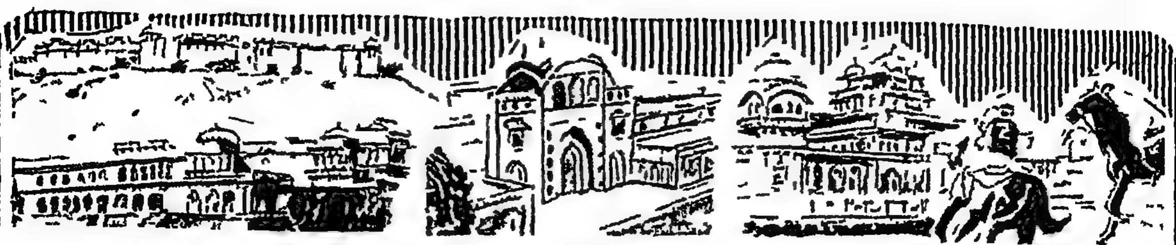
राजमहल की दूध की पूरी आवश्यकता कभी ग्वालेरा से ही पूरी होती थी। बाद मे ग्वालेरा का नाम तो रहा, किंतु दूध-दही हलवाइयो से ही लिया जाने लगा। ड्योढी का दूध-दही और मिठाइया देने वाले हलवाई ही तब इस शहर के बडे से बडे और नामी हलवाई होते थे।

चूंकि ग्वालेरा मे जगह काफी थी, राज की ओर से होने वाले कई बडे-बडे "हेडे" या हजारो लोगो के सामूहिक भोज जो पहले हवामहल और गोवर्धननाथजी के मदिर मे हुआ करते थे, यहा होने लगे। महाराजा माधोसिह की पडदायतो से जन्मी लडकियो के विवाह भी ग्वालेरा मे ही किये गये थे, क्योंकि इन अनौरस पुत्रियो के लिए जनानी ड्योढी के द्वार पर तोरण नही लटकाया जा सकता था।

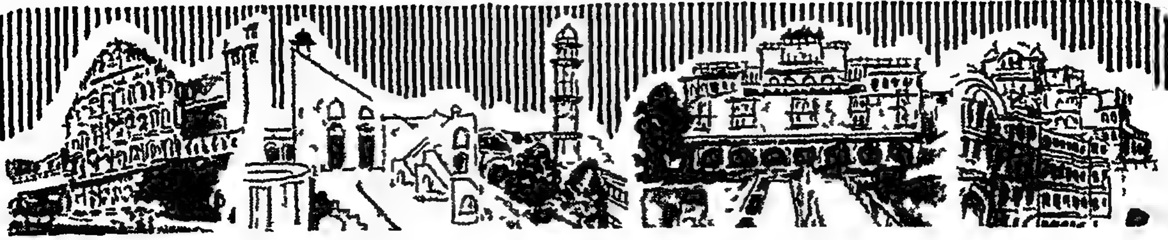
अपनी मृत्यु के साल-दो साल पहले से इस महाराजा को बडी फिक्र लगी थी कि ऐसे सब लडके-लडकियो के विवाह उसके सामने ही हो जाये। जोधपुर के महाराजा सर प्रताप ने तब जयपुर के लालजियो के विवाह जोधपुर के रावराजाओ की बेटियो और बहिनो से तथा यहा की बाईजी लालो को वहा के रावराजाओ या उनके बेटो से ब्याह देने की तजवीज की जिसे माधोसिह ने भी ठीक समझा। यह विवाह सब ग्वालेरा से ही हुये। उस समय के एक विवाह के सम्बन्ध मे पुरोहित गोपीनाथ की डायरी[12] मे यह दिलचस्प टिप्पण है

"आज (26 अगस्त, 1921) शाम साढे चार से पाच बजे तक रावराजा बडा तेजसिहजी के सबसे बडे बेटे की बरात मे गया जो सरगासूली के सामने राणावतजी के मंदिर से आरभ होकर जनानी ड्योढी के सामने

12 हस्तलिखित, जयपुर।



जयपुर को गुलावी वनाने वाला महाराजा रामसिह द्वितीय (1835–80 इ) -एक तल चित्र की प्रतिकृति



ग्वालेरा तक गई थी। ग्वालेरा से लौटकर फिर उसी मन्दिर पर गया और रावराजा तेजसिहजी के सबसे बडे बेटे के ज्येष्ठ पुत्री की बरात मे शामिल हुआ—साढे पाच से छह बजे तक। दो बहिनो के साथ, जो अलग-अलग माताओ की बेटिया है, बाप और बेटे के ऐसे विवाह, जो एक ही दिन और एक ही स्थान पर सम्पन्न हुये—दोनो ने एक ही पोल पर तोरण मारे—यहा न कभी देखे गये थे और न सुने गये थे। ये विवाह सचमुच अनोखे और असामान्य ही थे।"[1]

आगे चलकर फर्राशखाना भी ग्वालेरा मे ही आ गया था।

शिकारखाना

शिकारखाना भी अपने आप मे कम महत्वपूर्ण विभाग नही था। यह आजकल का वन विभाग है। जब जगल घने और जानवरो से भरे-पूरे थे तो राजा लोगो का मनोरजन और व्यायाम शिकार से ही होता था। मेहमानो और ए जी जी या वायसराय जैसे ब्रिटिश प्रतिनिधियो के आने पर भी बडे-बडे शिकार, खासतौर से शेर के शिकार, के आयोजन होते। इन आयोजनो का पूरा प्रबध शिकारखाना ही करता। महाराजा रार्मसिह और फिर माधोसिह के समय मे भी जोधपुर के सर प्रताप शिकारखाने से सम्बद्ध रहे थे। प्रिस आफ वेल्स (बाद मे एडवर्ड सप्तम) ने झालाना के पास जो शेर मारा था, उस शिकार का प्रबन्ध भी सर प्रताप ने ही किया था।

कानोता के कर्नल केसरीसिह अभी दो वर्ष पूर्व ही दिवगत हुए है। अपने समय मे वह शिकारखाने के बडे नेक नाम अधिकारी रहे। राजस्थान मे शेर तथा अन्य वन्य प्राणियो के विषय मे उनसे अधिक शायद ही कोई जानता हो। उन्होने "टाइगर ऑफ राजस्थान" पुस्तक भी लिखी। 1960 मे इग्लैण्ड की मलिका एलिजाबेथ और उनके पति प्रिस फिलिप जयपुर आये थे तो कर्नल केसरीसिह ने ही सवाई माधोपुर के जगल मे शेर के शिकार की सारी व्यवस्था की थी। जयपुर की सडको पर इन वयोवृद्ध कर्नल साहब को न जानने वाला भी आसानी से उनकी कार से पहिचान सकता था। उनकी कार पर पालिश नही थी, शेर की आकृति बनी थी।

महाराजा मानसिह (1922-79 ई) ने सवाई माधोपुर के जगल मे और जयपुर के निकट रामगढ बध पर दो आधुनिक "शूटिग लॉज" का आखेट गृह बनवाये थे। इनमे रामगढ की कोठी एक आरामदेह फ्रेंच देहाती आवास की तरह है। जब कभी रणथभोर के ऐतिहासिक दुर्ग की छाया मे अथवा रामगढ के आसपास बडी शिकार का आयोजन होता तो मेहमानो के लिए इन कोठियो के आसपास तम्बुओ- शामियानो की एक बस्ती बस जाती। इस शिविर मे फर्राशखाने की ओर से लगाये जाने वाले तम्बू हर प्रकार की सुख- सुविधा से युक्त होते।

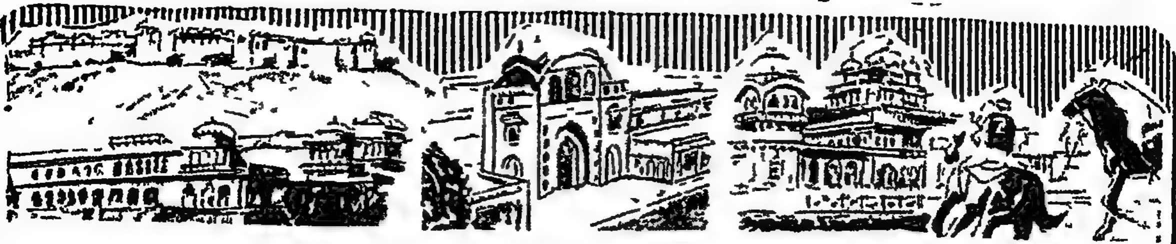
रसोडा या रसोवडा

मुबारक महल के चौक के दक्षिणी द्वार—पूरबिया की ड्योढी के— पास ही पश्चिम मे एक दरवाजा 'रसोवडा की ड्योढी' कहलाता है जो नगर-प्रासाद के खासा रसोवडा मे जाने का रास्ता है। रसोवडे की जगह तो अब महाराजा मानसिह सग्रहालय की प्रदर्शनियो के लिए बनाई गई दीर्घा ने ले ली है और जो रसोवडा हुआ करता था, उसकी अब कही गध भी बाकी नही है।

जयपुर शहर की जिदगी जब राज-दरबार, जनानी और मर्दानी ड्योढियो तथा बावन कचेहरियो और छत्तीस कारखानो के इर्द-गिर्द ही घूमती थी तब महाराजा माधोसिह के खासा रसोवडे से भी सैकडो आदमी अपना भरण-पोषण करते थे। महाराजा के निजी हाथ खर्च से चलने और उनकी पसन्द के भोजन बनाने के कारण ही यह "खासा' कहलाता था। तातेडखाना, तम्बोलखाना और ओखदखाना खासा रसोवडे के बडे कारखाने के अतर्गत ही छोटे कारखाने थे। स्वय महाराजा, महारानियो, खास मर्जीदान पडदायत- पासवानो,

---

1 सर पुरोहित गोपीनाथ की डायरी (ह लि), जयपुर।



महाराजा के निजी मेहमानो और उनके साथ आने वालो का ही खाना खासा रसोवडे मे बनता था। जनानी ड्योढी जिन माजी साहबो, महारानियो, पडदायत- पासवानो आदि से तब भरी थी, उनका खाना अपने-अपने रावळो मे उनके निजी नौकर-चाकरो द्वारा ही बनाया जाता था। इनकी अपनी जागीरे थी और अपने ही कामदार जो माजियो, महारानियो आदि के नाम से आज तक प्रसिद्ध नोहरो मे अपनी कचेहरिया चलाते थे और सारा इतजाम करते थे।

रसोवडे के कारखाने मे तातेड-खाना जलदाय विभाग या "वाटर वर्क्स" था। इसके दारोगा को वेतन मे जागीर मिली हुई थी और उनका काम यही था कि हर समय ठण्डा और गर्म पानी तैयार रहे। चादी के रामझारो को लेकर तैयार रहने वाले जलधारी और पाळो को पकडे रहने वाले सेवक (पालेवाले) तातेडखाने के अमले मे थे। यह भी उल्लेखनीय है कि तातेडखाने को नहाने-धोने और हाथ धुलाने के पानी का ही प्रवध खास तौर से करना पडता था। पीने के लिये महाराजा गगा-जल रखाते थे और माजिया, महारानिया ओर पडदायते अपनी-अपनी पसद के कुओ-कोठियो से कावडो मे पानी मगवाती थी।

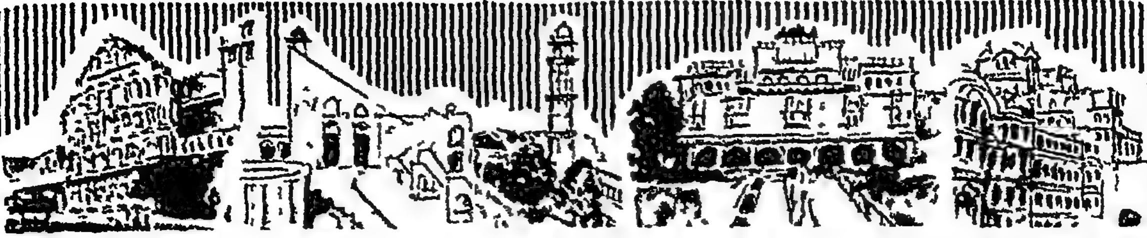
तम्बोलखाने मे पान लगते थे। महाराजा, महारानियो और खास मेहमानो के लिए "खासा वीडे" और छोटी गिलौरिया तैयार होती जिनमे कत्थे-चूने-सुपारी-इलायची और पीपरमेट के साथ केसर, बादाम और खोपरा भी डाला जाता। जिन मेहमानो के लिए उनके ठहरने की जगह ही भोजन के थाल भेजे जाते, पान की "खल्ली" भी साथ भेज दी जाती। जनानी ड्योढी के अलग-अलग रावलो से प्राय पानो की फरमाइश आती रहती और तम्बोलखाने से पान के बीडो और गिलौरियो की 'तासकिया' जाती रहती। तम्बोलखाने के अधिकारी (दारोगा) को भी बडी जागीर मिली हुई थी। औखदखाने मे दारूखाना अथवा मधुशाला भी शामिल थी। सुगनजी वैद नामक जैन इस उप विभाग के दारोगा थे जिसमे पन्द्रह-वीस वैद्य-हकीम दवा-दारु वनाने मे लगे रहते थे। जवाहरमोहरा, वसतमालती, चादी, सोने, लोहे और अभ्रक आदि की भस्मे जैसी दवाये तथा रोजाना खर्च का आसव, दशमूल, गुलाव, नारगी, केतकी, केवडा, सौफ, पोदीना आदि की शरावे यहा खिचती रहती थी। पहली वार खीचने पर "रासी" निकलती जिसे दुवारा भभके पर चढाकर खीचा जाता। तीसरी वार खीचने पर दो-दो तीन-तीन वूद टपकती। इस तरह "आसा" या आसव वनता। तैयार शराव को चादी के छोटे-वडे कलशो-तुगो— अथवा चीनी तथा शीशे के कटरो मे भरकर डवल मुहर के गोदामो मे रख दिया जाता। यह गोदाम मुन्तजिम या नायव मुन्तजिम रसोवडा की निगरानी मे ही खोले जाते और जो कुछ निकालना होता उसे निकालने के वाद फिर से डवल मुहर लगाकर वद कर दिए जाते।[14]

माधोसिह खाने का वडा शौकीन राजा था, पर "जीमण" का समय नियत नही था। रसोवडे मे सवेरे वारह वजे पहले और रात को आठ व नौ के बीच खाना तैयार रखा जाता था और जब भी भीतर से महारानी या किसी पडदायत के रावले से थाल भेजने का हुक्म आता, रसोवडे मे बडी हलचल मच जाती। सभी वस्तुए 'हाट केस' मे गर्म रखी जाती थी या आनन-फानन मे गर्म कर पहुचा दी जाती थी।

जयपुर मे 1922 ई तक महाराजा का "खासा रसोवडा" कैसे चलता था, उसमे क्या-क्या उप-विभाग थे, कैसे-कैसे व्यजन वनाये और खाये-खिलाये जाते थे, रनिवास के भीतर आये दिन होने वाले रात्रि-भोजो या "जीमण-चूठण" का कैसा सरजाम था—इन सव वातो की जानकारी का खजाना जसवतसिह थे, जो चोकडी गगापोल मे अजयराजपुरा हाउस मे रहते थे।[15] हालांकि उस जमाने मे वे रसोवडे मे काम नही करते थे, लेकिन 1937 ई मे रसोवडे के नायव वन जाने पर उन्होने पुराने लोगो मे यह सव वाते न केवल सुनी और

14 प गो ना नहुरा से मौखिक जानकारी।

15 खेद है कि रसोवडे की यह सब जानकारी दने वाल जसवन्त मिह का कछ समय पद देहान्त हा गया। व रतलाम क राजा अमरसिह के चचर भाइ थ और राठौड थे।



जानी, बल्कि लिखकर सनद भी कर ली। उनके अपने हाथ से लिखे हुए चार बडे-बडे रजिस्टर हैं जिनमे खाने-पीने की चीजो की विधिया भरी पडी है। सब मिलाकर ढाई हजार चीजो की लम्बी फेहरिस्त हे जिसमे दो सौ से अधिक किस्म की रोटियो-चपातियो-बाटियो, सेकडो तरह के हलुवो और विविध व्यजनो की तफसील है। पाक-शास्त्र की विधिया छापने वाले किसी भी पत्र या पत्रिका को यह रजिस्टर एक अरसे तक बडी दिलचस्प सामग्री देते रह सकते हैं।

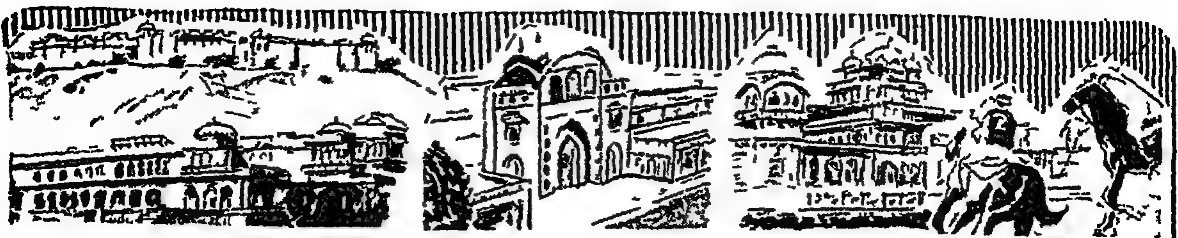
जसवन्तसिंह के इन चार रजिस्टरो को पाक-विद्या के चार हस्तलिखित ग्रन्थ ही मानना चाहिए। अजीब गोरखधन्धा है ये रजिस्टर। रोटियो की विगत कहने लगे तो कई पृष्ठ भर जाये, मास की चलाये तो एक से एक लाजवाब मास बनाने की विधिया प्रकट होती रहे। यही हाल मिठाइयो का, आचार-मुरब्बो का और कढी-रायतो का है। केवल एक रजिस्टर की विषय-सूची पर थोडी-सी नजर डालते हे

"रसोवडा व उसकी जरूरी चीजो की सफाई, रसोवडे के काम मे आने वाले बर्तन किस धातु के हो, मसालो की किस्मे, मसालो के गुण-अवगुण, मसालो का प्रयोग, छह रसो के गुण-अवगुण, तरकारिया कैसे छीली- काटी जाये, कसे धोई जाये, कैसे उबाली जाये, किस तरकारी मे क्या मसाला वर्जित है, नमक व खटाई डालने का समय ओर तरकीब, अन्न की किस्मे, गुण-अवगण, मेवो, दूध, दही, छाछ, मक्खन, मलाई, घी और तेल के गुण-अवगुण, इनके प्रयोग, विभिन्न खाद्य पदार्थो की शुद्धता की पहिचान, फोरन दही जमाने की तरकीब" इत्यादि इत्यादि।

यह उन सैकडो शीर्षको मे से कुछ इने-गिने ह जिनमे यह पता चले कि रसोई को रसायन बनाने के लिए कितनी तफसील मे जाना पडता हे। इन प्रारम्भिक निर्देशो के बाद भोजन-सामग्री का ब्योरा शुरू होता है। पहले तरकारिया ले तो उनमे मिलती है नमक की तरकारी, आटे की तरकारी, दूध की तरकारी, लहसुन की बास कम करना ओर गवारपाठे की कडुवाहट खोना। फिर है गेहू की रोटी की किस्मे—फुल्का, मोटी रोटी या मडक्या, मोयनदार बटिया, विभिन्न अनाजो की रोटिया, बिना पानी की रोटी, मीठी, बाजरे की नमकीन रोटी, उडद के आटे की रोटी, उडद की दाल की रोटी, तिलो की रोटी, चावल की रोटी, छोलो की रोटी, दूध की रोटी, बेसनी रोटी, राजा शाही, रोटी शीरमाल, बाकरखानी रोटिया, नान ताफता, नान मजदी, नान तनक, नान बर्की, रोटी तहदार, नान कतलया, नान मशहरी, नान अब्बुज फरशारी अडे के साथ, शकरकद की रोटी, शिकारी रोटी, मखानो की खुशबूदार रोटी, मसाले की रोटी, खस्ता रोटी, सोथी रोटी, बादाम की रोटी, ग्वारपाठे की रोटी, मेवेदार मीठी रोटी, मुगलिया मीठी रोटी, केले की मीठी रोटी, सतनजे की रोटी, मिलवा अनाजो की रोटी और न जाने और कितनी रोटिया ही रोटिया।

जयपुर के राजाओ की ही बात नही, सभी राजा-महाराजाओ और नवाबो की खाने-पीने की भी सनके होती थी। जो सामान्यत न खाई जाती हो, ऐसी चीजो को न केवल खाने योग्य, बल्कि बहुत स्वादिष्ट बनाकर खाना भी रईसी मे शामिल होता था। ऐसे कई उदाहरण खासा रसोवडे की इस फेहरिस्त मे है। नमक की सब्जी एक ऐसा ही उदाहरण है।

हा, नमक की सब्जी भी यहा बनती थी और बन सकती है और इसका तुर्रा यह है कि और नमक डालो तो नमक का जायका आये, वरना मालूम ही न हो कि खालिस नमक की सब्जी हे। बनाने की तरकीब यह है कि गडा थोर जिसे जयपुर मे घोटा थोर भी कहते है, उसका दूध मगाओ और नमक की डलियो को, जिनकी सब्जी बनानी है, इसमे तीन दिन तक भिगोओ। यह दूध इतना ही डालना चाहिए कि हर रोज नमक पी जाये। इस तरह तीनो दिन दूध बदलना होगा। चौथे दिन दो किलो पानी मे डलियो को उबालो और पानी फेक दो। फिर ठण्डे पानी से नमक की डलियो को धो डालो और माफिक मामूल मसाला भून कर सब्जी बना लो। इस सब्जी मे नमक फिर से डालने पर ही मजा आयेगा।



इसी तरह आटे की सब्जी भी बनाई जा सकती है। इसे चक्की की तरकारी भी कहते है। एक किलो आटे को कपडे मे बाध कर या गूद कर पानी मे धोओ और सफेद मैदा का पानी निकाल दो। जब सफेद पानी निकलना बद हो जाये तो आटे को जमाकर चक्किया काट लो। फिर इन चक्कियो को घी मे तलकर वांछित मसाला भून कर सब्जी बनालो। बिना तले भाप से पका कर भी यह सब्जी बनाई जा सकती है।

पानी या दूध मे उबाल कर अदरक की तेजी दूर करने के बाद घी, शक्कर, मावा और मेवा डालकर अदरक का बडा स्वादिष्ट हलुवा भी बनाने की तरकीब है।

अब एक मजाक की पुडी या पूरी बनाने की तरकीब देखिये। सगो-समधियो को भोजन कराते समय बडे सिद्धहस्त रसोईदार से ही यह तरकीब पार पड सकती थी। इसके लिए मैदा मे मोयन डालकर पूरी बनाई जाती है। मैदा के बजाय आटे की पूरी भी बनाई जा सकती है पर इसमे घी का मोयन और मैदा की मिलावट



महाराजा माधोसिंह द्वितीय (1880-1922 ई)



आवश्यक है। मोयन और मैदा पूरी को खूब फलाने में सहायक होंगे। पूरी फूल जाने पर दबानी नही चाहिए और फूले हुए हिस्से को बारीक धारवाली छुरी या चाकू से खोल देना चाहिए। इसमे लवा, बटेर या छोटी चिडिया रख कर बहुत सावधानी से दबाकर मैदा या आटे के पतले गलेफ से बद करना चाहिए। चिडिया के साथ एक छोटी सी बरफ की डली भी रखनी होती ह जिससे जानवर को ठण्डक रहे। फिर गलेफ चढे हुए हिस्से को होशियारी से नाममात्र को तला जाता है और पूरी गरम-गरम ही परोसी जाती है। भोजन करने वाला जैसे ही इस फूली हुई पूरी को तोडता है, चिडिया फडफडाकर उड जाती है और भोजन करने वाला उपहास का पात्र बन जाता है। जैसा पहले कहा, यह तरकीब बहुत सधे हुए बावर्ची या रसोईदार के ही बस की बात है।

जयपुर मे मोहम्मदअली नामक बावर्ची सिद्धहस्त था। उसके द्वारा एकत्रित "मीनू" तथा कानोता के ठाकुर नारायणसिंह के तृतीय पुत्र सरदारसिंह द्वारा सग्रहीत पाक विद्या की विधियो से भी जसवतसिंह ने अपने रजिस्टर भरे थे।

शाकाहारी भोजन की चर्चा के बाद मासाहारी "मीनू" की महिमा भी इन रजिस्टरो मे देखते ही बनती है—सैकडो प्रकार के मास, पुलाव, बिरियानी, कीमा, सूप और शोरबे बनाने की तरकीबे और अग्रेजी खाने के विविध व्यजन पकाने की विधिया भी छाट-छाट कर इकट्ठी की गई है।

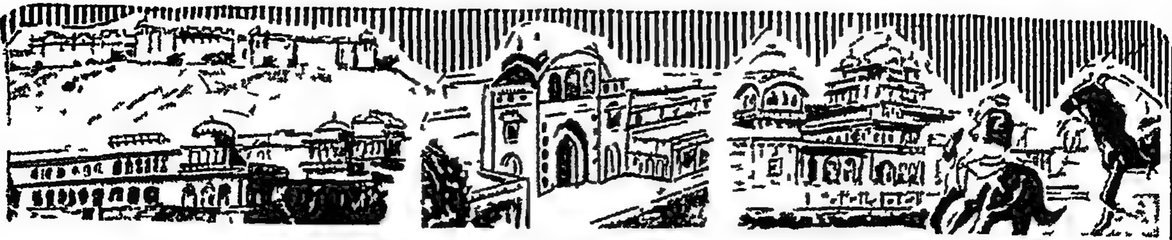
महाराजा माधोसिह के खासा रसोवडे मे रसोइदार लोग नित नये नुस्खे आजमाते थे और जादूगरो की तरह अपने हाथ की सफाइ या कारीगरी से खाने वालो को बाग-बाग कर देते थे। चूरमा-बाटी यहा का अत्यत लोकप्रिय आहार रहा है और रसोवडे के रिटायड नायब जसवन्तसिह के रजिस्टरो मे चूरमे और बाटी की सैकडो किस्मे बयान ह। दूध का चूरमा बनाने की तरकीब देखिये

चार किलो दूध कडाही मे डालकर तेज आच पर ओटाओ, ओटाते समय दूध को खिरनी की मोटी जात लकडी मे जो मस्ते का काम दे सके, बराबर हिलाते रहो। दूध का जब मावा बन जाये तो उसका पानी बिल्कुल खुश्क कर लिया जाना चाहिए और इस प्रक्रिया में उसे कडाही के लगने नही देना चाहिए। पानी खुश्क होने पर आटा हो जायेगा। इस आटे को धीमी आच पर सेक कर ठण्डा कर लिया जाता है। इसमे बूरा व मेवा मिलाने से अत्यन्त स्वादिष्ट दूध का चूरमा बन जाता ह।

दूध के चूरमे की तरह लहसुन, प्याज, मूली और कैरी की खीर भी बनती है। इनमे से जिस चीज की खीर बनानी हो, उसे छील कर पतले-पतले टुकडे काटे जाये— चावल का विकल्प। भगोने मे पानी उबाल पर आ जाये तो यह "चावल" डाले जाते है। फिटकरी या नीबू का रस डालकर दो-चार मिनट बाद पानी निकाल दिया जाता है। ऐसा तीन-चार बार करने पर लहसुन, प्याज, मूली या कैरी की बास या खटास कतई निकल जाती है। फिर दूध ओटा कर यह बनाये हुए चावल डाल कर खीर बना ली जाती है जो बडी लजीज होती है।

रसोईदार की परीक्षा बादाम गलाने या किसी पदार्थ मे पडे हुए ज्यादा नमक को कम करने जेसी हाथ की सफाई से भी होती थी। बादाम को चाहे जितना उबालो, गलता नही हे पर गलाने की दो तरकीबे है। गरम पानी मे बादाम फोडकर और छिलका उतार कर चार घटे तक उबाले जाते है। गलाने की लाग होती है थोडा-सा सुहागा, लेकिन इससे बादाम का जायका बिगड जाता हे और इसे सुधारने के लिए बादामो को फिर दूध मे उबाला जाता है। दूसरी तरकीब आसान है और वह यह कि पानी गरम किया जाय। आच यदि खेजडे की लकडी के कोयले की हो तो अच्छे गलते है। पानी मे पहले थोडी-सी चूल्हे की राख और फिर फोड कर छीले हुए बादाम डाले जाये। चार घटे उबलने के बाद गल जायेगे और जायका भी कतई नही बिगडेगा।

किसी चीज मे नमक अधिक पड जाने पर कम करने के भी दो तरीके है। गुथे हुए आटे का काठा लोया उस चीज मे डाल देने से वह नमक को खीच लेता है। दूसरे, देगची के मुह पर गीला कपडा ढक कर ढक्कन लगा देने से नमक भाप के जरिये उड कर कम हो जाता है। थोडा-सा बूरा या नीबू डाल कर भी नमक कम किया



जाता है।

नमक को हमेशा मिट्टी या चीनी के बर्तन मे रखने का रिवाज है। यह बर्तन हमेशा ढका रहना चाहिये क्योकि इस पर छिपकली बैठ जाती है तो उस नमक को खाने वाला कोढी हो जाता है। तावे या पीतल के बर्तन मे रखने से नमक पर बरसात मे हरा रग आ जाता है जो जहर है।

बानगी के तौर पर कुछ विधिया यहा लिखी हैं। किसी भी भारतीय शाकाहारी या मासाहारी व्यजन को लिया जाय, उसके सैकडो प्रकार इन रजिस्टरो मे दर्ज हैं। खिचडी की बात ही देखिये, यह तीन प्रकार की बनाई जाती है— पतली बीमारो के लिए, गाढी तन्दुरुस्त के लिए और खिलवा खाने के शौकीनो के लिए। खिचडी घी मागती है और कम घी वाली खिचडी प्यास ज्यादा लगाती है। दही, पापड और अचार के साथ भी खिचडी खाई जाती है। वात और कफ के रोगी को लौंग के बघार की खिचडी, पित्त के रोगी को धनिया के बघार की खिचडी, मेदे की खराबी वाले को इलायची के बघार की खिचडी और अरुचि वाले को जीरे की बघार की खिचडी मुआफिक आती है।

और खिचडी की किस्मे ये है खिचडी मामूली, भुनी खिचडी, मिलवा दाल की खिचडी, खडी मसूर की दाल की खिचडी, गुजराती खिचडी, खिचडी मसाला, प्याज भरी खिचडी, अमीरी खिचडी, जहागीरी खिचडी, कटहल, अकबर-शाही खिचडी, हरे मटर की खिचडी, चिवडा की खिचडी, हरे चने की खिचडी, बाजरे की खिचडी खासा, बाजरे की मीठी खिचडी और कोई पचासो तरह की खिचडिया और भी!!

जब तक रियासत रही और खासा रसोवडा कारखाने की तरह चला, इससे सम्बद्ध भण्डार या मोदीखाने मे फल व मेवे भी बहुत आते थे। बादाम-पिस्ता-काजू की बोरिया भरी रहती थी और केसर के बडे-बडे डिब्बे खाली होते थे। उस जमाने मे रसोवडे की आइस-क्रीम और कुल्फी भी नामी होती थी।

सामिष और निरामिष भोजन को महाराजा, महारानियो तथा उनके मेहमानो को परोसे जाने से पहले चखने की परम्परा थी। इसके लिए 'चखणे' लोग रहते थे, जिनका पेट व्यजनो को थोडा-थोडा चखने से ही भर जाता था।

लवाण के चौथमल नामक एक चखणे का किस्सा है। वह चखणा भी था और रसोवडे मे आटा छानने व सामान तोलने का काम भी करता था। महाराजा माधोसिंह ने एक दिन चख-चख कर सड-मुसड हो जाने वाले इस कारिन्दे को देखा तो बोले, 'यो काई खावै छै ज्यो इस्यो लाल होरह्यो छै?' (यह क्या खाता है जो ऐसा सुर्ख हो रहा है?) जब किसी ने कहा कि सब खासा रसोवडे का प्रताप है तो महाराजा ने फरमाया कि 'ईकी बावली बाधद्यो' (शेर के लिए जो पाडा बाधा जाता है उसे बावली बाधना कहा जाता है। महाराजा ने पाडे की जगह चौथमल को बाध देने को कहा था)! आमेर और कूकस के बीच रामसागर की ओदी के सामने चौथमल की बावली बाध दी गई। घने जगल के बीच ओदी रामसागर मे बैठकर शेर को पाडा खाते देखना महाराजा का शौक था। चौथमल बावली बध गया, उसे यकीन था कि महाराजा ने मजाक किया है, वे कभी उसे शेर का भोजन नही बनने देगे। ऐसा ही हुआ। आधी रात तक शेर तो आया नही, लेकिन महाराजा को ध्यान हुआ कि चौथमल बधा है तो उन्होने खवास-चेलो से पूछा, "अरै वो बध ही रह्यो छै काई हाल तक? अब तो बिचारा नै खोल ल्याओ नही न्हार खाजावैलो।" (क्या वो अभी तक बधा है, बेचारे को खोल लाओ, वरना शेर खा ही जायेगा) बस, चौथमल दो-ढाई घटे खतरे मे रह कर सकुशल रसोवडे मे आ गया।

इस चौथमल को महाराजा 1902 मे अपने साथ इग्लैण्ड भी ले गया। वहा वह उस कोठी के बाहर बैठा अपने साथियो से हसी- मजाक कर रहा था, जिसमे महाराजा ठहरे थे। तभी महाराजा से मुलाकात के लिए कोई ऐसा अग्रेज आया जो भारत मे काफी रह चुका था और कुछ हिन्दी भी जानता था। उसने चौथमल के हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर पूछा, "क्या कुश्ती लडोगे?"



"लट ग्याला" चौथमल ने जवाब दिया। उस अंग्रेज ने कहा कि अच्छा तो एक दिन तो आये! चौथमल बोला "वह दिन कब आयेगा, आज ही सही।" यह कह उसने उस अंग्रेज का गट्टा पकड़ा और ऐसा मरोड़ा कि बेचारा वहीं गिर पड़ा और उठ कर कपड़े झाड़ते हुए भीतर महाराजा से मिलने गया।

चौथमल को अब उसके साथियों ने कहा कि आज तेरी खैर नहीं, यह अंग्रेज अभी महाराजा को शिकायत करेगा। चौथमल चुपचाप उठकर भीतर गया और रसोवड़े का आटा छानने लगा। उसके हाथ ही नहीं, चेहरा भी आटे के पाउडर से भर गया। अंग्रेज ने शिकायत के तौर पर तो नहीं, लेकिन मजाक के लिए अपनी आप-बीती सुनाई। महाराजा ने बाहर आकर अपने सब आदमियों की परेड करवाई, लेकिन आटे ने चौथमल का हुलिया बदल दिया था। वह पिटा होने वाला अंग्रेज उसे पहचान ही नहीं सका।

हां, उसके चले जाने के बाद महाराजा को सारी बात बता दी गई तो महाराजा ने चौथमल को झिड़का "म्हारा मेहमानां सै लड़ै छै!" (हमारे मेहमानों से लड़ता है!)

और इस झिड़की के साथ चौथमल को महाराजा के इष्टदेव गोपालजी के प्रसाद के चार लड्डू भी इनायत हो गये जिन्हें खाता-खाता वह फिर अपने काम पर चढ़ गया।

ओखधखाना-तालेडखाना

सारा रसोवड़ा राजमहल की पाकशाला थी जिसके पीछे सैकड़ों के पेट भरते थे। इसके अनेक उप-विभाग या छोटे कारखाने थे — ओखदखाना, मोदीखाना, तालेडखाना, तम्बोलखाना आदि। ओखदखाना में प्रामाणिक आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियां तैयार होती थीं। जिन वाजीकरण-प्रयोग की बात महाराजा माधोसिंह के बारे में लोग आज तक करते हैं, वे औषधियां निष्णात वैद्यों और हकीमों की देखरेख में ओखदखाने में ही बनी थीं। मोदीखाना या भण्डार-गृह था जहां से रसोवड़े के लिये सब आवश्यक सामान उपलब्ध होता था और निर्धनों, विधवाओं तथा ब्राह्मण-पण्डितों को निर्वाह के लिये अनाज, मसाला आदि के पेटिये मिलते थे।

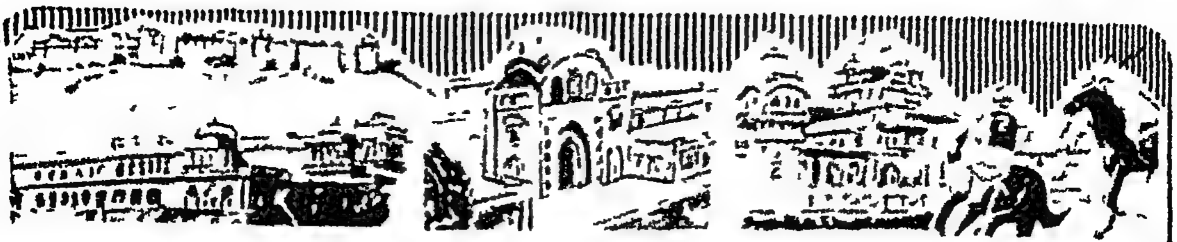
तालेडखाना स्वतंत्र विभाग था। माधोसिंह प्रथम के समय में राजा के पीने के पानी की शुद्धता और सुरक्षा का दायित्व खुशालीराम बोहरा का था और उस व्यक्ति की असाधारण योग्यता से प्रभावित होकर माधोसिंह ने उसे तालेडखाने से निकाल कर बड़े पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था।[16] तालेडखाना के इस मामूली से मुलाजिम ने फिर सालों तक जयपुर में राज किया और बड़ी उखाड़-पछाड़ देखी। तम्बोलखाना के पानों का जायका बाजार की दुकानों से न्यारा ही होता था। महाराजा माधोसिंह के समय में तम्बोलखाना के दारोगा को दस हजार सालाना की जागीर थी।

इमारत

"इमारत" एक ऐसा कारखाना था जो वास्तव में सबसे सक्रिय रहता था। दारोगा इमारत एक महत्वपूर्ण ओहदेदार माना जाता था। यह राजा का अपना ही पी डब्ल्यू डी विभाग था जो नई इमारतों के निर्माण और पुरानी के रख-रखाव के लिए जिम्मेदार था। जयपुर के नगर-प्रासाद में तथा अन्यत्र भी लगभग ढाई सौ साल तक की इमारतें आज तक जिस टीप-टाप में सुरक्षित हैं, उसके पीछे इमारत वालों की चौकसी और कारगुजारी ही रही है।

नगर-प्रासाद के इस कारखाने में जयपुर की प्राय सभी पुरानी इमारतों का इतिहास सुरक्षित था जिससे उन उस्ताओं-मिस्त्रियों व कारीगरों के नाम भी जाने जा सकते थे जिन्होंने विभिन्न इमारतों को बनाया। पता नहीं, अब वह सारा रिकार्ड कहां है?

16 हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट, डा. मथुरालाल शर्मा पृष्ठ 167 जयपुर।



पतंगखाना और मिस्त्रीखाना

महाराजा रामसिंह के पतंगबाजी के शौक ने "पतंगखाना" को भी एक कारखाना बना दिया था। इस जमाने में बहुत बडे- बडे पतंग बनाये जाते जिन्हें "तुक्कल" कहते थे। आकाश में चढ जाने पर तुक्कल की तासीर यह होती कि उडाने वाला डोर को भले खूंटी में बांधकर निश्चिंत हो जाय। रामसिंह अपने महल में, जिसे वस "कमरा" कहा जाता था, एक कोठरी पतंगों से ही भरी रखता। पतंगबाजी का शौक माधोसिंह ने भी साधा था किंतु रामसिंह के सामने वह नगण्य ही था।

नगर-प्रासाद के संग्रहालय में अब भी पुराने पतंगों और डोर के कुछ नमूने सुरक्षित हैं जो पिछले दिनों संग्रहालय के नव-निर्मित प्रदर्शनी कक्ष में 'भारतीय कला में खेल-कूद' प्रदर्शनी में दिखाये गये थे। पतंग बहुत बडे होते थे अतः उन्हें उडाने के लिये डोर भी मोटी और मजबूत होती थी। लखनऊ के कुछ पतंग बनाने वाले और डोर सूतने वाले महाराजा रामसिंह के जमाने में बराबर यहां आते रहे थे। उनकी सूती हुई डोर की कई विशाल चर्खियां भरी हैं जिनसे आदमकद तुक्कल उडाये जाते थे। महाराजा के तुक्कल कट जाते या टूट जाते तो उन्हें वापस लाने के लिये घोडे दौडाये जाते और पतंग जहां भी पहुंचता वहीं से वापस आ जाता।

रामसिंह के समय में "मिस्त्रीखाना" भी कायम हुआ और बहुत बढ गया। अंग्रेजों के साथ बढते संपर्क और नये चलन से आधुनिक फर्नीचर की आवश्यकता न केवल महलों, वरन् दफ्तरों-कचेहरियों में भी होने लगी थी। इसके अतिरिक्त राजकीय वाहनों बग्घी, रथ, बहली, सग्गड आदि के रख-रखाव का लम्बा-चौडा काम भी था। यह सब करने के लिए मिस्त्रीखाना नाहरगढ के रास्ते में कायम हुआ। इसमें महाराजा की आज्ञा से विशेष ढंग की कुर्सियां, सोफा-सेट, टेबिलें और आलमारियां बनाई गईं, जिन्हें नगर-प्रासाद में आज भी 'रामसिंह-पटर्न' का फर्नीचर बताया जाता है।

मिस्त्रीखाने में अब जयपुर जलदाय विभाग का दफ्तर है, पर जयपुर के लोग उसे मिस्त्रीखाना ही कहते हैं।

गुणीजनखाना

गुणीजनखाना गायकों, वादकों और नर्तकों को राज्याश्रय एवं संरक्षण देने वाला कारखाना या विभाग था। संगीत और नृत्य से मनुष्य को स्वाभाविक लगाव होता है। ये आत्मा की खुराक हैं और यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि आमेर के राजा मुगल दरबार में घुल-मिलकर जैसे-जैसे बडे होते गये, इन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में अपने बडप्पन का परिचय दिया। जैसे उनके आश्रय में लेखक, कवि, चित्रकार और अन्यान्य कलाकार एवं शिल्पी अपने-अपने हुनर के जौहर दिखाते रहे, वैसे ही संगीतज्ञ और नर्तक भी फले-फूले और उन्होंने संगीत के संसार में जयपुर का नाम बहुत ऊंचा उठाया। विगत शताब्दी में जयपुर की खयाल गायकी ग्वालियर, इंदौर और किराना (आगरा) घरानों की समसामयिक गायकी से होड लगाती थी। जयपुर का कत्थक नृत्य भी बनारस और लखनऊ घरानों की कला से टक्कर लेता था और यहां के वीनकार बडे सिद्धहस्त माने जाते थे।

किंतु, उन्नीसवीं सदी की इस उत्कृष्टता के पीछे कम से कम विगत ढाई सदियों की साधना, अभ्यास और रियाज था और था आमेर—जयपुर के राजाओं का संगीत-प्रेम और संरक्षण। पोथीखाने में उपलब्ध अनेक ग्रंथों से इस बात की पुष्टि होती है। अकबरी दरबार में जब तानसेन अपने संगीत से चराचर को सम्मोहित करता था तो आमेर के राज-दरबार में भी वीणा, रबाब, जलतरंग और मृदंग वाद्यों से सुमधुर संगीत की सृष्टि होती थी। सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में रचित "मान चरित्र" में अमृतराय नामक कवि हमें बताता है—

कहूत बीन प्रवीन जत्र जति बाजहिय।
कहू मुरज बधान जान जति साजहिय।।131



कहू आवझ झकार झाझ झल्लुरि बजई।
जलतरंग उप्पग ताल करतल सजई।।
कहू सोर सरवीन सरस सर मडरिय।
कहू पिनाक रवाव वेणु विधि किन्नरिय।।132

राज-दरवार या राजा के महल में जो कुछ होता था, उसका अनुसरण सामत-सरदार भी करते थे। राजा मानसिह का छोटा भाइ माधोसिह नृत्य और नाटक मे गहरी रुचि लेता था। उसे वादशाह ने भानगट का परगना जागीर में दिया था, लेकिन सैनिक अभियानों मे उसे भी अपने अग्रज की तरह दूर-दूर के सूबो मे जाना और रहना पडता था। आगरा मे उसकी हवेली —माधव भवन— मे तानसेन और अन्य प्रमख गायक एव सगीतज्ञ आते ही रहते थे।[17] खानदेश के कर्णाटक ब्राह्मण पण्डरीक विट्ठल ने "राग मजरी" माधोसिह के प्रीत्यर्थ ही लिखी थी। खानदेश मुगल साम्राज्य में मिल जाने के वाद यह कवि अकवर के दरवार मे आ गया था।

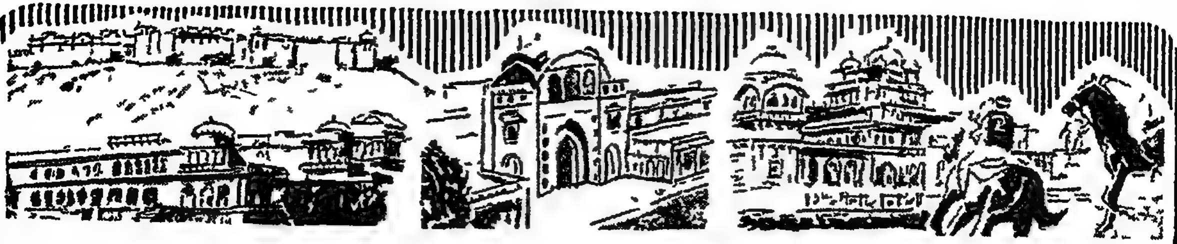
रामसिह प्रथम के समय मे नृत्य मुद्राओ पर "हस्तक रत्नावली" नामक ग्रथ वना। उसके समय मे या पहले से ही राजमहल मे पातुरे या नृत्यागनाये रखने का भी रिवाज था जो अत पुर की महिलाओ को सगीत ओर नृत्य सिखाती थी। आमेर के राजा न केवल सगीत ग्रथ जुटाते आर लिखवाते थे, वरन् राग-रागनियो के चित्र भी वनवाते थे।

आमेर की सम्पन्नता और महत्ता सवाइ जयसिह के समय वहुत वढी-चढी थी ओर अपने अन्य कारखानो के साथ जयसिह ने गुणीजनखाना भी स्थापित किया होगा। खेद की वात है कि उसके राजत्व-काल की अन्यान्य वातो की जहा विस्तृत आर प्रचुर जानकारी उपलव्ध है, वहा सगीत और नृत्य के विषय मे अधिक कुछ नही मिलता। यह निर्विवाद रूप मे कहा जा सकता ह कि प्रतापसिह का काल (1778-1803 ई) जैसे पोथीखाने का स्वर्णयुग था, वैसे ही गुणीजनखाने के लिए भी स्वर्णयुग ही था। गुणीजनखाने को इसी राजा ने व्यवस्थित और विकसित किया। उसके दरवार मे कवि- वाईसी, वीर-वाइसी, वैद्य-वाईसी और पंडित-वाईसी के साथ-साथ गाधर्व-वाइसी भी थी। "वाईसी" शव्द सेना के लिए प्रयोग मे आता था, लेकिन अपने कवियोचित स्वभाव से प्रतापसिह विभिन्न विधाओ या गुणो मे पारगत वाईस व्यक्तियो या वाईस से कम ज्यादा होने वाले दलो या समूहो को भी वाईसी ही कहता था। सुना तो यह भी जाता है उसके अपने वनाये हुए काव्य-ग्रथो की सख्या भी वाइस थी आर यह ग्रथ-वाइसी कहलाती थी। गाधर्व-वाईसी मे सव गुणीजनखाने के ही सदस्य थे जिनके प्रधान थे उस्ताद चाद खा या दलह खा। प्रतापसिह इन्हे अपना सगीत गुरु मानता था ओर उसने इन्हे "वुधप्रकाश" की उपाधि से सम्मानित भी किया था। वुधप्रकाश कितने वडे सगीताचार्य थे, इसका अनुमान उनके वनाये हुए सगीत ग्रथ "स्वर-सागर" से होता है जिसमे "सरगम" और "चीज" के वेहतरीन नमूने सकलित ह। दो वानगिया यहा प्रस्तुत ह

राग कल्याण (ताल सुर फाखता)

धम्म गम गैरे गमरे गरेसा। धानी रेसा। प प ध सारे।
सारे गम रेगरेसा। धानीरेसा।। धम्म ।। स्थायी।।
प प ध सारे, सारेगम, रेगरेसा।। धानीधमगरेगम, रेगनीरेसा।
सुच्छम सुरन सोध मध सरगम वनाय,
पाय रन ते भेद, कर कर 'वुध प्रकास'।
रिझवन कारन अति प्रवीन परताप सारक

17 व्रज की कलाओं का इतिहास पुरुषोत्तम राम मित्तल पृष्ठ 454 55



सकल वरण षट्-दरसन निवास।।

चीज, पद; राग हमीर (ताल सुरफाखता, धुपद)

पाच बदन सुखसदन पाच त्रैलोचन मडित।
अरधचन्द्र अरू गग जटन के जूट घुमडित।।
भूषन भस्म भुजग नाद नादेश्वर पडित।
कनक-भग मे मगन अग आनद उमडित।।
बाघबर अबर धरे अरधाग गौरि कुदन-बरन।
जय कीर्ति-उजागर गिरि-बसन्त बुधिप्रकाश वदिलचरन।।१।।[18]

सवाई प्रतापसिह की साहित्य, सगीत और कला, तीनो मे समान रुचि ही नही थी, गहरी पैठ भी थी। उसके समय मे गुणीजनखाने के सगीतविदो ने सात अध्यायो मे सगीत का एक विशद ग्रथ तैयार किया था "जिसकी जोड का हिदी भाषा मे इस विषय का दूसरा ग्रथ नही है।"[19] इस ग्रथ का नाम है "राधा गोविन्द सगीत सार" और यह मुद्रित रूप मे जयपुर की महाराजा पब्लिक लायब्रेरी मे उपलब्ध है। इस ग्रथ मे छापे की अशुद्धिया तो काफी रही है, कितु भारतीय शास्त्रीय सगीत का इसमे बडा श्रम और निष्ठा के साथ विवेचन किया गया है। इसी समय की एक अन्य रचना राधाकृष्ण कवि का "राग रत्नाकर" है जो अपेक्षाकृत छोटा रीति-ग्रथ है और प्रकाशित भी हो चुका है।

प्रतापसिह को राधागोविन्द का इष्ट था और वह प्रतिदिन दर्शन करने के बाद भगवान की स्तुति का पद सुनाता था। इन पदो की रचना उसने जीवनभर की और उसकी गाधर्व-बाईसी ने इन पदो को राग- रागनियो मे बाधा। विशेष पर्वो और उत्सवो पर गोविन्ददेव और प्रतापसिह के अपने बनवाये हुये ब्रजनिधि के मदिर मे रास और लीलाओ का आयोजन होता और सगीत के आयोजन तो होते ही रहते। किशनगढ के कवि नरेश सावतसिह या नागरीदास के समान प्रतापसिह न केवल भक्ति रस से सराबोर काव्य रचना करता था, वरन् अपनी रचनाओ को सुर-ताल मे बाध कर भावनाओ के सागर मे डूबता-तैरता रहता था। एक दिन भक्ति भाव मे विभोर होकर उसने स्वय भगवान के सामने गाया

लगनि लगी तब लाज कहा री।
गौर-स्याम सो जब दृग अटके।।
तब औरन सौ काज कहा री।
पीयो प्रेम-पियालो तिनको।।
तुच्छ अमल को साज कहा री।
"ब्रजनिधि" ब्रज-रस चाख्यो जाने
ता सुख आगे राज कहा री।

राज ने इस कवि-शासक को जिन्दगी भर सुख भी क्या दिया था ! निराशा की घडियो मे वह बार- बार भगवान को पुकारता और काव्य-रचना और सगीत की साधना मे सुख की अधिक प्रतीति करता।

प्रतापसिह ने साहित्य, सगीत और कला के उन्नयन के लिए जो कुछ किया, वह अराजकता, अशाति और षडयत्र-कुचक्रो के उस काल मे एक विरोधाभास ही था। 1803 मे उसकी मृत्यु के बाद तो जयपुर मे बडी अशाति फैली और महाराजा रामसिह के वयस्क होने पर ही पुन शाति, व्यवस्था और वह माहौल लौटा जिसमे सगीत और नृत्य जैसी ललितकलाओ का पोषण एव विकास हो सकता है। रामसिह के सरक्षण मे

18 ये नमूने 'ब्रजनिधि ग्रथावली' में दिये गये है। पृष्ठ 48-49
19 ब्रजनिधि ग्रथावली, पृष्ठ ४८



सचमुच इनका वडा विकास हुआ। रामसिह के गुणीजनखाने के लिए उस जमाने के सगीत-गुरु अलादिया खा का कथन है

"जयपुर महाराजा के पास उस जमाने मे वहुत वडा गुणीजनखाना था। हर माह दरवार मे गवैयो को एक-डेढ लाख रुपये वेतन मिलता था। हैंदरवख्श जी, दूल्ले खा जी के वेटे, महाराजा के पहले उस्ताद करीम वख्श जी (हैंदर वख्श जी के भाई), मोहम्मद अली खा (मनरग के पोते), वहराम खा जी, धग्गे खुदा वख्श जी आगरेवाले, गुलाव अव्वास (धग्गे खुदा वख्श जी के वेटे), ताऊस खा जी, कल्लन खा (धग्गे खुदा वख्श के छोटे वेटे), मजी खा, इमरत सेन जी (तानसेन जी की वेटी की औलाद), आलमसेन जी (अमीरसेन जी के भाई), अमीर खा, मम्मू खा जी, वजीर खा जी, छोटे खा जी, इलाही वख्श (हैंदरवख्श जी के भाई), लालसेन जी सेनिए, मुवारक अली खा साहव (वडे मोहम्मद खा रीवा वालो के वेटे), रजव अली खा (महाराजा रामसिह के दूसरे उस्ताद), खेरात अली खा अलवर वाले (रजव अली खा के भाइ) आदि कलाकारो का वहा मुकाम था।"[20]

गुणग्राहक महाराजा रामसिह ने रजव अली खा से वीणा- वादन सीखा था। अपने इस गुरु को उन्होने जागीर दी थी, रहने को हवेली इनायत की थी ओर पालकी का सम्मान भी वख्शा था। पानो के दरीवे के मोहल्ले मे रजव अली खा की हवेली पुराने लोग आज भी वताते हे। यह महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के मकान के पास ही थी।

डागर घराने के प्रमुख उस्ताद वहराम खा के अंतिम सरक्षक भी महाराजा रामसिह ही वने। वहराम खा पजाव मे महाराजा रणजीतसिह के दरवार मे ओर फिर अंतिम मुगल सम्राट वहादुरशाह जफर के पास रह आये थे। वे 1857 मे दिल्ली छोडने वालो मे थे।

जयपुर की प्रसिद्ध गलता गादी पर तव महन्त हरिवल्लभाचार्य विराजमान थे। वे वडे हरफन मौला और सगीत धुरन्धर थे। उन्होने "रागमाला" पर एक ग्रथ की रचना की, जिसकी एक सचित्र प्रति लदन मे इडिया आफिस के पुस्तकालय मे वताई जाती है। महाराजा रामसिह के शासन-काल मे ही "सगीत रत्नाकर" ओर 'सगीत राग कल्पद्रुम' जैसे ग्रथ वने थे। ये प्रामाणिक ग्रथ हीरानन्द व्यास ने लिखे थे।

प्रतापसिह के वाद रामसिह का राज्य-काल ही गुणीजनखाने की प्रगति मे कोस-मीनार की तरह है। कहते है उस समय 161 कलाकार या गुणीजन गुणीजनखाने के चिट्ठे पर थे— वेतन भोगी थे।[21] वाद्य यत्रो को वनाने और सुधारने के लिए वढई ओर कुम्हार भी थे। महाराजा गुणीजनखाने के कलाकारो को पूरा मान देते थे। जो कलाकार मर जाते, इनकी विधवाओ तक के लिए पेशन का प्रावधान था।[22]

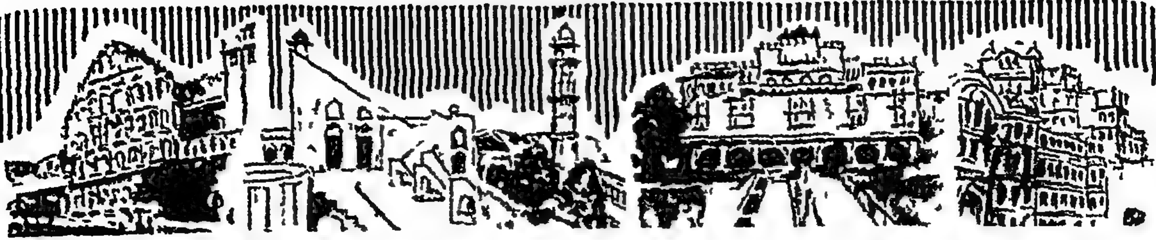
महाराजा के सगीत-प्रेम का एक उदाहरण हे। वे चन्द्रमहल के पार्श्व मे वने अपने कमरे मे करामत खा को गेस की रोशनी के नीचे वैठाकर घटो ध्रुपद और दूसरी गायकी का आनद लेते थे। करामत खा गुणीजनखाने के आखिरी दिग्गजो मे से था, जिसे खुदा ने उम्र भी एक सौ आठ साल की दी थी। अपने वुढापे मे वह महाराजा के कमरे मे अपनी जगह को याद कर लोगो से कहा करता था कि "वहा मेरे गाते-गाते ही आधा सेर, तीन पाव रवडी तो मेरे मालिक (महाराजा) मनुहार करके खिला देते थे।" कलाकार ओर उसके सरक्षक के वीच यह कैसी अनोपचारिकता और घनिष्ठता थी।

यह दिग्गज सगीतज्ञ लेखक की भी हल्की-हल्की याद मे है। तव वुढापे ने उसे पूरी तरह झुका दिया था (सौ साल से ज्यादा उम्र होगी तव) और वह प्रतिदिन एक तागे मे वैठकर महाराजा कालेज के अग्रेजी विभाग के

20 कल्चरल हरिटेज ऑफ जयपुर, जयपुर, 1979 पृष्ठ 99
21 वही, पृष्ठ 100
22 वही पृष्ठ 100



गौहर जान, महाराजा माधोसिंह के गुणीजन खाने की सर्वाधिक चर्चित गायिका



अध्यक्ष प्रोफेसर डी सी दत्ता को वीणा सिखाने मिर्जा इस्माइल रोड पर पुरोहितजी के बाग तक आता था। अपनी मद और कापती हुई आवाज मे एक दिन करामत खा ने दत्ता साहब को एक "चीज" सुनाई। जब दाद दी गई तो इस वयोवृद्ध सगीतज्ञ ने कहा "आवाज मे तो अब दम कहा मे लाऊ, लेकिन गले मे लोच बाकी है। हमने टके पाव मलाई जो खाई है!"

गुणीजनखाने मे सभी कलाकार विभिन्न वर्गो या श्रेणियो मे विभाजित थे। सबसे बडे उस्तादो को रोजाना की हाजरी माफ थी। उन्हे तत्कालीन परिपाटी के अनुसार नगर– प्रासाद के "हरे बगले" मे जाकर नही गाना पडता था, वैसे इस बगले मे सूर्योदय से सूर्यास्त तक सगीत होता ही रहता था। हा, जब विशेष अवसर होते, महाराजा याद करते या उनके कोई विशिष्ट मेहमान आते तो उस्तादो को भी याद किया जाता और वे जाकर अपनी स्वर-लहरी से उनका मनोरजन करते।

महाराजा माधोसिह (1880-1922 ई) ने दिवगत महाराजा की अन्य बातो की तरह गुणीजनखाने की मर्यादा भी बनाये रखी। रामसिह के समय के कुछ दिग्गज अभी मौजूद थे। करामत खा और रियाजुद्दीन खा डागर, फूलजी और मन्नूजी भट्ट तथा किशनजी उस्ताद ऐसे ही दिग्गजो मे से थे जो इस "कच्चे जादू" के नये-नये प्रयोग करते रहते थे। इस महाराजा के समय मे ही विद्यावाचस्पति पडित मधुसूदन ओझा ने एक सचित्र "खरडा" तैयार किया था जिसका नाम है "राग- रागिनी सग्रह '।

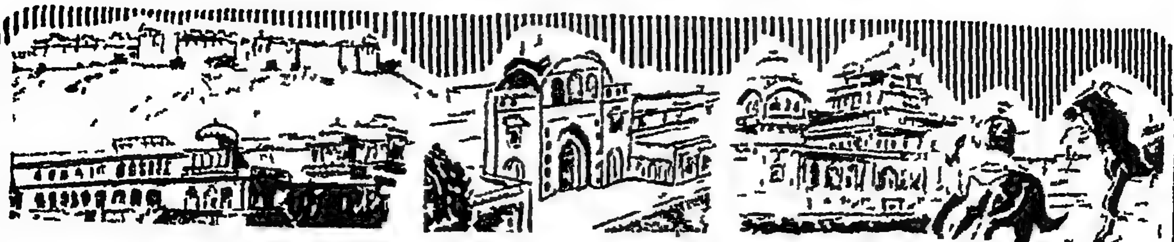
सगीत के साथ-साथ जयपुर के कत्थको ने कत्थक नृत्य की उस शैली का विकास किया जो आज जयपुर शैली अथवा 'जयपुर घराना' कहलाती है। लखनऊ व बनारस घरानो के साथ इस घराने ने इस शास्त्रीय नृत्य को पावो की गति के विशेष आयाम दिये। हरिहर प्रसाद, हनुमान प्रसाद और नारायण प्रसाद जयपुर के विशिष्ट और प्रतिनिधि कत्थक नृत्यकार थे। महाराजा रामसिह के अंतिम दिनो और महाराजा माधोसिह के शासन के आरभ मे गुणीजनखाने मे आठ परिवारो की नोकरी थी।

सवाई मानसिह सग्रहालय की रजिस्ट्रार चन्द्रमणि ने गुणीजनखाने के सबध मे विशेष अध्ययन किया है। इसके अनुसार कत्थक एक जाति थी जो शेखावाटी मे रहती थी।[23] शेखावत सरदारो के मुगल दरबार की चाकरी मे जाने पर उनके नर्तक भी उनके साथ गये और मुगल दरबार मे काम करने लगे। मुगल साम्राज्य के क्षय के साथ गायक और नर्तक भी दिल्ली-आगरा छोडकर अन्य प्रातीय राजधानियो मे चले गये। जयपुर ऐसे कलाकारो के लिए बहुत अनुकूल दरबार था। कहते है, भानु जी नामक कत्थक का वशज दूल्हा जी या गिरधारी जयपुर आया था। हरिहरप्रसाद और हनुमान प्रसाद गिरधारी के ही पुत्र थे। इन भाइयो को यहा "देव-परी का जोडा" कहते थे। हरिहरप्रसाद ताण्डव को अधिक महत्व देता था और हनुमानप्रसाद लास्य को। हनुमान प्रसाद कृष्ण- भक्त या गोविन्द- भक्त था। गोविन्दजी के मदिर मे फर्श पर गुलाल बिछाकर वह जब नृत्य करता था तो उसके गतिमान चरण हाथी का आकार बना देते थे।

स्वर्गीय नारायण प्रसाद हनुमान प्रसाद का ही पुत्र था। छुटपन से ही नृत्य का रियाज कर वह ऐसा सिद्धहस्त नृत्यकार बन गया था कि अनेक राजाओ से वाह- वाही पाई थी। सगीत-नृत्य सम्मेलनो मे भी उसकी खूब धूम रहती थी। अपने जीवन की सध्या मेवहदिल्ली चला गया था। जयपुर मे आज भी उसके अनेक शिष्य है, जिनमे बाबूलाल पाटनी भी है। डा जयचद शर्मा के अनुसार कत्थक नृत्य की 'जयपुर घराना' शैली की दो शाखाए है और दोनो के ही प्रवर्तक चूरू जिले के रहने वाले थे।[24]

गुणीजनखाने की गायिकाओ मे गोहर जान तो अभी बहुत से जयपुर वालो को याद है। इस गायिका को महाराजा मानसिह द्वितीय ने भी अच्छा मान दिया और वह जब तक जीती रही, पेशन पाती रही। महाराजा

23 कल्चरल हेरिटेज ऑफ जयपुर 1979 पृष्ठ 101
24 मरु-श्री (त्रैमासिक) जनवरी जुलाई 1982 चरू -जनवरी व कत्थक।



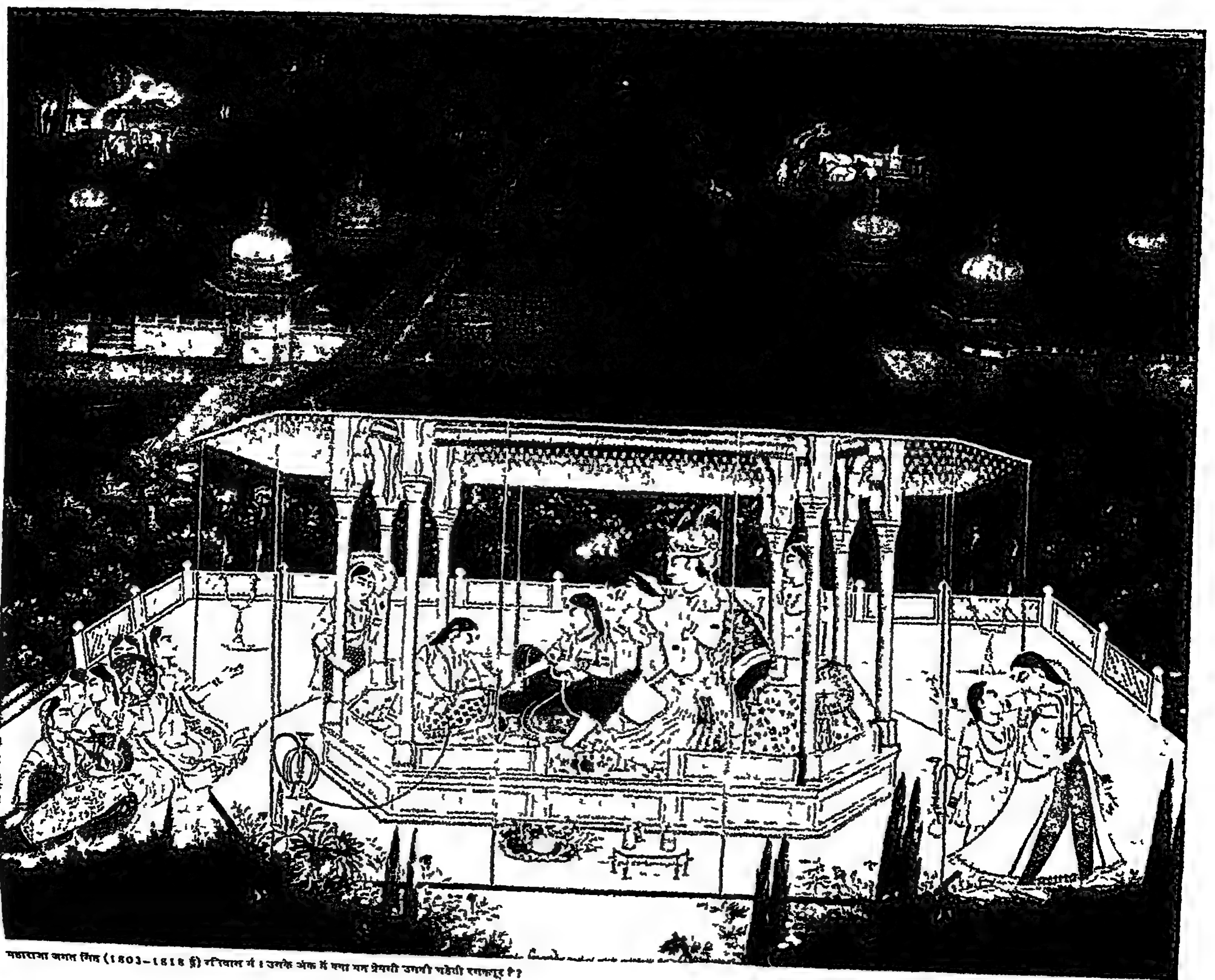
माधोसिह के जमाने की इस गायिका के साथ कुल 38 गायिकाए और नर्तकिया गुणीजनखाने की नौकरी मे थी। दस कत्थक थे और उनकी सगत के लिए सारगीवादको, पखावजियो, तवलचियो और अन्य वादको का पूरा अमला था।

गुणीजनखाना जव रियासत के विलय के साथ वद हो गया तो जयपुर के गायक, नर्तक ओर वादक भी विखर गये। सेनिया घराना जिसने पहले वीन (वीणा) और फिर मितार-वादन मे वडा जवर्दम्त योग दिया था, पाकिस्तान चला गया। डागर वधु कलकत्ता और दिल्ली मे ध्रुपद-धमार के लिए अपनी मोलिक डागर वाणी का प्रशिक्षण देते है। सगीत-नाटक अकादमी मे भी कुछ लोग सेवारत है और दिल्ली का कत्थक केंद्र जयपुर घराने की विशिष्टताओ के साथ कत्थक का प्रशिक्षण देता ही है। अव तो जयपुर मे भी कत्थक केंद्र खुल गया है और देखना यही है कि ऐसी सस्थाओ से मगीत-नृत्य की वह परम्परा कितनी सजीव रह पाती है जो कभी गुणीजनखाने ने इस कलापूर्ण नगरी मे स्थापित और विकसित की थी।

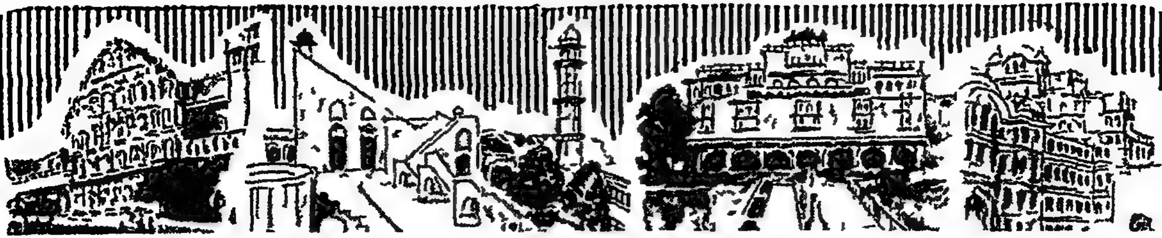
कारखाना-पुण्य

कारखाना-पुण्य या पुण्य का कारखाना जयपुर मे आज के देवस्थान विभाग का पुरखा था। राजकीय मदिरो की प्रवन्ध व्यवस्था, भोग-राग और राजा-रानियो की ओर से पर्व-त्योहारो पर किए जाने वाले दान-पुण्य का लेखा यही कारखाना रखता था। माधोसिंह का दान-पुण्य विख्यात है। उसके समय मे कभी वादल महल तो कभी सीतारामद्वारा, कभी गोविन्ददेवजी तो कभी अन्य किसी मन्दिर में व्राह्मणो की वरणी चलती ही रहती, जप-तप-पूजा-पाठ का सिलसिला वरावर वना रहता। आये दिन व्रह्म-भोज भी होते। जयपुर के व्राह्मणो ने इस राजा के राज मे छक कर लड्डू खाये थे और यह सव आयोजन पुण्य के कारखाने द्वारा ही होते थे। पुण्य के कारखाने का हाकिम इस नाते वडा प्रसिद्ध और लोकप्रिय अधिकारी होता था। जयपुर के प्रसिद्ध गौरीलाल कवीश्वर के वश मे कवि गोविन्द लाल ने अपने समय मे किशनलाल शाह की इस पद पर नियुक्ति होने का इस प्रकार स्वागत किया था

दीनन के पालने को
देवालय सम्भालने को,
इनके दुख टालने को
चित्त हरखायो है।
विप्र सुख पावने को,
देवता रिझावने को,
पुण्य अधिकावन को
उर से लगायो है।।
"गोविन्द" सुजान पुण्य
द्वारा बीच शत्रु को सु,
बेगि निरमूलने को
हुकम यो सुनायो है।।
साह किशनलाल जू को
भूपति निज माधवेस,
याते कारखाना पुण्य,
काम सम्भलायो है।।



महाराजा जगत सिंह (1803–1818 ई) रनिवास में। उनके अंक में क्या मन प्रेयसी उनकी चहेती रसकपूर है?



बागायत

छत्तीस कारखानो मे "बागायत" भी वडा पुराना कारखाना रहा है। सवाई जयसिंह ने 1727 ई मे जयपुर बसाया था और उससे भी पहले जय निवास बाग लगवाया था। दूब के लान, सजावटी पेड-पौधे और फूलो से भरी क्यारिया बागायत या गार्डनिंग है और यह सब खर्चे या "लागायत" का काम है। अपने जमाने मे राजा लोग लागायत को बर्दाश्त करते ही थे। जयपुर बसने के साथ ही पुराने घाट मे कई बाग-बगीचे तैयार हो गए और कुछ ही समय मे "माजी का बाग" भी बना। महाराजा रामसिंह ने बागायत के महकमे से अपना ही काम नही लिया, जयपुर की जनता के लिए लम्बा-चौडा रामनिवास बाग भी बनवाया। राजस्थान के रजवाडो मे तब आम नागरिको के मनोरजन और आमोद-प्रमोद के लिए कौन ऐसी सुविधाये जुटाने की सोचता था?

रियासती काल के अंतिम वर्षो मे नीदड के रावजी के रास्ते के निवासी खान साहब अहमद अली खा बागायत के हाकिम थे। बडे सिद्धहस्त बागवान थे, जिन्होने महाराजा मानसिंह के समय मे जयनिवास, रामबाग और रेजीडेसी (माजी का बाग) के पुराने और विशाल बागो को सवार कर आधुनिक रूप दिया। ये चार रुपये से चार सौ रुपये माहवार के वेतन तक पहुचे थे। अहमद अली खा के लडके मोहम्मद अब्दुल गफ्फार अब भी इन बागो को सभाल रहे है। महाराजा मानसिंह के खर्चे पर वह दो बार इग्लैण्ड हो आये थे और भारतीय के साथ पाश्चात्य उद्यान-कला का वे जैसा सफल सामजस्य बैठाते है वह जयपुर के महलायत की बागायत मे प्रकट है।

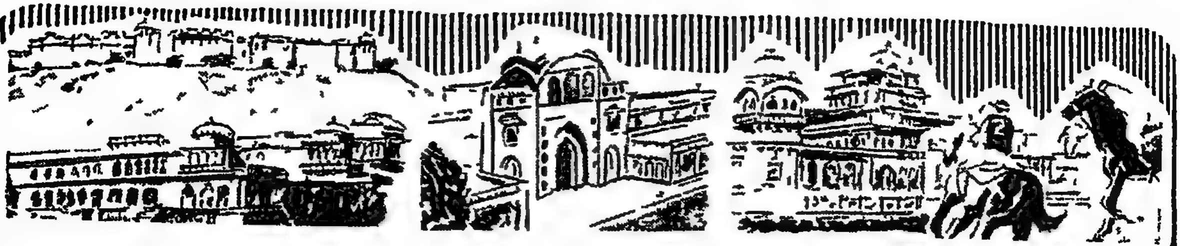
तारकशी और खबर

कारखानो मे एक कारखाना तारकशी का था जिसमे गोटा-किनारी का काम होता था। गोटा, किरण, लप्पी, गोखरू जैसी वस्तुओ की माग जनानी ड्योढी मे बराबर रहती थी। फर्राशखाना, रथखाना, फीलखाना, शुतरखाना और आतिश से भी सजावटी झूलो आदि के लिये ऐसी चीजो की माग आती थी। जयपुर की स्थापना के बाद सवाई जयसिंह ने गुजरात व खभात से तारकशी के कारीगरो को बुलाकर इस नगर मे बसाया था। 1876 ई मे प्रिंस ऑफ वेल्स के जयपुर आने पर महाराजा रामसिंह ने पूरे सौ हाथियो का जुलूस निकाला था जो सभी जर्क-वर्क सजाये गये थे। तारकशी का कारखाना तब महीनो दिन-रात काम कर रहा था। पूरे लवाजमे की सजावट के साथ-साथ सभी शागिर्दपेशो, महावतो, सईसो, शुतरसवारो और सिपाहियो को तब नयी पोशाके या वर्दिया भी दी गई थी। तारकशी से सम्बद्ध एक कारखाना कदलाकशी का भी चलता था।

"खबर" का कारखाना या महकमा राजा का इटेलीजैस डिपार्टमेट था। रामसिंह के समय मे इसे बडा सक्षम बनाया गया था और तार-टेलीफोन की सुविधाये न होने के बावजूद खबरनवीसो के सगठन के जरिये रियासत के कोने-कोने के समाचारो के पर्चे राजा को मिलते रहते थे। अखबार तो थे नही, लेकिन "खबर के पर्चे" बडी फुर्ती और मुस्तैदी के साथ आते थे और सभी खुराफाती या बदमाश लोग इस बात से डरते थे कि कही "खबर का पर्चा" न पहुच जाय। खबरनवीस की हैसियत महाराजा माधोसिंह के समय तक खूब बनी रही। यह राजा अपने तक पहुचने वाले खबर के पर्चो पर तुरत कार्यवाही करता था।

उसके बाद तो जमाना तेजी से बदला और कारखाना खबर भी अन्य पुरानी बातो की तरह एक भूली-बिसरी बात हो गया।

माधोसिंह के जमाने मे 'खबर के पर्चे' कितनी फुर्ती और मुस्तैदी से भेजे जाते थे और उन पर कार्रवाई भी कितनी तेजी से होती थी, इसके उदाहरण पुरोहित गोपीनाथ (तत्कालीन गृहमत्री या कौंसिल के होम मेम्बर) ने दिये है।



जयपुर तव छोटा और परकोटे के भीतर सिमटा हुआ था। ऑटो वाहन थे नही, अत यातायात की कोई भी दुर्घटना हो जाना तव एक खवर होती थी। 1914 ई की डायरी मे अनेक खवर के पर्चो का उल्लेख है, जैसे 9 अप्रेल को "पर्चा खवर इत्तिलाई आया बाबत चोट लग जाने एक शख्स के ट्रासपोट की गाडी से बाजार मे।" इसी तरह 10 अप्रेल का पर्चा था "बावत ले जाने एक औरत को दरवाजे के भीतर किसी मुशरिफ (कम्टम के दारोगा) का जिसने अपने वास्ते दरवाजा खुलवाकर भीतर आने की चिट्ठी भी हासिल की थी।" जयपुर मे तव रात के 11 बजे शहर के सभी दरवाजे बद कर दिये जाते थे। न कोइ भीतर से वाहर जा सकता था और न वाहर से भीतर आ सकता था। हा, किसी को खास जरूरत होती तो चिट्ठी हासिल कर ऐसा करता था। 1923 ई मे जाकर यह आदेश हुआ था कि चादपोल दरवाजे को रात भर खुला रखा जाये। इसके कुछ समय वाद सागानेरी दरवाजे को भी खुला रखा जाने लगा था।

11 अप्रेल, 1914 ई को भी पुरोहित गोपीनाथ को एक दिलचस्प 'पर्चा खवर' मिला जिसमे सूचना थी कि राजमहल (दूणी के पास, जो अब टोक जिले मे है) मे जहा जयपुर स्थित अग्रेज रेजीडेट के लिए खेमा गाडा जा रहा था, मधुमक्खियो का एक छत्ता टूट गया और कई लोगो को मक्खियो ने डक मार दिये। राजमहल एक रमणीय स्थल है, जहा अग्रेजो के वहुत कयाम होते थे। चूकि ये पर्चा रेजीडेट से ताल्लुक रखता था इमे महाराजा को 'मालूम' कराने हरिद्वार भेज दिया गया। महाराजा का कैंप तव वही था।

दूसरे दिन इस पर्चे का 'फालोअप' एक अन्य पर्चा आया। इत्तला थी कि रेजीडेट जो राजमहल जाने के लिए वथली (आज की वनस्थली) गाव तक जा पहुचा था, मधुमक्खियो के डर से वही से जयपुर लौट आया। महाराजा के 'मालूम' के लिये यह पर्चा भी हरिद्वार भेज दिया गया।

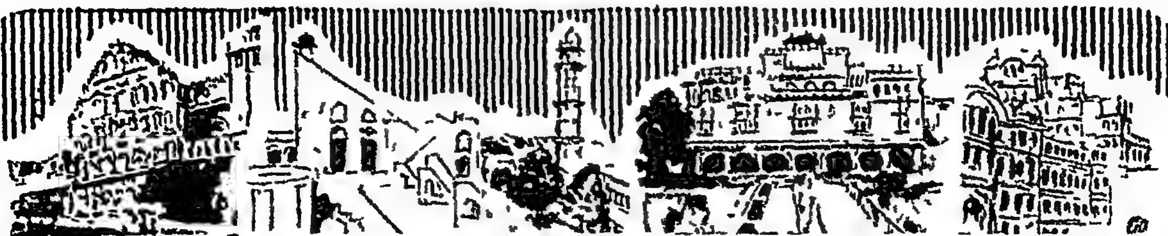
एक दिन गौरीशकर नामक खवरनवीस से यह पर्चा मिला कि चौमू के ठाकुर देवीसिह की मोटर से एक भिखारिन की टक्कर हो गई और उसे चोट आइ।

एक और दिन पर्चा आया कि गलता मे दो ब्राह्मणिया डूब कर मर गयी है। आवश्यक कार्रवाई के लिए यह पर्चा फौजदार को भेजा गया। फौजदार को एक अन्य पर्चा भी भेजा गया जिसमे शिकायत थी कि शिवपोल के पास जागेश्वरजी महादेव पर किन्ही लोगो ने पत्थर फेके है।

इसी प्रकार एक खबर के पर्चे मे मालियो की खुराफात से शहर मे शाक-सब्जी महगे होने की वात थी।यह पर्चा आवश्यक कार्रवाई के लिये रेवन्यू डिपार्टमेट को भेज दिया गया। घाट दरवाजे के बाहर एक लाश पडी रहने का पर्चा महाराजा को 'मालूम' हो जाने के बाद ड्योढी से आया और तुरत कोतवाली भेज दिया गया। चौकडी सरहद (नगर-प्रासाद का क्षेत्र) मे कई जगह जुआ होने के पर्चे भी उन दिनो मिलते ही रहते थे।

महकमा खबर के खवरनवीस अपने पर्चो के जरिये महाराजा को रियासत भर की गतिविधियो से अवगत रखते थे और सचार तथा परिवहन के साधन आज जैसे न होने पर भी इस राजा को अपने हर कैम्प मे जयपुर की सारी खवरे समय पर मिलती रहती थी। एक ओर विदेशी प्रभुसत्ता के प्रतिनिधि अधिकारियो को तुष्ट रखना और दूसरी ओर अपने राज्य की प्रजा मे किसी प्रकारकीअशाति और वेचैनी न फैलने देना उस काल की शासन-नीति के निर्देशक सिद्धातो की तरह थे। जिन पर मुस्तैदी के साथ अमल किया जाता था।

1916 ई की जनवरी की वात है। पहला विश्वयुद्ध चलते दो वर्ष होने जा रहे थे कि 3 तारीख को दोपहर 12 बजे खवर का पर्चा लगा कि जलेव चौक मे अनेक कचेहरियो के दरवाजो, कौसिल भवन, नवाव साहव की हवेली और त्रिपोलिया पर ऐसे इश्तिहार चिपकाये गये है जिनमे मुसलमानो को ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध हथियार उठाने और तुर्को की हिमायत करने के लिए भडकाया गया है। महाराजा माधोसिह सदल-वल पिछली शाम को ही अपनी स्पेशल ट्रेन मे हरिद्वार जाने के लिए भरतपुर रवाना हो चुका था और उसके जाते



ही इस इश्तिहारबाजी ने जयपुर के शासन को एकदम चौकन्ना कर दिया। 3 तारीख का जब खवास बालाबख्श ने महाराजा के सुरक्षित भरतपुर पहुच जाने का तार दिया तो यहा इन इश्तिहारो की ही चचा गर्म थी। उधर महाराजा को भरतपुर मे खबर का पर्चा मिल गया था और 5 तारीख को उन्होने खवास बालाबख्श को भरतपुर मे जयपुर रवाना कर दिया था।

खवास बालाबख्श 6 जनवरी को सवेरे ही यहा पहुचा ओर दिन भर सारी बात भलीभाति समझ बूझ कर रात को भरतपुर लौट गया। रायबहादुर पुरोहित गोपीनाथ को महाराजा की अनुपस्थिति मे महल (चौकीखाना) मे ही रहना पडता था क्योंकि महाराजा जब भी कही बाहर जाते, ड्योढी से चोबदार आकर यह सदेश दे जाता कि 'श्रीजी की सवारी बाहर पधारेगी सो आप ड्योढी मे रहे।'

प्रधानमत्री नवाब फैयाज अलीखा ने खवास के जाने के बाद पुरोहित गोपीनाथ को बताया कि खवास को भरतपुर से उन्हे महज यह कहने के लिए भेजा गया था कि जयपुर मे जिस तरह के इश्तिहार चिपकाये गये है, वे बडे महत्व के है। ये एक सगीन मामला है जिसमे सरकार और राज का हित भी निहित है, अत जो भी कार्रवाई की जाय, वह पूर्णत रेजीडेट के परामर्श और सहमति मे की जाय।

प्रधानमत्री ने परोहित गोपीनाथ को यह भी बताया कि सवेरे जब वे रेजीडेट से मिले थे तो उसने भी इस मामले को बडी गभीरता से देखा और कहा कि इन इश्तिहारो के पीछे जर्मन धन होने की सभावना से भी इकार नही किया जा सकता। जयपुर के राजनीतिक अपराधो और राजद्रोह की प्रवृतियो की जाच के लिये नियुक्त विशेषाधिकारियो के काम की भी आलोचना की गइ- ये विशेषाधिकारी थे पुरोहित हरिनारायण, बी ए और मोहम्मद मीर। अन्त मे प्रधानमत्री ने पुरोहित गोपीनाथ को बताया कि वे रेजीडेट से यह कहने जा रहे है कि वह गवर्नमेट सी आइ डी के किसी भी अफसर को दोषियो का पता लगाने के लिये नियुक्त कर सकते है। प्रधानमत्री ने उनकी ओर मे पुरोहितजी को ऐसा एक मसविदा बना देने का अनुरोध किया जो तुरन्त प्रस्तत कर दिया गया। किन्तु, अगले दिन सवेरे ही महाराजा के निजी सचिव रायबहादुर अविनाश चन्द्र सेन ओर खवास बालाबख्श भरतपुर से लोट आए ओर कहा कि महाराजा यह चाहते है कि इस मामले की जाच सरदार बिशनसिह से कराई जाय, जिनकी सेवाये जयपुर को देने के लिये वे (महाराजा) पहले ही सरकार को लिख चुके है। लिहाजा रेजीडेट को दिये जाने वाले पत्र के मसविदे मे महाराजा की इच्छानुसार परिवर्तन किया गया और यह सशोधित पत्र लेकर सेन और नवाब फैयाज अलीखा रेजीडेट से मिलने निवाई रवाना हुए। रेजीडेट का केम्प तब वही था। इस बीच सदेह मे दो आदमी गिरफ्तार किये गये, एक था रामचन्द्र दरोगा और दूसरा था अपेलेट कोर्ट के नायब सरिश्तेदार का लडका मकबूल हसन।

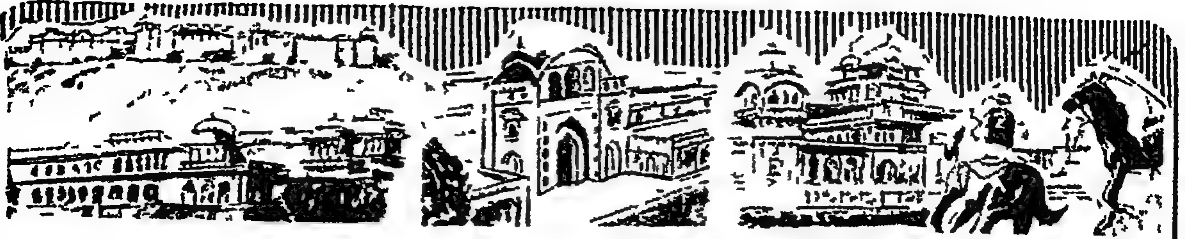
नवाब फैयाज अलीखा ओर अविनाश चन्द्र सेन रेजीडेट को महाराजा की ओर से सशोधित पत्र दे आये और रेजीडेट मे उनकी जो बात हुई उससे पूर्णत सतुष्ट होकर लौट आये।

जयपुर से दूर बैठकर महाराजा माधोसिह इस प्रकार जयपुर की हर घटना पर पूरी निगाह रखता था ओर महकमा खबर का इस दृष्टि से बडा महत्त्व था।

इत्र की ओरी

राजपूतो के दरबार का समापन हमेशा इत्र-पान से होता था और इसी कारण नगर-प्रासाद मे एक "इत्र की ओरी" भी थी। इसमे कभी बालू मिट्टी से भी इत्र बनाया जाता था।

यह कोई बहुत पुरानी बात नही, लोगो की याद की बात है। महाराजा माधोसिह (1880–1922ई) वर्षा-विहार के लिए प्राय खासा-कोठी (अब राजस्थान स्टेट होटल) या दुर्गापुरा मे खवासजी के बाग मे रहता था। उमस और घुटन के बाद वर्षा की रिमझिम रत के टीलो पर सबसे अधिक सुहावनी लगती है। तपी हुई बालू

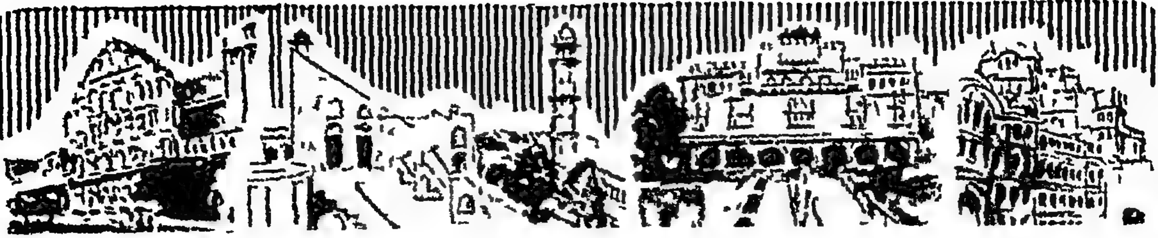


भीगने से जो सोंधी वास उठती हैं उसकी एक अपनी महक, अपनी गन्ध होती है। माधोसिंह को यह वहुत भाती थी, इसलिए "इत्र की ओरी" से कहा गया कि इस गन्ध को भी गिरफ्तार किया जाय और जैसे गुलाव, चमेली, हिना आदि की रूह मिलती है, मिट्टी का इत्र भी मिले। "इत्र की ओरी" मे काम करने वाले गन्धियो ने कोशिश की और इस भीनी महक का इत्र वनाने मे सफल रहे।

माधोसिंह के समय मे खासा कोठी की इमारत तो थी लेकिन उसके चारो ओर का डोला या "कम्पाउण्ड वाल" वरसात होने पर मिट्टी से ही वाधी जाती थी। यह दीवार खासी ऊची होती थी और सपाट लकडी के तख्तो से पीट-पीट कर वडी सुघड और सुडौल वनाई जाती थी। खासा कोठी के "डोल वधाई" का रिवाज महाराजा मानसिंह के समय मे भी वहुत वरसों तक चलता रहा था।



रिसाला कला के डील। पहले इस रिसाल में सबको दाढ़ी रखना अनिवार्य था



9. बेड़ा खवास-चेलान

जयपुर की मर्दानी ड्योढ़ी के साथ 'बेडा खवास-चेलान' भी जुड़ा था। प. गोपालनारायण बहुरा की मान्यता है कि खवास और चेले बहुत पहले से ही रहते आये थे, किन्तु इनका बाकायदा सगठन (बेडा) सवाइ माधोसिह प्रथम के समय मे हुआ। माधोसिह अपने सौतेले भाई के आत्मघात के बाद उदयपुर से आकर जयपुर की राजगद्दी पर बैठा था। माधोसिह के साथ अनेक पल्लीवाल ब्राह्मण और दूसरे लोग भी आये थे। माधोसिह ने इनमे से अपने विश्वस्त अनुचरो का एक पार्श्ववर्ती सघ बनाकर अपने पास रखा था। बाद के राजाओ ने इसी परम्परा को निभाया और वे अपने परम विश्वासपात्र बडे-बडे सेवको को इस बेडे मे रखने लगे।[1]

खवास-चेलो की सस्था के मूल की प्राचीनता आठवी सदी की रचना 'समराइच्च कहा' मे भी प्रमाणित होती है। इसमे "भाण्डागारिक" और "चेल्लि भाण्डागारिक" नाम आये ह, जिनसे प्रतीत होता है कि ये लोग नरेशो के विविध भण्डारो की चौकसी पर रहते थे और बडे विश्वासपात्र होते थे। तुर्की सुल्तानो और मुगल बादशाहो के यहा भी 'चेले' होते थे जिन्हे निजी हुक्म से खास-खास कामो पर भेजा जाता था। मुगलो के उत्तरकालीन इतिहास मे नूरखा नामक चेले का उल्लेख हुआ है जिसे जोधपुर के महाराजा अजीतसिह के विरुद्ध अजमेर भेजा गया था।

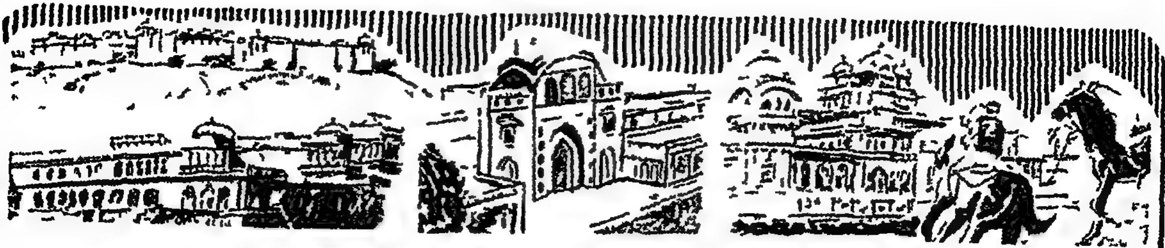
'खवास' वस्तुत 'खास' का बहुवचन है और अरबी मे 'चेला' बडे को कहा जाता है। राजा या बादशाह के अग-रक्षक खवास ही होते थे, जबकि जर, जेवर, नकदी, मुहर आदि चेलो के पास रहते थे। राजा के अत्यधिक निकट रहने वाले खास अनुचर विशिष्ट कार्यों के लिये प्रयुक्त होते थे। यही लोग महत्त्वपूर्ण सदेशो को निर्दिष्ट स्थान एव व्यक्ति तक पहुचाते थे और सधि-विग्रह जैसे राजनीतिक-कूटनीतिक कार्यों को भी सम्पन्न कराते थे। खवासो मे अपनी कार्यकुशलता, विश्वासपात्रता और योग्यता के बल पर लोग अमात्य और मन्त्री के पदो तक पहुच जाते थे। जयपुर मे इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध ह।

नागल जैसा-बोरा के निवासी जैसा या जयसाह बोहरा का बेटा खुशालीराम बोहरा माधोसिह प्रथम का प्रधान जलधारी या जल-सेवा करने वाला खवास ही था। महाराजा ने इस ब्राह्मण-पुत्र की प्रतिभा को पहिचाना और उसे राज्य-प्रबन्ध के कामो मे लगाया। सवाई पृथ्वीसिह के समय वह प्रधान मत्री के पद तक पहुचा और उसे 'राजा' का खिताब दिया गया।[2]

---

1 इस सूचना के लिए लेखक प. गोपालनारायण बहुरा का आभारी है।

2 मुगल साम्राज्य का पतन भाग 3, यदुनाथ सरकार, पृष्ठ 327



सवाई जगतसिह के समय मे रोडाराम खवास भी प्रधानमन्त्री के पद तक पहुचा था और जाति से दर्जी होने के कारण उसे लोग तब 'सुई-शमशेर गज बहादुर खवास रोडाराम' कहते थे। जयपुर के निकट वर्तमान दुर्गापुरा गाव पहले रोडाराम की जागीर मे होने के कारण रोडपुरा ही कहलाता था। महाराजा माधोसिह का विश्वस्त और मर्जीदान खवास बालाबख्श रोडाराम का ही वशज था और मन्त्री या मुसाहिब न होते हुए भी वह उस काल मे महाराजा से अपनी निकटता के कारण इतना शहजोर हो गया था कि हर महकमे और हर इजलास मे 'हुक्म श्रीजी, जबानी खवास बालाबख्श, मारफत लाला हरिनारायण, बजरिये ढलैत ' चलता था।

महाराजा रामसिह के समय मे रियासत के हर महकमे का सुधार किया गया था। जब यह देखा गया कि बहुत-से लोग पडे-पडे मुफ्त मे खानगी (निर्वाह) की पैतृक जागीरो का उपयोग करते है और कुछ काम नही करते तो उनसे नाममात्र की ही सही, नौकरी लेना शुरू किया गया। रोजीनदारो (दैनिक वेतन भोगियों) की विविध महकमो मे व अन्य जागीर उपभोक्ताओ की हाजरी खवास-चेलो के साथ ही होने लगी और वे महाराजा के मौखिक आदेशो का पालन करने लगे।

महाराजा माधोसिह (द्वि) के समय मे बेडा खवास-चेलान की महत्ता खूब बढ गयी थी। खवास बालाबख्श तो नाक का बाल बन ही गया था और राज-काज के हालात पर नजर रखने के लिए इस महाराजा ने हर अहमियत के महकमे और अदालतो तक मे एक-एक चेला तैनात कर दिया था। यह चेला इजलास मे प्रेक्षक की तरह बैठा रह कर हर कार्रवाई और हर फैसले पर नजर रखता और जैसा भी जायजा लेता, उसकी रिपोर्ट महाराजा को पहुचाता। इससे हाकिम और अहलकार सभी सशकित रहते थे, क्योकि दफ्तरो-कचेहरियो मे चलने वाली रिश्वतखोरी और दूसरी अनियमितताओ के समाचार तत्काल महाराजा के पास पहुच जाते थे।

महाराजा रामसिह का विश्वास किशनलाल चेले पर बहुत था। यह अग्रवाल वैश्य महाराजा की खासा कोटडी का प्रभारी था। किशनलाल का दामाद गौरीशकर आगरा का निवासी और सुशिक्षित था। इसे भी बेडा चेलान मे रखा गया और वह महाराजा रामसिह के 'कमरे' का प्रभारी बना। माधोसिह के समय मे किशनलाल का पुत्र रूपनारायण भी बडी हैसियत का आदमी था जो महाराजा के साथ 1902 मे इग्लैण्ड भी गया था। चेलो की तत्कालीन हैसियत का अनुमान उन हवेलियो को देखकर किया जा सकता है जो आज भी नगर-प्रासाद के चेलो के मोहल्ले मे खडी है।

कपडद्वारा मे उपलब्ध कागजात से पता चलता है कि खवासो को अपेक्षाकृत बडी जागीर मिलती थी, जबकि चेलो को नकद वेतन अधिक दिया जाता था। इन लोगो को दी गई जागीरो के पट्टो से जाहिर है कि राजा के इन व्यक्तिगत अनुचरो को उनके कपडा, पेटिया, लोई और चाकर के खर्च के आधार पर जागीर मिलती थी। इसका मतलब यह है कि पोशाक (कपडा), भोजन (पेटिया), जाडो मे ओढने की लोई या कम्बल और अपने निजी नौकर (चाकर) का खर्च चलाने लायक जागीर मिलती थी। किसी-किसी को 'पातल' या प्रतिदिन के भोजन का अनुदान भी दिया जाता था और कुछ खवास-चेलो को घोडी (सवारी) रखने को भी जागीर के रूप मे ही अनुदान मिलता था। आठ से दस हजार रुपये सालाना की जागीरे कइयो को थी।

महाराजा माधोसिह के जमाने मे जिन तरुण लोगो को खवास-चेलान के प्रशिक्षण के लिए रखा जाता था, उन्हे 'छोरा' (छोकरा) कहा जाता था। ये छोरे ही आगे चलकर खवास और चेले भी बनते थे। प्रसिद्ध है कि प्रति सायकाल ये 'छोरे' महाराजा को हाजरी देते थे तो शहर मे अपने-अपने गली-मोहल्लो के समाचार उन्हे बताते थे। यो इन छोरो से गप्प लडाते-लडाते ही महाराजा को अपनी राजधानी के घटनाचक्र और जन-प्रतिक्रियाओ की पूरी जानकारी हो जाती थी।



राजा और खवास-चेलो की निकटता तथा पारस्परिक सम्बन्धो पर प्रकाश डालने वाला एक बडा प्यारा किस्सा है जो पुराने लोगो को अब भी याद है। सवाई माधोसिह (प्रथम) के साथ उदयपुर से आने वालो मे एक गजाधर पल्लीवाल भी था जिसे महाराजा ने चौकडी रामचन्द्रजी मे एक विशाल सात चौको की हवेली और जागीर प्रदान कर इस बेडे मे रखा था। गजाधर के वशजो मे जब मोतीलाल निःसन्तान मर गया तो घनश्याम पल्लीवाल उदयपुर से आकर उसका दत्तक हुआ। गजाधर का उल्लेख कवि-कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट ने अपनी 'पद्य-मुक्तावली' मे भी किया है। श्री कृष्ण भट्ट भी सवाई जयसिह के आग्रह पर जयपुर आये थे और सवाइ प्रतापसिह के समय तक जीवित थे।

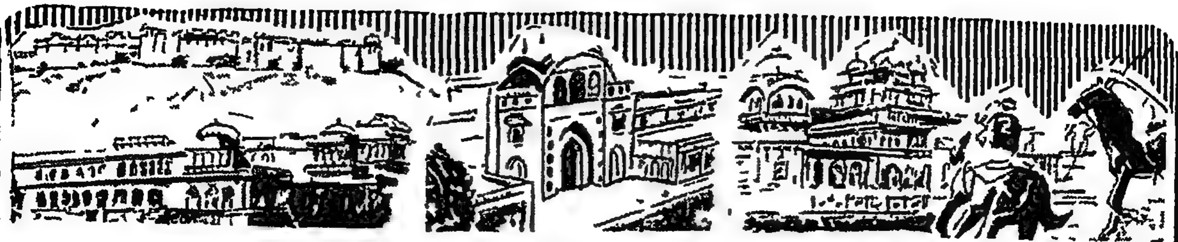
महाराजा माधोसिह (द्वि) का जमाना था। महाराजा उन दिनो प्राय दुर्गापुरा-स्थित खवासजी के बाग मे रहता था। दारोगा घनश्याम पल्लीवाल, जो पढा-लिखा और कवि भी था, महाराजा के अनुचरो मे वही था। एक दिन जब महाराजा दुर्गापुरा से नगर-प्रासाद मे आ गया (प्राय हर शनिवार को जनानी महफिल होने के कारण महाराजा अपने महल मे आ जाता था) तो पीछे खवास-चेलो की तबीयत भी वर्षा के सुहावने मौसम मे भरभरा उठी और उन्होने सागानेर जाकर चूरमा-बाटी-दाल की गोठ करने का इरादा किया। वे लोग जब किसी एक को दुर्गापुरा की कोठी के पहरे पर बैठाकर सागानेर चले गये तो पीछे से अचानक महाराजा वापस आ गया और वहा किसी को न पाकर गुस्से से आगबबूला हो गया। आधी रात के लगभग घनश्याम पल्लीवाल और सब लोग सागानेर से लौटे तो क्रुद्ध महाराजा ने सबको पुलिस के द्वारा बेडे के हाकिम राजा उदयसिह के सामने पेश करने का हुक्म दिया। सागानेर से पैदल चलकर आये बेचारे इन लोगो को तब पैदल ही दुर्गापुरा से त्रिपोलिया बाजार मे राजा उदयसिह की हवेली लाया गया क्योंकि वही उन लोगो के हाकिम का निवास था। वहा पहुचे तो तीन बज गये होगे। हाकिम साहब खुमारी मे उठे तो फरमा दिया कि अभी क्यो लाये हो, सवेरे देखेंगे वापस ले जाओ। अब क्या होता, वहा से फिर दुर्गापुरा कूच किया और सारी रात सागानेर- दुर्गापुरा-जयपुर- दुर्गापुरा तक पाव रगडते ही बीत गई। युवा घनश्याम पल्लीवाल तो इस परेड से ऐसा मायूस और निराश हुआ कि उसने मन ही मन न सिर्फ महाराजा की खवासी, बल्कि जयपुर भी छोड देने की ठान ली।

सवेरे जब महाराजा अपनी नित्य की आदत की तरह आकर आम के पेड तले मूढे पर बैठ गये थे तो घनश्याम ने हौसला जुटाकर उनके सामने जाने की जुर्रत की और अपना लिखित इस्तीफा लिये हाथ जोडकर कहा, "अन्नदाता!" महाराजा को आदमी और आदमी के स्वभाव की पूरी परख थी। यह ताडकर कि वह रात की परेड के बारे मे ही कुछ कहेगा, महाराजा ने मूढा घुमाकर अपना मुह दूसरी ओर कर लिया। घनश्याम पल्लीवाल भी मानस बनाकर गया था, वह उसी ओर जा खडा हुआ जिधर महाराजा का मुह था और पुन बोला, "अन्नदाता!!"

जब महाराजा ने फिर मूढा घुमाकर मुह मोड लिया तो घनश्याम ने भी उधर ही जाकर अर्ज की, "अन्नदाता, मने तो अब माफी दी जाय, मैं तो उदयपुर ही चल्यो जाऊ लो, मनै माफी "

महाराजा ने अब हाथ से घनश्याम को अपने पास बुलाया। जाने पर वह देखता है कि महाराजा की आखो मे आसुओं की धार चलकर उसकी दाढ़ी को भिगो रही है। रुधे गले मे उस राजा ने अपने इस रुष्ट खवास की आखो में आखे डालकर कहा, "मे माफी देऊ, जी नै भी देऊ, मैं ही माफी देऊ! थे कदे मनै माफी कोनै दे सको? कदे तो थे भी मनै माफी देवो करो!!"

घनश्याम कहना तो बहुत कुछ चाहता था, लेकिन अपने रात के हुक्म पर पश्चाताप करने वाले महाराजा को ऐसे भाव-विह्वल देखकर अब उसे कुछ भी कहना अनावश्यक लगा। अपने स्वामी की ग्लानि और आखो मे आसू देखकर सेवक की आखे भी सजल हो गई, गला भर आया और वह यह कहता हुआ वापस हो गया कि, "अब काई भी कोनै कहू, अन्नदाता, काई भी कोनै करू।"



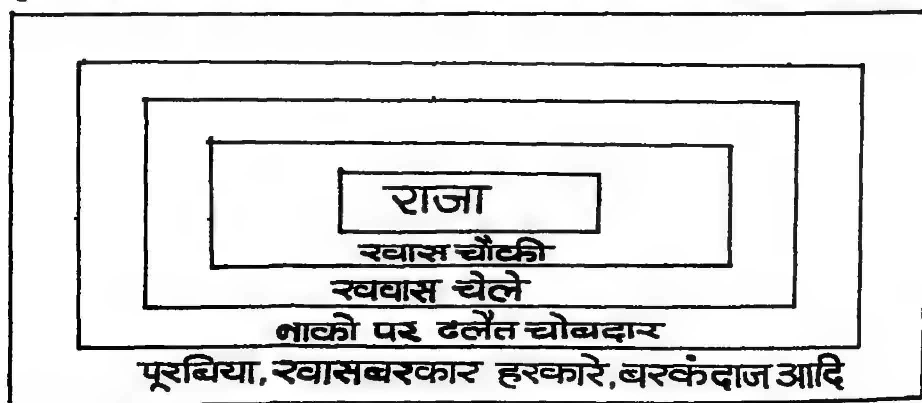
खवास-चेले महाराजा के लिए उनके अपने ही आदमी थे, अपने घर के आदमी, स्वजन।

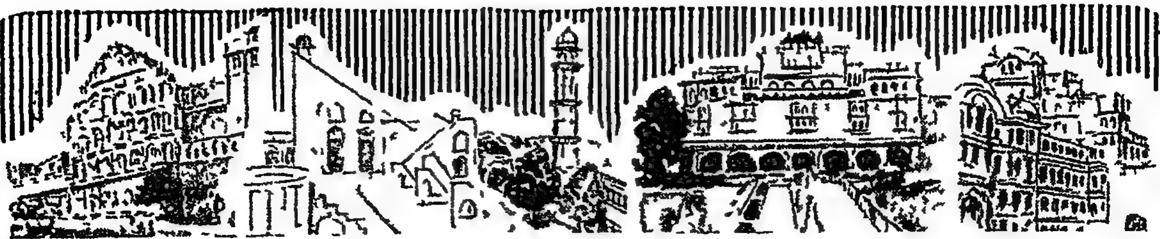
बेडा खवास-चेलान 1949 मे राजस्थान बन जाने तक कायम था। 1952 मे जब जागीरो का पुनर्ग्रहण हुआ और खवास-चेलो की खानगी जागीरे भी जाने लगी तो सरकार ने मामूली नौकर समझकर उनकी जागीरो का मुआवजा न देने की तजवीज कर दी, जबकि अन्य जागीरदारो को मुआवजा देने का प्रावधान था। अपने साथ राजाओ के विशेष व्यवहार के आधार पर उन्होने अनेक आवेदन और ज्ञापन दिये। जयपुर के ही भूतपूर्व महाराजा और राजस्थान के राजप्रमुख को एक आवेदन मे खवास-चेलो की ओर से कहा गया कि खवास-चेलो की हैसियत वही है, जो खास चौकी और ताजीमी सरदारो की है। उन्हे जो भी जागीरे राज ने दी थी वे 'तनखादारी' मे नही दी थी और ये जागीरे किसी भी कानून या अधिकार से वापस नही ली जा सकती। ये तो उस निष्ठा और समर्पण का प्रतिदान था जो खवास-चेले महाराजाओ के प्रति रखते आये है। अत उन्हे 'तनखादार' की हैसियत देना उनके विशेषाधिकारो का हनन है और ऐसे आदेश को वापस लिया जाना चाहिये।

उनकी जागीरे न लेने की माग तो इस जमाने मे कैसे स्वीकार हो सकती थी, उनको मुआवजे दिये गये और जयपुर रियासत के साथ ही बेडा खवास-चेलान भी इतिहास के गर्भ मे समा गया।

बेडा खवास-चेलान के साथ नगर-प्रासाद मे कभी 'बेडा अरबियान' भी था जिसमे अरबी सिपाही नौकर थे। बाद मे और लोग भी इसमे नियुक्ति पाने लगे। इस बेडे का बाजा या बैण्ड विशिष्ट था। चाकरो मे 'अहदी' भी होते थे। जैसा नाम से ही प्रकट है, ये लोग पडे रहते थे और बिना किसी खास काम-काज के मुफ्त की खाते थे। कभी किसी से कोई बकाया की वसूली करनी होती या कोई और बात मनवानी होती तो हुक्म हो जाता कि अमुक के दो अहदी भेज दो और अमुक के चार। ये अहदी फिर वहा जाकर पड रहते और जिसके भी जाते उसके लिए भार-स्वरूप हो जाते, क्योकि जब तक वाछित काम न हो जाता, ये वही पडे रहते और वही खाते-पीते। अहदियो के नाम भी अजीबोगरीब होते थे, जैसे 'मेढा,' 'मोर', 'बन्दर' आदि आदि। 'मेढा' वह मजबूत माथे वाला 'अहदी' था जो जरूरत पडने पर अपनी खोपडी से भी भिड सकता था।

फिर ड्योढी मे ढलैत (ढाल धारण करने वाले सदेशवाहक) और चोबदार (डडा या छड लेकर पहरा देने वाले) भी थे। इनमे पूरबिया (पूर्व की ओर से आने वाले रक्षक, मुबारक महल के दक्षिणी प्रवेशद्वार को पूरबियो की ड्योढी ही कहते है), खास बरदार (बन्दूकधारी रक्षक), हरकारे (हर काम करने मे होशियार) और बरकदाज (बिजली की गति से दौड कर सदेशो का आदान-प्रदान करने वाले) भी शामिल थे। इन सब सेवको-अनुचरो के चौकी-पहरे की स्थिति इस प्रकार समझी जा सकती है





राजा के महल मे खास चौकी— जागीरदारो का पहरा- पहली रक्षा पक्ति की तरह रहता था। फिर खवास-चेलान रहते थे और नाको पर ढलैत-चोबदार तैनात होते थे। बाहर ड्योढियो पर पूरबिये, हरकारे, बरकदाज आदि रहते थे। पूरवियो की ड्योढी इसका उदाहरण है। चौकडी सरहद मे महलो के बाहर और जलेव चौक मे जलेबदारो का पहरा होता था, जो इस क्षेत्र की शान्ति-व्यवस्था बनाये रखने को तैनात रहते थे।

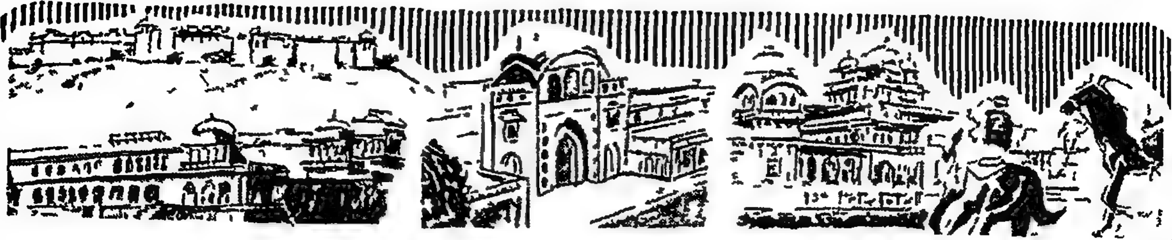
महाराजा माधोसिह ने अपने शासन के बाद के वर्षों मे अपनी सुरक्षा के लिये खास चौकी जागीरदारो की आवश्यकता नही समझी और उनकी जगह 'रिसाला कला' के डीलो व सिपाहियो को नियुक्त किया। तव से राजा के निकट तो खवास-चेले ही रहते थे, किन्तु चन्द्रमहल के नाके, रिधसिध पोल, गजपोल आदि बाहर के नाको पर ये डील खडे रहते थे। ये प्राय सभी राजपूत और दाढीवाले होते थे। जाडो मे वे काली शेरवानी, लाल कमरवद, लाल पगडी, सफेद पायजामा और काले जूते पहनते और गर्मियो मे शेरवानी काली के बजाय सफेद होती।

नगर-प्रासाद या चौकडी सरहद मे नगर परिषद का कोई दखल नही था और जलेबदार ही इस बात की देखरेख करते थे कि किसी ने अनुचित और अवैध निर्माण तो नही कर लिया। मनमाने निर्माण-कार्यों की प्रवृत्ति इस नगर मे आजादी के वाद ही वढी है। रियासती जमाने मे इसका नियत्रण और नियमन कडाई के साथ नियमानुसार किया जाता था। फिर चौकडी सरहद तो राज-दरबार और रनिवासो की चौकडी थी। अब तो अतिक्रमण और अवैध निर्माण के मामले मे चौकडी सरहद का भी बुरा हाल है।

खवासो और चेलो के सम्बन्ध मे यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि वे महाराजा के निजी सेवक और अनुचर ही नही थे, उनके परम विश्वासपात्र भी थे। शायद इसीलिये तरुण महाराजा जयसिह तृतीय पर कडी निगरानी रखने वाले तत्कालीन स्वार्थी मन्त्री सधी झूथाराम ने अपनी पूर्व अनुमति के बिना खवास-चेलो के भी महाराजा से मिलने पर रोक लगा दी थी। चेलो की निष्ठा और विश्वासपात्रता को सदिग्ध करने वाली एक घटना जयपुर के इतिहास मे मिलती है। वह है जयसिह तृतीय की विमाता, माजी राठौडजी के कामदार फौजूराम की हत्या। जनानी ड्योढी के प्रसग मे आगे लिखा गया है कि इम कामदार को ड्योढी के प्रागण मे ही हणवत चेला ने मौत के घाट उतार दिया था और इसके बाद ही गवर्नर-जनरल ने रियासत के आन्तरिक शासन-प्रवन्ध मे हस्तक्षेप करना 'जयपुर दरवार और जनता के हित मे' उचित मानकर कैप्टेन स्टुअर्ट को यहा पहला पोलीटिकल एजेट या रेजीडेट बनाकर भेजा था। एक और उदाहरण खवास बालाबख्श का है जिस पर कपडद्वारा मे गवन के आरोप मे मुकदमा चला था, किन्तु उसके स्वामी महाराजा माधोसिह की मृत्यु के वाद।

खवास लोगो को ऐसे कामो का दायित्व भी सौंपा जाता था जो स्वय महाराजा के करने के होते थे। उदाहरण के लिए लेखक को आगरा विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार स्वर्गीय श्यामसुन्दर शर्मा के पिता गोपीनाथ याद आते हैं जो इस शहर मे और शहर के आस-पास के मन्दिरो के दर्शन ही करते फिरते थे। जयपुर तो मंदिरो का नगर है। यहा एक हजार से ऊपर मदिर वताये जाते है। फिर आमेर, घाट, गलता और नगर के वाहर के मदिरो को मिलाकर तो यह सख्या और वडी हो जाती है। महाराजा कब इन सब मन्दिरो मे पहुच सकते थे? इसलिए एक आसामी इस बात की होती थी कि महाराजा की ओर से 'स्थानापन्न दर्शनार्थी' रहे। जिन गोपीनाथ की यहा चर्चा की गई है, वे प्रतिदिन महाराजा की ओर से मन्दिरो के दर्शन करते और उनकी परिक्रमा लगाते थे।

स्थानापन्न दर्शनार्थी की तरह प्रतिदिन चन्द्रमहल से गोविन्ददेवजी के मन्दिर तक महाराजा की ओर से कनक दण्डवत् करने की भी एक आसामी थी और जयपुर के ताजीमी सरदार और हरफनमौला रईस पुरोहित



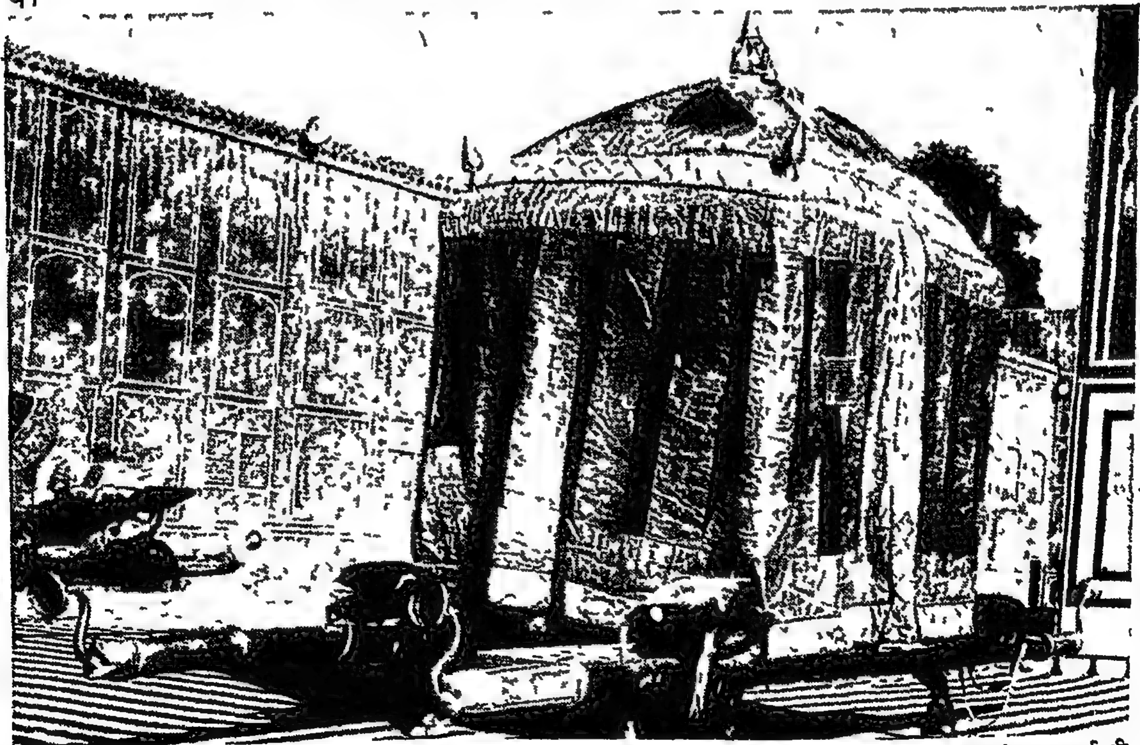
रामप्रताप के छोटे पुत्र उदयनारायण को इस पर नियुक्त किया गया था। उदयनारायण अव इस दुनिया मे नही रहे, किन्तु वे लेखक को वताते थे कि जिन दिनो वे कनक दण्डवत् लगाते थे, शरीर से वडे अच्छे हो गये थे। प्रतिदिन नियत समय पर गोविन्ददेवजी के मन्दिर जाकर वे स्नान करते और पीताम्बर धारण कर दण्डवत् लगाते। यह व्यायाम था और दुग्ध-पान के लिए राज से ही गाय मिली हुई थी, अत स्वास्थ्य वनना स्वाभाविक था।

जयपुर के राजाओ का एक नित्य नियम यह था कि वे प्रात काल साढे चौसठ रुपये का दान करते थे। यह राजा की आय का एक अश था जो नही कहा जा सकता कि किस आधार पर निर्धारित किया गया था। राजा के हाथ लगाने के वाद यह रकम प्रतिदिन रामगज बाजार मे नीलगरो के नले पर रहने वाले गगासहाय वहुरा को दी जाती थी। एक रथ इस खवास के तैनात था जिसमे वैठकर वहुरा कभी इस चौकडी तो कभी उस चौकडी मे निकल जाते और उन्हे जो भूखे, गरीब और मोहताज मिलते, उनमे यह रकम वाट आते। यह भी महाराजा माधोसिह (1880-1922 ई) के जमाने की बात है।

महल के इन सभी नौकरो का एक-एक 'पुरा' (दल) महाराजा की सवारी मे भी चलता था। जलेबदार लोग एक वडा रस्सा लिये चलते थे जिससे प्रत्येक विभाग की दूरी कायम रहती थी। इसे 'लैन डोरी' कहते थे।

इनके अतिरिक्त महल मे बुहारिया-फराशो का बेडा और मशालची तथा बेलदार भी रहते थे जो अपने नाम के अनुरूप ही काम अजाम देते थे।

राजमहल मे नौकरी देने के कारण ये लोग उस जमाने मे अपने-अपने समाज मे वडे प्रतिष्ठित माने जाते थे।



महाडाल- रशम और साटन से ढकी यह विशालकाय वन्द डोली या पालकी माजिया और महारानिया का नान ल जान के काम आती थी



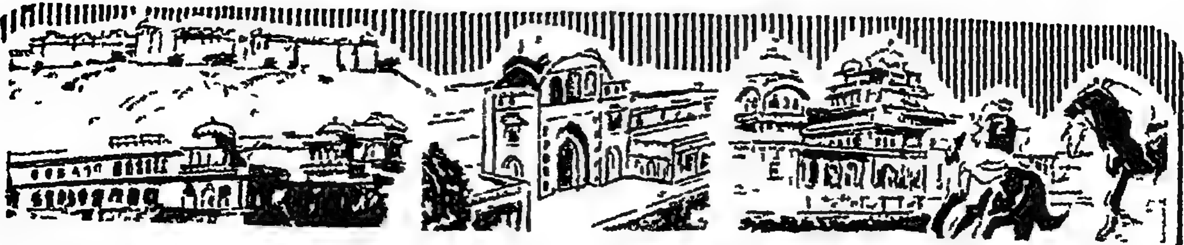
10. जनानी ड्योढ़ी

सैकडो महिलाओ से आवाद रहने वाला जयपुर के राजाओ का अन्त पुर सिरह ड्योढी और चन्द्रमहल के उस पार, ऊची दीवारो मे घिरा, किन्तु भीतर वडे-वडे चौको, दालानो ओर हवेलियों से भरापूरा है। ये हवेलिया अलग-अलग रावळे हुआ करती थी ओर उनमे रहने वाली माजियों, महारानियो, पासवानो या पडदायतो के नाम से ही जानी जाती थी। यह पर्दानशीनो की अपनी नगरी थी। जयपुर जैसे लम्बे-चौडे नगर मे जैमे नगर-प्रासाद सारे नगर का सातवा भाग घेरने वाली एक अन्तरग नगरी है, वेसे ही नगर-प्रासाद की अन्तरग उप-नगरी है जनानी ड्योढी, जिसमे पुरुप सज्ञा धारी वच्चे तक का प्रवेश निषिद्ध रहा है, आज तक निपिद्ध है।

जव तक राजतत्र था और राजा-रानी अपने-अपने राज्यो के स्वामी थे, रनिवास या रावले भी अपना महत्त्व रखते थे। जयपुर मे ही हजारो लोगो की आजीविका का साधन जनानी ड्योढी हुआ करती थी। हर माजी, महारानी, पासवान या पडदायत की अपनी जागीर होती, अपनी जायदाद होती, अपने महल और मन्दिर होते। इनकी व्यवस्था और देखरेख के लिए प्रत्येक के अपने कामदार, अहलकार और शागिर्दपेशा लोग होते। वाहर जैसे मर्दाना दरवार होता, जनानी ड्योढी मे जनाना दरवार जुडता। सामन्तो, हाकिम-ओहदेदारो की औरते अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार इस दरवार मे वैठक पाती। राजा की जगह यहा माजी या वडी महारानी मसनद पर होती। गाने-वजाने, नाच ओर नाटक तक की महफिले होती जिनमे जनानी ड्योढी की वाइया- वावलिया 'अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करती।'

जनाने दरवारो और महफिलो के लिए जनानी ड्योढी मे अलग से दीवानखाना वना हुआ है। अपनी सालगिरह और दूसरे मुवारक मौको पर राजा भी जनानी ड्योढी मे जाते। यदि कोई माजी होती तो राजा उसके सामने 'गोडी नवाकर' गद्दी के सिरे पर वैठते, मा-वेटे का अदव निभाते। माजी न होकर यदि महारानी होती तो राजा उसके वरावर वह जगह लेते जो पत्नी के साथ पति को लेनी चाहिए।

जयपुर के राजदरवार की परम्पराये और मर्यादाये रामायण की अयोध्या के समान वाधी गई थी। इन परम्पराओ मे सवाई जयसिह की दिलचस्पी तो सुविदित है ही, उसके वहुत पहले राजा मानसिह की भी कम नही थी। अकवर के प्रधान सेनापति और प्रशासक इस राजा की लगभग दो दर्जन रानिया गिनाई जाती है। फिर रखेले या पासवाने भी कई रही होगी। उसके अन्त पुर का अनुमान उस जनाने महल से लगाया जा सक्ना हे जो आमेर के महलो का सवसे पुराना भाग है। उसके कोनो पर बनी छतरिया और गुमटिया भी फतहपुर सीकरी की याद दिलाती हैं। मानसिह के समय ('1589-1614 ई) से ही मुगल दरबार के साथ



आमेर-जयपुर के राजाओ का जैसा सम्वन्ध रहा, उसने निश्चय ही यहा की जनानी ड्योढी के सगठन, व्यवस्था और परम्पराओ पर भी प्रभाव डाला। जयपुर के राजाओ का अन्त पुर या रनिवास इस प्रकार प्राचीन भारतीय राजाओ के परम्परागत रनिवासो और मुगल हरम की नफासत, तहजीब और नाज-नखरो का मिला-जुला रूप वना।

और, यह सही है कि मुगलो के हरम या अन्त पुर का अनुमान करने के लिए आज भारत मे दो ही स्थान है—हैदरावाद (दक्षिण) या जयपुर। जयपुर का अन्त पुर अपनी परम्परागत व्यवस्था के साथ राजस्थान मे रियासत के विलय (1949) तक चल रहा था और नाम के लिए ही सही, आज भी कम से कम तीन रावले जयपुर की जनानी ड्योढी मे आवाद है।

आमेर-मुगल सम्वन्धो की प्रगाढता दिखाने के जोश मे अनेक लेखको और इतिहासकारो ने राजा मानसिह के अन्त पुर को उसके स्वामी शाहन्शाह अकवर के हरम जैसा ही विशाल वताया है। अकवर काल के अधिकारी इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार अकवर का "शाही हरम अपने मे एक नगर था। हरम की दिवालो की परिधि मे पाच हजार स्त्रिया निवास करती थी, और उनमे से प्रत्येक के पास एक अलग कक्ष था। स्त्रियो के इतने वडे झुड के भरण-पोषण और नियत्रण के लिए पर्याप्त व्यवस्था की आवश्यकता थी। हरम मे काम करने वाली स्त्रिया कई अनुभागो मे विभाजित थी, प्रत्येक अनुभाग एक स्त्री अध्यक्ष (दारोगा) के अन्तर्गत था और लिपिको द्वारा हिसाव रखने का यथोचित प्रवन्ध किया गया था। व्यय पर रोक लगाने के लिये, जो वडी मात्रा मे होता था, कडी प्रणाली का प्रयोग किया गया था।

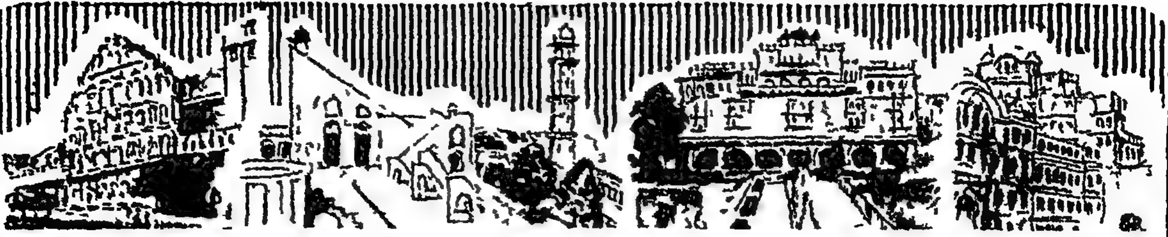
"अहाते का आन्तरिक भाग सशस्त्र स्त्री पहरेदारो द्वारा रक्षित था। वाहरी भाग पर कचुकियो का पहरा था, और फिर आगे वफादार राजपूतो की सेना थी, और इससे दूर चल कर अन्य प्रकार के सैनिको का पडाव रक्षा व्यवस्था को और भी सुदृढ वनाता था।"[1]

चूकि "अकवर और जहागीर के समय मे मानसिहजी से वढकर हिन्दुओ मे और खानखाना नवाव इब्राहीम से वढकर मुसलमानो मे दूसरा सरदार नही था,"[2] स्वय जहागीर ने अपनी आत्मकथा मे मानसिह की पन्द्रह सौ पत्निया लिख डाली है। "आइने-अकवरी" के अनुवादक व्लाखमैन ने भी लिखा हे कि उसकी पन्द्रह सौ पत्नियो मे से साठ ने उसकी मृत्यु पर चिता का आरोहण किया।[3]

'आमेर का राजा मानसिह'[4] शोध-प्रवन्ध मे राजीवनयन प्रसाद ने मानसिह की पत्नियो की इस सख्या को सवथा गलत और अतिरजित करार देते हुए कहा है कि "कछवाहा वशावली" मे मानसिह की कुल 21 रानिया लिखी हे और यह सख्या किसी भी प्रकार दो दर्जन से अधिक नही हो सकती। इसके प्रमाण मे वे आमेर के (राजा मान द्वारा निर्मित) पुराने महल या जनाने महल मे रावलो की सख्या प्रस्तुत करते है जो चोवीस ही है। इसके अतिरिक्त विहार मे रोहतास के किले मे इस कछवाहा राजा द्वारा वनाये गये "महलसराय" मे भी पन्द्रह महिलाओ के ही रहने का प्रावधान है। इन प्रमाणो को देखते हुए मानसिह की रानियो की सख्या पन्द्रह सौ वताना निरी कल्पना ही कही जा सकती है। जो हो, आमेर का जनाना महल आमेर-जयपुर के राजाओ की जनानी ड्योढी का उस समय का खाका अवश्य प्रस्तुत करता हे जव ये मुगलो की छत्रछाया मे वडे महत्त्वपूर्ण हुए जा रहे थे।

राजस्थान मे रनिवासो को रावळा या जनानी ड्योढी कहा जाता रहा है। "जनानी ड्योढी की वनावट इस

1 महान् मुगल अकवर, हिन्दी समिति सूचना विभाग लखनऊ, 1967 पृष्ठ 386 87
2 महाराजा मानसिह, मुशी देवीप्रसाद
3 आइने-अकवरी (अनुवाद), प्रथम भाग, पृष्ठ 34।
4 राजा मानसिह ऑफ आमर कलकत्ता जनवरी, 1966



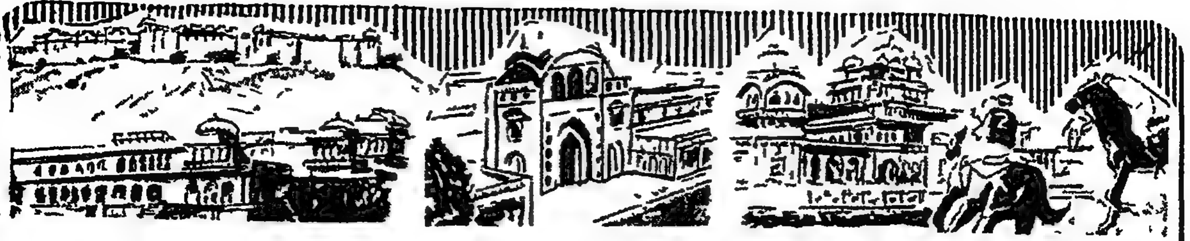
कौशल से की हुई होती है कि राजप्रासाद के मर्दाने महलो मे रहने वालो की दृष्टि जनाने महलो मे न पड सके और जनानी ड्योढी के प्रागण मे फिरते-घूमते, उठते-वैठते जनाना सरदारो तथा उनकी दामियो, सेविकाओ और परिचारिकाओ को वाहर के किसी कोण से देखा न जा सके। अतएव जनानी ड्योढी का प्रमुख द्वार इस ढग से वना होता है कि वह बाहर की दृष्टि से भली-भाति अदृष्ट्य होता है। यदि जनानी ड्योढी मे प्रवेश करते समय पहले पश्चिम मे घूमा जाएगा तो फिर घूमकर उत्तर मे जनाने प्रागण मे प्रवेश किया जा सकता है। जनाने महलो का मुख्य द्वार बनावट मे टेढी आकृति लिए हुए होता है। दूसरे सामान्य दरवाजो से लम्वाइ मे भी डेढा होता है। इसलिये भी अध्यर्द्ध मकान होने के कारण 'ड्योढी' द्वार नाम सार्थक जान पडता है सुरक्षा की दृष्टि से टेढी आकृति मे निर्मित द्वारो का वडा महत्त्व होता है। वाह्य शत्रु के आक्रमण पर इस ढग से निर्मित ड्योढियो की रक्षा वाहर के एक सौ आदमियो से दस आदमी सहजता से कर सकते हैं।"[5]

जनानी ड्योढिया अपने आप मे स्वायत्त सस्थाए कही जा सकती हे। हर राजा के एक से अधिक रानिया होती थी और जनानी ड्योढी मे उनके अलग-अलग महल या कक्ष--रावळे-- होते थे, जिनमे राजमाताए, रानिया, पासवाने-पडदायते और उनकी डावडिया, दासिया-परिचारिकाए आदि रहती थी, जिन्हे जयपुर मे वाइया और वावलिया कहते थे। जनानी ड्योढी का अधिकारी कुलीन और राजा का गहरा विश्वासपात्र होता था। वैसे राजमाताओ, रानियो और पडदायतो के भी अपने ही कामदार और दूसरे कर्मचारी होते थे, जो उनकी जागीरो के प्रवन्ध और आय-व्यय का हिसाव रखते थे। इन अधिकारियो-कर्मचारियो से जनानी ड्योढी की 'सरकारे' अपनी वडारणो-डावडियो अथवा वाई-वावलियो के माध्यम से वात भी कर लेती थी। जनानी ड्योढी की सेविकाए अपनी- अपनी स्वामिनी के नोहरो मे रहती थी जो नगर-प्रासाद से दूर नगर मे थे।

जैसे "कुरव कायदे" वाहर मर्दानी ड्योढी मे निभाये जाते, वैसे ही जनानी ड्योढी मे भी चलते। ताजीमी सरदारो की पत्निया जनाने दरवार मे जाती तो उन्हे वहा ताजीम दी जाती और बैठक भी उनके रुतवे और हैसियत के अनुसार परम्परा से निर्धारित होती। "कुरव-कायदो के वन्धनो और छोटी-वडी के प्रतिष्ठा भेदो के कारण भी जनाने सदस्यो का (हर जव) एकत्र होना सभव नही होता था। रानियो मे छोटी, वडी और पट्टरानी आदि के मान-सम्मान के नियम निर्धारित होते थे। पट्टरानी का सब रानियो मे रुतबा होना है। पट्टरानी का पद राजा स्वेच्छा से भी प्रदान करते थे और परम्परा प्रचलित नियमो से स्वत भी प्राप्त होता था। यदि किसी राजा का उदयपुर, जयपुर, बूदी, जैसलमेर और सिरोही राजवशो की राजकुमारियो के साथ विवाह होता था तो पट्टरानी का पद उल्लिखित घरानो की राजपुत्रियो को क्रमश प्राप्त होता था। यदि उदयपुर मे विवाह न हुआ हो और जयपुर राजकुल की कन्या से हुआ हो तो पट्टरानी जयपुर की राजकुमारी होती थी। उदयपुर और जयपुर, दोनो मे विवाह नही हुआ हो और सिरोही, जैसलमेर, बूदी की राजपुत्रियो के साथ हुआ हो तो क्रमश बूदी, जैसलमेर ओर सिरोही की राजकुमारियो को पट्टरानी का पद प्राप्त होता था। "

इस प्रसग मे जयपुर के सस्थापक सवाई जयसिह और उदयपुर की राजकुमारी चन्द्रकुवर बाई के विवाह की शर्तें उल्लेखनीय हैं। पहली शर्त यह थी कि अपने पूर्व विवाहो और भविष्य मे होने वाली रानियो मे वह मेवाड की इस राजकुमारी को ही अपनी पट्टरानी का रुतवा देगा और उसके उदर से जन्म लेने वाला राजकुमार ही छोटा होने पर भी युवराज और आमेर का भावी राजा वनेगा। कुछ गोपनीय शर्तें भी थी--जयसिह इस रानी की हर वात मानेगा, रनिवास मे उसकी हेसियत सभी रानियो से ऊची रहेगी, रानियो के हर जुलूस मे इस मेवाडी रानी की पालकी सबसे आगे चलेगी, हर त्योहार की रात जयसिह उसी के पास

5 राजस्थानी निवन्ध सग्रह (रनिवासो क पत्र), सौभाग्य सिह शेखावत जाधपुर, पृष्ठ 167



रहेगा और हर युद्ध मे लौट कर वह सबसे पहले मेवाडी या सीसोदिया रानी के महल मे ही विश्राम करेगा।[6]

इन शर्तो ने भावी राजनीतिक घटनाचक्र को बहुत प्रभावित किया। यहा इनके औचित्य या अनौचित्य पर विचार करना अभीष्ट नही, प्रयोजन केवल यह बताना ही है कि रनिवास मे रानियो की स्थिति को लेकर भी कैसी कशमकश चला करती थी और किस प्रकार रानिया अपनी-अपनी हैसियत से सत्ता- सतुलन को इधर-उधर करा देती थी।

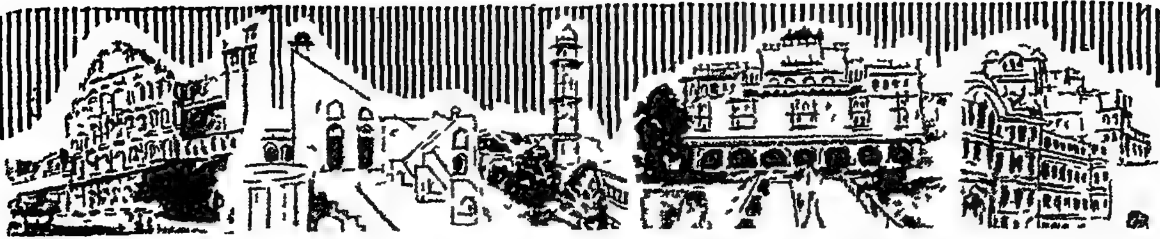
"जनानी ड्योढी की रानिया-महारानिया जहा सगीत, नृत्य, वादन, चित्रकला और काव्य-इतिहास की ज्ञाता होती थी, वहा अश्व-सचालन, शस्त्र शिक्षा आदि साहसपूर्ण कलाओ मे भी निपुण होती थी। वे राजमहलो का शृगार और राजा-महाराजा की भोग्य सामग्री मात्र नही होती थी। युद्ध, विग्रह आदि सकटकाल मे वे अपनी जनानी सेना सगठित कर किलो के मोर्चे सभालती थी। अपने स्वामी को कुल-गौरव की रक्षा के लिये प्रेरित करती थी। सधि-विग्रह के समय महत्त्वपूर्ण मत्रणाओ मे भाग लेती थी और शान्ति-काल मे ताल-तडाग, कूप-वापिकाए और मन्दिर-पाठशालाओ का निर्माण कर जनोपयोगी कार्य करती थी। निराश्रय, निर्धन और गरीब कन्याओ के विवाह आदि मे अर्थदान करती थी। अपने पति अथवा पुत्र के युद्ध मे उलझे होने पर अथवा सुदूर प्रान्तो मे आवास करने के दिनो मे पीछे राज्य-कार्य को सुव्यवस्थित रूप मे सचालित रखने के लिए प्रयत्नरत रहती थी। पति की मृत्यु के पश्चात् अपने अवयस्क पुत्र नरेश के अभिभावक के रूप मे राज-कर्मचारियो की नियुक्ति, पृथक्करण आदि कार्यो का सचालन भी करती थी।"[7]

जयपुर की जनानी ड्योढी नगर-प्रासाद मे चन्द्रमहल के साथ ही सवाई जयसिह (उसके 27 रानिया थी) ने बनवाई होगी और उसमे तब वह सब परम्पराये रही होगी जो आमेर मे ही स्थापित हो गई थी। खेद है कि जयसिह की जनानी ड्योढी का कोइ ब्यौरा तो उपलब्ध नही है, किन्तु इतना निश्चित है कि पन्ना मिया उसकी जनानी ड्योढी का प्रभारी नादर या खोजा था। आमेर मे पन्ना मिया का कुण्ड आज भी प्रसिद्ध है और दर्शनीय है। वह पहले मुगल हरम मे था, किन्तु जयसिह का पिता विष्णुसिह उसे आमेर ले आया था।

बताया जाता है कि पन्ना मिया ने मथुरा-वृदावन मे जयपुर की ओर से अच्छी सपत्ति खरीदी थी। उसकी अपनी जायदाद भी काफी थी जो उसके मरने पर राज की ही हो गई। पोथीखाने के कई चित्रो पर पन्ना मिया की मुहर है। उसकी मृत्यु जयपुर मे ही हुई थी और उसकी कब्र बास बदनपुरा की 'दरगाह कदम- रसूल' मे है।

मिर्जा राजा जयसिह के समय (1621-67 ई) मे "गगा लहरी" और 'रस गगाधर" के लेखक पण्डितराज जगन्नाथ का शिष्य और महाकवि बिहारीलाल का भानजा कुलपति मिश्र जनानी ड्योढी मे कुछ खासखास परिचारिकाओ और सेविकाओ को पढाता था। बहुराजी का तो कथन है कि बिहारी, कुलपति मिश्र और प्राणनाथ श्रोत्रिय की आरभिक नियुक्तिया मिर्जा राजा की जनानी ड्योढी की महिलाओ को शिक्षा देने के लिए ही की गई थी।[8] महारानियो की सेविकाओ द्वारा नकल उतारी गई अनेक पाण्डुलिपिया पोथीखाने मे उपलब्ध है। यह चलन माधोसिह द्वितीय की मृत्यु (1922) तक कमोबेश चलता ही रहा। महाराजा रामसिह प्रथम की एक पातुर मोहनराय द्वारा रचित "कीडा विनोद" नामक कृति भी मिलती है। रामसिह की माता आनन्द कुवर चौहानजी भी बडी सुसस्कृत और विदुषी थी। 'बिहारी सतसई' की एक खडित प्रति मे— जो रामसिह के अध्ययन के लिए तैयार की गई थी— इस रानी की प्रशस्ति इस प्रकार है—

6 सवाइ जयसिह, राजेन्द्र शकर भट्ट, दिल्ली
7 राजस्थानी निवन्ध सग्रह सौ सि शेखावत, पृष्ठ 170
8 लिटररी हेरीटेज ऑफ दि रूलर्स ऑफ आमेर एड जयपुर, 1976 पृष्ठ 45



श्री रानी चौहानि कौ, करतब देखि रसाल।
फूलति है मन मे सिया, पहिरि फूल की माल।।1 ।।
दान ज्ञान हरिध्यान कौ, सावधान सब ठौर।
श्री रानी चौहानि है, रानिनु की सिरमौर।।2।।

चौहानी रानी लता, राम रूप फल फूल।
खगमग मधुकर वृद सब, परे रहौ गहि मूल।।[9]

सवाई जयसिह की रानी और ईश्वरीसिह की माता खीचणजी की भी धार्मिक ग्रन्थो मे रुचि थी। पोथीखाने मे दो पाण्डुलिपिया है जो उसी के लिए लिखकर तैयार की गई थी। ये है— 1 पदसग्रह, रसिक प्रिया और रामचन्द्रिका तथा 2 भागवत भापा। ईश्वरीसिह ने कुल मात वर्प राज्य किया, फिर भी उसके नौ रानिया थी और ग्यारह पडदायते उसकी चिता मे जलकर मती हुई थी।

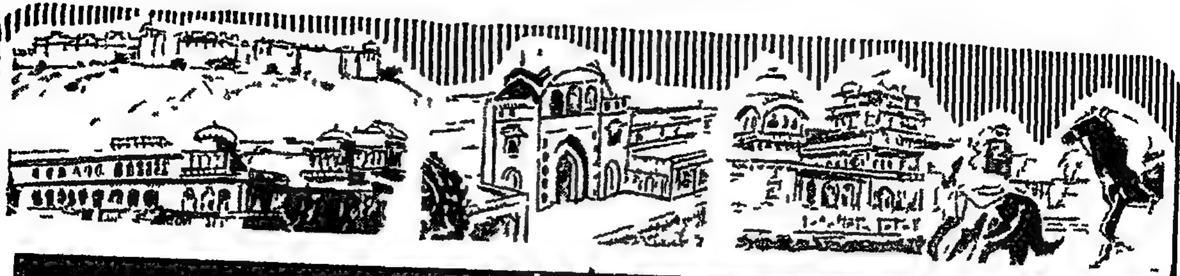
ईश्वरीसिह के सौतेले भाई माधोसिह प्रथम के समय का 'जनाना मजलिस'' का एक चित्र सूरतखाने मे उपलव्ध है जिससे तत्कालीन जनानी ड्योढी का माहौल सामने आ जाता है। इस राजा के छह रानिया थी और चार पडदायते उसके साथ सती हुई थी। माधोसिह के वाद कोई 70-75 साल का समय राजम्थान और विशेपत जयपुर के लिए वडा वुरा था। राजमहलो मे आये दिन छल-कपट और पडयन्त्र-कुचक्र चलते और पर्दे के पीछे रहने वाली जनानी ड्योढी प्राय इनका केन्द्र रहती। इन सत्तर वर्पों मे वार-वार जयपुर की हुकूमत की वागडोर जनानी ड्योढी की औरतो के हाथ मे गई और जैसी खीचतान चली उसमे राज्य की शासन व्यवस्था और अर्थ-तन्त्र चौपट हो गये। माजियो और महारानियो के कामदार और दूसरे मुह लगे लोगो की खूव वन आई और दासी-पत्रिया या वाढिया तक वडारण' और 'राज-वडारण' वनकर इतनी शक्तिशाली हो गइ कि मुसाहिव भी उनके मजीदान होने लगे और मनमानी करने लगे।

यह मिलसिला 1767 मे आरम्भ हुआ जव पाच साल का वालक पृथ्वीसिह या पिरथीसिह माधोसिह प्रथम का उत्तराधिकारी और राजा वना। इस वालक राजा की अभिभावक थी उसकी सौतेली मा[10] चूडावतजी, जो मेवाड मे देवगढ के राव की वेटी थी। राज-काज के साथ वालक की सुरक्षा और पालन-पोपण के लिये भी वही उत्तरदायी थी। वेटी का यह इकवाल वढा तो वाप, राव जसवतसिह भी देवगढ से यहा आ गया और राज-काज मे इस पराये के दखल ने अन्य मामन्तो-जागीरदारो को नाराज कर दिया। कई गुट वन गये और इन धडो मे वडी कशमकश चलने लगी।

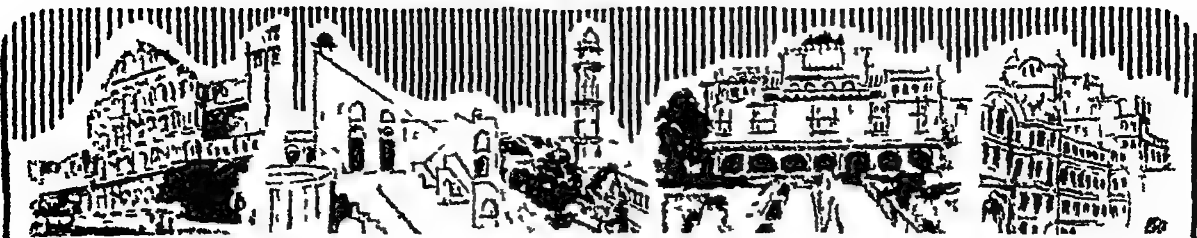
एक ओर माजी चूडावतजी और उसके पिता राव जसवतसिह मन्त्रियो को अपने इशारे पर चलाते तो दूसरी ओर चौमू-सामोद के नाथावत, झिलाय के राजावत, मनोहरपुर के शेखावत और माचेडी के नरुका ठाकुर कभी एक मन्त्री को दूसरे के और कभी सवके सव मन्त्रियो को राव जसवतमिह के विरुद्ध उकमाते। मन्त्रियो मे थे वोहरा खुशालीराम और फीरोज फीलवान। वोहरा खुशालीराम माधोमिह का जलधारी था, किन्तु उसकी सूझ-वूझ और विवेक से प्रभावित होकर माधोमिह ने उमे मन्त्री पद तक पहुचा दिया था। ऐमी ही कैफियत हाथी हाकने वाले फीरोज फीलवान की थी। मरदारो को ऐमे साधारण जन इन वडे ओहदो पर कैसे महाते? वे तो इन ओहदो पर अपना जन्ममिद्ध अधिकार मानने थे। इसलिये पर्दे के पीछे मे आने वाले

9 लिटररी हरीटज ऑफ दि रूलम ऑफ आमर एण्ड जयपुर म उद्धत।

10 मत्म्य दश का इतिहास (हस्तलिखित) जा पाथीखान म पण्डित मधुसदन ओझा न तैयार कराया था वताता ह कि वह मौतेली मा नही थी और पथ्वीमिह व प्रतापसिह की माता एक ही थी।



जनानी ड्योढी का एक दशय। सामन प्रवेशद्वार और दानों ओर रावल। यह चित्र राजकमारी प्रमकमारी क विवाह की रात लिया गया था



आदेशो पर चलने वाले मंत्रियो के विरुद्ध षडयन्त्र रचे जाते रहे। प्रतापसिह नरुका ने राव जसवतसिह को उखाडकर ही दम लिया और फीरोज की उसी ने अततोगत्वा हत्या करादी। बोहरा खुशालीराम चार-चार बार कैद मे डाला गया, लेकिन हर बार छूट कर वह अपने ओहदे पर बहाल होता रहा, यह उसके व्यक्तित्व और उसकी योग्यता का प्रमाण है।

कैकेयी ने तो भरत को राज दिलाने के खातिर रामचन्द्र को चौदह वर्षों का वनवास मागकर ही अपना मनोरथ सफल माना था, किन्तु फतहसिह चापावत के अनुसार माजी चूडावतजी ने अपने तेरह- वर्षीय पुत्र प्रतापसिह को राज दिलाने के लिये पन्द्रह साल के पृथ्वीसिह को मौत के घाट ही उतरवा दिया, विष देकर।[11] कहा यह गया कि घोडे से गिर पडने के कारण महाराजा की मृत्यु हुई है। पृथ्वीसिह के भी तीन विवाह हुए थे।

रावले के बावले राज मे जयपुर का राज-कोष वैसे ही रीता हो रहा था और जागीरदार-सामत गाव पर गाव दबा रहे थे। उधर दिल्ली का बादशाह और मरहठे खिराज और चौथ वसूल करने के लिये जब-तब चढ़ आते थे। सभी को भरम यह था कि रुपये की जयपुर मे कोई कमी नही है, मानसिह प्रथम, मिर्जा राजा जयसिह और सवाई जयसिह ने बहुत धन जुटाया था, वह सब कहा गया? वास्तविकता यह थी कि जयपुर का खजाना यहा की आपसी लूट-खसोट और आपाधापी मे ही खाली हो रहा था।

जब पन्द्रह साल का राजा पृथ्वीसिह मर या मारा गया और तेरह साल का उसका सौतेला भाई प्रतापसिह गद्दी पर बैठा तो स्वाभाविक था कि राज रावळा ही करता। प्रतापसिह की मा, माजी चूडावतजी बालक राजा की सरक्षक और अभिभावक बनी रही और माजी की मेहरबानी से फीलवान फीरोज बडा शहजोर हुआ। जो धडे या गुट पृथ्वीसिह के समय मे बने हुए थे, समय के अनुसार हेरफेर के साथ अब भी चल रहे थे। मुसाहिबो और ठाकुर-जागीरदारो की आपसी कशमकश इस हद तक पहुची थी कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये दिल्ली की शाही फौज तक को मुसाहिब ही उकसा कर खिराज वसूली के लिये हमला करवा देते थे। प्रतापसिह की नाबालगी मे हमादानखा का हमला इसी प्रकार के उकसावे का परिणाम था।[12] चारो ओर अराजकता, अनाचार और स्वार्थ-साधन का बोलबाला था।

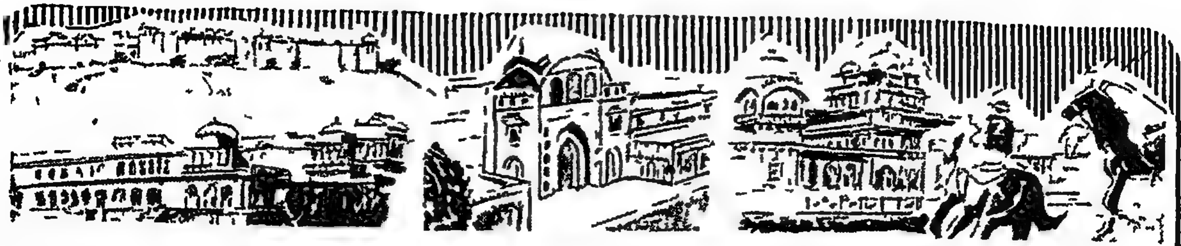
प्रतापसिह ने बडे होकर अवश्य ही इस दशा से राज्य को उबारने की जी-तोड कोशिश की, लेकिन माचेडी के राव प्रतापसिह नरुका ने जो आजादी हासिल करली थी, उसे खत्म करना अब टेढी खीर था। नरुका ने जयपुर के कमजोर और फूट-परस्त शासन का लाभ उठाकर स्वतन्त्र अलवर रियासत की नीव डाली थी। लेकिन प्रतापसिह लालसोट के निकट तूगा की लडाई मे महादजी सिंधिया जैसे नामवर मरहठा सेनापति को हराकर राजस्थान के वीरो और योद्धाओ मे अपना नाम जुडवाने मे सफल रहा और अपने पच्चीस वर्षो के शासन मे उसने जयपुर को भी अनेक सुन्दर महलो और भव्य देवालयो से सजाया।

प्रतापसिह का समय वह समय था जब राजा-रईस अपने वैभव को अपने रावले से आकते थे। प्रतापसिह भी इसका अपवाद कैसे रहता? वह था भी बडा सुन्दर, सहृदय और रसिक कवि। उसने जहा पोथीखाने और दूसरे कारखानो की सार-सभाल कराई, जनानी ड्योढी को भी बढाया और व्यवस्थित किया। जनानी ड्योढी के भीतर गोवर्धननाथजी का मदिर सभवत प्रतापसिह के समय मे ही बना। इसकी सेवा-पूजा की अधिकारी आज तक महिलाये ही हैं।

गुणीजनखाने के कलावत जनानी ड्योढ़ी मे गान-विद्या, नृत्य-कला, नाट्य-कला आदि की शिक्षा देने जाते थे। सुलेखन की शिक्षा भी दी जाती थी। सवाई प्रतापसिह (1778-1803 ई) के समय की बाइयो की लिखी हुई अनेक पुस्तके मिलती हैं जिनमे प्राय भजन सग्रहीत हैं। यह नकले अधिकाश मे चम्पा नामक एक

11 ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर, ठा फतहसिह, पृष्ठ 87

12 वही पृष्ठ 90



सुलेखन अध्यापिका के निर्देशन मे की गई थी। चम्पा का पिता गोविन्दराम भी एक सुलेखक था और पोथीखाने मे काम करता था। यह सिलावटो के मोहल्ले मे वद्रीनाथजी के मदिर के पास रहता था। उल्लेखनीय वात यह है कि इन पिता-पुत्री के लेख एकदम मिलते है और यह वताना कठिन है कि पिता की लिखावट कौन-सी है और पुत्री की कौन-सी।

प्रतापसिह के वारह रानिया थी, किन्तु दीदारवख्श नाम की भगतन या नर्तकी-वेश्या के प्रति उसकी वडी आसक्ति थी। इस भगतन से मोहनदास और कानदास नामक दो लडके भी हुए। पातुरो मे रगराय, कस्तूरीराय, गतिसरस, गतितरग राय, श्यामतरग और रसप्रवीण थी, जिनमे से दो सती हुई थी। रगराय से वलभद्रदास नामक लडका और मोहनकवर नामक एक लडकी प्रतापसिह को हुई थी।[13]

प्रतापसिह के मरने के कुछ समय पूर्व ही एक माजी ने एक वादी अथवा दासी को "राज बडारण" की उपाधि प्रदान की थी।[14] जनानी ड्योढी मे यह पहला अवसर था कि किसी दासी के प्रति कृपा-प्रदर्शन के लिए ऐसा तरीका अपनाया गया। फिर तो यह तरीका खूब चला और कुछ वडारणे वडी जवर्दस्त हुई, जिन्होने राज-काज मे महारानियो और माजियो से भी अधिक हस्तक्षेप किया।

प्रतापसिह की दीदारवख्श भगतन की तरह उसके वेटे जगतसिह (1803-1818ई) की सर्वप्रिय प्रेयसी थी वेश्या रसकपूर जिसका रुतवा रानियो से भी वढा-चढा था।[15] सवाई जयसिह ने दुनिया भर से पोथिया जुटाकर जो पुस्तकालय वनाया था, जगतसिह ने उसका आधा हिस्सा पीनक मे इस "आधे आमेर की रानी" को दे डाला।[16] रसकपूर क्या थी, अपने समय मे जयपुर की नूरजहा थी, जो सरे वाजार हाथी के हौदे पर जगतसिह के साथ सवार होकर भी निकली थी। जगतसिह का प्रधानमन्त्री मिश्र शिवनारायण उसे "वाईजी" कह कर सम्वोधित करता। सभी सरदारो-जागीरदारो से कहा गया कि रसकपूर के प्रति वही सम्मान दिखाया जाय जो रानियो के प्रति दिखाया जाता है। राजपूत सरदारोके लिए यह हद से गुजरने की वात थी और दूणी के राव चादसिह ने तो इसकी खुलकर अवहेलना की। यह ठाकुर ऐसे किसी दरवार या महफिल मे नही जाता, जिसमे वह तवायफ मौजूद होती। अपनी चहेती के इस अपमान पर खीझकर जगतसिह ने चादसिह पर उसकी जागीर की चार साल की आय का जुर्माना कर दिया, जो लगभग दो लाख रुपया होता था। इस पर अन्य जागीरदार भी बडे रुष्ट और अप्रसन्न हुए और जगतसिह को गद्दी से उतारने की योजना वनने लगी। जगतसिह के सलाहकारो ने समय रहते राजा को सचेत कर रसकपूर को ड्योढी के 'रस-विलास' से नाहरगढ के किले मे पहुचवाया जहा वह उम्र भर कैद रही। रसकपूर के निष्कासन और उसे कारावास मे रखने मे दूणी के राव और जगतसिह के मत्री दीनाराम वहुरा का बडा योग था।

जयपुर के इतिहास और नगर-पासाद की परम्पराओ से परिचित लोगो का कहना है कि महाराजा माधोसिह तो मुफ्त मे वदनाम है, वास्तव मे असाधारण मर्दानगी तो जगतसिह की थी और रसकपूर के साथ उसके इतने गाढे लगाव का भी यही रहस्य था। हाथ से वनी तस्वीरो मे जगतसिह के आकार-प्रकार को देखकर यह सही भी लगता है।

कुल पन्द्रह वरस और चार महीने राज कर जगतसिह जव 1818 ई मे मरा तो उसके कोई पुत्र नही था।

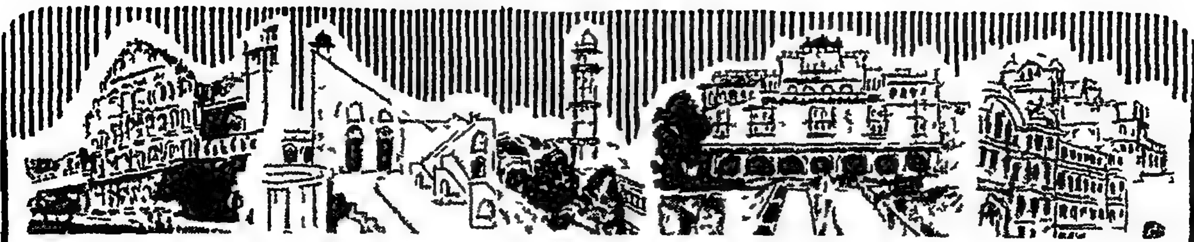
---

13 व्रजनिधि ग्रथावली, काशी, 1933,पृष्ठ 45-46 तथा मत्स्य देश का इतिहास (ह लि)

14 ए व्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर, ठा फतहसिह, पृष्ठ 45

15 मत्स्य देश का इतिहास के अनुसार 13 रानिया और 18 खवास मातुरे थी जिनके नाम थे रूपरस, जैतराम चन्दन चचा, केसर चर्चा, कमलवदन, सरसराय, निरत विलास, गतिसरस सुन्दर विलास, गोगा, जेठी, सुख समाज, प्रभाती प्रवीणराय, कुनणी भगतण, रसकपूर भगतण, चदा बीवी, ग्यानी पडदायत और मगनराय।

16 टाड राजस्थान किन्तु प गा ना बहुराका कहना है कि इस मर्जीदान तवायफ न इस कृपा का लाभ नही उठाया। शायद उसे तुष्ट करन क लिए अन्य कीमती चीजा की सौगात काफी थी।



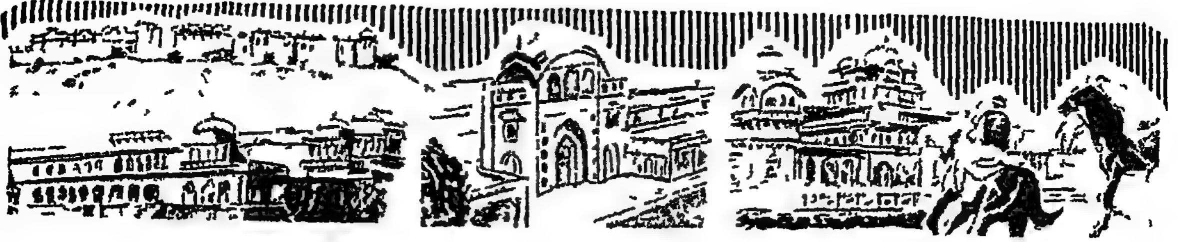
वैसे चार वेटे हुए थे, पर जीवित एक भी न रहा। एक रानी भटियाणी के गर्भ था और जनानी ड्योढी मे यह वात कोई जानता था और कोई नही। षडयन्त्र यह किया गया कि नरवर के मोहनसिह को मानसिह के नाम से राजा वना दिया जाय। तत्कालीन राजपूताना के ए जी जी सर डेविड ऑक्टरलोनी ने यद्यपि जगतसिह के मरते ही अपना एक मुशी राजमहल की गतिविधियो पर नजर रखने के लिए भेज दिया था पर ड्योढी के नादरो के मुखिया मोहनराम ने इस मुशी को भी फोड लिया और दो-एक वडे जागीरदारो की मिली-भगत से मानसिह को गद्दी-नशीन कर डाला। ए जी जी के मुशी की मुशीगीरी भी ऐसी चली कि ब्रिटिश सरकार से भी मजूरी का औपचारिक खरीता आ गया।

अब तो जनानी ड्योढी मे और वाहर सरदारो-जागीरदारो मे भी वडी खलवली मची कि यह सब कुछ क्या और कैसे हो गया? यह तथ्य प्रकट किया गया कि महारानी भटियाणी सचमुच गर्भवती है। सामोद के रावल वैरीसाल ने वडे-वडे सरदारो की एक वैठक सरवता मे बुलाई और यह तय किया गया कि अन्य रानिया और प्रमुख ठाकुरो की ठकुरानिया जाचकर बताये कि रानी सचमुच गर्भवती है या नही। यह जाच हुई और सभी उपस्थित सरदारो ने दस्तावेज लिखकर हस्ताक्षर किये कि यदि लडका होगा तो वही "हमारा मालिक और जयपुर का महाराजा होगा।"

जयपुर को इस भटियाणी के पेट से तीसरा जयसिह मिला और जगतसिह की वाईस रानियो (अव माजियो) और चौवीस पडदायतो से भरी जनानी ड्योढी ने मोहन नादर और उसके सहयोगियो के कुचक्र को विफल बना दिया। कोशिश तो वहुत की गई कि जब तक नवजात राजा बडा न हो जाय, नरवर के मानसिह को ही राज करने दिया जाय, किन्तु सामोद के रावल वैरीसाल और चौमू के ठाकुर कृष्णसिह ने, जिनका अग्रेजो से अच्छा वसीला था, यह पार न पडने दी। मानसिह चन्द दिन ही राजा रहकर गद्दी से उतर गया और जयपुर की जनता जयसिह के वडे होने और राज-काज को सुधारने की वाट जोहने लगी।

यह आशा भी दुराशा मे ही वदल कर रही। जयसिह की मा भटियाणी थी और इस नाते शिशु राजा की ओर से राज के रथ की लगाम उसी के हाथ मे गई। सवसे वडी माजी थी राठौडजी, उसे भला यह कैसे सुहाता। वह नाराज होकर अपने पीहर जोधपुर चली गई। पीछे रही नवयुवती माजी भटियाणी और उसका मर्जीदान कामदार सघी झूथाराम, जो दीवाण या रेवेन्यू मिनिस्टर बना दिया गया था। प्रधानमत्री वैसे रावल वैरीसाल था, पर उसकी चलती नही थी। उससे अधिक वोलबाला तो रूपा वडारण का था जो माजी की प्रधान सलाहकार थी। रूपा और सघी झूथाराम की मिली-भगत ने माजी को वरावर वहकाये और भटकाये रखा और राजकोष का सरासर अपव्यय होने लगा। जगतसिह की ओर से 1818 ई मे रावल वैरीसाल ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ जो सधि की थी, उसके अनुसार कम्पनी सरकार को दी जाने वाली 8 लाख रुपये सालाना खिराज की रकम भी वकाया चलने लगी। वदइन्तजामी मे राज्य की आय भी घटकर 20 से 30 लाख रुपये के बीच ही रह गई।

उन दिनो सारे शहर मे जनानी ड्योढी के कुचक्रो और षडयत्रो के ही चर्चे रहते। माजी वडी राठौडजी की वडी इच्छा थी कि सामोद और चौमू के नाथावत सरदार अपनी हैसियत और दवदवे का कुछ जमकर उपयोग करे और सरावगी कामदार (सघी झूथाराम) और रूपा वडारण के चगुल से माजी भटियाणी को निकाले। यह काम आसान नही था और रावल वैरीसाल तथा ठाकुर कृष्णसिह चौमू ने उपयुक्त और अनुकूल समय की प्रतीक्षा करना ही उचित समझा। किन्तु जव माजी राठौडजी जोधपुर चली गई तो एक हनुमत चेला ने राठौडजी के कामदार और अपने प्रतिद्वन्दी फौजूराम की ड्योढी मे ही हत्या करवा दी। इस पर वडा हल्ला मचा और कम्पनी सरकार को जयपुर मे अपना पोलीटिकल एजेन्ट या रेजीडेट रखने के लिये विवश होना पडा। 1मार्च, 1821 को सवाई जयसिह की मेवाडी रानी के वाग "माजी के वाग" मे रेजीडेंसी या 'अजटी' की



स्थापना हुई और कैप्टेन जे स्टीवर्ट सबसे पहला रेजीडेन्ट बनकर इसमे रहने लगा। इस नियुक्ति और रावळे की हलचलो पर अग्रेजो की बढती हुई निगरानी ने माजी भटियाणी को बहुत कुढा दिया।[17]

रावल बैरीसाल को रेजीडेन्ट अग्रेजो का हिमायती और पक्षपाती मानता था और यह सही भी था। रेजीडेन्ट की पूरी कोशिश यह रहती थी कि सब अधिकार रावल बैरीसाल ही भोगे और जनाने के हस्तक्षेप से सघी झूथाराम और उसके धडे के दूसरे लोग जो उसी के सगे-सम्बन्धी थे, अनुचित लाभ न उठाने पाये।

रेजीडेन्ट ने अपने यहा आने के छह माह बाद ही सारा राज-काज रावल के अधिकार मे कर दिया, किन्तु रावल बैरीसाल को ही यह सकोच रहा कि माजी की अवहेलना करना भी उचित नही होगा। इस सकोच ने रूपा बडारण और सघी झूथाराम को अपनी खुराफाते जारी रखने का लायसेस दे दिया। आखिर रेजीडेट ने कपनी सरकार की ओर से एक लम्बा-चौडा रुक्का लिखकर माजी को सूचित और सावधान किया कि जो कुछ ड्योढी मे हो रहा है, सरकार उससे अवगत है और शासन मे खीचतान बद होनी चाहिये। इस चेतावनी से माजी सहम गई।

माजी तो सहमी, किन्तु झूथाराम और रूपा बडारण नही। आये दिन शिकवा-शिकायत, टटे- बखेडे चलते ही रहते और अग्रेज रेजीडेन्ट इन छोटी-मोटी शिकायतो और बखेडो मे कहा-कहा पडता। इसमे रावल बैरीसाल कुढ कर 1825 ई मे जयपुर से विदा ले गया और सामोद ही रहने लगा। उसका भाई कृष्णसिह भी जयपुर की फौज-पलटन का अपना अधिकार छोडकर चौमू जा बैठा। सघी झूथाराम अब खुलकर खेलने लगा और भटियाणी की मजूरी लेकर चौमू और सामोद की जागीरे जब्त करने के उद्देश्य से उसने सेना को धावा बोलने का भी आदेश दे दिया। बाडी नदी के इस पार से चौमू पर तोप के गोले चलाने मे सफलता नही मिली और समीपवर्ती मोरीजा गाव के पहाडी किले को इस काम के लिये मागा गया। किन्तु मोरीजा के ठाकुर ने चोमू ठाकुर से अपने मन-मुटाव के बावजूद किला नही दिया। सघी और उसकी सेना विफल मनोरथ जयपुर लौट आये।

इस बीच माजी राठौडजी भी जोधपुर से जयपुर आ गई और 1828 ई मे जब बालक जयसिह नौ साल का हुआ तो जमुवा रामगढ मे जमवा माता के यहा उसके जडूले (मुडन) मे सम्मिलित होने के लिए बडी होने के नाते उसी ने सामोद और चौमू के सामतो को रुक्का भेजा।

राजाओ को देखने के लिए रजवाडो की जनता की उत्कठा वे सभी लोग जानते और मानते है जिन्होने राजाओ और रजवाडो का माहौल देखा है। फिर जयसिह तो कई सालो के इतजार के बाद पहली बार जनाने महलो से निकल कर बाहर आया था। वह जमवा-रामगढ गया तो जयपुर मे जबर्दस्त हुजूम हुआ। दूर-पास के गावो से भी हजारो लोग शहर मे राजा की सवारी देखने आये और बडी रेल-पेल मची। जय-जयकार के बीच जयसिह नाम का जयपुर का यह तीसरा राजा जमवा माता के गया और वापस आया। रावले ने बालक राजा को बडी अनिच्छापूर्वक बाहर निकाला था और सघी झूथाराम, जो अब राज्य का सर्वेसर्वा अधिकारी था, सशक होकर इस जुलूस को देख रहा था कि यह बालक बडा हो रहा है और वह दिन दूर नही जब अपने राज्य की वह स्वय देखभाल करने लगेगा।

जमवा माता के यहा से लौटने पर जयसिह तृतीय सघी झूथाराम और उसके सघ के सदस्यो की आख का काटा बन गया। इस सघ मे पूरे एक दर्जन खुराफाती थे। स्वय झूथाराम के अलावा अमरचन्द मन्नालाल, शिवलाल, हुकमचन्द, हिदायतुल्ला खा, डिग्गी ठाकुर मेघसिह, मनोहरपुर का हनुमतसिह, साहीवाड का दासीपुत्र चिमनसिह, बिसाऊ का श्यामसिह, श्रीजीमहन्त और माजी की मजीदान रूपा बडारण इसमे

17 जनानी ड्योढी के षडयन्त्र- कुचक्रों का यह विवरण ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर (ठा फतहसिह), हिस्ट्री आफ जयपुर स्टेट (डा मथुरालाल शर्मा) जयपुर एण्ड दि लेटर मुगल्स (एच सी टिक्कीवाल) तथा नाथावतो का इतिहास (हनुमान शर्मा) के आधार पर सकलित किया गया है।



शामिल थे। इनमें आधे तो संघी के अपने आदमी थे, भाई-बेटे, भाणजे या दामाद जो मुसाहब, दीवान, फौजबख्शी, खजांची सब कुछ बने हुए थे। इनमें कभी कोई पकड़ा भी जाता तो दूसरा उसे तत्काल बचा लेता। यह राज जनता में तो सरासर बदनाम हो गया और लोगों ने दुखी होकर एक बार तो झूथाराम का काम तमाम कर देने की भी ठानी। लेकिन संघ ऐसा जबरदस्त था कि यह षडयंत्र रचने वाले ही पकड़े गये। खेतड़ी के वकील बिजयसिंह और छह अन्य लोगों को इसके लिये सजा मिली।

जयसिंह ने किशोरावस्था में ही सौम्य और समझदार शासक के रूप में बड़े होने का परिचय दिया। 1832 ई. में रानी चन्द्रावतजी से उनका विवाह हुआ और अगले वर्ष उनकी माता माजी भटियाणी की मृत्यु हो गई। अब तो जनानी ड्योढ़ी में रूपा बडारण और भी शहजोर हो गयी। इसके पहले 1831 ई. में जयसिंह अजमेर जा चुका था। वहां वह उदयपुर के महाराणा और अनेक अंग्रेज अधिकारियों से मिला था। पुष्कर में स्नान करने के बाद वह कुछ अंग्रेजों को अपना मेहमान बनाकर जयपुर भी लाया था और उसकी यह हलचल संघी झूथाराम और उसके सहयोगियों को नहीं सुहा रही थी। संघी और उसके संघ को भय था कि यह राजा जल्दी ही उनसे सब अधिकार छीन लेगा। उसने राजा पर बड़ी कड़ी निगरानी रखी। हर समय संघी के भेदिये छाया की तरह उसके पीछे लगे रहते। संघी की आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई भी न राजा से मिल सकता था और न बात कर सकता था, ड्योढ़ी के चेले और खवास तक नहीं, क्योंकि महलों में रूपा बडारण सब कुछ थी। राजा की सवारी या जुलूस तक में कोई सरदार या जागीरदार उससे बात नहीं करता था। ऐसा आतंक था संघी का।

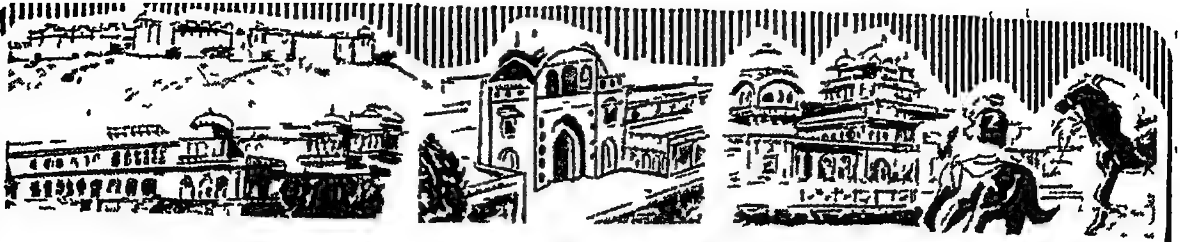
संघी की नीयत के प्रति सामोद के रावल को अपने गांव बैठे भी बड़ी शंका और चिन्ता होने लगी थी कि कहीं यह बेईमान अपने स्वार्थ-साधन के लिये राजा की जान न ले बैठे। रावल ने वास्तव में अंग्रेजों को इसकी सूचना भी दी, किन्तु जयसिंह के साथ होनी होकर ही रही। संघी और रूपा बडारण ने इस उदीयमान राजा के खून से अपने हाथ रंग लिये।

1834 ई. में बसन्त पंचमी का दिन था। शहर में राजा की सवारी निकली। एक हाथी पर जयसिंह और दूसरे पर खवासी में दूणी के राव जीवनसिंह चल रहे थे। दोनों की नजरें मिलीं तो महाराजा ने राव से कुछ कहा और इतनी-सी बात होते ही संघी झूथाराम को भय हो गया कि राजा अब उसके चंगुल से निकलना चाहता है। उसी रात वह राजमहल में गया और किसी एकान्त कमरे में जयसिंह को बुलाकर उसके प्राण ले लिये। पंचमी की सवारी देखे हुए जयपुर के निवासियों ने छठ और सप्तमी को अपने राजा को न देखा और न कोई बात सुनी, किन्तु अष्टमी को सारा शहर यह सुनकर हतप्रभ रह गया कि महाराजा मर चुके हैं। संघी के संघ ने सारा काम बड़ी सावधानी से किया था। जनश्रुति है कि महाराजा को किसी दासी ने जहर दिया और साथ ही शस्त्र प्रहार भी किया गया। खून से लथपथ महाराजा के शरीर को कनात में लपेट कर एक कोने में खड़ा कर दिया गया और बाद में कहा यह गया कि किसी गुप्त रोग से महाराजा मर गये।[18] गेटोर में तरुण महाराजा का दाह-संस्कार भी फौज का घेरा लगाकर किया गया, किन्तु क्रुद्ध भीड़ वहां पहुंच गई और संघी और उसके आदमियों पर पत्थरों की बौछार हुई। सारा शहर संघी और उसकी पूरी बिरादरी के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ। अनेक जैन मंदिर तोड़ डाले गये और कइयों में शिवलिंग स्थापित कर दिये गये। संघी अपने परिवार सहित चार दिन तक महलों में ही छिपा रहा, बाहर निकलने का उसे साहस तक न हुआ।

ब्रह्मपुरी के बंशीधर भट्ट ने जयपुर के इतिहास की इस दुखद घटना पर यह टप्पा अपने तमाशे में गाया था

पांचे ने तो फाग खिलाया
छठ ने प्याला पाया।

18 नाथावतों का इतिहास हनुमान शर्मा पृष्ठ 26।



सातै नै तो गाबा-गूबी,
आठै दाग लगाया।

जयसिह तृतीय के चार रानिया थी।

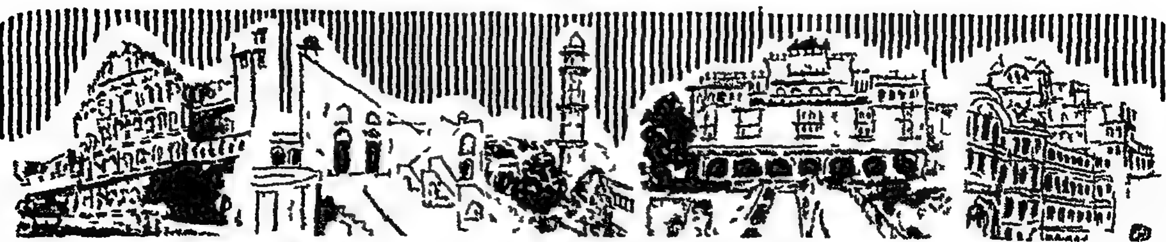
जयपुर मे तरुण महाराजा जयसिह की हत्या और उसकी प्रतिक्रिया मे नगर मे भारी उपद्रव होने के समाचार मिलते ही ए जी जी अजमेर से चलकर यहा आया और उसने सामोद के रावल वैरीसाल और चौमू से ठाकुर लक्ष्मणसिह को भी बुलवा भेजा। सघी झूथाराम को जब पता चला कि सामोद और चौमू के सामतो ने फतहटीबा आकर डेरे किये हैं तो उसने अपना माल-असबाब और अनुचित रूप से जुटाया गया धनदौलत छकडो मे भरवाया और भागने की तैयारी करने लगा। रावल वैरीसाल के आदमी पहले से ही चौकस थे। उन्होने इन छकडो को आगे न जाने दिया और सारा माल जब्त कर लिया। फिर तो सघी के माल की और तलाश हुई और कई लाख रुपया नकद तथा लाखो के जेवरात जो उसने शहर के विभिन्न सेठ-साहूकारो के पास अपने अमानती जमा करा रखे थे, जब्त कर लिये गये। जनानी ड्योढी मे भी रूपा वडारण का छिपाया हुआ काफी माल बरामद किया गया।

ए जी जी की मजूरी लेकर रावल वैरीसाल ने सघी झूथाराम को कुछ दिन तो नाहरगढ मे कैद रखा और फिर दौसा के किले मे भेज दिया। रूपा बडारण को भी इसी प्रकार पहले पुराने घाट मे विद्याधर के वाग मे रखा गया और फिर माधोराजपुरा के किले मे भिजवा दिया गया।

यो यह दो कुजीव तो हटे, किन्तु राज-काज मे जनानी ड्योढी का दखल यथावत् वना रहा। जयसिह अपनी मृत्यु के समय छह माह के रामसिह को छोड गया था। यही बालक वडा होकर ऐसा प्रतापी राजा हुआ कि जयपुर के इतिहास मे अमर है। इस बालक के वडे होने तक माजी चन्द्रावतजी रीजेन्ट या सरक्षक रही और विडम्बना यह थी कि इस युवा माजी को भी अपनी सास माजी भटियाणी के समान रावल से चिढ और सघी झूथाराम तथा रूपा वडारण से ही प्यार था। सघी और रूपा को जेल भेजने के साथ ही रावल बैरीसाल को जब ए जी जी ने रियासत का कर्ता-धर्ता बना दिया तो भीतर ड्योढी मे और वाहर सघी के गुट के लोगो द्वारा फिर षडयन्त्र होने लगे कि कैसे रावल से पिड छूटे और सघी और उसके धडे की बन आये। इसके लिये आवश्यक था कि माजी साहब ही खुद-मुख्तार रहे और रावल वैरीसाल को अयोग्य एव अक्षम सिद्ध किया जाय।

30 जून, 1835 को ए जी जी लाकेट अपने सहायक ब्लेक और दो सेक्रेटरियो के साथ रावल वैरीसाल को पूरे अधिकार देने और जनानी ड्योढी का "खरकसा" मिटाने के लिये ड्योढी मे गये। अपना काम निवटाकर जब यह लोग वापस आने लगे तो छिपे हुए कुचक्रियो ने चौक मे ही ए जी जी पर तलवार का वार किया जिससे उसे तीन घाव आये। ए जी जी के सहायक ब्लेक ने इस अपराधी को वही पकड लिया, खून से सनी उसकी तलवार छीन ली और उसके दोनो हाथ पीछे बाधकर जेल भेज दिया। ए जी जी पालकी मे वैठकर सही-सलामत रेजीडेसी या माजी के बाग पहुच गया। दोनो सेक्रेटरी भी घोडो पर सवार होकर उसके पीछे-पीछे वहा पहुच गये।

यह सब तो निकल गये, किन्तु ब्लेक पीछे ही रह गया। वह एक हाथी पर सवार होकर निकला तो खून से सनी नगी तलवार उसके हाथ मे ही थी। ड्योढी के आगन मे जो कुछ हुआ उसके बाद षडयत्रकारियो ने अफवाह यह फैला दी कि अग्रेज ने शिशु राजा रामसिह की हत्या कर डाली है। तेजी से आता हाथी और उस पर नगी तलवार के साथ ब्लेक को देखकर लोगो ने ऐसा ही माना और रास्ते भर उस पर पत्थरो की बौछार हुई। ब्लेक के फीलवान ने शहर से बाहर निकलने की जी-तोड कोशिश की, किन्तु अजमेरी दरवाजे के दरवान हिदायतुल्ला खा ने दरवाजा बद कर दिया और खोलने से साफ इकार हो गया। जो चपरासी हाथी के साथ प्यादा भाग रहा था, मारा गया और फीलवान भी पहले घायल हुआ और फिर मर गया। एक



छडी-वरदार और दो अन्य चपरासी भी जान से गये। घवराये हुए ब्लेक ने अपनी जान बचाने के लिये किशनपोल मे एक मदिर[19] के सहारे हाथी को खडा किया ओर फाद कर मदिर मे शरण ली, किन्तु मदिर के चौकीदारो ने भी उसे राजा का हत्यारा समझकर घसीट कर बाजार के बीच मे ला पटका और काम तमाम कर दिया। मारने वालो मे थे दो मीणा चौकीदार, दो मुसलमान और एक राजपूत रणजीतसिंह। इन सबको तत्काल फासी पर लटकाया गया और सारे काड की बाजाब्ता जाच-पडताल शुरू हुई। जो कुछ हो चुका था वह बडा गम्भीर और चिन्ताजनक था और इससे जनानी ड्योढी मे भी एक बार तो सन्नाटा छा गया।

जयपुर के पोलीटिकल एजेट ब्रुक[20] ने लिखा है कि ब्लेक हत्याकाड के पीछे सघी गुट का यही उद्देश्य था कि शहर में विद्रोह हो जायेगा तो ए जी जी रावल बैरीसाल को बर्खास्त करने के लिये विवश हो जायेगा और फिर माजी चन्द्रावतजी की इच्छानुसार नये मुसाहिब बन सकेंगे जिनमे झूथाराम और उसके सगी- साथियो की ही बन आयेगी। किन्तु यह पासा उल्टा पडा। जो जाच हुई, उससे सिद्ध हो गया कि दूर जेल मे बैठे झूथाराम और दीवान हुकमचन्द ही इस षडयन्त्र के सूत्रधार थे। झूथाराम के कुछ पत्र भी यह साबित करते थे। बाकायदा मुकदमा चलाने के बाद झूथाराम, हुकमचद, हिदायतुल्ला, साह शिवलाल और माणकचन्द को दोषी पाया गया और इन सभी को फासी की सजा सुनाई गई। कुछ अन्य लोगो को जिनमे फौज बख्शी मुन्नालाल भी था, जेल भेजा गया। किन्तु इस दण्ड मे गवर्नमेन्ट ने फेरबदल कर दिया। अन्तिम आदेश यह हुए कि केवल अमरचन्द और हिदायतुल्ला को फासी पर लटकाया जाये, झूथाराम और हुकमचद को चुनार के किले में आजीवन कारावास मे रखा जाये और अन्य लोगो को भिन्न-भिन्न अवधि की जेल की सजा दी जाय।

इन आदेशो का भी पूरा पालन नही हुआ। आदेश आने से पहले ही दौसा के किले मे झूथाराम ने दम तोड दिया और जयपुर की जेल मे हुकमचद भी मर गया। अन्य लोगो ने जो सजा मिली थी, वह भोगी और हिदायतुल्ला खा तथा अमरचद को फासी हो गई।

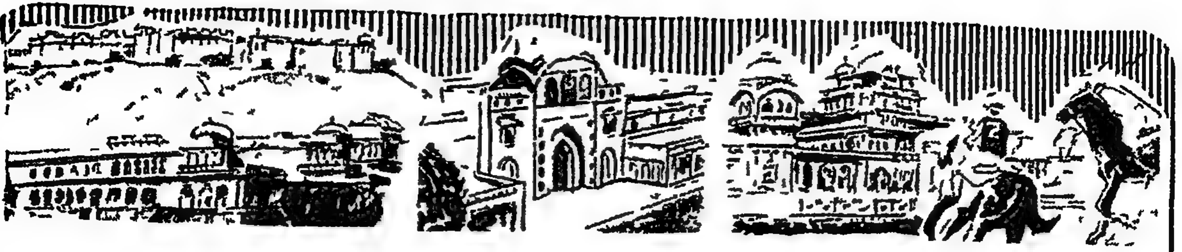
इस हत्याकाड, मुकदमे और दोषियो को सजा हो जाने से अग्रेजो का ऐसा दबदबा बैठा कि माजी चन्द्रावतजी और रावलजी ने कम्पनी सरकार के बकाया छब्बीस लाख रुपये तत्काल चुका देने मे ही भला माना। इससे रियासत की माली हालत बद से बदतर हो गई। सितबर, 1838 मे गवर्नर जनरल के आदेश से रॉस नामक एक अग्रेज अधिकारी जयपुर की चौपट अर्थ-व्यवस्था की जाच करने और सुधार के उपाय खोजने के लिये यहा आया।

उसने आते ही समझ लिया कि राज के हाकिम अपने अलग-अलग धडे बनाकर बैठे है। रावल शिवसिह (बैरीसाल की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर उसी का पुत्र) से माजी साहिबा राजी नही है और उसे निकालने या निकलवाने पर आमादा है। माली हालत ऐसी खस्ता है कि सरकार को जो पाच लाख रुपये देने होते है उनमे से साढे तीन लाख साहूकारो से उधार लेकर दिये गये है। राज की आमदनी 30 लाख रुपये सालाना और खर्च 32 लाख है।

रॉस के सुझाव पर सरकार ने ग्वालियर के रेजीडेट कर्नल सदरलैण्ड को राजपूताना का ए जी जी बनाकर भेजा और उसे जयपुर की हालत ठीक करने का भी अधिकार दिया। उसने यह तजवीज की कि कच्छ की तरह जयपुर मे भी पोलीटिकल एजेन्ट सरदारो की एक पचायत की सलाह से राज-काज चलाये। इस पर रावल शिवसिह ने भी सहमति दी। कर्नल सदरलैण्ड ड्योढी मे गया और पर्दे के उस पार खडी माजी चन्द्रावतजी को इस तजवीज से अवगत कराया। कर्नल सदरलैण्ड माजी से जो कुछ पूछता था, उसका उत्तर माजी साहिबा की ओर से एक बडारण देती थी। जब माजी को बताया गया कि राज-काज मे अब उसका कोई

19 रूप बिहारीजी का मन्दिर

20 ए पोलीटिकल हिस्ट्री आफ जयपुर, 38



हाथ नही रहेगा, तो वह स्वभावत बहुत खिन्न और अप्रसन्न हुई।

यह पचायत वनी जिसमे रावल शिवसिह और चौमू के ठाकुर लक्ष्मणसिह के साथ झिलाय और बगरू के ठाकुर तथा लवाण का राजा शामिल थे। पोलीटिकल एजेन्ट कर्नल रॉस सर्वोच्च अधिकारी था। यह व्यवस्था भी थोडे ही दिन चल पाई। माजी चन्द्रावतजी की शह से झूथाराम गुट के अवशिष्ट लोगो ने डिग्गी ठाकुर मेघ सिह को भडकाया और वह रॉस को कोई चिट्ठी देने के बहाने पाच हजार आदमियो को लेकर जयपुर पर चढ आया। इस विद्रोह को दवाने के लिये शेखावाटी ब्रिगेड बुलाई गई और दूदू के पास डिग्गी के इस दल को तितर-वितर कर दिया गया।

जयपुर का रेजीडेट जब थर्सवी वना तो इस अग्रेज ने यहा के अस्त-व्यस्त राज को व्यवस्थित करने, खर्च घटाने तथा जनहित के कई काम कराने मे बडी पहल की। गवर्नमेट को दिये जाने वाले कर और कर्ज की रकम भी उसने घटवाई। जव वह आया तो रियासत की आय 23 लाख और व्यय 32 लाख का था। थर्सवी ने 25-28 लाख की आय और 20-22 लाख का खर्च बाधा। 40 लाख की वकाया जो सालो से चली आती थी, उसे भी साफ कराया। राजपूताना के ए जी जी ने जव पुरानी वकाया को माफ करने और 8 लाख के वजाय 4 लाख ही कर के वसूल करने का आश्वासन देते हुए एक खरीता भेजा तो 1841 ई मे चन्द्रमहल के मुख निवास मे एक दरवार हुआ और इसकी खुशी मनाते हुये सरदारो-जागीरदारो ने वालक महाराजा रामसिह को नजरे पेश की। पर्दे के पीछे बैठी माजी चन्द्रावतजी भी इससे वडी खुश हुइ।

लेकिन माजी चन्द्रावतजी की खुशी अधिक दिन नही टिक सकी। असली अधिकार अब अग्रेज के हाथ मे था और यह माजी को नही सुहाता था। राज-काज मे हुये सुधार के कारण सब ओर "तस्वीर साहब"[21] के चर्चे थे और इससे माजी की कुढन और बढती थी। 1843 मे माजी साहिबा ने ताकत फिर से अपने हाथ मे लेने के लिये आखिरी दाव फेका। इस षडयत्र मे भी माजी का भाई मानसिह चन्द्रावत और पुराने झूथाराम गुट के लोग ही शामिल थे।

हुआ यह कि रावल शिवसिह को साथ लेकर थर्सवी खेतडी गया हुआ था और पीछे से ठाकुर लक्ष्मणसिह उसका काम देख रहा था। एक रात जब शहर के मोरी- दरवाजे सब बद हो चुके थे और लोग या तो सो गये थे या सोने जा रहे थे, अकस्मात् ही जलेब चौक मे बदूको के फायर होने लगे। इन आवाजो से भयभीत नगर-निवासी इधर- उधर भागने लगे। सयोग से रावल शिवसिह कुछ देर पहले ही जयपुर लौट आया था। सूचना मिलते ही उसने फौज बख्शी लक्ष्मणसिह को घटनास्थल पर भेजा, किंतु सब खिडकी- दरवाजे बद थे और भीतर कोहराम मचा हुआ था। लक्ष्मणसिह ने तुरत गोविन्ददेवजी की ड्योढी का रास्ता पकडा और चन्द्रमहल होते हुये अपने सवारो के साथ जलेब चौक मे आ पहुचा जहा काबुलियो या अफगानी पठानो का एक समूह यह आतक मचा रहा था। कुछ उपद्रवी तो मारे गये और कुछ गिरफ्तार कर लिये गये। इनके दो मुखियाओ को गोली से उडा दिया गया।

सारे मामले की जाच से सिद्ध हुआ कि माजी चन्द्रावतजी के भाई ने इन काबुलियो को अपने यहा नौकर रखा था और वही इस षडयत्र को रचने वाला था। स्वय माजी और उनकी सलाहकार वडारणो ने इस दगे को उकसावा दिया था। रेजीडेट नाराज तो बहुत हुआ, किंतु माजी और जनानी ड्योढी की इज्जत का खयाल रखकर मामले की लीपापोती कर देना ही उचित समझा गया। हा, मानसिह चन्द्रावत को आठ साल के लिये जयपुर से निष्कासित कर दिया गया और रायचन्द नामक एक हरकारे को फासी पर लटकाया गया।

जयपुर के लोगो ने इस घटना को जिसे कही "बलवा" तो कही "अफगानी युद्ध" बताया गया है, "ठोवर्‍यो की लडाई" कहा। तत्कालीन चद नामक एक कवि ने इस भडकाये हुये दगे का इस प्रकार वर्णन

21 थसवी को जयपुर के लोग इसी प्रकार उच्चारित करते थे



किया [22]

आये दूर देश ते पठाये काल किकर के, छाये छेडि कावुल लजाये निज खेत को।
आये कूदि अदर, सिखाये भूप मदिर मे, वदर लो मूढ तत्काल तोरि सेत को।।
चाह के सुनत चढे चौमू नरनाह "चन्द", श्रोणित के रग मे रगी है भूमि रेत को।
मेवा खाय माते- मारे मुगल पठनन को, मेरे जान दिया था कलेवा धूम्रकेतु को।।

किन्तु, "ठोवरयो ' की लडाई के वाद राजकाज मे जनानी ड्योटी का हस्तक्षेप सदा के लिये समाप्त हो गया। 1843 इ की जनवरी मे मेजर थमवी या ' तस्वीर माहव चला गया आर उसके स्थान पर मारवाड से मेजर लडलो या "लड्डू माहव"[23] रेजीडेट वनकर जयपुर आया। इन अग्रेज ने उन अनेक जनोपयोगी कामो की भूमिका वाधी जो वडे होकर महाराजा रामसिह ने आजीवन निभाइ। लडलो ने मती की अमानवीय प्रथा को वद करवाया और इम काम मे झिलाय के राजावत ठाकुर भोपालमिह मे उसे पूरा समर्थन आर महयोग मिला। सारे रजवाडो मे जयपुर ही तव ऐसी रियासत थी जहा सती होना कानूनी अपराध करार दिया गया। इससे पूर्व दास प्रथा का अत 1839 मे ही किया जा चुका था। राजपूतो मे नवजात लडकियो को मार डालने की परम्परा थी, उसे भी वद किया गया। राज्य मे अनेक स्थानो पर वाध, कुए ओर तालाव वनवाये गये, स्कूल खोले गये ओर सडके वनाई गई। जयपुर शहर को पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिये अमानी- शाह के नले पर पक्का वाध वनाया गया, किंतु यह कच्ची धरती पर वना था, इसलिए दस साल वाद टूट गया।

राज- काज के लिये जो पचायत वनी हुइ थी, उसका एक सरदार मर जाने पर रावल शिवसिह ओर ठाकुर लक्ष्मणसिह के हाथ मे पूरी सत्ता आ गई और फोज वख्शी होने के नाते लक्ष्मणसिह वडा ढीठ ओर दुराग्रही हो गया। उसके व्यवहार से रुष्ट होकर अन्य सरदार अपने- अपने ठिकानो पर चले गये। रेजीडेट और ए जी जी भी अव इनसे प्रसन्न नही थे, किंतु इन शक्ति- सम्पन्न सामन्तो को हटाना भी आसान नही था। सत्ता भ्रष्ट करती है और इन सामन्तों के विरुद्ध भी अव अपने मर्जीदानो को जागीर वख्श देने ओर राजकोष का रुपया हडपने की शिकायतें होने लगी। राजपूताना के ए जी जी के आदेश से नई पचायत वनाई गई जिसे इन दोनो नाथावत सरदारो के विरुद्ध शिकायतो की जाच का अधिकार भी दिया गया। नतीजा यह निकला कि पिछले दस सालो मे रावल ओर ठाकुर द्वारा दी गई वयासी हजार रुपये मे अधिक की जागीरें खालसा की गई और लगभग पाच लाख रुपये के गावो को इजारे देना भी गैर- कानूनी ठहराया गया। तीन लाख रुपये से अधिक का गवन भी निकला, किंतु समुचित प्रमाण के अभाव मे लगभग आधी रकम वट्टे खाते लिखी गई। अव तो लक्ष्मणसिह पचायत मे अलग होकर अपनी जागीर— चोमू— रहने लगा ओर शिवसिह भी जयपुर से विदा होकर सामोद चला गया।

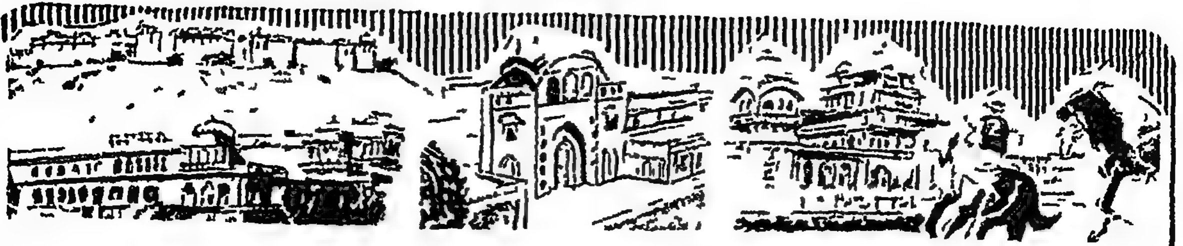
जनानी ड्योढी इन नाथावत सरदारो से कभी राजी नही रहती थी और इनके पतन से माजी चन्द्रावतजी, अन्य माजिया आर वडारणे सचमुच खुश हुई। अग्रेजो की कृपा से ही यह दोनो सामन्त जयपुर के राज- दरवार मे सर्वेसर्वा वने हुए थे आर अव उनके कोप-भाजन हो जाने पर जनानी ड्योढी स्वत ही अग्रेजो की हिमायती वन गई। चालाक रूपा वडारण को यह समझने मे देर न लगी कि यही उपयुक्त अवसर है जव अपनी कारगुजारी से वह पिछली सारी वदनामी को धो सकती है। नेकनामी कमाने की हविश मे उसने उस खजाने का पता दे दिया जो सघी झूथाराम ने जनानी ड्योढी मे छिपाया था। कुल छह लाख रुपये थे जो राज को उधार देने वाले साहूकारो को चुका दिये गये। इससे राज का कर्जा नौ लाख से घटकर तीन लाख ही रह गया।

इस कर्जे को चुकाने के लिए पचायत ने राज के खर्चे मे सत्तर हजार रुपये सालाना की किफायत की थी

---

22 जयपुर रा इतिहास, हनुमान शर्मा पृष्ठ 273

23 'लडलो' का जयपुरीकरण। जैसे थमवी को 'तस्वीर साहव' वैसे ही लडलो को 'लड्डू साहव' कहा जाता था।



और पैंसठ हजार रुपया सालाना माजी चन्द्रावतजी ने अपनी स्वय की जागीर से तथा इससे दुगुनी रकम अन्य माजियो की जागीर से देने का वचन दिया था। रूपा वडारण ने छह लाख का महारा देकर सभी माजियो को इस सकट से उवार लिया। फिर किसी से एक पैसा भी नही लिया गया।[24]

महाराजा रामसिह अव वडा हो रहा था और जयपुर मे इसके साथ एक नइ आशा का सचार हो रहा था। माजी चन्द्रावतजी की आकाक्षाये भी अव जनानी ड्योढी की चहारदीवारी तक ही सीमित होती जा रही थी, किंतु उसकी मर्जीदान केसर वडारण ने इन्ही दिनो टाक रोड पर एक वाग लगवाया जिसे रामसिह ने वाद मे गेस्ट हाऊस वनाकर वढाया और ''रामवाग' नाम दिया। आगे चलकर महाराजा मानसिह ने तो रामवाग को ही अपना निवास वनाया।

रामसिह द्वितीय की नौ रानियो मे से दो रीवा से आई थी। वे अपने पिता और भाइ महाराजा विश्वनाथसिह और महाराजकुमार रघुराजसिह की कृतियो के अलावा अन्य वहुत सी पाण्डुलिपिया और मुद्रित पुस्तके भी लाई थी। इससे जनानी ड्योढी की आवासनियो के पुस्तक- प्रेम आर सुसस्कृत होने का अनुमान लगाया जा सकता है। रामसिह हरफनमौला राजा था और सगीतकारो के अलावा तवायफो को भी पूरा सरक्षण- प्रोत्साहन देता था। कई तवायफे जनानी ड्योढी भी जाती थी और वहा की वाइयो को गाना-वजाना और नाचना सिखाती थी।

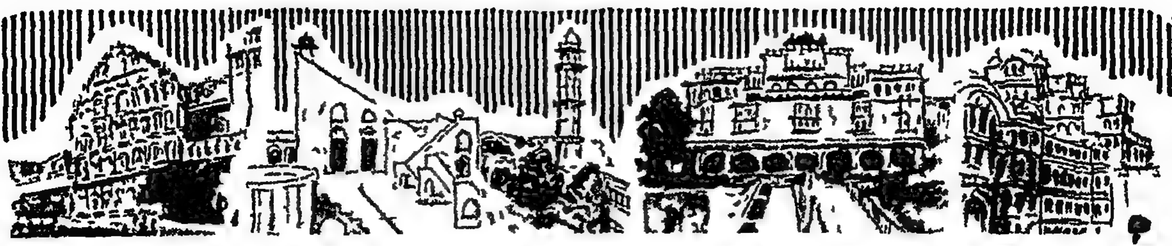
वाइयो की नृत्य- सगीत शिक्षा की ओर महाराजा रामसिह ने विशेष ध्यान दिया और उसके समय की ऐसी अनेक कापिया और कितावे जनानी ड्योढी से प्राप्त हुई है जिनमे नाटको के कथोपकथन या सवाद लिखे है। नाटक की ट्रेनिग लेने वाली वाइयो ने याददाश्त के लिये यह कापिया लिखी थी।

महाराजा रामसिह का राज्यकाल जयपुर के लिए वरदान बनकर आया। सब ओर शांति, व्यवस्था और अमन- चैन का वोलवाला था और रियासत की समृद्धि भी वढ गई थी। 1880 ई मे जव 47 वर्षीय रामसिह के निधन के वाद माधोसिह द्वितीय जयपुर का महाराजा वना तो जमाना बदल चुका था। ब्रिटेन का साम्राज्य ससार की प्रथम शक्ति वना हुआ था और इग्लैड मे मलिका विक्टोरिया के बाद ''केयर- फ्री एडवर्डियन एज'' का सूत्रपात हो गया था। प्रभुसत्ता के इस वुलन्द सितारे के साथ भारतीय राजा- महाराजाओ का प्रताप भी अखण्ड वना हुआ था और जयपुर की जनानी ड्योढी भी इस काल मे वडी वुलन्दी पर थी।

जयपुर के राजकवि- साहित्याचार्य भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने ''जयपुर वैभवम्'' मे महाराजा माधोसिह (1880-1922ई) के गुणो का स्मरण करते हुए एक छन्द मे लिखा है कि नीति के साथ- साथ धर्म मे भी उनकी रुचि अपार थी, उनके जनाने महल सदैव आभूषणो की छमछमाहट से गूजा करते थे और वैभवशाली राजा होने के कारण उन्होने विविध विलास और सुखो का भोग किया था। यह ''गुण- स्मरण'' सोलहो आने सही है। माधोसिह के समय मे नारियो की यह नगरी जनानी ड्योढी सभवत सवसे अधिक आबाद हुई। बीच मे बाजार जैसी प्रशस्त सडक और उसके दोनो ओर हवेलिया या रावले इस काल मे विविध श्रेणियो की नारियो से भर गये क्योकि पाच रानियो के अतिरिक्त इकतालीस पडदायते या रखैले थी जिनकी हाजरी- चाकरी मे पातुरो और वाई- वावलियो के टोले के टोले थे। ये पातुरे या बाइया मुगल हरम की सर्केशियाई लडकियो का अनुकरण था। वादशाह फर्रुखसियर ने ऐसी विदेशी लडकियो की एक टोली मेवाड के महाराणा सग्रामसिह के रावले मे उदयपुर भी भेजी थी जिन्हे वहा ''सहेलिया'' कहा गया और सहेलियो की बाडी विख्यात हुई जो आज तक वहा एक दर्शनीय स्थल है।

बाइयो का अपना श्रेणी- विभाजन था। एक वर्ग ''खालसाई'' बाइयो का था जिनका निर्वाह राजकोष से होता था। उन्हे रुपया, दो रुपया या जो भी पारिश्रमिक निर्धारित होता, राज- कोष से ही चुकाया जाता।

24 ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर, पष्ठ 168

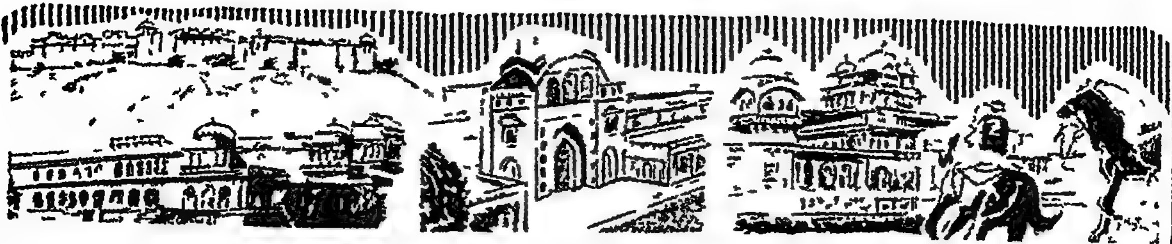


दूसरी "हजूरी" वाइया होती, माजी, महारानियो या पासवानो की अपनी सेविकाये। इनके अपने- अपने अखाडे भी होते। नाच- गाने मे प्रवीण वाइयो के अलग- अलग अखाडो मे दगल या मुकाबले चलते। वाइयो के नाम भी अजीवो-गरीव होते। जिसका काम महारानी की मसनद के पास खडे रहना या वैठना होता, वह "मसनद वाई" कहलाती, मक्खिया उडाने वाली वाई का नाम "माखी वाई" होता और तकिया लगाने वाली "तकियावाई" कहलाती। पोशाक से भी वाइयो की पहचान होती। कुछ वाइया "घाघराहाली" या घाघरेवाली कहलाती तो दूसरी "गरारावाली" और "सूथनावाली"।

महाराजा माधोसिह के असाधारण पुसत्व और रतिप्रियता की कहानिया आज तक कही- सुनी जाती है और इनमे वहुत- कुछ सच्चाई है भी। तभी तो उसकी पडदायतो या रखैलो की सख्या 41 तक जा पहुची थी। इन पर पाच रानिया व्याहिता थी और सब की सेवा- चाकरी के लिये सैकडो की सख्या मे दासिया या बाइया। ड्योढी के भीतर सब व्यवस्था रखने के लिये नादरो का दल था और इन नपुसको की सहायता के लिए "नेवगणे" या नाइने रहती थी। हर शनिवार की रात जनानी महफिल की रात होती और महाराजा जनानी ड्योढी के दरवार मे राग- रग से सरशार रहते। इस महफिल मे कोई "वाई" यदि महाराजा को अपने नाच-गान या कीडा- कौतुक से आकर्षित कर लेती, नजर चढ जाती और अपने आपको असाधारण सिद्ध कर पाती तो निहाल हो जाती। उसे "पडदायत" का दर्जा मिल जाता, जिसका मतलव था पाच हजार रुपये सालाना की जागीर। उसके कोई लडका या "लालजी" जन्म ले लेता तो उसे पाच हजार की जागीर अलग मिलती। रानिया जहा अपने पिता के वशानुसार राठौडजी, जादूणजी, झालीजी, तवरजी जैसे नामो से जानी जाती, वहा पडदायतो को ड्योढी मे ही नया नाम मिलता जिसके अत मे "रायजी" अवश्य लगता। बसन्तीरायजी, लिछमीरायजी, विशाखारायजी, भरतरायजी, हीरारायजी आदि पडदायतो के ही नाम है। विशाखारायजी की मृत्यु कुछ वर्षो पूर्व 1973 मे हुई और अव केवल एक और रायजी उस काल का अवशेष बनकर जनानी ड्योढी मे जी रही है।

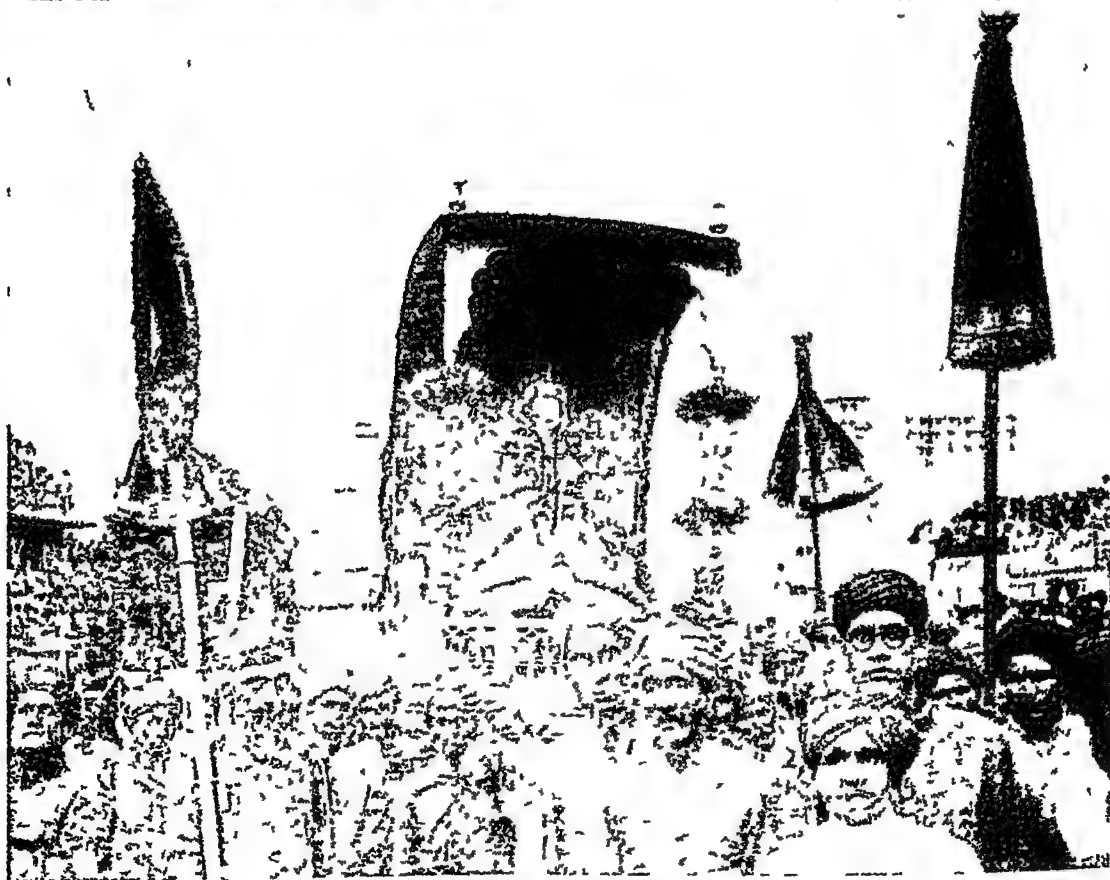
माधोसिह की असाधारण मदानगी का कारण वताने के लिये जयपुर मे यह कहानी विख्यात है कि इस राजा ने किसी वाजीकरण औषधि का सेवन कर लिया था जिससे अपने शासन के आरभिक काल तथा उद्दाम युवावस्था मे उस पर नारी का नशा वेतहाशा सवार था। वात कुछ हद से गुजरते देखी तो तत्कालीन प्रधानमत्री वावू कातिचद्र मुकर्जी ने पहले तो नाहरगढ के किले मे महाराजा का रग- मदिर वनवाया जिसके प्रत्येक कक्ष पर किसी न किसी रखैल के काव्यात्मक नाम का पट्ट आज भी लगा हुआ है। फिर महाराजा की भूख शात करने के लिये उन्होने जनानी ड्योढी को वढाने की तजवीज की। यह तजवीज कुछ ऐसी सूझ- बूझ और समझदारी के साथ की गई कि साप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। आजकल जिस प्रकार सरकार "महिला सदन" या "रेसक्यू होम" चलाती है, उसी प्रकार जनानी ड्योढी मे निराश्रित, पथभ्रष्ट और कुलटा सभी अच्छी- वुरी स्त्रियो को प्रवेश दिया गया और शीघ्र ही एक फौज खडी हो गई। महाराजा और जनानी ड्योढी की आवासिने, दोनो ही वाहर के अपयश से वच गये ओर भीतर ही भीतर सारा सरजाम जुट गया। लेकिन यह जनानी फौज वढी तो राजकोष पर भी भार वहुत वढा— पटरानी को सवा लाख की जागीर, अन्य रानियो मे प्रत्येक को 25 हजार की जागीर, पासवान को सात हजार की जागीर और पडदायत व लालजी को पाच- पाच हजार की जागीर। फिर वाइयो की घाघरा- सूथना और गरारा पलटन का खर्च और नादरो-नेवगणो के नखरे। कहते है, रियासत का एक तिहाई भाग जनानी ड्योढी की "सरकारो" मे वट गया। कातिचद्र मुकर्जी की रीति- नीति से इस खर्च का इलाज तो निकाला ही गया, वडी वात यह हुई कि अपने महल के वाहर महाराजा माधोसिह की ख्याति एक धर्मात्मा और नीति- परायण राजा के रूप मे ही वनी रही।

उस समय गणगौरी वाजार मे एक जवर्दस्त ओरत रहती थी जिसकी पहुच सीधी महाराजा तक थी।

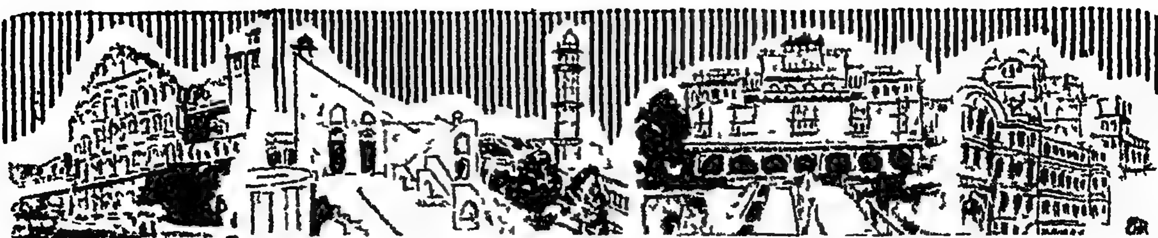


यह पहुच कितनी जवर्दम्त थी, इसका अनुमान इस बात से किया जा सकता है कि सैकडो औरतो मे भरी जनानी ड्योढी मे महाराजा के पाव रखने के साथ ही यह औरत छाया की तरह उसके साथ हो जानी थी और जव तक महाराजा अपने शयनकक्ष मे जाकर गहरी नीद न सो जाता, यह छाया साथ ही लगी रहती थी। वह न कोई रूपवती थी और न लावण्यवती। देखने वालो के अनुसार वह कुरूप और काली-कलूटी थी और जयपुर का "वतौरा" शहर इस वात पर आश्चर्य करता रहता था कि आखिर क्या वात है जो यह औरत इस कदर राजा पर छाई हुई है।

इस औरत को शहर भर मे सेठानी के नाम से जाना जाता था। वह शायद व्यावर मे यहा आई थी इसलिये उसे "नयानगर की सेठानी" भी कहा जाता था। उसके पति रामनाथ सेठ का राज मे पासा इतना वढा कि महाराजा ने उसे छत्तीस कारखानो का हाकिम या मुतजिम बना दिया जिनमे मोदीखाना भी था। सवत् छप्पन के अकाल को याद रखने वाले लोगो को यह भी याद है कि उस कठिन समय मे रामनाथ सेठ की वदौलत ही ग्यारह सेर के जौ विके थे। अपने पति की इस तरक्की और हैसियत के पीछे भी मेठानी का ही प्रताप था। जयपुर मे तव कुछ नाम आख्यान बने हुए थे और खवास वालावख्श तथा रूपराय पासवान की तरह रामनाथ सेठ की इस सेठानी का नाम भी वहु-चर्चित था।



तीज की सवारी का एक दृश्य



मेठानी को महाराजा भी सेठानी ही कहता था और जितनी देर वह अन्त पुर मे रहता, यह नाम उमकी जवान पर वार-वार आता था। जो भी इच्छा, चाह या फरमाइश होती तो सेठानी को सवोधित करके ही प्रकट की जाती और "अन्नदाता" कहने वाली सेठानी आनन-फानन मे उसकी पूर्ति कर देती। मर्दाने मे जैसे खवास वालावख्श के विना महाराजा पत्ता भी नही हिलाता, वैसे ही जनाने मे सेठानी के विना उसका कोइ काम नही चलता। ऐसी जवदम्त और विश्वासपात्र वनी हुई थी यह सेठानी।

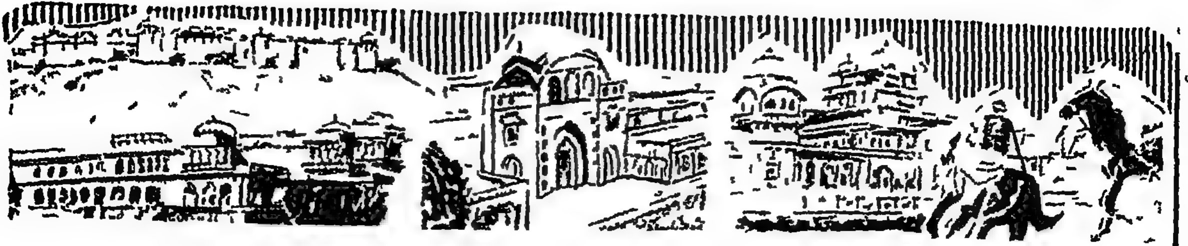
दरवार की तरह रावले मे भी पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की रस्साकशी चलती थी। जव माधोसिह की जन्मदात्री माता यहा ड्योढी मे आकर रहने लगी तो उसने अपने वेटे के महाराजा वन जाने के कारण अपने लिए माजी साहव या राजमाता का मान-सम्मान चाहा। माधोसिह भी चाहता था कि ईसरदा मे उसे जन्म देने वाली माता को माजी साहव ही माना जाय और जनाने दरवार मे उसे उसी प्रकार नजर-निछरावल की जाय जिम प्रकार राजमाता को की जाती है। एक वार, कहते है जव जनाना दरवार जुडा तो जोधीजी (माधोसिह की माता) मसनद पर वैठ गई और उन्हे इस तरह वेठा देखा तो माजी राठौडजी, जो अपने आपको इस गद्दी पर वैठने का अधिकारी मानती थी, वहा एक नजर डालकर ही अपने रावले को लौट आई। रास्ते मे उन्हे माधोमिह की धागधा वाली रानी झालीजी मिली तो पूछने लगी कि वापस क्यो? इस पर राठौडजी का जवाव था कि वैठने का इन्मजाम ठीक नही है।

झालीजी ने राठौडजी का पक्ष लिया। राजा की वेटी होने के नाते उसे भी यह वात न भायी कि एक सामान्य राजपूतनी (जोधीजी) राजमाता का आमन ले ले। झाली रानी ने कहलवाया कि जोधीजी उस आसन को छोड दे, पर जोधीजी भी अव कैसे हट जाती। इस पर कहते है वात यहा तक वढी की जोधीजी को राठौडजी और झालीजी की डावडियो ने जवर्दस्ती हटा दिया। सारा काण्ड मुनकर महाराजा माधोसिह का झालीजी से नाराज होना म्वाभाविक था।

जनानी ड्योटी मे जनाने दरवारो या मजलिसो मे उठने- वैठने के सवाल पर ही नही, अन्य मान-मयादाओ आर हको को लेकर भी माजियो-महारानियो और पडदायतो मे रस्साकशी चलती रहती थी। जनरल अमरसिह ने 1926 के एक दिलचस्प विवाद का उल्लेख किया है "   यहा मै गाजे-वाजे (विवाह मे जैमे पहले विनायक-पूजा होती है, वैसे ही प्रतिवर्ष महाराजा की सालगिरह के कुछ दिन पूर्व गाजा-वाजा हुआ करता था) के विवाद की भी थोडी चर्चा करूगा। यह आम तौर पर पटरानी या पटमाजी के रावले पर होता है। अभी कोइ पटमाजी नही है, एकमात्र माजी तवरजी जीवित है। वे चाहती थी कि यह रस्म उनके रावले पर ही हो (क्योकि वही महाराजा की एकमात्र मा रह गइ थी) लेकिन महारानी साहवा ने इम पर ऐतराज किया। माजी तवरजी की हिमायत (गृहमत्री) पुरोहित गोपीनाथजी कर रहे थे, लेकिन महारानी साहवा भी मानने वाली न थी। अन्त मे यह तय रहा कि यह रस्म खालमा के कमरो मे ही हो जाए, जो किमी रानी या माजी के नही है।"[25]

जिन्दगी मे अपने मान-सम्मान और कुरव-कायदो के लिए व्यग्र रहने वाली जनानी ड्योढी की महिलाओ के लिए मृत्यु का भी एक 'प्रोटोकोल' था। जिन महारानियो की शव-यात्रा त्रिपोलिया होकर निकाली जाती थी, उन्हे मरणोपरान्त सर्वाधिक सम्मानित माना जाता था। सामान्य नियम यह था कि राजमहल के इस दक्षिणी द्वार से पटरानी या सवसे वरिष्ठ रानी की शव-यात्रा ही निकलती थी। महाराजा रामसिह की पटरानी राठौडजी और माधोसिह की पहली पत्नी जादूणजी की शव-यात्राए त्रिपोलिया से ही निकाली गई थी। झालीजी माधोमिह की मृत्यु के कुछ समय बाद मरी थी, किन्तु वरिष्ठ हो जाने से उसे भी यह सम्मान मिला। रामसिह की एक और रानी, छोटी राठौडजी तो 1926 ई मे मरी थी और इस सम्बन्ध मे जयपुर कैवलरी के

25 डायरी (ह लि) जनरल अमरसिह, जयपुर



तत्कालीन कामाडेट ने यह टिप्पण लिखा है "दिवगत राठौडजी ने वर्तमान महाराजा (मानसिह) की देख भाल की थी और उसने ऐसी इच्छा भी प्रकट की थी, अत उसके पार्थिव शरीर को भी यह सम्मान (त्रिपोलिया मे ले जाने का) दिया गया। यह कोरे सम्मान की वात है, फिर भी वडी वात है। वताया गया कि जव किसी महारानी को त्रिपोलिया होकर ले जाया जाए तो सरदारो और हाकिम-अहलकारो को अपने वाल देने चाहिये, इसलिये मैने अब्दुल तवाव को वुला भेजा जो इन सव वातो से भली-भाति परिचित है[26]।"

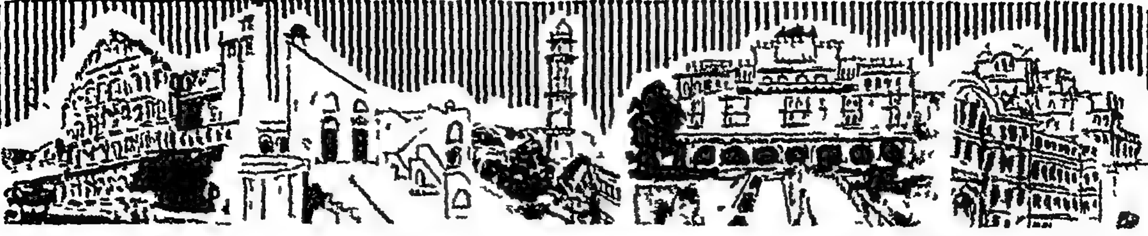
किन्तु 1922 इ मे मरने वाली माधोसिह की एक रानी चादावतजी को यह सम्मान नही दिया गया, क्योकि वह पटरानी नही थी और वाद मे भी झालीजी की तरह वरिष्ठ नही हुई थी। यह महारानी, जो अजमेर मे कामोर के ठाकुर जोरावरसिह की वेटी थी, 20 मई को मरी थी, दिन मे एक वजे, लेकिन उस दिन "मृत्यु का समाचार गुप्त रखा गया और परम्परानुसार 'अमवाली वन्दोवम्त' तथा अष्ट-महादान कराया गया। चलावा महारानी राठौडजी के अतिम सम्कार को नजीर मानकर किया गया।"[27] किशनगढ की वेटी वह महारानी 1893 ई मे मरी थी।

इस महारानी के अतिम सस्कार के लिये "शव-यात्रा अजीर के दरवाजे से गणगौरी दरवाजे होकर राजामल के तालाव और सम्राटजी के दरवाजे (ब्रह्मपुरी) से वाहर गई और फिर वद्रीनाथजी की डुगरी के पास जनाना श्मशान पर पहुची। शव-यात्रा मे उन सरदारो को नही वुलाया था जिनकी ड्योढी वन्द थी 23 मई को महल मे शोक का दरवार हुआ। उसमे महाराजा की कुर्सी तो खाली रही और वरावर वाली कुर्सी पर अग्रेज रेजीडेन्ट कर्नल वेन आकर वैठा। सभी दरवारी शोक की सफेद पोशाक मे थे। दरवार के वाद रेजीडेन्ट, खवास वालावख्श, अविनाशचन्द्र सेन और मै चन्द्रमहल मे गये जहा महाराजा सफेद कुर्ता और हरे मखमल की टोपी पहिने दरी पर वैठे थे। ये सव आधे घण्टे दरी पर वैठकर वाहर आये। जनानी ड्योढी मे भी पर्दे की वैठक हुई मेरी पत्नी भी इस वैठक मे गई चार सिपाही और चार नौकरानिया रथ के साथ पैदल थे। सभी ने पक्के रग की पोशाके पहनी थी[28]

जनानी ड्योढी मे कहने को तो सभी रानिया, पासवाने या पडदायते थी, पर जयपुर की कहावत है कि "राजा मानै सो राणी"। महाराजा माधोसिह की पटरानी तो जादूणजी थी और वह मरी तो उसका रावला और उसका रुतवा झालीजी को मिला, लेकिन माधोसिह जैसे असाधारण मर्द के दिल पर रूपराय पडदायत ही राज करती थी। माधोसिह से ही तीन पीढी पहले महाराजा जगतसिह को "रसकपूर" नामक एक सामान्य रखैल ने जिस प्रकार अपने रूप-लावण्य से विमोहित कर डाला था, कुछ वैसा ही जादू रूपराय का भी चला। यह तो जमाना वदल चुका था और अग्रेजो की सार्वभौम सत्ता कदम-कदम पर नाम पूछती थी, वरना रसकपूर की तरह रूपराय भी आधे जयपुर का राज अपने नाम करा लेने मे कसर न रखती। फिर भी रूपराय ने वह सव कुछ किया जो वह ड्योढी की चहारदीवारी के भीतर वेठकर कर सकती थी।

रूपराय सभवत धाउवडारी जाति की थी और पडदायत हो जाने पर उसने अपने सगे-सम्वन्धियो और जाति-विरादरी वालो को निहाल करना आरम्भ किया। जागीर मे मिली अपनी 'सरकार' से ही वह सन्तुष्ट रहने वाली नही थी और महाराजा के निर्वलता के क्षणो मे वह वरावर उनसे किसी न किसी वहाने नक्द और आभूषणो के इनाम-इकराम हासिल करती रही। जव वढापे और वीमारी ने माधोसिह को अशक्त और निर्वल वना दिया तो रूपराय ने इस स्थिति का अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया। महाराजा के कुछ अन्तरग सेवको और सलाहकारो से मिलकर जिनमे खवास वालावख्श प्रमुख था, उसने एक गुट वनाया

26 वही (ह लि)
27 मर पु गोपीनाथ की डायरी (ह लि) जयपुर
28 वही



और षडयन्त्रो व कुचको का ऐसा दौर-दौरा चालू किया कि सभी के पौ-बारह होते रहे।

महाराजा माधोसिह के दो पडदायतो से दो पुत्र हुए थे— गगासिह और गोपालसिह, जो तरुण अवस्था मे ही मर गए। माधोसिह का इन दोनो पर बडा स्नेह था और वह इन्हे हरिद्वार भी जाता तो साथ लेकर ही जाता था।

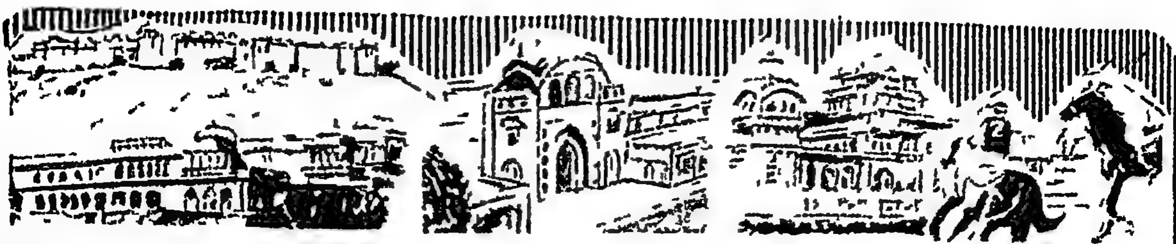
इन लडको के चेचक निकली तो शीतला की मनौती के लिए महाराजा चाकसू के पास सील की डूगरी पहुच गया। तभी से वहा जयपुर जिले का लक्खी मेला—सीलक्या—हर वर्ष शीतला अष्टमी को भरता आया है। रूपराय ने महाराजा की इस कमजोरी का पूरा फायदा उठाया। दोनो लडको के मर जाने पर वह उनकी आत्मा को अपने शरीर मे बुलाने और अपनी जुबान से बुलवाने लगी। कभी कहती कि गगासिह उस लोक मे बीमार पडा है, इलाज के लिए पैसा चाहिए। कभी गोपालसिह के किसी कष्ट का बहाना होता तो कभी परलोक मे उसका विवाह रचाया जाता। अशक्त और बूढा महाराजा अपनी जवानी की सगिनी की हर बात मान जाता और पूरी करता।

जब तक महाराजा माधोसिह राज करता रहा, जनानी ड्योढी मे सेठानी और रूपराय पासवान वाले धडे की ही चलती रही। माधोसिह के आखिरी वक्त मे भी यही दो औरते बडी शहजोर रही। अशक्त और रोगी राजा को यह इन्दरगढ (कोटा) भी ले गयी जहा, कहते है, कोड माताजी का स्थान था। वहा रोगमुक्त होने की कामना लेकर जाने वाले महाराजा को किसी साधु की धूणी की राख मे लोटने तक को विवश कर दिया बताया। पर रोग असाध्य था और महाराजा की जान नही बच सकी। माधोसिह के आख मूदने के साथ ही दरबार और जनानी ड्योढी की राजनीति ने भी पलटा खाया। जो तब तक शहजोर बने हुए थे, कमजोर पडे और जो उपेक्षित एव तिरस्कृत थे, एकदम उभर कर ऊपर आ गये।

महारानी झाली अब राजमाता या माजी साहब थी और नये राजा के नाबालिग या बालक होने की अवस्था मे माजी साहब के अपने कुछ परम्परागत अधिकार थे। यद्यपि झालीजी भी महाराजा के मरने के साल भर बाद तक ही जीवित रही, पर जितने भी दिन उसे बच रहे थे, उनमे उसने अपने शत्रुओ से चुन-चुन कर बदला लिया। इनमे खवासवालाबख्श, सेठानी और उसका पति रामनाथ सेठ तथा रूपराय पडदायत प्रमुख थे। इन लोगो ने मिलकर झाली को बरसो तक जितना हैरान और परेशान रखा था अब झाली ने कुछ ही दिनो मे इन सबको छठी का दूध याद करा दिया।

झाली के मसूबे पूरे करने के लिए उसका एक भाई मानसिह झाला भी तब जयपुर आ गया था और उसने इन सबके विरुद्ध गबन, अमानत मे खयानत और राज की बकाया के बडे-बडे मुकदमे लगा दिये। रूपराय ने महाराजा से सचमुच बडा माल ऐठा था और उसके लिए तो यह हुक्म हुआ कि रावळा ही खाली करा लिया जाय। बरसो तक जनानी ड्योढी मे अपनी मनमानी करने वाली रूपराय का अब भी बडा असर था, उसका अपना नादरो और नाइनो का दल था जो बास और झाडूए लेकर लडने-लडाने पर आमादा था। रूपराय को रावळे से निष्कासित करना बडी टेढी और नाजुक समस्या बन गई थी, किन्तु जनानी ड्योढी के तत्कालीन मुन्तजिम पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी ए विद्याभूषण ने बडी सूझ-बूझ के साथ महलो के भीतर कोई हगामा न होने दिया और रूपराय को अपनी जोखिम अपने बराबर माजी तवरजी (माधोसिह की पाचवी रानी) के रावळे मे फेक कर अपना रावळा छोडना पडा। जीवन भर रानी रह कर भी तवरजी जैसी मालदार नही थी, वैसी अब माजी बनकर हो गई। कहते है, इसी धन से माजी साहब तवरजी ने स्टेशन रोड पर माधोबिहारीजी का विशाल मन्दिर बनवाया।

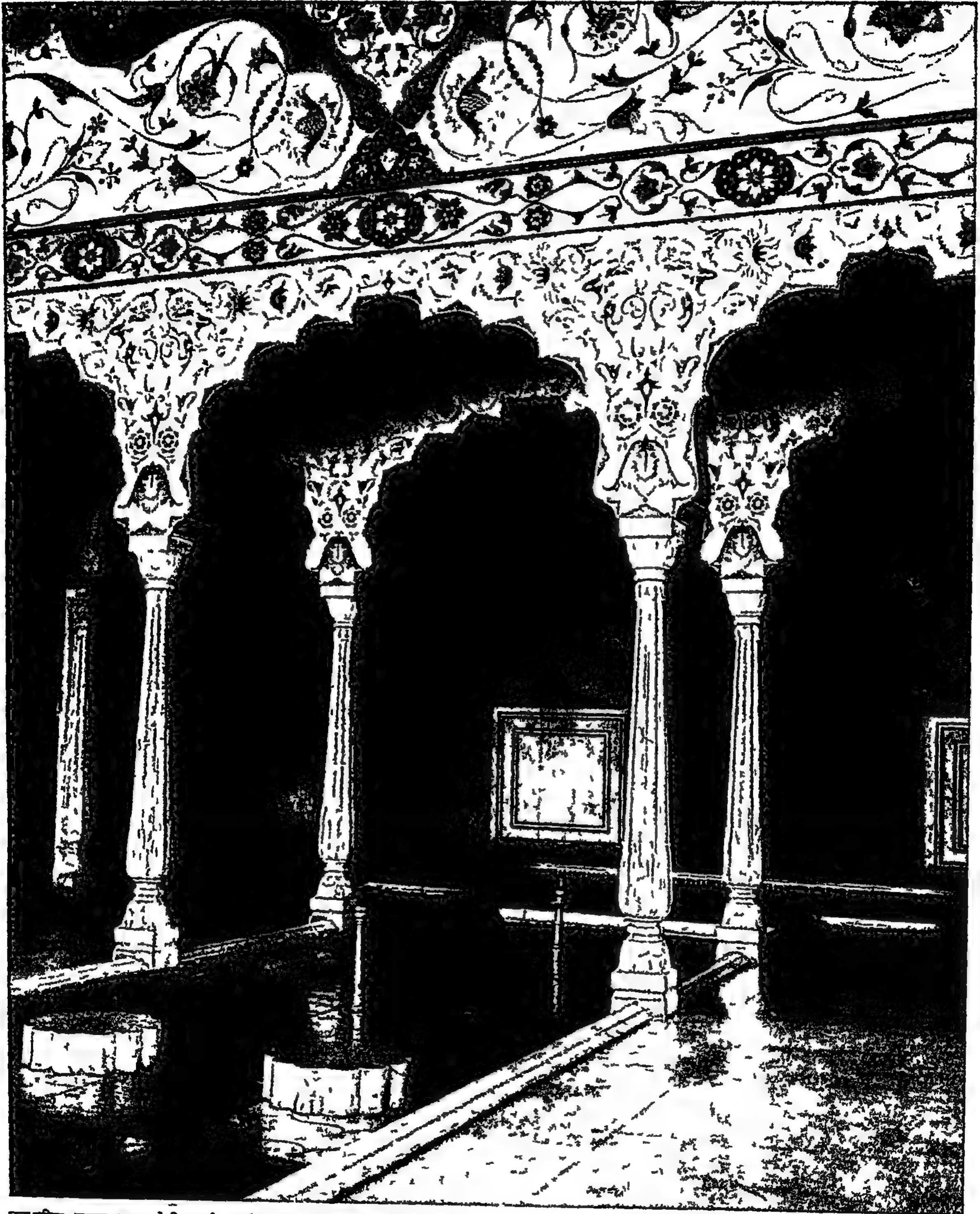
मन्दिर अपने सुदिनो मे रूपा बडारण और रूपराय ने भी बनवाये थे। रूपराय पासवान से निबट लेने के बाद सेठानी की बारी आई। उसके पति रामनाथ सेठ के नाम राज की भारी बकाया निकाली गई क्योकि वह



छत्तीस कारखानो का हाकिम रहा था। गमनाथ की नियुक्ति वावू कान्तिचन्द्र मुकजी के हाथ मे हुई थी और उसने अपने ऊपर आई आफत देखकर कान्तिचन्द्र मुकर्जी के पुत्र ईशानचन्द्र मुकर्जी या हाथी वावूजी की शरण ली। कहते हैं, हाथी वावूजी ने भी उसे अच्छी फटकार वताइ और वोलचाल मे उनकी जैसी आदत थी, कहा कि "मैं काइ करू, करी जसी पा, कुआ मे पडजा।" आर, रामनाथ सेठ ने गजव किया, वह सचमुच हाथी वावू के वाग मे ही कुए मे कूद गया, पर जिन्दा ही निकाल लिया गया। फिर यह हाथी वावूजी की कृपा ही का नतीजा रहा कि उस पर कोई सगीन मुकदमा नहीं वनने दिया गया और सेठ-सेठानी ड्योढी के छल-छद्म और चमक-दमक से दूर रहते हुए अपनी ही मौत मरे। सेठ पहले मरा और सेठानी वाद मे—आज के लगभग चालीस वर्ष पहले।



लालजी गोपालसिंह— महाराजा माधोसिंह का चहेता अनौरस पुत्र



चन्द्र मन्दिर—चन्द्रमहल का सबसे निचला और उतरी भाग—जहाँ से गोविन्द देव के दर्शन होते हैं।



खवास वालावख्श के साथ तो वहुत वरी हुई। नजरवदी भी भोगनी पडी ओर वहुत सारी जायदाद से भी हाथ धोना पडा। कहते है, कपडे तक कुर्क करा लिये गये। जेसा भर्तृहरि ने अपने नीति शतक मे कहा हे, महाराजा माधोसिह के इन सभी कृपा-पात्रो के साथ वेसी ही वीती। लेकिन सेठानी तकदीर वाली निकली। कुए मे गिर कर भी पति वच गया आर वरसो महलो के राग-रग मे काटने वाली इस जवदस्त औरत ने अन्त तक शाति आर चन से ही जीवन विताया।

महाराजा माधोसिह के "राजलोक" का विवरण देने वाली एक हस्तलिखित पुस्तक पोथीखाने मे शायद महाराजा के आदेश से उनके जीवन-काल मे ही तयार की गई थी। इस पुस्तक मे महाराजा की पत्नियो, उपपत्नियो ओर सतति की सूची मात्र हे ओर जहा मालूम हो सका, सन्-सवत् भी दिये गये हे। इस महाराजा की पाच तो विवाहिता रानिया थी—महारानी जादूणजी, महारानी राठोडजी, महारानी झालीजी, महारानी चादावतजी ओर महारानी तवरजी। जादूणजी उत्तर प्रदेश मे उमरगढ़ के गव वुधपालसिह की वेटी थी। 1865इ मे जन्मी जादूणजी का 1875इ मे ईसरदा के कायमसिह से विवाह हुआ ओर 1909ई मे वह मरी। महाराजा रामसिह का उत्तराधिकार पाने जब कायमसिह 1880ई मे जयपुर आया तो जादूणजी को कुछ दिनो वाद ही वुला लिया गया। हालाकि वह राजा को व्याह कर नही आई थी, एक जागीरदार के वेटे को ही व्याही थी, फिर भी माधोसिह ने अपने गर्दिश के दिनो की सगिनी इसी महिला को पटरानी का पद दिया।

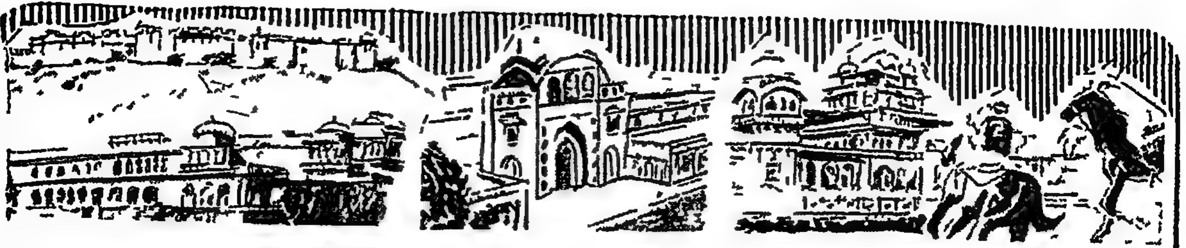
अपनी जन्मदात्री माता जोधीजी को, जो इसरदा के ठाकुर रघुनाथसिह की दो पत्नियो मे से एक थी, माधोसिह ने माजी साहव या राजमाता का दर्जा दिलवाया। माजी जोधीजी को वारह हजार रुपये सालाना की जागीर के गाव दिये गये थे ओर महारानी जादूणजी को 24 862 रुपये की जागीर मिली थी।[29] इन दोनो को इस प्रकार माजी साहव ओर पटरानी देखकर जनानी ड्योढी मे अन्य माजिया आर रानिया वहुत जलती-कुढती भी थी—कइ वार तो इन्हे जनाने दरवार मे मसनद पर देखकर अन्य माजियो व रानियो ने वाक आउट भी किया था—लेकिन माधोसिह नारी को सेज का सिगार ही समझने वाला नही था। उसने मा को राजमाता आर पहली पत्नी को पटरानी या वरिष्ठ महारानी वनाने के विरुद्ध कभी कोइ आपत्ति नहीं मानी ओर दोनो के प्रति अन्त तक यह सम्मान वनाए रखा आर मृत्यु हो जाने पर दोनो की ही वडी सुन्दर और कलापूण छतरिया वनवाई जो आमेर रोड पर महारानियो की छतरियो मे सवसे सुन्दर ओर भव्य हैं।

यह तथ्य इसलिये भी उल्लेखनीय हे कि राजगद्दी पर आने के समय माधोसिह उन्नीस वर्ष का नादान था आर फिर उस पर औरत का नशा भी सवार हो गया था। उसके जसे अल्प-शिक्षित (वह छठी क्लास तक राजपूत स्कूल, जयपुर मे ही पढा था) युवक को उद्दाम जवानी मे भी, जव जयपुर जसी सिरमोर रियासत उसके हाथ आ गई थी, यह होश रहना कुछ कम वात न थी कि मा ओर पहली पत्नी की जगह ओर कोइ नही ले सकता।

यहा यह भी उल्लेखनीय होगा कि महाराजा ने अपने इगलेण्ड प्रवास[30] के दौरान भी अपनी पटरानी जादूणजी से वरावर सम्पक वनाये रखा। 'फेहरिस्त कागजात आमदा रावला महारानीजी साहव श्रीजादूणजी महल स्वर्गीय महाराजा माधोसिहजी' से यह सिद्ध हे। जादूणजी की मृत्यु (7 नवम्वर, 1909 इ)के वाद उनके रावले को सील किया गया होगा और शायद 1922 इ मे महाराजा की मृत्यु के वाद उनके कागजपत्र ओर दूसरा सामान 'असवाली' मे कपडद्वारा ओर अन्य सम्वन्धित कारखानो मे आया होगा। तभी यह 'फेहरिस्त' वनी होगी। इसमे उन सव तारो का इन्द्राज हे जो लन्दन से महाराजा ने अपनी पटरानी को भेजे थे। 30 जून, 1902से 11 अगस्त, 1902तक प्राय प्रतिदिन अथवा एक-दो दिन के अन्तर से यह तार भेजे गये

29 प्रासीडिंग्स आफ दि स्टेट कौंसिल (ह लि) यतिचन्द्र मुकर्जी, जयपुर

30 महाराजा की इगलैण्ड यात्रा का विस्तृत विवरण परिशिष्ट 5 म दिया गया है।



थे। प्राय सभी मे कहा गया था कि "यहा सब अच्छी तरह है।" 12 अगस्त के तार मे कहा गया था "ताजपोशी अच्छी तरह से हो गई। यहा सब अच्छी तरह से है। डाक मे चिट्ठी भेजना वद करो, अगरचे कुछ जरूरी बात हो तो तार मे खबर दो।"

महाराजा की ओर से 18 अगस्त, 1902 को प्रधानमत्री बाबू ससारचन्द सेन ने नादर खुशनजर[31] को यह तार भेजा "मेहरवानी करके महाराजा साहब की तरफ से महारानीजी साहिवा को उनकी सालगिरह मुबारक की मुवारकवादी और हम लोगो की दुवा कि उम्र इकवाल सुख ज्यादा हो, मालूम कर देवे।"

राजाओ की सालगिरह की तरह जनानी ड्योढी मे रानियो की सालगिरह के भी जश्न होते थे, लेकिन इस प्रकार मुवारकवादी का तार आना शायद तब एक नयी ही बात थी। इसलिये नादर खुशनजर ने 19 अगस्त को जवाब भेजा "सालगिरह के जल्से के बीच ऐसी मुवारकवादी का तार जो कभी आज तक नही आने का मौका हुआ था, खास जल्से मे आने पर जल्से की खुशी ज्यादा बढ गई जिससे महारानी साहव वहुत खुश हुई। इसका श्री हुजूर मे अदव के साथ शुक्रिया मालूम कहती है और साथ के लोग-वागो की दुआ फरमाती है।"

अपनी अर्द्धांगिनी को महाराजा अपने प्रवास की ऐसी बातो की भी सूचना देते थे, जैसे 6 जून को उन्होने लिखवाया "हम लोग 3 जून की शाम यहा आन पहुचे। यहा पेशवाई सब रईसो के निस्वत ज्यादा वडी धूमधाम के साथ हुई। साहव लोग मुलाकात के लिये सुवह से शाम तक आते है कि हुजूर को आराम के साथ जीमण करने की भी फुरसत नही मिलती। यहा मेह वरसता है, वादल छा रहे है। यहा सूरजनारायण (सूर्य) सुबह चार वजे उदय होते हैं और आठ वजे छिप जाते है।"

फिर 13 जून को यो लिखवाया "हम लोगो का वक्त मुलाकातो मे ही गुजर जाता है। इससे चिट्ठी नही लिख सके। लन्दन एक वडा शहर है, इसका ओड (ओर छोर) नही, इसको पूरा नही देख सके, रास्ते मे आता है, सो ही देख लेते है। हम लोगो को विल्कुल फुरसत नही है। अन्नदाता जी रात को एक वजे आराम फरमाते है और सात वजे "अपोडा" होते है (जाग उठते हैं)। दिन भर जरा भी आराम नही मिलता। फिर भी सब लोग तदुरुस्त है।"

20 जून के तार मे कहा गया कि "हमारे पास (खाने पीने का) सामान वहुत है, और न भेजे। वलायत की आवहवा हर वक्त वदलती रहती है महाराजा साहब वहुत खुश हैं, लेकिन काम के सवब दम लेने की फुरसत नही है।"

"मेह वरसता है, वादल छा रहे हैं, हवा चल रही है, कभी कभी सूरज भी दिखाई देता है तो भी आवहवा हम लोगो को पसन्द है।" (11 जुलाई)

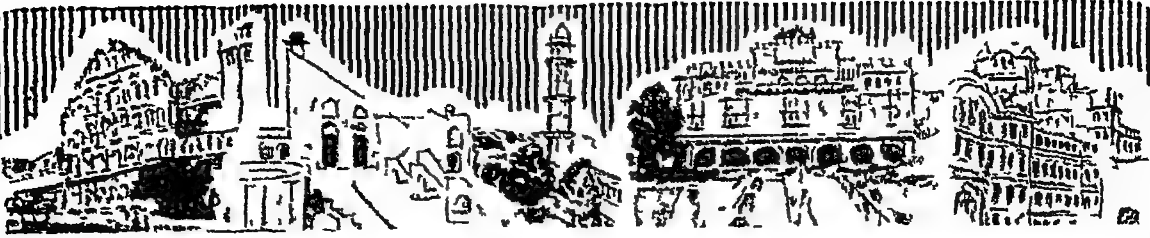
जव महाराजा इगलैण्ड से भारत लौट रहे थे तो सूचित किया गया कि "जहाज 236 मील रोज चलती है।"

27 अगस्त को पोर्ट सैद मे वाबू अविनाशचन्द्र सेन के नाम जयपुर से यह तार मिला "वडे सरकार (महारानी जादूणजी) आज श्री अन्नदाताजी की सालगिरह मुवारक की खुशी के दिन अपने दिल की मुवारकवादी जाहिर करती है और श्री दरवार[32] से प्रार्थना करती हैं कि हर किस्म की चुनी हुई दुआ उनके ऊपर बख्शाओ और इस समुद्र के सफर मे निरापति (निरापद) रखो। यह सब वारता श्री हुजूर मे आप मेहरवानी करके मालूम कर देवे।"

---

31 खुशनजर नादर या खोजा भी महाराजा का चहेता था। उस पर महाराजा की मेहरवानी उसके शानदार मकवरे से प्रकट है। घाट दरवाजे के बाहर आगरा रोड पर यह मकवरा खुशनजर की मृत्यु के बाद स्वय महाराजा ने बनवाया था।

32 महाराजा माधोसिह के समय में उनकी इष्ट गगाजी को 'वड़ा दरवार' और गोपालजी को 'छोटा दरवार' कहा जाता था। 'श्री हुजूर' या 'श्री जी' महाराजा के लिए प्रयुक्त होता था।



महाराजा ने स्वय इसका उत्तर यो भेजा "तुम्हारा मुवारकवादी का तार आया, जिसका शुक्रिया करता हू। यहा सव अच्छी तरह से हे। यहा से आज शाम छह वजे रवाना होता हू।"

12 सितम्वर को वम्वइ पहुचकर महाराजा ने यह तार भिजवाया "मेरा खैरसलाह से वम्वई पहुचने पर मुवारकवादी का तार वडे महारानीजी साहिवा के पास से आने पर वहुत खुशी हासिल हुई। महारानीजी साहिवा के इन अच्छे खयालात का मेरा वहुत दिली शुक्रिया तुम मालूम कर दो।"

तारो व सदेशो का यह आदान-प्रदान महाराजा माधोसिह और उसकी पहली पत्नी के पारस्परिक स्नेह और विश्वास की अभिव्यक्ति तो हे ही, जादूणजी के प्रति माधोसिह की सम्मान की भावना को भी उजागर करता है।

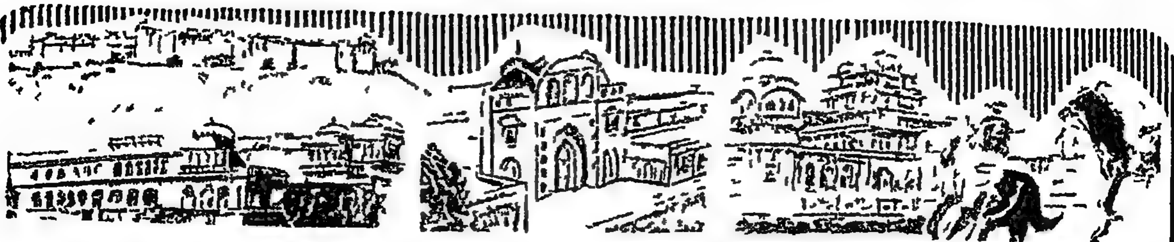
माता जोधीजी और पाच रानियो के अलावा माधोसिह की 41 पडदायतो के नाम इस प्रकार है

1 बसन्तरायजी 2 चादरायजी 3 केसररायजी 4 फूलरायजी 5 लिछमीरायजी (वडा) 6 मेहतावरायजी 7 तीजरायजी 8 जडावरायजी 9 चम्पारायजी 10 सोनरायजी 11 गगारायजी या गुलावरायजी 12 गेदरायजी 13 सुरजरायजी 14 रूपरायजी 15 रतनरायजी 16 जवाहररायजी 17 उम्दारायजी 18 मोतीरायजी 19 चुन्नीरायजी 20 हीरारायजी 21 चोमररायजी 22 गोपीरायजी 23 चतररायजी 24 लिछमीरायजी (छोटा) 25 ललितरायजी 26 माणकरायजी 27 मीनारायजी 28 पनारायजी 29 भगतरायजी 30 मुरलीरायजी 31 गोकुलरायजी 32 विसाखारायजी 33 रगरायजी 34 मालतीरायजी 35 मर्जीरायजी 36 चमेलीरायजी 37 मेहतावगयजी 38 रतनगयजी 39 ज्ञानारायजी 40 गोरारायजी और 41 धनवन्तरायजी।[33]

अपनी पाच विवाहिता रानियो मे महागजा के केवल दो पुत्रिया हुइ थी जो दोनो अविवाहित ही मर गई।41 पडदायतो मे कुल 66 पुत्र-पुत्रिया हुए– 37 वेटे, जिन्हे जयपुर मे "लालजी साहव" कहा जाता था और 29 पुत्रिया या वाईजी लाल। इस सूची मे यह भी पता चलता है कि इसमे पहली वमन्तरायजी और मातवी तीजरायजी माधोसिह की आयु के 26 वे वर्ष मे पडदायत वनी थी और 1910 इ मे मृत्यु के बाद वसन्तरायजी को पडदायत से पासवान का दर्जा भी दिया गया था। लालजी गगासिह की मा वही थी। 1911 मे जव रूपराय पडदायत वनाई गई, पाच ओर पडदायते वनी। माधोसिह तव 51 वर्ष का था। अगले वर्ष 1912 मे आठ पडदायतो ने जनानी ड्योढी मे प्रवेश किया। अन्य पडदायते इससे पहले जनानी ड्योढी की आवासनिया वन चुकी थी।

अन्त समय मे पहले किसी को भी यह विचार होता हे कि वह अपने परिजनो ओर आश्रितो के लिए क्या छोडे जा रहा हे। महाराजा माधोमिह के एक औरस पुत्र ही नही था अन्यथा उसका परिवार वेहद लम्वा-चौडा था। 19 जनवरी 1921 को सवेरे जव पुरोहित गोपीनाथ रुग्ण महाराजा मे मिले तो महाराजा ने यह इच्छा प्रकट की कि वृन्दावन मे उमकी जन्मदात्री माता ने जो मन्दिर वनवाया था, उसके और वरसाना के मन्दिर के लिये, जो महाराजा की दिवगत वडी महारानी जादूणजी का वनवाया हुआ था, दान-पत्र तैयार कराये जाये। इसी समय महाराजा ने प्रधानमत्री और रायबहादुर अविनाशचन्द्र सेन से अपनी अनेकानेक पडदायतो के लिये, जो सोनाहाली, गगाजमनी और रूपाहाली नाम के तीन वर्गो मे विभक्त थी, तथा इन पडदायतो से जन्मे पुत्रो (लालजी साहव) के लिए जागीर के गावो, ताजीम और 'राजा' के खिताव की तजवीज पर सलाह- मशविरा किया। यह हिदायत दी गइ कि समस्त पडदायतो और लालजीयो की पूरी फेहरस्ति खवास वालावख्स से लेकर इस मामले को जल्दी से जल्दी निपटाया जाय। पुरोहितजी ने अपनी डायरी मे लिखा है, "हिज हाईनेस के विचार से प्रत्येक 'सोनाहाली पडदायत' को पाच हजार रुपये सालाना के गाव,

33 राजलोक (हस्त लिखित) पोथीखाना, जयपुर



प्रत्येक 'गगाजमनी पडदायत' को ढाई हजार रुपये सालाना आमदनी के गाव और प्रत्येक 'रूपाहाली' को 1250 रुपये सालाना आमदनी के गाव दिये जाने चाहिये। इसी तरह प्रत्येक लालजी को ताजीम, 'गजा' का खिताव और पाच हजार रुपये सालाना आमदनी के गाव मिलने चाहिये।''

20 जनवरी, 1921 को महाराजा ने इस मामले मे पुरोहित गोपीनाथ को फिर ताकीद की और वृन्दावन व वरसाना के मन्दिरो तथा पडदायतो और लालजीयो के लिए वाछित दानपत्र एव वख्शीशनामे जल्दी मे जल्दी तैयार करने को कहा।

जनानी ड्योढी को इस तरह आवाद करने वाला यह महाराजा गगा का अनन्य भक्त और हरिद्वार-प्रवास का प्रेमी था। वह गर्मियो मे हरिद्वार जाता तो स्पेशल ट्रेन मे जाता और वहा लम्वा-चौडा कैम्प लगाकर रहता। जनानी ड्योढी की औरते भी साथ जाती तो ये व्यवस्थाये और भी लम्वी-चौडी होती। 1914 ई की फरवरी मे पुरोहित गोपीनाथ की डायरी मे ऐसी व्यवस्थाओ का कुछ विस्तार से उल्लेख हुआ है।

10 फरवरी को जवकि महाराजा की स्पेशल को गये प्राय एक सप्ताह हो चुका था, पुरोहितजी ने खासा कोठी के विमान भवन मे जाकर 'जनाना स्पेशल' के डिव्वो का निरीक्षण किया क्योकि उसी दिन शाम को महाराजा की दो रानिया- झालीजी और चादावतजी- हरिद्वार जाने वाली थी। जयपुर से यह पहली जनाना स्पेशल सात वजे रवाना हुई। स्वय पुरोहितजी और मुशी नन्दकिशोरसिह (महाराजा के सचिव) इसके प्रभारी अधिकारी थे। दोनो महारानियो के साथ जनानी ड्योढी की वहुत सी औरते, रामप्रताप और दुगावख्श नादर, डाक्टर महवूव आलम और लगभग 90 नौकर-चाकर थे। प्रधानमत्री नवाव फैयाज अली खा, अनेक सरदार और हाकिम महारानियो को पहुचाने स्टेशन तक गये थे। हरिद्वार रेलवे स्टेशन के गुड्स शैड वाले प्लेटफार्म पर स्वय महाराजा अपनी महारानियो को लिवाने आया था। महाराजा तो स्टेशन के पास ही कनात लगाकर अनेक शामियानो मे रहता था, किन्तु औरतो को वद्री वावला की हवेली मे उतारा जाता था जो जयपुर-महाराजा के प्रवास मे वस्तुत जनानी ड्योढी वन जाती थी। जव यह जनाना स्पेशल हरिद्वार पहुच गई तो महिलाओ को पालकियो, रथो और वहलियो मे इस हवेली मे पहुचाया गया था।

यह स्पेशल ट्रेन 16 फरवरी को जयपुर लौट आइ तो 17 फरवरी को दूसरी जनाना स्पेशल हरिद्वार के लिए रवाना हुई। इसमे महारानी तवरजी और अन्य औरते थी। इस स्पेशल मे जाने वाली चार पडदायतो और उनके पाच वच्चो ने वद्री वावला की हवेली मे श्री गगाजी का पूजन किया। इस पूजा मे प्रत्येक पडदायत के लिये पन्द्रह रुपये और हर वच्चे के लिए दस रुपये खर्च हुये और सारी व्यवस्था महाराजा के 'पुण्य का कारखाना' ने कराई। 27 फरवरी को महाराजा ने पुरोहित गोपीनाथ को ऋषिकेश भेजा और वहा के समस्त साधु-सन्तो, सन्यासियो और गरीवो को भोजन कराया। वावा रामनाथ कालीकमली वाले के माफत 453 रुपये के व्यय से लगभग 1,200 व्यक्तियो को भोजन कराया गया।

जयपुर से रानिया, पासवान-पडदायते, वाइया और जनानी ड्योढी की अन्य औरते यो वारी-वारी मे गगा-स्नान के लिए हरिद्वार जाती रही। दूसरी के वाद तीसरी जनाना स्पेशल, चौथी जनाना स्पेशल और पाचवी जनाना स्पेशल इसी प्रकार जयपुर से हरिद्वार गई और आइ। महाराजा सव के लौट जाने के वाद अपनी स्पेशल और अपने सैलून-श्रीमाधवेन्द्र विमान- मे जयपुर लोटे।

महाराजा माधोसिह जनानी ड्योढी की हर आवश्यकता का पूरा ध्यान रखता था और यह भी कि उसके अन्त पुर की कोई वात वाहर न जाए। जनानी ड्योढी मे नादरो या खोजो के अलावा अन्य किसी का जाना सर्वथा निषिद्ध था। पुरोहित गोपीनाथ की डायरी से पता चलता है कि धागधा का महाराजा 1921 मे यहा रुग्ण महाराजा की मिजाजपुर्सी के लिए आया था। यह स्वाभाविक ही था कि अपने जयपुर-प्रवास मे यह महाराजा अपनी वुआ महारानी झालीजी से मिलता। जनानी ड्योढी के रावले तव औरतो से भरे थे और



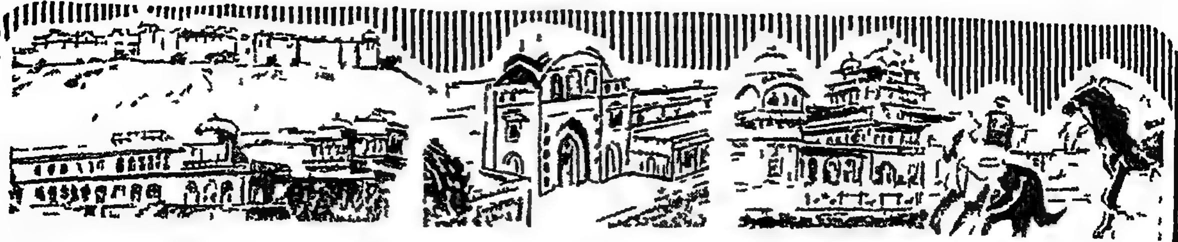
महाराजा माधोसिंह के रिश्तेदार राजाओ के लिए भी ये कम कौतूहल के विषय नही थे। महारानी झालीजी अपने भतीजे को अपने स्वय के रावले मे बुलाने और वही उससे मिलने पर आमादा थी, जबकि महाराजा ऊची दीवारो से घिरे अपने अन्त पुर को रिश्तेदारो के लिए भी एक रहस्य ही रखना चाहता था। महाराजा ने पुरोहितजी अविनाश बाबू और खवास बालाबख्श को बुलाकर अपनी इस हठी महारानी को यह समझाने का काम सौंपा कि वह ध्रागध्रा के राजा से अपने रावले मे न मिलकर चन्द्रमहल के 'सुख निवास' मे भेट करे। 13 जुलाई को ये तीनो शनिश्चरजी के चौक मे जाकर काफी देर ठहरे और झालीजी की बडारण स्वरूपबाई तथा महारानी की मर्जीदान दादी ललिताबाई को बुलाकर कहा कि वे दोनो महारानी को समझाये कि महाराजा ध्रागध्रा का जनानी ड्योढी के भीतर आना ठीक नही होगा और वह सुख निवास मे आकर ही अपने भतीजे से मुलाकात करे। दोनो ने जाकर महारानी से बात की और लौटकर बताया कि महारानी सुख निवास मे तो नही जाएगी, लेकिन उनकी बात मानकर वह अपने भतीजे को अपने रावले मे भी नही बुलाएगी और जनानी ड्योढी के बाहर वाले शनिश्चरजी के चौक मे ही मुलाकात कर लेगी। इसके लिए शाम 5 30 बजे का समय निश्चित किया गया लेकिन उस दिन बुधवार होने के कारण ध्रागध्रा ने यह मुलाकात स्थगित कर दी।

ध्रागध्रा महाराजा 14 जुलाई को शाम 4 से 5 30 बजे तक अपनी बुआ से सुख निवास मे ही मिला। शायद महारानी आखिरकार वही मिलने को राजी हो गइ होगी। इस भेट के समय महाराजकुमार मानसिंह भी था। ध्रागध्रा ने अपनी बुआ और महाराजकुमार को वेस व पोशाक भेट की और खवास बालाबख्श के हाथ महाराजा के लिए भी इसी समय सिरोपाव भेजा। बुआ और भतीजे की मुलाकात दूसरे दिन सुख निवास मे ही फिर हुई।

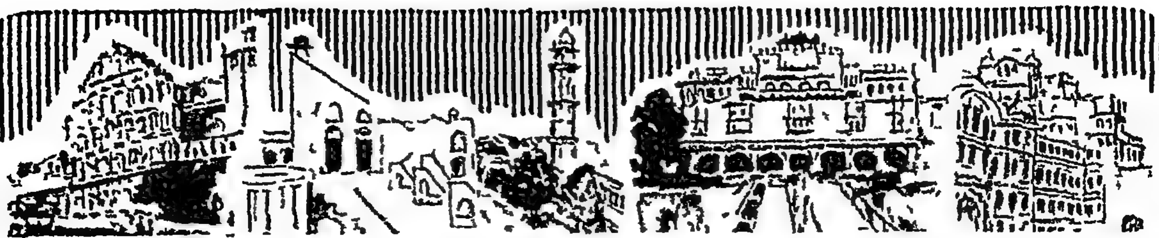
1922 मे 61 वर्ष की आयु मे माधोसिंह की मृत्यु हुइ और इसके बाद महाराजा मानसिंह को जहा अन्य अनेक प्रगतिशील और सुधारवादी कदम उठाने का श्रेय है वहा एक बडा श्रेय यह भी है कि उन्होने अपने सत्ताईस वर्षो के शासन काल मे जनानी ड्योढी की सख्या म रत्ती की भी बढ़ोतरी नही की। यही नही, उन्होने सभी पडदायतो और बाइयो को यह छूट भी दे दी कि जो बाहर निकल कर अपने परिजनो के पास रहना चाहे, वैसा कर सकती है। इस छूट और सुविधा का लाभ कइयो ने उठाया भी। किन्तु कुछ पडदायते, जो अपने लडको के पास जाकर रहने लगी थी, वृद्धापे मे अपना सचित धन गवाकर वापस ही लौट आई। उन्हे जनानी ड्योढी मे ही आराम मिला, बेटो-पोतो के पास नही।

महाराजा माधोसिंह की मृत्यु के अठारह वर्ष बाद 1940 ई मे भी जनानी ड्योढी मे कुल मिलाकर लगभग चार सौ महिलाये थी और इसके रावले प्राय आबाद थे। 1940 मे कूचबिहार से व्याहकर जयपुर आने वाली महाराजा मानसिंह की तीसरी महारानी गायत्रीदेवी ने तब की जनानी ड्योढी के लिए लिखा है-

"जनाने महल अलग अलग और अपने आप मे सपूर्ण कक्षो मे विभक्त थे। नीले और हरे रगो मे सुसज्जित मेरा कक्ष (रावला) अन्य रावलो जैसा ही था, जिसमे एक छोटा चौकोर चौक और एक प्राइवेट दरबार हाल भी था जिसमे नीले काच की रोशनिया लगी थी और भीतर कमरे थे जो उसमे खुलते थे। आगे चलकर म इसे कही अधिक अच्छी तरह जान पाई क्योकि हर समारोहिक अवसर पर हम वहा जाते थे और कभी कभी तो एक पखवाडे तक वही रहते थे। मेरा विवाह जिस साल हुआ, जनाने मे कोई चार सौ महिलाये अब तक रह रही थी। इनमे रिश्तेदार विधवाये, उनकी बेटिया, नौकर-चाकर, विधवा महारानी (माजी साहब तवरजी), उनकी हाजरी मे रहने वाली औरते, बाइया, खाना बनाने वाली और अन्य नौकर-चाकर थे। जय की तीनो पत्नियो का अमला था और दिवगत महाराजा की अन्य पत्नियो के अमले भी, जिन्हे इसीलिये नही हटाया जा सकता था कि उनकी मालकिने मर चुकी थी। यह सारा अमला राज-परिवार की जिम्मेदारी थी। इन सबके ऊपर दिवगत महाराजा की एकमात्र पत्नी (तवरजी) थी जो अभी तक जीवित थी। हम सब उन्हे "माजी



मुलतान का कपड़े पर बना एक विशाल कलम चित्र जो चीनी अथवा जापानी कारीगरी चित्रशैली की याद दिलाता है



साहवा" कहते थे और उनके प्रति बडा सम्मान दिखाते थे। जय[34] की पत्नी होने के नाते मै प्राय कभी भी उनके सामने अपना चेहरा नही उघाड सकती थी और सदा उनसे कुछ दूर वायी ओर वैठती थी।

"हालांकि हमारे वीच वडी औपचारिकता रहती थी, फिर भी वे मेरे प्रति कृपालुता दिखाती थी। एक वात ने तो मुझे वडा द्रवित किया। वे जानती थी कि मेरा लालन-पालन अशत इग्लैण्ड मे हुआ हे और यह भी समझती थी कि मैने वडा स्वच्छद पाश्चात्य जीवन विताया है। उन्हे वरावर चिन्ता रहती थी कि जनानी ड्योढी की वद दुनिया मे मं कही ऊवकर दुखी न हो जाऊ। उन्होने जनानी ड्योढी की ओरतो से मेरे देखने के लिए नाटक करवाये। लडाई के दिनो मे, मुझे याद आता है, ये औरते सिपाहियो जेसे कपडे पहिनकर ऐसे दृश्य मंचित करती जिनमे जय को मध्यपूर्व मे जर्मन सेनाओ पर अकेले ही विजय प्राप्त करते वताया जाता और वह सव देखकर मै अभिभूत हो जाती, आखो मे कृतज्ञता के आसू आ जाते। ऐसे सीधे-साधे नाटको के अलावा, जनानी ड्योढी मे जय की गतिविधियो पर पूर्ण मनोयोग से ध्यान रखा जाता और कोई भी उपलब्धि होती तो उसका तुरन्त जंश्न मनाया जाता। जव जय की टीम आल इण्डिया पोलो चम्पियनशिप जीती तो लहगो और ओढणियो पर पोलो स्टिक की कसीदाकारी हो गई। जव जय को उड्डयन का लाइसेस मिला तो इन ओरतो ने, जो न कभी हवाई जहाज मे वैठी थी और न कभी जिनके वठने की सभावना थी, अपनी पोशाको को निष्ठापूर्वक हवाई जहाज के वूटो से सजा लिया।"[35]

पर्दानशीन जनानी ड्योढी मे महिलाओ के वीमार होने पर वैद्य, हकीम आर डाक्टर की महायता महाराजा माधोसिह के जमाने मे भी ली जाती थी, किन्तु किस प्रकार, इसका एक दृष्टात भी महारानी गायत्री देवी की आत्मकथा मे दिया गया है

"जव वे (महाराजा मानसिह की दूसरी महारानी किशोर कुमारी, जिन्हे गायत्रीदेवी 'जो दीदी' कहती थी) पहले पहल जयपुर आई तो पर्दा इतना कडा था कि उनके वीमार होने पर डाक्टर उनके कमरे के वाहर गलियारे मे आकर खडा रहता और उनकी सेविकाओ से तापमान ओर नाडी के हाल जानकर रोग का निदान करता (इस व्यवस्था का लाभ भी उन्हे शीघ्र ही ज्ञात हो गया। जव कभी वे किसी ऐसे साक्षात्कार को टालना चाहती जिसमे उनका मन न होता तो वे थर्मामीटर को गर्मपानी मे डुवोकर अपनी सेविका के साथ डाक्टर को वताने के लिये भेज देती)।"[36]

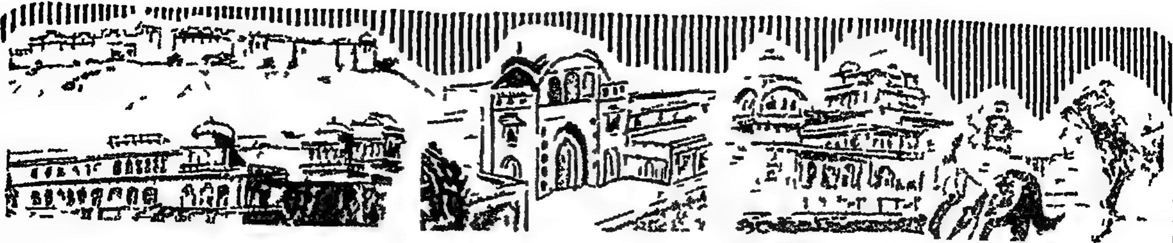
जनानी ड्योढी मे रूपा वडारण ओर रूपराय पडदायत जेसी आपाधापी मचाने वाली स्त्रियो के विषय मे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि जो भी वैभव, ऐश्वर्य ओर सत्ता भोगने के लिये वे इतना हाय-हाय करती थी, वह उनकी जिन्दगी भर के लिये ही होती थी। सन्तान होने पर भी वे अपनी धन-दोलत उसे नही दे सकती थी। हा, इन सन्तानो को राज से अलग जमीन-जायदाद या जागीर अवश्य मिल जाती थी, किन्तु मा का सव मालमत्ता उसके मरने के वाद राज या "हाउस होल्ड" का हो जाता था। किसी भी पडदायत, पासवान और वडारण के सो वरस पूरे होते ही उसकी सम्पत्ति "आमाली" या "असवाली" का सामान माना जाता ओर अलग-अलग वस्तुये अलग-अलग कारखानो मे जमा हो जाती। पोथिया या कितावे होती तो पोथीखाने मे जाती, चित्र सूरतखाने मे जमा होते और हाथ-मुट्ठी का माल कपडद्वारा मे। अचल सम्पत्ति भी, जैसे घाट का रूपनिवास वाग ओर टौंक रोड का रामवाग, जो क्रमश रूपा ओर केसर वडारणो के थे, राज की ही हो जाती। इन वडारणो के मरने के वाद ही रूपनिवास को रामसिह ने "राजनिवास" वनाया और रामवाग को गेस्ट हाउस वनाया गया।

---

34 महाराजा मानसिह को उनके घनिष्ठ मित्र 'जय' कह कर ही बोलते थे। गायत्री देवी ने अपनी आत्मकथा मे भी इसी नाम से उनका उल्लेख किए हैं।

35, ए प्रिन्सस रिमम्वर्स, गायत्री देवी और शान्ता रामाराव विकास पब्लिशिग हाउस प्रा लि, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 157-160

36 वही, पृष्ठ 166



पोथीखाने मे जमा "अमवाली" सामान से पता चलता है कि ऊची-ऊची दीवारो से घिरी जनानी ड्योढी की आवासनियो मे अनेक बडी कला-प्रिय और सग्रहकर्तृ थी। माजियो, रानियो और पडदायतो को प्राय धार्मिक किस्से-कहानियो की पुस्तके पढने का चाव रहता था। पोथीखाने मे कई वस्ते ऐसी पुस्तको से भरे है और उन कापियो से भी जिनमे भजन या गीत सग्रहीत है। अमवाली सामान मे अनेक सुन्दर और मूल्यवान चित्र भी है जो विभिन्न माजियो, रानियो और पडदायतो ने अपने रावलो मे वेठे-वैठे ही जुटाये थे। यह पुस्तके और चित्र इन पर्दानशीनो की रुचि और शौक को बताते है। आज से पचास वरस पहले तक स्त्रियो के इस अलग-थलग ससार मे मनोरजन के कैसे साधन थे और किस प्रकार वे अपना समय विताती थी, यह दिलचस्प अध्ययन अमवाली के सामान से किया जा सकता है।

महाराजा रामसिह के वडे होने तक पिछले सत्तर सालो मे जनानी ड्योढी ने राजकाज मे अपने हस्तक्षेप से गजव ढाया था, किन्तु 1867 ई मे रामसिह ने जनानी ड्योढी की जवान पर ताला लगा दिया। रामसिह के प्रधानमत्री, ठाकुर फतहसिह चापावत ने माजियो, रानियो और पडदायतो को अपनी-अपनी जागीर के गावो मे भी स्वच्छद और स्वेच्छाचारी नही रहने दिया। इन गावो मे तव तक राज का हुक्म नही चल पाता था और माजी या रानी के कामदार ही सर्वेसर्वा हुआ करते थे। रामसिह के शासन सुधारो ने जनानी ड्योढी के मर्दाना हौसले खत्म कर इसे जनाने अन्दाजो तक ही सीमित कर दिया था। रामसिह ने स्वय नौ रानिया व्याही थी, किन्तु उसने ड्योढी मे पडदायतो का अपना कोई सिलसिला नही रखा। माधोसिह ने यह खाता फिर खोला और ऐसा खोला कि प्रतापसिह और जगतसिह का जमाना जैसे फिर लौट आया। 1922 मे महाराजा मानसिह के गद्दीनशीन होने के साथ यह पुराना जमाना सदा-सदा के लिये वीत गया। इस अतिम शासनारूढ राजा की दो रानिया तो जोधपुर से आई थी। वे दोनो जनानी ड्योढी मे कम ही रही और कूचविहार से आने वाली तीसरी महारानी (वर्तमान राजमाता गायत्री देवी) ने तो पर्दा भी छोड दिया। राजमाता गायत्री देवी दो वार लोकसभा मे जयपुर का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं। लोकतत्र मे उनकी यह हैसियत उनकी अपनी मेहनत और लोकप्रियता का फल था।

अपना सारा जीवन जनानी ड्योढी की वद उपनगरी मे काट देने वाली चद औरते आज भी वही वेठी हैं। इनमे माधोसिह की एकमात्र जीवित पडदायत मालतीरायजी भी हैं जो शायद अपने जीवन के नब्वे वसन्त देख चुकी है। जनानी ड्योढी मे दो-तीन बार जाने का अवसर पाने वाली एक महिला के अनुसार मालतीरायजी अपने रावळे मे रहती ही है। राजमाता गायत्रीदेवी का रावळा भी अपनी जगह आज भी आवाद है, हालांकि राजमाता वहा औपचारिक अवसरो पर ही जाती हैं। कर्नल भवानीसिह की पत्नी वर्तमान महारानी पद्मिनी देवी (सिरमूर-नाहन) का रावला तो आज भी पूरी तरह सजीव है। इन तीन रावलो के पीछे पन्द्रह-वीस बाइयो की आजीविका चल रही है। जागीरदारी प्रथा का कभी का अन्त हो गया, अत मालतीरायजी को अब 472 रु माहवार सरकार से मिलता है। 1944 से पहले इन वाइयो-सेविकाओ-परिचारिकाओ को आठ से पन्द्रह रुपये तक माहवार वेतन मिलता था, किन्तु अव किसी को भी सौ रुपये से कम नही मिलता-इस राशि मे जो कमी रहती है, वह महाराजा मानसिह के पुत्र कर्नल भवानीसिह अपनी जेब से देकर इन अवलाओ का भरण-पोषण कर रहे है।

महाराजा रामसिहजी की माता माजी चन्द्रावतजी का रावला 'कविप्रिया' के वारहमासे और "रसिक प्रिया" के आधार पर बनाये गये भित्तिचित्रो से अलकृत है। कुल मिलाकर जनानी ड्योढी अव सूनी है, रावळे रीते और उदास हैं। वडी-वडी शानदार रहने लायक हवेलिया-अटारिया, लेकिन सव खाली—एक इमारती वीराना, जो दिन मे भी साय-साय करता है।



11.ज्योतिष यंत्रालय-वेधशाला

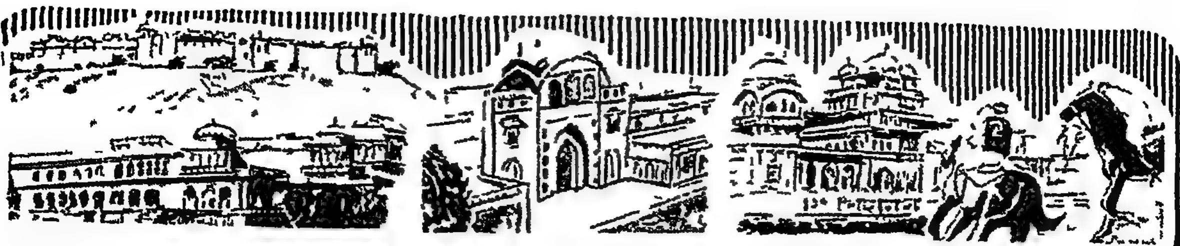
जयपुर के नगर-प्रासाद मे जो महल, मंदिर, बाग-बगीचे ओर जलाशय हैं उनका अपनी-अपनी जगह महत्व है, लेकिन मवाई जयसिह के वनवाये हुए ज्योतिप यत्रालय या वेधशाला का तो अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। भारतीय इतिहास के अत्यन्त अधकारपूर्ण काल मे निर्मित यह वेधशाला सोवियत मघ के सोलह पजातत्रो मे से एक उजवेकिस्तान के प्राचीन ऐतिहासिक नगर समरकन्द मे वहा के शासक उलूग वेग (1339–1449 ई) द्वारा निर्मित वेधशाला का परिवर्द्धित और सशोधित सस्करण हे, और हे खगोल विद्या के पाषाण युग का अन्तिम स्मारक।

अन्तरिक्ष के अध्ययन के लिए 1734 ई मे वनाई गई इस महान वेधशाला का निर्माता अपने विपय का एकाकी चिन्तक या, जैसा जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, "अपने समय की भूल" नही था।[1] ज्योतिष और गणित के परम्परागत हिन्दू ग्रन्थो से पूर्ण परिचित होने के साथ-साथ उसने इस विषय के यूनानी ग्रन्थो, यूक्लिड तथा सरल और गोलाकार त्रिकोणमिति एव लघुगणको की रचना और उनके उपयोग के सम्वन्ध मे तत्कालीन यूरोपियन ग्रन्थो का भी अध्ययन कर लिया था, जिनके सस्कृत अनुवाद उन पंडितों और विद्वानो ने, जिन्हे इस ज्योतिपी नरेश ने "अज्ञान की घाटी ओर इसकी भूलभुलैया" से वचने के लिए अपने पास रखा था, किये थे।

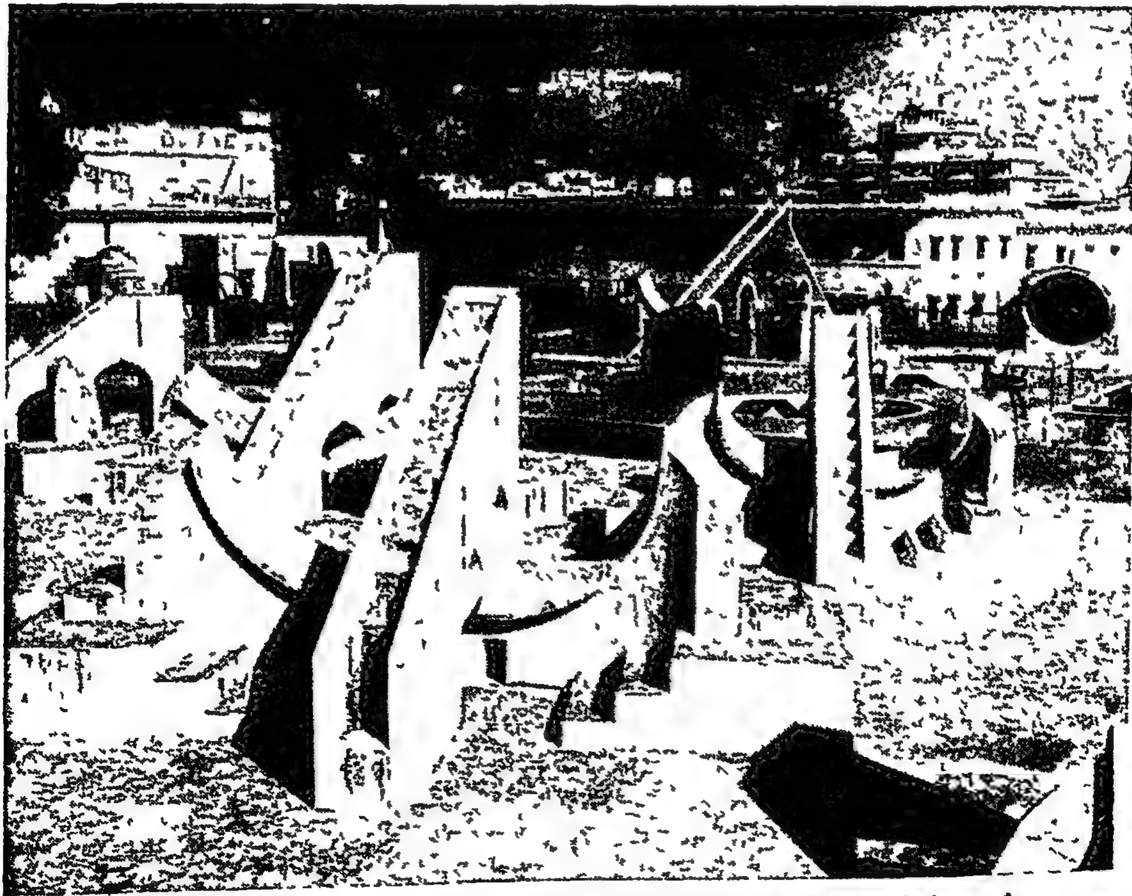
ऐसी वोद्धिक कुशाग्रता और सत्य को खोजने की लगन के कारण यह सवाई जयसिह का ही कार्य था कि उसने भारतीय ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन को सजीवनी दी, पचाग का परिष्कार किया, नक्षत्रो की एक सशोधित सूची वनायी और सूर्य, चन्द्रमा तथा ग्रहो की एक नवीन तालिका प्रस्तुत की, जिससे पूर्ववर्ती समरकन्द के ज्योतिषी शासक के निर्णयो मे सशोधन और सुधार हुआ। सवाई जयसिह के मतानुसार लगभग 300 वर्षो से सही वेध न किये जाने के कारण उलूग वेग की मान्यताये विश्वस्त नही रह गई थी।

फिर भी जयसिह वेध-किया मे फारसी और तुर्क ज्योतिषियो के अध्यवसाय ओर उनकी सावधानी से वहुत प्रभावित था और उनके ठीक-ठीक माप लेने तथा शुद्ध गणना करने की प्रशसा करता था। यद्यपि उलूगवेग की प्रचलित खगोल गणना को वह "समय की भूल" मानता था, किंतु उसने समरकन्द के इस ज्योतिपी शासक की वेध- प्रणाली को एक वडी सीमा तक अपनाया। अमीर तैमूरलग के पौत्र उलूगवेग ने अपना सारा जीवन आकाश का अध्ययन करने मे ही खपा दिया था और 1449 ई मे अपने पुत्र के हाथो उसकी मृत्यु हुई थी। सवाई जयसिह ने उलूगवेग की तालिकाओ को ही, जिसने 300 वर्ष पूर्व प्रसिद्ध यूनानी ज्योतिषी,

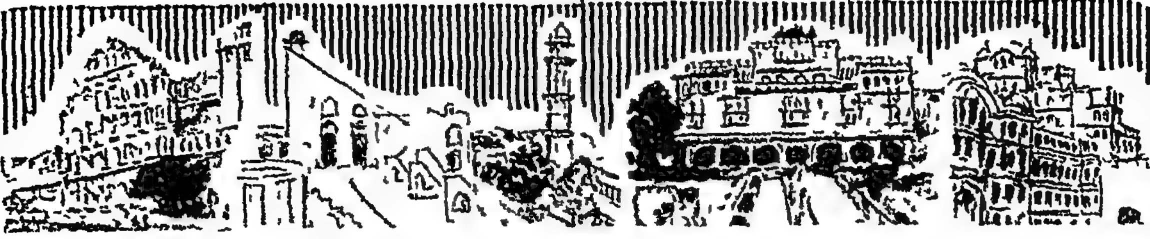
1 हिन्दुस्तान की कहानी, जवाहरलाल नेहरू, कलकत्ता, पृष्ठ 242



टोलेमी की तालिकाओ "सिनटेक्सिस" अथवा "अलूमजेस्ती" का परिष्कार किया था, अपने अनुसधान और प्रयोगो का आधार बनाया। जयसिह की सुविख्यात पण्डित-मण्डली के एक विद्वान गुजराती ब्राह्मण पण्डित केवलराम ने "तारा सारणी" के नाम से उलूगबेग की तालिकाओ का सस्कृत मे अनुवाद किया। यही नही, जयसिह ने "एस्ट्रोलेब" तथा ऐसे ही अन्य यत्रो का भी पूर्ण उपयोग किया, जो उलूगबेग तथा पूर्ववर्ती अरब एव मुसलमान ज्योतिषियो को बहुत प्रिय थे। किन्तु शीघ्र ही जयसिह धातु के यत्रो के परिणामो के विषय मे सशकित हो गया, क्योंकि "अपनी यात्रिक अपूर्णता और अशुद्धता के कारण इनसे कभी सही परिणाम नही निकल सकते थे।" अत उसने पहले यत्रो का सुधार करने का निश्चय किया और इसके लिये राजसी पैमाने पर वृहदाकार पक्के पाषाण-यत्र चुने। दिल्ली के मुगल सम्राट मुहम्मदशाह की अनुमति और सहमति से जयसिह ने प्रमुख नगरो मे वेध-शालाये स्थापित करने का निश्चय किया और इस प्रकार प्रत्येक वेधशाला मे की जाने वाली गणना दूसरी वेधशाला के परिणामो से मिलाने और नियमित रूप से समय-समय पर उनकी जाच करने का कम आरम्भ किया। वह अपनी वेधशालाओ को नियमित और व्यापक अनुसधान का स्थायी साधन बनाना चाहता था।



ज्योतिप यत्रालय। जयपुर की यह वेधशाला सवाइ जयसिह द्वारा निर्मित पाच वधशालाआ मे सबसे वडी और सपण है



पहली वेधशाला 1724 ई मे दिल्ली मे वनायी गयी और इसके दस वर्ष वाद जयपुर मे वेधशाला बनी। लगभग 15 वर्षो के भीतर उज्जेन, वनारस और मथुरा मे तीन ओर वेधशालाये खडी की गई। इन सबमे जयपुर की वेधशाला सवसे विशाल ओर सपूर्ण होने के साथ-साथ आज भी वडी सुरक्षित अवस्था मे है। जयपुर तथा दिल्ली, दोनो ही वेधशालाओ मे प्राचीन पद्धतियो के प्रसिद्ध यत्रो के साथ अधिक शुद्ध निष्कर्ष निकालने की दृष्टि से स्वय जयसिह द्वारा आविष्कृत तीन यत्र–सम्राट, जयप्रकाश और रामयत्र– भी हैं, जिनकी सामान्य शुद्धता आधुनिक वैज्ञानिको को भी विस्मित करती है।

जयपुर मे धर्म और शास्त्र की गगा-यमुना मे विज्ञान की सरस्वती मिलाकर सवाई जयसिह ने जो त्रिवेणी-सगम किया, वह इस वेधशाला से आज भी प्रकट है। धर्म के मामले मे जयसिह कट्टर हिन्दू था, लेकिन अतरिक्ष का अध्ययन करने मे वह हिन्दू भी था, मुसलमान भी और ईसाई भी। दूसरे शब्दो मे वह मात्र वैज्ञानिक था और उसका दृष्टिकोण खगोल विद्या और ज्योतिष की सभी परम्पराओ मे जो सवसे अच्छा था, उसे ग्रहण कर अपना रास्ता स्वय वनाने का था। उसने स्वय लिखा है कि ज्योतिष विज्ञान के सिद्धान्त और नियमो का उसने निरन्तर गहराई के साथ अध्ययन किया और अपने परिणामो को वेधक्रिया अथवा स्वय अपनी आखो से देखने की कसौटी पर परखा। किसी भी वैज्ञानिक का इससे अधिक तात्त्विक दृष्टिकोण और क्या हो सकता हे!

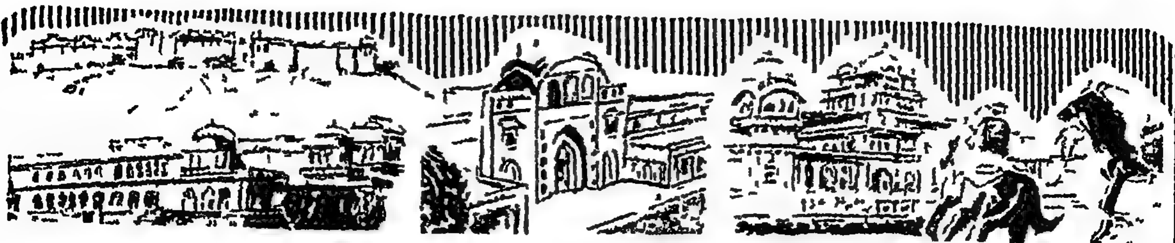
जयसिह के आविष्कृत यत्रो मे पहला "सम्राट यत्र" है जो इस वेधशाला मे सवसे वडा और सवसे ऊचा यत्र है। इसकी चोटी ठीक आकाशीय ध्रुव को सूचित करती है। ऊपर चढ़ने की सीढ़ियो के दोनो ओर की दीवारो के वाहरी किनारे पृथ्वी की धुरी के समानान्तर हैं और इनकी परछाही से सवेरे के समय यत्र की पश्चिमी और तीसरे पहर पूवी भुजाओ पर, जो वेलनाकार हैं और जिन पर घटे, मिनट, चौथाई मिनट, घडी ओर पल के चिन्ह भी अंकित हें, समय पढ़ा जा सकता है। दो सदिया बीत जाने पर भी सम्राट अभी तक शुद्ध समय जानने का एक आश्चर्यजनक साधन वना हुआ है।

"जयप्रकाश" यत्र मे दो नतोदरीय अर्द्धगोल हैं। दोनो अर्द्धगोल मिलकर आकाशीय गोल के आधे भाग के प्रतीक हैं। अर्द्धगोल मे अनेक वारीक चिन्ह वने हुए हैं, जिनसे उन्नताश, दिगश, रेखाश, अक्षाश, कान्ति ओर राशियो का पता चलता है। तथाकथित गोल सिद्धान्त और सूर्य की गति के दिग्दर्शन के लिए यह जयप्रकाश एक आदर्श यत्र है।

जयसिह के तीसरे आविष्कार "रामयत्र" मे दो गोलाकार दीवारे हैं जो एक दूसरे की पूरक हैं। दोनो दीवारो के केन्द्र अथवा वीच मे एक-एक स्तम्भ है जिनके पार्श्व मे दृश्य वस्तु देखी जाती है। इससे उन्नताश और दिगश पढे जाते हें तथा नक्षत्रो का अवलोकन किया जाता है। जयसिह ने इसी से अपनी प्रसिद्ध तालिका "जीज मुहम्मदशाही" वनाई थी जो वस्तुत उलूग वेग की तालिका का सशोधन एव परिष्कार थी।

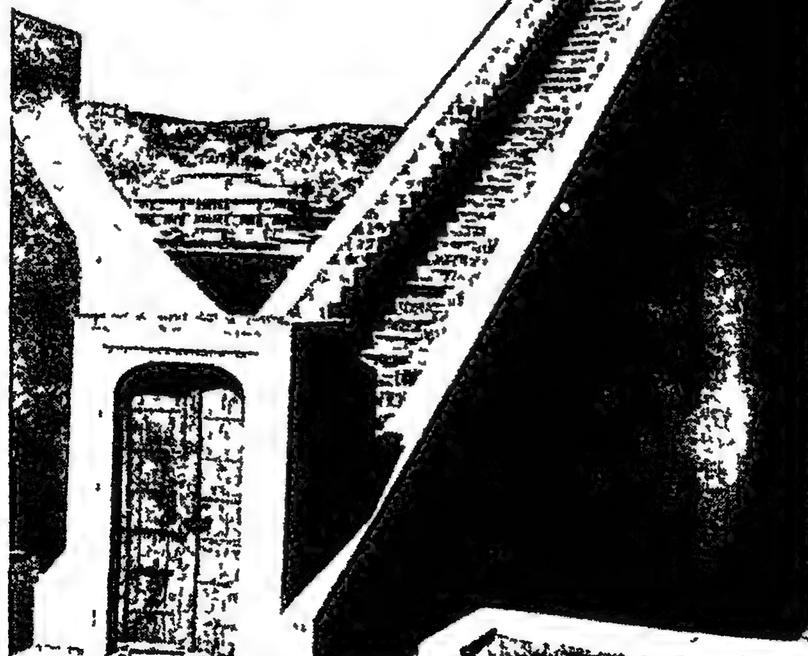
इन तीन यत्रो के अतिरिक्त और भी अनेक यत्र हैं, सब पत्थर-चूने से वने हुए। उनमे आकाशीय अक्षाश तथा देशातर का ज्ञान कराने वाला 12 छोटे यत्रो का समूह "राशिवलय यत्र," मध्यान्ह सूर्य का उन्नताश वताने वाला "दक्षिणवृत्ति यत्र" ओर "यत्रराज" मुख्य हैं। यत्रराज उन थोडे से धातु यत्रो मे से एक है, जिसे जयसिह ने अपनाया था और ऐसे यत्रो का विरोध करने के वावजूद इसके सिद्धान्त और उपयोग पर एक पुस्तक "यत्रराज- कारिका" लिखवाई थी। यह आकाशीय गोल के मध्य भागो का प्रतिनिधि है और इससे उन्नताश, दिगश, अक्षाश, देशान्तर और नक्षत्रो व ग्रहो के काल एव स्थिति सम्वन्धी अनेक समस्याओ का समाधान होता हे।

यह उल्लेखनीय है कि उजवेकिस्तान के सोवियत समाजवादी प्रजातत्र के अधिकारी समरकन्द मे उलूग वेग की प्रसिद्ध वेधशाला का भी, जो सवाई जयसिह की वेधशालाओ के विकास की एक अनिवार्य एव



महत्वपूर्ण कडी है, जीर्णोद्धार करा चुके हैं। धातु और शीशे के आधुनिकतम सूक्ष्म यत्रो और टेलिस्कोप के उपयोग के मामने उलूग वेग और जयसिह की वेधशालाए भारी-भरकम और अनुपयुक्त प्रतीत हो सकती हे, किन्तु यह नही भूलना चाहिये कि अपने समय मे यही वेधशालाए अपूर्व और नवीनतम थी। भारतीय ज्योतिष विज्ञान के पुनरुद्धार और ऐसे समय मे जवकि यूरोप आधुनिक ज्योतिष विज्ञान के सिद्धातो को मूर्त्तरूप देने के लिये अपने विचारो को शृखलावद्ध ही कर कहा था, इस प्राचीनतम विद्या के अध्ययन को नई गति और वल प्रदान करने का वहुत वडा श्रेय सवाई जयसिह को है, इसमे सदेह नही। पचागो की अपेक्षा वेधक्रिया को अधिक प्रामाणिक मानने वाले, अपरिमित एव असीम ब्रह्माण्ड के इस विद्यार्थी के लिए सहज ही यह कल्पना की जा सकती है कि यदि विज्ञान के आधुनिक उपकरण उसकी सहायता के लिए उपलब्ध रहते तो उसकी असाधारण प्रतिभा ने न जाने क्या-क्या चमत्कार वताये होते! उसकी वेधशाला के विविध यत्रो को देखते हुए अठारहवी सदी के चौथे दशक के उन दिनो की कल्पना की जा सकती है जव जयपु[illegible] का सस्थापक यह ज्योतिषी शासक यहा असीम आकाश के अध्ययन मे जुटा रहता था और कभी कोई [illegible] गणितज्ञ, कभी कोई जर्मन विद्वान तो कभी कोई पाश्चात्य खगोल शास्त्री वैज्ञानिक उससे और उसकी विद्वद् मडली से परस्पर विचारो का आदान-प्रदान करता था। जयसिह के जीवन-काल मे यह [illegible] सचमुच एक अतर्राष्ट्रीय मच जैसी हो गई थी जहा ज्योतिष विज्ञान के जानने वाले वरावर आते और विच[illegible]-विनिमय करते थे। वडे-वडे नामी दर्शनीय स्थानो से भरपूर जयपुर मे अकेली यह वेधशाला ही ऐसा [illegible]मिक स्मारक है जो इस शहर की कीर्त्ति को विश्व-व्यापी वनाए हुए है और वनाये रखेगी।

सवाई जयसिह की इस वेधशाला पर अनेक अच्छी-अच्छी पुस्तके उपलब्ध हैं। [illegible] इसके यत्रो तथा उनके उपयोग के सम्वन्ध मे विस्तार से जानना चाहे, उन्हे कैप्टेन गैरेट की 'दि [illegible] ब्जरवेटरी एण्ड इट्स बिल्डर' (1902) देखनी चाहिये।



सम्राट यत्र का शीप, जा आकाशीय धव का मचक है



12. हवामहल

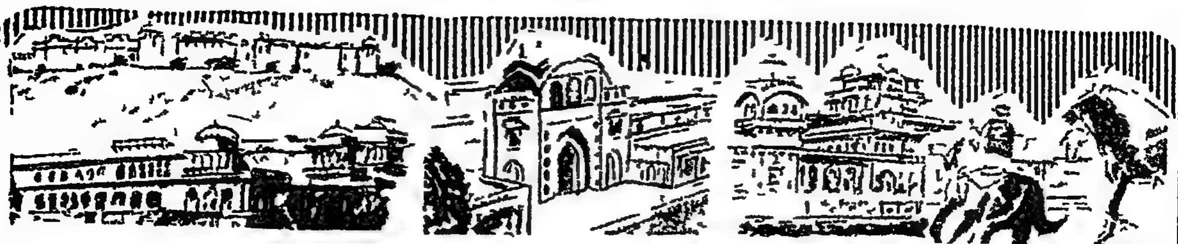
जयपुर के गुलाबी शहर को देखने के लिये हर साल दुनिया भर से जो हजारो पर्यटक खिचे चले आते है उसके पीछे खुला राज है—हवामहल। जैसे खादी का नाम लेते ही चर्खा याद आ जाता है, वैसे ही जयपुर के नाम के साथ हवामहल की बुलन्द इमारत अपने आप आखो के सामने खडी हो जाती है। देश भर मे रेल्वे स्टेशनो और अतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डो के प्रतीक्षालयो मे टगे हुए इस भव्य प्रासाद के चित्र देखकर ही न जाने कितने भारतीय और विदेशी पर्यटक इस गुलाबी नगर की यात्रा करने और गुलाबी आभा से अलकृत पाच मंजिल की इस शिल्पकृति के ललित सौन्दर्य को निहारने के लिये प्रेरित हो जाते है।

"नयनाभिराम शिल्प-सज्जा से सम्पन्न झूलते हुए झीने झरोखो और वितानयुक्त वातायनो का एक के ऊपर एक मडराती हुई अवलियो से शुन्डाकार स्वरूप का यह प्रासाद सहज सुषमा एव समीर का एक पर्वत-सा प्रतीत होता है, जिसकी सहस्रो जालियो और वृत्ताकार मेहरावो मे होकर अभ्रकश अट्टालिकाओ की छतो पर भारतीय समीरण उन्मुक्तभाव से शीतलता की लहरियो का सचार करता है।"

हवामहल की सुन्दरता का यह वर्णन सर एडविन आर्नोल्ड ने किया है। सर एडविन का सारा जीवन इग्लैण्ड के लिये भारत की विद्याओ और उनके रहस्यो के उद्घाटन के लिए समर्पित था, "क्योकि भारत भी उसे उतना ही प्रिय था जितना इग्लेड।" हवामहल की प्रशस्ति मे उसने आगे कहा है कि "अलादीन का जादूगर इससे अधिक मोहक निवास-स्थान की सृष्टि नही कर सकता था और न ही पेरीवेनान का रजत-मुक्तामहल इससे अधिक सुरम्य रहा होगा।"

फिर भी जयपुर मे जिन्हे कुछ अधिक रहने और हवामहल मे सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है, उन्हे इस अति प्रसिद्ध राजप्रासाद की झाकी ऊबाने वाली हो जाती है और वे आश्चर्य करते हैं कि आखिर इस चूने- पत्थर की इमारत मे, जिसमे न कही नक्काशी है और न कोई अन्य अलकरण, ऐसा क्या है जो यह जयपुर के स्थापत्य की नाक बनी हुई है ! राजस्थानी कहावत, "रूप की रोवै, करम की खाय" हवामहल पर जैसे सोलहो आने सही उतरती है। इसी जयपुर मे आमेर के नयनाभिराम दुर्ग- प्रासाद और चन्द्रमहल, मुबारक महल तथा केंद्रीय सग्रहालय की आलीशान इमारते क्या कम है, लेकिन हवामहल है कि इन सब पर हावी है।

हवामहल के सामने खडे होकर, जो वास्तव मे इसकी पीठ है, दर्शक को सदेह होने लगता है कि इस अजीबो-गरीब भवन को हवामहल नाम देना सही भी है अथवा नही। जो खिडकिया वह सामने देखता है, वे बस नाम लेने भर की है, आदमी का सिर कठिनाई से उनमे होकर बाहर निकल सकता है। फिर यह खिडकिया



खुलती भी है पूर्व की ओर, जिधर से वर्षाकाल की पुरवाई को छोडकर वर्ष के शेष भाग मे हवा आने की कोई सभावना नही रहती। अधिकतर दर्शक और पर्यटक हवामहल को यही से देखते हैं और यह कहते हुए विदा ले जाते हैं कि इसकी तो तस्वीर ही शायद इससे अधिक अच्छी थी।

लेकिन हवामहल मे स्थापत्य की दृष्टि से देखने-समझने को वहुत कुछ है। इसके पश्चिमाभिमुख मुख्य द्वार मे होकर प्रवेश कीजिये, हवामहल नाम की सार्थकता प्रकट हो जायेगी। इस मेहरावदार प्रवेश-द्वार से आगे वढते ही एक खुला चौक मिलता है जिसके चारो ओर वरामदे तथा निवासकक्ष हैं। इससे आगे वढने पर कुछ ऊचाई पर एक और चौक है जिसके मध्य मे सफेद सगमरमर का हौज वना हुआ है। पहले से दूसरे चौक मे पहुचने के लिए एक प्रवेशद्वार है जिसके दोनो ओर द्वारपालो तथा हिदू देवी-देवताओ की कुछ पाषाण-प्रतिमाए हैं। ऊपर वाले चौक से सीढियो के स्थान पर एक घुमावदार खुर्रा ऊपर चढता है जिसके द्वारा सिरह ड्योढी वाजार मे खडे इस मुख्य प्रासाद की विभिन्न मजिलो मे पहुचा जा सकता है। दूसरी और तीसरी मंजिल मे रहने के कमरो के सामने दोनो ओर दो चादनिया अथवा खुली छते हे। चौथी मजिल मे फिर एक चादनी है, ठीक वीच मे। पाचवी तथा सर्वोच्च मजिल मध्य मे थोडी सकुचित हो गई है जिससे इस विशाल भवन मे अनुपात का निर्वाह होने के साथ- साथ इसे पिरेमिड जैसा आकार भी मिल गया है। इमारत के दोनो ओर दो गुम्बजदार छतरिया हैं जो अवश्य ही दृश्यावलोकन के लिए वनाई गई होगी। दक्षिण की ओर जो छतरी है वहा से एक ढालू खुरा नगर की सुरम्य माणक चौक चौपड के कोने तक चला गया है जहा से मुख्य वाजारो का दृश्य और भी खुल जाता है।

हवामहल मे नीचे के दोनो खुले हुए चौक तथा ऊपर की चादनिया उल्लेखनीय है। पश्चिम की ओर से मुख्य प्रवेश द्वार तथा उसके ऊपर होकर आने वाली ताजी हवा कही अवरुद्ध नही होती और चौको व चादनियों मे होकर पहली से पाचवी मंजिल तक के कक्षो मे सहज रूप मे जाती है। पूर्व की ओर वाजार मे खुलने वाली छोटी खिडकिया तो मात्र 'कासवेन्टीलेशन' के लिए हैं। इमारत मे अलकरण और नक्काशी का जो अभाव है वह भी हल्के-हल्के वाहर झुकती हुई लघु खिडकियो की झरोखियों से पूरा हो जाता है जिनमे झिलमिल जालिया लगी हुई हैं। इनके छोटे-छोटे गोलाकार और चपटे छत कलशो से सुशोभित हैं। अपने गहरे गुलावी रग मे, जिस पर सफेद कलम से सामान्य सजावट की गई है, पाच मजिल का यह भव्य राजभवन सूर्योदय के समय अपनी अपूर्व आभा से दमकता हुआ स्वप्नलोक जैसा दृश्य उपस्थित कर देता है।

हवामहल की निर्माण-कला की विशेषता इतने विशाल और ऊचे भवन मे चौको और चादनियो की यह व्यवस्था ही है जो सिद्ध करती है कि देशी निर्माण-पद्धति मे भी प्रकाश और वायु-सचार के लिए कैसी तजवीजे की जाती थी, जो आधुनिक इमारतो मे वहुत सावधानी रखते रखते भी कुन्ठित हो जाती है। फिर यह भवन जितना भव्य है, उतना ही हल्का-फुल्का भी। छोटे-छोटे जाली-झरोखो वाली उन्नत दीवार कठिनाई से आठ इच चौडी होगी जिस पर पूरी पाच मजिले उठा ले जाना जयपुर की निर्माणकला की अपनी विशिष्टता है। लगभग 150 वर्ष पुराना यह महल अपनी कमनीय कारीगरी के साथ आज भी ऐसे खडा है जैसे हाल ही मे वना हो। जयपुर मे उस काल मे उपलव्ध कली और चूने को भी इसका कम श्रेय नही है जिसके पलस्तर ने इस इकहरी प्राचीर मे दवे पाषाण को लोहा वना दिया है।

जयपुर तो 1733 ई तक भली-भांति वस चुका था, लेकिन जव हवामहल वनने लगा तो जयपुर और राजस्थान ही क्या, सारा उत्तरी भारत ही इतिहास के अधेरे दौर से गुजर रहा था। यह जानकर हैरत होती है कि उन दिनो, जव इस महल को वनाने वाला अपने राज्य और अपने जीवन को एक दिन के लिए भी सुरक्षित मानकर निश्चित नही हो सकता था निर्माण की ऐसी महत्त्वाकाक्षा की न केवल कल्पना की गई, वरन् उसको मूर्त्त रूप भी दिया गया।



सवाइ प्रतापसिह 1778 ई मे वडी अशुभ और खतरनाक परिस्थितियो मे जयपुर की राजगद्दी पर बैठा था। नावालिग राजा की ओर से सारा राज-काज राजमाता चूडावतजी चलाती थी जो फीरोज नामक एक फीलवान (महावत) और खुशालीराम वोहरा पर वडी कृपा रखती थी। कर्नल टाड ने लिखा है कि प्रतापसिह एक धीर-वीर शासक था लेकिन उसके राज्य की आतरिक फूट और पडयत्र तथा वाहरी दुश्मनो से निपटने के लिए यह धीरता और वीरता, दोनो ही कम पडते थे। फीरोज और वोहरा की आपसी कशमकश ने जयपुर की उलझनो को ओर वढा दिया और नौजवान प्रतापसिह जिन्दगी भर मरहठा हमलावरो से लडता-झगडता और भारी रकमे ले-देकर फैसले करता रहा। प्रतापसिह की शान मे एक बडी वात यह है कि उसने महादजी सिधिया जैसे प्रवल मरहठा सेनापति को वस्सी के पास तूगा की लडाई मे जवर्दस्त मात दी और भागने पर मजवूर कर दिया। लेकिन यह विजय वडी महगी पडी थी। जयपुर का खजाना प्राय खाली हो गया था।

मरहठो ने इस हार के वाद भी पिड नही छोडा। उनका कोई न कोई सेनापति जव-तव जयपुर पर चढ आता और चौथ वसूल करता। प्रतापसिह को एक वहुत वडी रकम तुकोजी होल्कर को देकर सिर पर मडराते हुए खतरे को टालना पडा।

ऐसे आक्रमणो और घेरो, दुरवस्था ओर कलह के वीच प्रतापसिह स्थिर- चित्त भी रहा और 'औला-दोला' भी। इसका प्रमाण हवामहल ही नही, उसके समय मे वने प्रीतम निवास आदि चन्द्रमहल के अनेक विशाल कक्ष और पोथीखाने के मूल्यवान ग्रथ तथा सूरतखाने के वे लाजवाव चित्र हैं जिनकी चर्चा यथास्थान की जा चुकी है। इन सवके अलावा प्रतापसिह की अपनी काव्य- रचना और उसकी "कवि वाईसी" के कवियो की रचनाये और गुणीजनखाने के सगीतज्ञो की स्वर- साधना भी इसके सुवूत है। तत्कालीन इतिहास का यह अद्भुत विरोधाभास हैं।

वह युग वास्तव मे विरोधाभास का ही युग था। जीवन नगण्य होने पर भी उन दिनो नीरस नही था। राजपूत के लिये जीवन की सार्थकता या तो रणक्षेत्र की मार-काट मे थी या अत पुर के भोगविलास में। फिर प्रतापसिह राजा होने के साथ-साथ कवि भी था, सेनिक होने के साथ-साथ कला-रसिक और विलास-प्रिय भी था। तभी उस उथल-पुथल के वीच वह इस नगर के विकास मे इतना रचनात्मक योग दे पाया था।

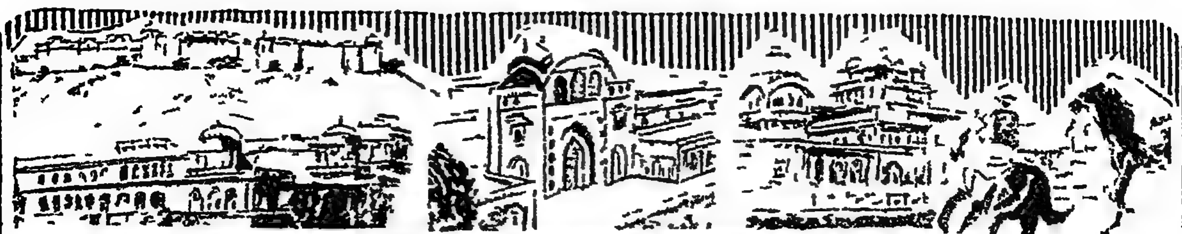
कुछ लोगो का मानना है कि हवामहल का आरभ माधोसिह प्रथम ने करा दिया था जिसके और प्रतापसिह के वीच एक अल्पवयस्क शासक पृथ्वीसिह का कुछ वर्षो का शासन आता है। कितु प्रतापसिह ने एक दोहे मे स्वय इस राजप्रासाद के निर्माण का श्रेय लिया है

हवामहल याते कियो,
सब समझो यह भाव।
राधा-कृष्ण सिधारसी,
दरस- परस को हाव।।

इस कवि-नरेश ने फारसी तर्ज के अपने एक रेखते मे हवामहल का जो वर्णन किया है उससे भोग-विलास की उस प्रभूत सामग्री का विवरण मिलता है जो उस काल मे इस भवन मे होने वाले आयोजनो मे सहायक होती होगी।

हवामहल का प्रधान मिस्त्री था लालचन्द उस्ता, जिसके वशजो के पास अभी हाल तक एक गाव की जागीर थी। यह गाव लालचन्द को हवामहल के निर्माण-कौशल के पुरस्कार स्वरूप मिला था।

अपनी निराली कमनीयता और स्वप्नलोक जैसी छवि के कारण हवामहल जयपुर के व्यक्तित्व और इसकी सुन्दरता का पर्याय वन गया है। अपने ढग की यह एक ही इमारत आज भी उस विशिष्ट व्यक्तित्व का प्रतीक वनकर खडी है जो जयपुर ने मुगल साम्राज्य के क्षय के अनन्तर एक नगर के रूप मे विकसित किया था।



हवामहल— [illegible]

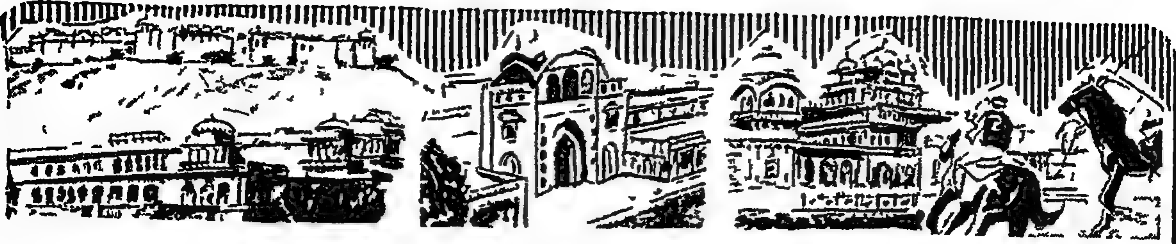


हवामहल मे प्रतापसिह और जगतसिह के समय मे बडे रगरग होते रहे होगे। चन्द्रमहल के खास महलो से हवामहल तक जो सुरग बनी है, प्रतापसिह ने ही बनवाइ थी। यह सुरग या ढका हुआ रास्ता हवामहल से त्रिपोलिया बाजार की दुकानो की छतो और त्रिपोलिया से होती हुइ जनानी ड्योढी तक गई है। इसमे होकर रनिवास की औरते इस जादुइ महल मे आती-जाती होगी और उन महफिलो- मजलिसो मे शामिल होती होगी जिनका सकेत प्रतापसिह ने अपने "रेखते" (गजल) मे किया है

करते है हवामहल हवा राधे श्री विहारी।
सग सखिया सुघर सुथरी बिथुरी सी फूल-क्यारी।।
मरजी को पाय दस्त लिए सबहि सौज त्यारी।
खाना-पीना अगर- चोवा अतरदान- झारी।।
पानदान पीकदान ले रूमाल न्यारी।
चवर लिए मोरछल को ले अडानि धारी।।
छतर लिए काच और कलमदान वारी।
लई पखी फूल- माल आसा लिए नारी।।
केई लिए जर जेवर औ पुसाक भारी।
केई लिए शमेदान वहु गुना तियारी।।
केई धरे दुसाखे कहै औ चिराग लारी।
महताव छोडै केई चश्म खुशी को लगा री।।
लीए हजार वान दूरबीन चित्रकारी।
केई लिए है ख्याल लाल तूती सुक सारी।।
पैरो के कोश लीए खडी रौस की अगारी।
करती है वाज गश्ती पखा पौन की हुस्यारी।।
लेके गुलावदानी से करती है आव जारी।
रखती है अगरवत्ती धूप रूप की उजारी।।
कुरसी पै अजव ले मरोड वैठ खुश मुरारी।
क्या फवि रही है जेव से प्रीतम के पास प्यारी।।
लटकन से मटक नाचती ज्यो जमकनी दिवारी।
वाजे वजाती गाती है कोइल सी कुहक कारी।।
कीनी मुराद पूरी मै तो वारी वारी वारी।
"व्रजनिधि" पै फिदा होके जान कीनी है वलिहारी।।89।।

आगे के जमाने मे हवामहल मे कुछ समय तक पोथीखाने का भी काम चला और यह महाराजा का अतिथिगृह भी रहा। जयपर के राज परिवार की ओर से समय- समय पर आयोजित होने वाले ब्रहमभोजो या हजारो लोगो के "हेडो" के लिए भी यही महल उपयुक्त समझा गया। 1880 ई मे महाराजा रामसिह के मरने पर पूरे जयपुर शहर को जिमाने के लिए जो सामान वनाया गया वह हवामहल मे ही सेठ नथमल दीवान की देख-रेख मे वना था। जो हवामहल आज विदेशी पर्यटको का आकर्षण है, उसमे जयपुर के ब्राहमणो ने छक कर "लाडू-कचोरी" खाये है, और वार- वार खाये है। वह जमाना हवा हुआ, हवामहल अव देखने भर की ही महलायत है।

1 व्रजनिधि ग्रथावली पृष्ठ 368-69

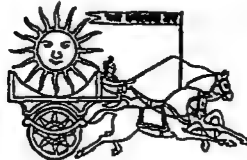


अत मे गुलाबी नगर की इस अप्रतिम इमारत के सबध मे सवाई प्रतापसिह के दरबार के कवि रसराशि रामनारायण के तीन कवित्त[2] उद्धृत करने का लोभ सवरण नही किया जा सकता-

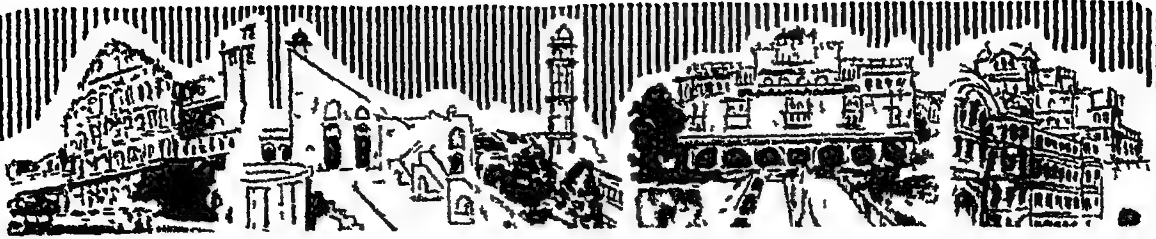
सुन्दर शहर सीस सेहरो सवार्यो किधौ,
पुहुप विमान आप अवनी पै आयो है।
कचन रजत के पहार मिलि बैठे किधौ,
शरद घटा पै छटा थिर पद पायो है।।
किधौ "रसराशि" श्री प्रताप को सुजस तापै,
प्रकट प्रताप प्रभा पाय छवि छायो है।
भयो है न व्है है कहू देख्यो न सुन्यो है ऐसो,
हवा देखिबे को हवामहल बनायो है।।

कचन के कलश पताका धुजा कचन की,
कचन के तोरण करोरन निहारे हैं।
मोतिन की झालरि झुके हैं झब्बा मोतिन के,
मोतिन के चौक, चौक में सवारे हैं।।
चादी को कटहरा चबूतरा हू चादी को,
चांदी बगला मे "रसराशि" रंग भारे हैं।
चहल पहल हवामहल झब्यो है आज,
राधे गिरिधारी प्यारे पाहुने पधारे हैं।।

सुन्दर सुखद सोह्यो सुधाधर को सो धाम,
जामैं श्यामाश्याम सग रग बरसायो है।
झनक मनक होत भूषण बनक बने,
कूजत कपोत केकी कौतुक मचायो है।।
महकत अगराग अग की सुगध सन्यौ,
पुहुप पराग हू उमागे उफनायो है।
फबी जामैं छबीले सुहाग की सुवास हवा,
यातैं "रसराशि" हवामहल कहायो है।।



2 लिटरेरी हेरीटेज आफ दि रूलर्स आफ आमेर-जयपुर, पृष्ठ 497-98



13. राजेन्द्र हजारी गार्ड्स

विश्व-प्रसिद्ध हवामहल और गोवर्धननाथजी के मंदिर के सामने अब राजस्थान के महानिरीक्षक आरक्षी का कायालय है। दो विशाल चौको के चारो ओर अनेक नये- पुराने मकानो मे यह दफ्तर चलता है। जब तक जयपुर रियासत का अस्तित्व रहा, इसे "राजेद्र हजारी गार्ड्स" कहा जाता था और यहा बैरके थी जिनमे अश्वारोही दस्ते रहते थे।

नगर-प्रासाद की मौखिक परम्पराओ के अनुसार सवाई जयसिह के समय मे जब चौकडी सरहद मे राजमहल, वाग और अन्य इमारते बनवाई गई तो रथखाना और गौखाना या गौशाला यहा रखे गये थे। तब यही पर टकसाल और एक तोप ढालने का कारखाना भी स्थापित किया गया था, जिसका एक भाग ज्योतिष यत्रालय मे आ गया। कपडद्वारा में एक दस्तावेज से पता चलता है कि यहा जो टकसाल खोली गई थी, उसमे ढाले हुए एक मुहर और पाच रुपये किसी पेमा खवास ने सवाई जयसिह को नजर किये थे।[1]

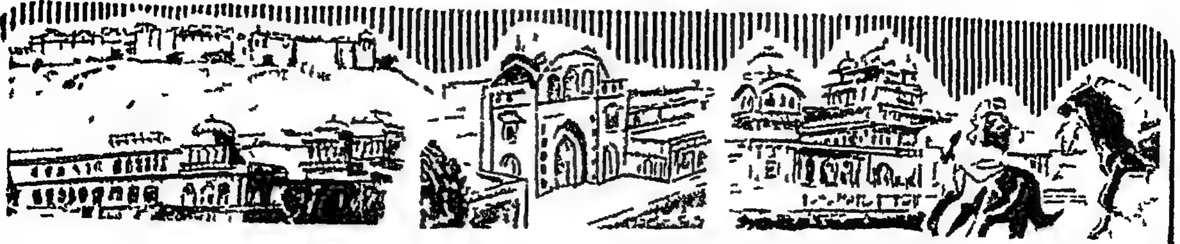
सवाई प्रतापसिह ने जब 1799 इ मे हवामहल बनवाकर पूरा किया तो इस नायाब इमारत के सामने एक सुन्दर वगीचा लगाने की योजना बनाई गई। उस समय का एक नक्शा पोथीखाने मे उपलब्ध है, जिससे इस योजना की जानकारी मिलती है। जो हो, यह वाग नही लग पाया और राज-प्रासाद मे यह खासा रिसाले का सदर मुकाम ही रहा।

ठाकुर हरनाथसिह के अनुसार सवाई जयसिह ने जलेब चौक के पास ही एक अलग अहाते मे इस रिसाले के लिए बैरके और अस्तवल वनवाये थे।[2] जयपुर का सैन्य सगठन वडा पुराना चला आता था और राजा भगवतदास और उसके कुवर मानसिह ने राजपूतों की एक वडी सेना तैयार की थी जिसमे मिर्जा राजा जयसिह के समय मे भी वाईस हजार सैनिक थे। इसी का एक भाग खासा रिसाला था जो राजा के महल के पास ही नियत था।

जयपुर के अंतिम महाराजा मानसिह (1922-70 ई) ने अपने शासन के आरभिक वर्षो मे रियासत की सेना का ब्रिटिश सेना के अनुकरण पर जब आधुनिकीकरण और पुनर्गठन किया तो खासा रिसाला को "राजेद्र हजारी गार्ड्स" का नाम दिया गया। इस महाराजा ने बैरको व अस्तबलो का भी आधुनिक आवश्यकता के अनुसार पुनर्निर्माण कराया और दफ्तर, मैस तथा भण्डार आदि की दृष्टि से नये भवन बनवाये।

जयपुर रियासत का राजस्थान मे विलय हो जाने के वाद राजेद्र हजारी गार्ड्स को विघटित कर दिया गया

1 प गोपाल नारायण बहुरा से व्यक्तिगत जानकारी
2 जयपुर एड इट्स एनविरन्स, जयपुर, पृष्ठ 83



और नगर प्रासाद का यह भाग नये राज्य की पुलिस का प्रधान कार्यालय वन गया। तव से अव तक यहा के मकानात मे और काफी हेरफेर हो गया है।

राजेन्द्र पाळ पर पहरा बदलते हुए राजेन्द्र हजारी गाड्स



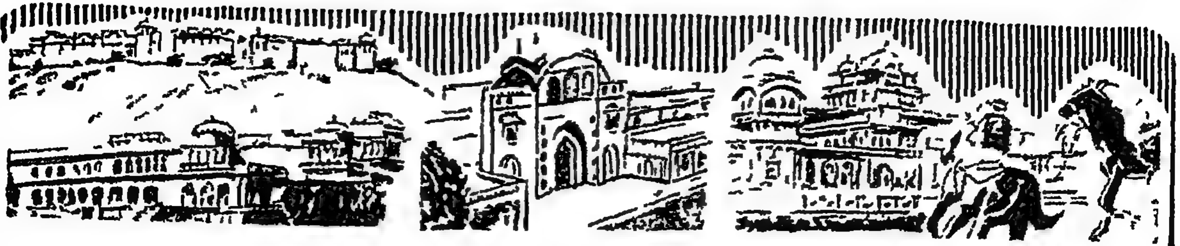
14. जयनिवास उद्यान

राज-दरवार और रनिवासो के वाद जव नगर-प्रासाद के विशाल उद्यान जयनिवास मे आते है तो चन्द्रमहल के सामने ऐसा चित्रोपम दृश्य उपस्थित होता हे जो मुगलो के शाही किलो मे भी नही है। किन्तु यह सही है कि जयपुर वसने के समय तक मुगल स्थापत्य और शिल्प आगरा के ताजमहल और एतमादुद्दौला के मकवरे, दिल्ली के लाल किले की शाही इमारतो और दूसरे उद्यान- भवनो मे अपनी सुन्दरता और भव्यता की पराकाष्ठा को पहुच चुके थे। इसलिये यह स्वाभाविक था कि सवाई जयसिंह भी अपने महल की रूप रेखा मे वागायत को इमारत जितना ही महत्त्व देता। जिस तालाव के किनारे शिकार की ओदी मे वैठकर सभवत पहली वार उसने इस सुन्दर नगर की कल्पना की थी, वही "तालकटोरा" उस विशाल उद्यान का उत्तरी छोर वना जिसे "जय निवास" का नाम दिया गया। चन्द्रमहल इस वाग के दक्षिणी छोर पर वनाया गया और पूर्व तथा पश्चिम मे ऊची और मजवूत दीवारो से घेर कर इस राजसी उद्यान भवन की हदवदी की गई। गोविन्ददेवजी का मदिर (सूरज महल) इस वाग के वीच मे विशाल वारादरी थी और दक्षिणी छोर पर तालकटोरे मे मुह देखता 'वादल महल' वनाया गया था।

जयनिवास अनिवार्यत एक मुगल वाग है और इसकी विशेषता वहते पानी की उन नहरो मे है जो पूरे वाग को अलग- अलग निचले तख्तो मे वाटती चली जाती है। चन्द्रमहल के सामने सगमरमर का हौज अतीव सुन्दर है और जताता है कि वागायत की जिन्दगी पानी से ही है। रियासती तौर- तरीको और कुरव- कायदो ने जयनिवास, चन्द्रमहल और वादल महल को कडे पहरे मे वद पर्दानशीन सौंदर्य की तरह रखा और इस मनोरम उद्यान तथा इसके भव्य भवनो की विशेषताओ को उजागर न होने दिया।

जयनिवास मुगल-उद्यान-कला के सर्वोत्कृष्ट नमूनो मे गिना जा सकता है। इसकी योजना आज भी वैसी ही है जैसी जयसिह के समय मे थी। अठारहवी सदी के आरभ मे भारतीय रईसो की सुरुचि और सौंदर्य- प्रेम का अनुमान लगाने के लिए यह एक सशक्त उदाहरण है। भरतपुर मे डीग के गोपाल भवन के फव्वारो की छटा का वडा नाम है, लेकिन जयनिवास के फव्वारो को चलते हुए जिन्होने देखा है, वे मानेगे कि यह भी डीग से होड लगाने वाला है, यद्यपि यहा की जलधाराओ मे रगो की वैसी छटा नही होती।

चन्द्रमहल के नीचे से दोनो ओर पत्थर जडे मार्गो के वीचो-वीच जो नहर गई है उसको दोनो ओर से आने वाली ऐसी ही नहरे समकोण पर काटती है— ठीक उसी तरह जिस तरह जयपुर नगर के मार्ग एक-दूसरे के आर- पार जाते है। इस प्रकार वाग मे जो चौराहे वनते है, वहा होज वने है। सभी नहरो के बीच मे थोडे- थोडे फासले से फव्वारे लगे हैं जिनकी सख्या हौजो मे और भी ज्यादा हो जाती है। चला देने पर सावन- भादो का



दृश्य उपस्थित होता है और अच्छी हवा चलती हो तो फुहारो के आनन्द के क्या कहने।

आमेर की पहाडी पथरीली भूमि मे वाग- वगीचो की वैसी गुजाइश नही थी जैसी जयपुर वसाने पर हुई। जब इतना वडा वाग लगाया जाने लगा तो उसके लिए पेड- पौधो का चुनाव भी एक वडा काम था। जयपुर और चौमू के इतिहासकार स्वगीय हनुमान शर्मा का कथन है कि गुलाव, दाऊदी और सोनजाय के सैकडो पेड चौमू के मिया विलायतखा के वाग से यहा आये थे। मियाजी चौमू मे मुसाहव या कामदार थे जिन्हे जयपुर रियासत से भी जागीर थी। चौमू के वाहर "नाडा" नामक स्थान मे उन्होने एक मस्जिद वनवाई थी और एक विशाल वाग भी जिसके सोन जाय, दाऊदी, कमरख और खिरनी के पेड वडे नामी थे। जिस मिलीजुली हिन्दू-मुस्लिम शैली मे नगर-प्रासाद तथा जयनिवास उद्यान की योजना वनी, मिया विलायत खा उसके भी प्रतीक थे। अभिवादन मे "राम-राम" या "सीताराम" कहते, दान-पुण्य, पूजा-पाठ और ब्राह्मण भोजन तक में श्रद्धा दिखाते और अपने स्वामी, चौमू-ठाकुर मोहनसिह नाथावत की वफादारी के साथ नौकरी वजाते। सवाई जयसिह ने भी इस "मुसलमान हरिभक्त" को पन्द्रह सौ रुपये सालाना आय की जागीर वख्शी थी।[1]

जयनिवास मे गोविन्ददेवजी के मंदिर के पिछवाडे का विशाल हौज सवाई प्रतापसिह ने वनवाया था। रग-विरगे काचो से वने झरने से गिरकर हौज का पानी आगे निचले वाग मे जाता था। इस हौज के पूर्व मे 'सावन-भादो' नामक फर्न-हाउस भी कभी वहुत सुन्दर और दर्शनीय था, जिसमे कल घुमाते ही सव ओर लगे छेददार नलो से पानी चलने लगता था और वर्षा का नजारा वन जाता था। प्रतापसिह के वाद जयपुर को जो बुरे दिन देखने पडे उनमे जयनिवास उद्यान की भी वडी उपेक्षा हुई। 1835 ई मे महाराजा रामसिह गद्दीनशीन हुए और उन्होने सारे जयपुर के जीर्णोद्धार के साथ जयनिवास को भी वह सौंदर्य और गरिमा लौटाई जो उनके 60-70 साल पहले तक रही थी। वारहदरी या गोविन्द देवजी के मंदिर के सामने दाहिनी ओर जो पीली इमारत वनी हुई है, वह रामसिह ने ही वनवाई थी। यह "विलियार्ड रूम" है जिसका स्थापत्य चन्द्रमहल या गोविन्द मदिर से अलग-थलग मालूम होता है। इसकी छत वहुत ऊची है और मेहरावे सुन्दर जो इटालियन सगमरमर के स्तभो पर उठी हैं। 1875 ई मे ग्वालियर का महाराजा जियाजीराव सिंधिया महाराजा रामसिह का मेहमान बनकर जयपुर आया था तो उसने यही विलियार्ड पर अपने हाथ आजमाये थे। महाराजा मानसिह ने इसे 'वेक्वेट हॉल' का रूप दिया और यह आज भी इसी रूप मे सुसज्जित है। विलियार्ड रूम के ठीक सामने बाग के दूसरे तख्ते मे ऊची दीवारो से घिरा एक बडा-सा अहाता है जिसमे तरणताल है।

महाराजा मानसिह (1922-70ई) ने जयनिवास के पत्थर जडे मार्गों, पानी की नहरो और मध्यवर्ती भाग को तो नही छेडा, किंतु वाग को उन्होने आधुनिक उद्यान- कला के अनुरूप बनवाया। इससे नगर-प्रासाद की शोभा मे अभिवृद्धि ही हुई है।

जयनिवास उद्यान चन्द्रमहल से बादल महल तक फैला है और बाग के बीचो-वीच गोविन्द देवजी के मंदिर के पश्चिम मे एक छोटा दरवाजा निचले वाग मे जाने का रास्ता है, जो पहले ऊपर के सजावटी वाग की तुलना मे फलो का बगीचा था। अब तो यह बाग (निचला) कर्नल भवानीसिह ने जयपुर नगर परिषद को दे दिया है जिससे नगर के दक्षिण मे रामनिवास बाग की तरह उत्तर मे यह जयनिवास बाग एक सार्वजनिक उद्यान बनकर इस ओर के नागरिको के विहार और मन-बहलाव का अच्छा स्थल वन गया है।

---

1 नाथावतों का इतिहास, हनुमान शर्मा, पृष्ठ 160

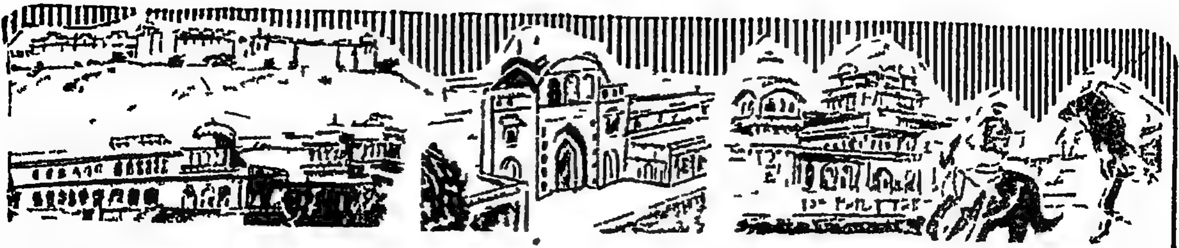


15. ताल कटोरा

जयपुर के नगर-प्रासाद और जयनिवास के उत्तरी छोर पर ताल कटोरा है—एक वनावटी झील, जिसके दक्षिण मे वादल महल और तीन ओर चौडी मिट्टी की पाल हुआ करती थी जिस पर अव जयपुर की बढती आवादी ने मकान ही मकान बनाकर इस चित्रोपम जलाशय के सारे सौन्दर्य को विकृत कर दिया है। इस पाल पर भी पहले वहुत सुन्दर वगीचा था जिसे "पाल का वाग" कहा जाता था। जयपुर के तीज और गणगौर के प्रसिद्ध मेलो का समापन पाल के वाग मे ही होता आया है— वादल-महल के एकदम सामने वाली पाल पर— जिसके कोनो पर अष्टकोणीय छतरिया, वीचो-वीच कमानीदार छतवाली लम्वी छतरी और इनके बीच मे समतल छतो वाली जालियो से वद दो छतरिया और वनी हैं। तीज और गणगौर के जुलूस इसी जगह आकर समाप्त होते हैं। भोग के वाद ताल कटोरा मे ही तीज और गणगौर को पधराने या विसर्जित करने का रिवाज रहा है। लह-लहाते वाग-वगीचो के बीच, जलाशय के किनारे तीज और गणगौर के रगो से भरे जुलूसो का यह नजारा इस शहर के सबसे चित्रोपम नजारो मे गिना गया है। दूसरी पाल पर जब इस प्रकार मेले का ममापन होता था तो बादल महल मे जुडी सभा या दरवार मे नाच-गान के कार्यक्रम चलते रहते थे। जिस जमाने मे व्रहमपुरी और माधोविलास की दीवारो से टकराने वाला राजामल का तालाव तीन ओर से नालक्टोरा को घेरता था तो ताल कटोरा नाम सार्थक हो जाता था—वडे तालाव मे तैरता हुआ कटोरा—ताल-क्टोरा।

नगर-प्रासाद की सरहद मे आये हुए इस ताल मे कभी मगरमच्छो की भरमार थी। इन्हे रोजाना महाराजा की ओर से खुराक पहुचाई जाती थी और यह जानवर वडे पालतू हो गये थे। खुराक लेकर जाने वाले कर्मचारी जव ताल कटोरे की पाल पर जाकर खडे होते तो वडे-वडे मगरमच्छ उनके हाथो अपना भोजन पाने के लिये मीढिया चढकर ऊपर पाल तक आ जाते। मगरमच्छो को खिलाने का यह नजारा भी खूब था। जिन्होने देखा है, उन्हे अव तक याद है।

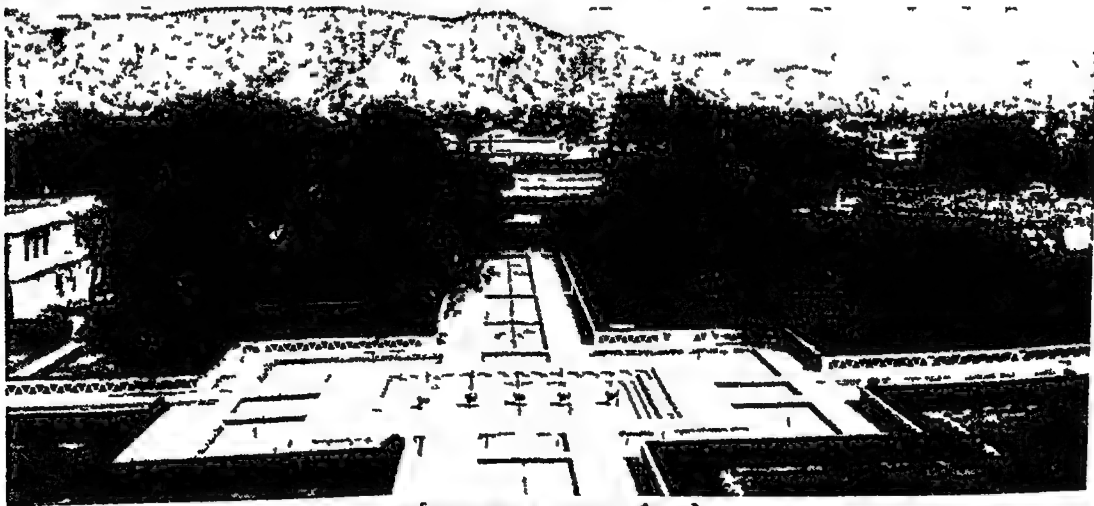
खास-खास अवसरो पर ताल कटोरा मे मगरमच्छो को खिलाने का एक तमाशा भी होता। लम्वी रस्सी से वाध कर कोई जिन्दा खुराक तालाव मे फेक दी जाती, उसी तरह जैसे शेर के लिये वकरा या पाडा बाध दिया जाता है। वस, मगरमच्छो मे घमासान लडाई छिड जाती। जव सवसे जोरदार जानवर इस खुराक को पकड लेता तो रम्साकशी होती। एक तरफ मगर और दूसरी तरफ रस्सी को थामने वाले आदमी। अपनी शिकार के पीछे पडे क्रुद्ध मगरमच्छ को खीच कर तालाव से बाहर करने के लिए कई-कई लोगो को जोर आजमाना पडता। इस तरह वह जबरन खिच तो आता, लेकिन फिर झुझला कर रस्सी को काट खाता और लौट जाता



पानी मे।

राजामल का तालाव ओर ताल क्टोरा की जगह जयपुर वमने मे पहले भी झील ही थी जिसके आसपास आमेर के राजा शिकार खेलने के लिए आया करते थे। जव सवाई जयसिह ने जयनिवास वाग और उसमे अपने महलात वनवाये तो ताल क्टोरा को तो वह स्वरूप मिला जो आज भी हम देखते है ओर राजामल का तालाव नगर-प्रासाद की "सरहद" मे वाहर आम जनता के लिए छोड दिया गया। इस तालाव को तत्कालीन ग्रन्थो मे "जयसागर" कहा गया है लेकिन जयसिह के प्रधानमत्री राजमल की हवेली के पास होने के कारण जयपुर के लोगो ने इसे "राजामल का तालाव" ही कहा। इसमे पानी की आमद शहर के उत्तरी भाग ओर नाहरगढ की पहाडी से होती थी। वालानन्दजी के मदिर से लेकर तालाव तक पानी आने का रास्ता "नन्दी" कहलाता है जो फतहराम के टीवे के पास वारह मोरियो मे होकर जयसागर या राजामल के तालाव मे पहुचता था। परा भराव हो जाने पर माधोविलास के पश्चिम से इसका अतिरिक्त पानी निकल कर मानसागर या जलमहल के तालाव मे पहुचता था और यही जयपुर के उत्तरी शहर का "नेचरल ड्रेनेज"—प्राकृतिक जल-निकास—था।

महाराजा रामसिह के समय मे जव शहर की आवादी वढ चली थी, राजामल के तालाव को गन्दगी और वीमारी (मलेरिया) का घर समझ कर मिट्टी से पाटना शुरू किया गया। पिछले राजाओ की उपेक्षा और जयपुर पर आये दिन आने वाली मुसीवतो के कारण तव जलेव चौक और जयनिवास वाग का वुरा हाल था। रामसिह ने इन दोनो ही जगहो का सव कूडा-कचरा हटवाया और यह पास ही राजामल के तालाव मे भर दिया गया। गोविन्ददेवजी की ड्योढी के वाहर ही तव रामसिह ने वग्घी-खाने और रामप्रकाश नाटकघर की इमारते भी वनवाई। तव से शहर का कूडा-कचरा ढोने वाली भैसा-गाडिया भी इसी तालाव मे खाली होने लगी और इसके पूरा भर जाने तक होती रही। अव तो राजामल का तालाव 'कवर नगर' नामक एक वस्ती वन गया है ओर यहा मकान ही मकान वन गये हैं। फिर भी सैकडो वरस जो जमीन तालाव के नीचे रही, उसमे आज भी सीलन और नमी है। इस नयी वस्ती के नीचे न जाने गन्दगी भी कितनी दवी पडी है! गिरधारीजी के मन्दिर की तरफ ट्रक वालो के पडाव है और सारी वस्ती मे एक अजीवो-गरीव दुर्गन्ध भरी रहती है। नयी वस्ती होकर भी यह एक "स्लम" जैसी ही है।



जयनिवास उद्यान के मध्य हौज और नहरे



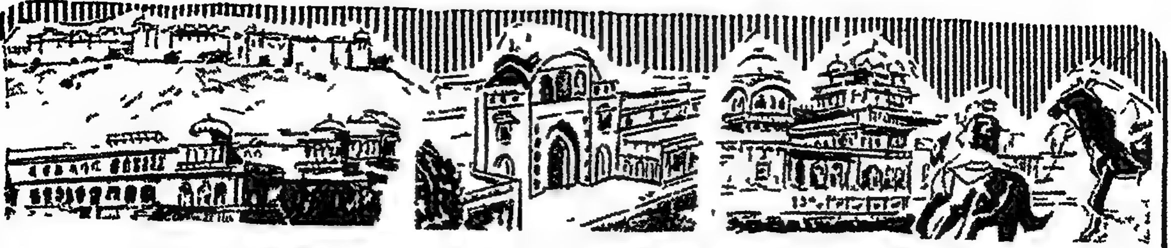
16. बादल महल

जयपुर बसने से पहले जो शिकार की ओदी थी, वह विस्तृत और परिष्कृत होकर बादल महल बनी। यह जयपुर की सबसे पुरानी इमारतों में से है और इसका "बादल महल" नाम भी बड़ा सार्थक है। बादल महल ताल-कटोरा तालाब पर खड़ा है जिसके सामने जयनिवास का निचला बाग है। मेह बरसता हो तो लहराते ताल और हरे-भरे विस्तृत बाग के बीच कटावदार मेहराबों और आसमानी रंग की छत और दीवारों वाला यह महल जैसे बादलों में उड़ान भरता प्रतीत होता है। जयपुर के प्रसिद्ध तीज और गणगौर के त्योहारों पर जयपुर के राजा बादल महल में दरबार लगाया करते थे और इन दरबारों में आने वाले जागीरदारों, उमरावों, ओहदेदारों और शागिदपेशा लोगों तक को लाल या हरी, एक-सी पोशाक में आना पड़ता था। महाराजा प्रतापसिंह के समय में देवर्षि भट्ट जगदीश एक उत्कृष्ट कवि थे। वे कवि-कलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट के द्वितीय पुत्र थे। उन्होंने तीज के जुलूस और बादल महल के दरबार के दृश्य का इस प्रकार वर्णन किया है

उतै भूरि बादर हैं बादर महल इतै,
चंचला उतै को इतै कंचनिया लाखी हैं।
जगुन जमात उतै, दीपन की पांत इतै,
गरज उतै को इतै, नौबतिया आखी है।।
उतै सांझ फूली इतै रंग रूली सभा सौभ,
कवि जगदीश भल, भारती यों भाखी है।
उतै इन्द्र इतै महेन्द्र श्री प्रताप भूप,
अद्भुत तीज को जुलूस रचि राखी है।।[1]

1875 ई. में तीज के दिन ग्वालियर के महाराजा जियाजीराव सिंधिया महाराजा रामसिंह के मेहमान होकर चन्द्रमहल के "छवि-निवास" में ठहरे हुए थे। शाम के चार बजे तीज की तैयारी और मेले की चहल-पहल होने लगी तो सिंधिया से न रहा गया और उन्होंने महाराजा रामसिंह से इच्छा प्रकट की कि क्यों न घोड़ों पर सवार होकर दोनों बाजार में मेला देखें। अपने कदीमी कायदों में रामसिंह ने ऐसा कभी नहीं किया था, इसलिये पहिले तो सकुचाया लेकिन अपने मेहमान का मन रखने के लिए फौरन ही इसके लिए राजी हो गया। दोनों राजा घोड़ों पर सवार हो कर बाजार में आ गए और त्रिपोलिया व गणगौरी बाजार होते हुए चौगान में चीनी की बुर्ज के चौक में पहुंचे। यहां से रामसिंह तो दरबार में भाग लेने के लिए बादल महल गया

1 राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार पृष्ठ 197

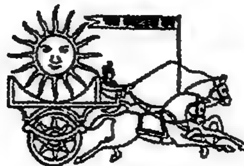


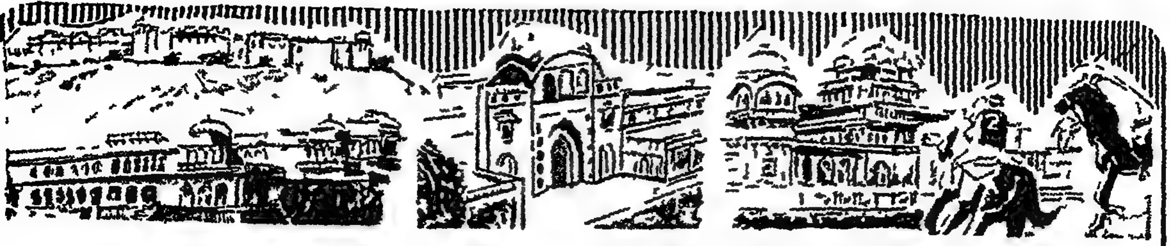
और सिंधिया छवि निवास मे आ गया। परम्परागत रिवाजो को तोडकर ऐसी अनौपचारिकताए करते रहना रामसिह की प्रकृति में था। भेष बदलकर शहर और राज्य के इलाको के असली हालचाल जानने के लिए पहुच जाना, जंगल मे फूस की टपरी मे प्याऊ लगाने वाली किसी बूढी डोकरी के हाथो ओक से पानी पीना, माग कर रूखी-सूखी रोटी या छाछ-रावडी खा आना और चुपके से उसे एक या दो मोहर दे आना जैसी बाते यह राजा करता ही रहता था। इसीलिए रामसिह को जयपुर का विक्रमादित्य और हारू-अल-रशीद कहा जाता है।

1876 मे जब प्रिस ऑफ वेल्स एलबर्ट (बाद मे एडवर्ड सप्तम) जयपुर आया तो रामसिह ने बादल महल मे ही जयपुर की दस्तकारियो और दूसरी कलात्मक वस्तुओ को इस शाही मेहमान को दिखाने के लिये सजा कर रखवाया था। यहीं नुमाइश जयपुर के विख्यात इडस्ट्रियल आर्ट म्यूजियम की शुरुआत हुई जिसकी इमारत—एलबर्ट हाल—का नीव का पत्थर रामनिवास बाग मे प्रिस एलबर्ट ने रखा।

महाराजा माधोसिह के जमाने मे ब्राहमण बरणी पर बैठे ही रहते थे और उनके लिए भोजन की व्यवस्था भी बराबर जारी रहती थी। ऐसे भोजो मे जयपुर मे "लढाको" की समस्या हमेशा रहती आयी है। बिना बुलाये आने वाले और भोजन कर जाने वाले अभ्यागत को जयपुर वाले "लढ़ाक" कहते हैं। जीमण बडा होता, सैकडो-हजारो का, तो लढाक भी बडी सख्या मे चल जाते, लेकिन पचीस-पचास के खाने मे भी लढाक आते तो बुरे लगते। फिर भी लढाक तो लढाक ही होते, आये बिना उनकी भी टेक कैसे रहती। कहते हैं, एक बार कुछ ऐसा प्रबन्ध किया गया कि एक भी लढाक न आ पाये और जो आ जाये तो पकडा जाये। इसके लिए जगह चुनी गई बादल महल जिसके एक ओर महल के प्रहरियो का कडा पहरा था और दूसरी ओर मगरमच्छो से भरा ताल-कटोरा। निमंत्रित लोगो की सख्या सीमित थी और उनके लिए उतनी ही सख्या मे पत्तल, दौनो और दूसरे सामान की व्यवस्था थी। इतने पर भी एक लढाक आखिर पहुच ही गया। भोजन पर बैठाये गये तो एक सज्जन खडे रह गये। उनके लिये पत्तल नही थी। प्रबन्धको ने पूछा कि एक ज्यादा कौन है और कैसे आया है तो लढाक ने तपाक से खडे होकर अपना कौशल बखाना कि वह जान पर खेलकर तालकटोरा तैरकर आया है और सूखे कपडो का जो सैट वह अधर की अधर लाया था, गीले उतारकर वही बदल कर आया है। लढ़ाक की इस हिम्मत और जुर्रत की बात महाराजा तक पहुची तो उसे न केवल आगे से सभी भोजो मे आने की छूट दी गई, बल्कि जागीर भी बख्शी गई। उसके खानदान का बेक ही "लढाक" पड गया। जयपुर के पुराने लोग इस परिवार को अच्छी तरह जानते और मानते है।

अब तो बादल महल खडहर हो रहा है। इसकी भित्तियो और छतो का पलस्तर गिरने लगा है, पत्थरो की चुनाई बाहर झाकने लगी है और रग फीका पड गया है। कोई आश्चर्य नही होगा यदि कुछ वर्षो बाद बादल महल की केवल याद ही बाकी रह जाय !



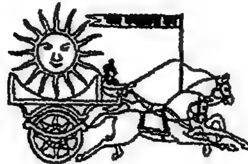


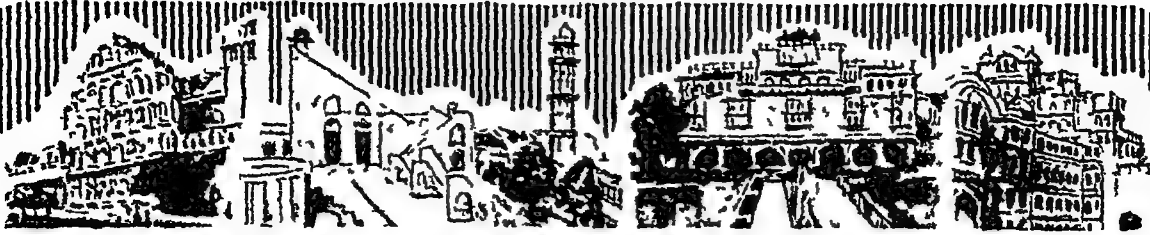
और सिंधिया छवि निवास मे आ गया। परम्परागत रिवाजो को तोडकर ऐसी अनौपचारिकताए करते रहना रामसिह की प्रकृति में था। भेष बदलकर शहर और राज्य के इलाको के असली हालचाल जानने के लिए पहुच जाना, जंगल मे फूस की टपरी मे प्याऊ लगाने वाली किसी बूढी डोकरी के हाथो ओक से पानी पीना, माग कर रूखी-सूखी रोटी या छाछ-राबडी खा आना और चुपके से उसे एक या दो मोहर दे आना जैसी बाते यह राजा करता ही रहता था। इसीलिए रामसिह को जयपुर का विक्रमादित्य और हारू-अल-रशीद कहा जाता है।

1876 मे जब प्रिंस ऑफ वेल्स एलबर्ट (बाद मे एडवर्ड सप्तम) जयपुर आया तो रामसिह ने बादल महल मे ही जयपुर की दस्तकारियो और दूसरी कलात्मक वस्तुओ को इस शाही मेहमान को दिखाने के लिये सजा कर रखवाया था। यही नुमाइश जयपुर के विख्यात इडस्ट्रियल आर्ट म्यूजियम की शुरुआत हुई जिसकी इमारत—एलबर्ट हाल—का नीव का पत्थर रामनिवास बाग मे प्रिंस एलबर्ट ने रखा।

महाराजा माधोसिह के जमाने मे ब्राह्मण बरणी पर बैठे ही रहते थे और उनके लिए भोजन की व्यवस्था भी बराबर जारी रहती थी। ऐसे भोजो मे जयपुर मे "लढाको" की समस्या हमेशा रहती आयी है। बिना बुलाये आने वाले और भोजन कर जाने वाले अभ्यागत को जयपुर वाले "लढाक" कहते हैं। जीमण बडा होता, सैकडो-हजारो का, तो लढाक भी बडी सख्या मे चल जाते, लेकिन पचीस-पचास के खाने मे भी लढाक आते तो बुरे लगते। फिर भी लढाक तो लढाक ही होते, आये बिना उनकी भी टेक कैसे रहती। कहते हैं, एक बार कुछ ऐसा प्रबन्ध किया गया कि एक भी लढाक न आ पाये और जो आ जाये तो पकडा जाये। इसके लिए जगह चुनी गई बादल महल जिसके एक ओर महल के प्रहरियो का कडा पहरा था और दूसरी ओर मगरमच्छो से भरा ताल-कटोरा। निमत्रित लोगो की सख्या सीमित थी और उनके लिए उतनी ही सख्या मे पत्तल, दौनो और दूसरे सामान की व्यवस्था थी। इतने पर भी एक लढाक आखिर पहुच ही गया। भोजन पर बैठाये गये तो एक सज्जन खडे रह गये। उनके लिये पत्तल नही थी। प्रबन्धको ने पूछा कि एक ज्यादा कौन है और कैसे आया है तो लढाक ने तपाक से खडे होकर अपना कौशल बखाना कि वह जान पर खेलकर तालकटोरा तैरकर आया है और सूखे कपडो का जो सैट वह अधर की अधर लाया था, गीले उतारकर वही बदल कर आया है। लढाक की इस हिम्मत और जुर्रत की बात महाराजा तक पहुची तो उसे न केवल आगे से सभी भोजो मे आने की छूट दी गई, बल्कि जागीर भी बख्शी गई। उसके खानदान का बैक ही "लढाक" पड गया। जयपुर के पुराने लोग इस परिवार को अच्छी तरह जानते और मानते है।

अब तो बादल महल खडहर हो रहा है। इसकी भित्तियो और छतो का पलस्तर गिरने लगा है, पत्थरो की चुनाई बाहर झाकने लगी है और रग फीका पड गया है। कोई आश्चर्य नही होगा यदि कुछ वर्षों बाद बादल महल की केवल याद ही बाकी रह जाय!





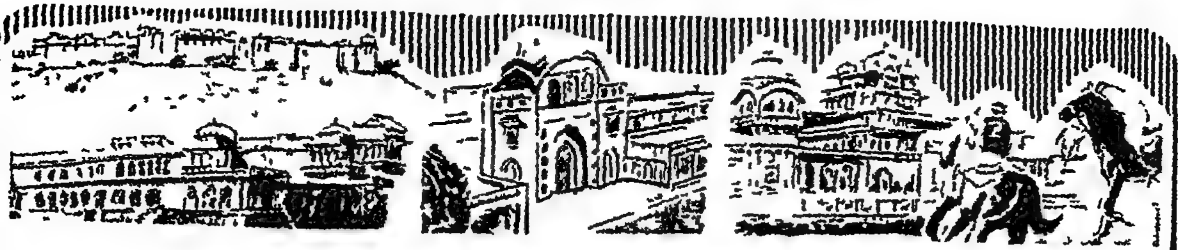
17. जयसागर: जनता बाजार

राजा के नाम पर वन कर भी जयपुर जनता का शहर हे। हमारे देश मे तो यह पहला नगर हे जो मूलत जनता के स्वस्थ आवास-प्रवास, जीविकोपार्जन एव वाणिज्य-व्यवसाय तथा सुरुचि और सौन्दर्य-वोध को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर नियोजित आर निर्मित हुआ। इतने लम्बे-चोडे परकोटे से घिरे शहर मे कोई वाजार, कोई रास्ता-गलियारा आर मोहल्ला ऐसा नही जो किसी राजा या रानी की याद सजोता हो। इस जनहित-प्रेरित नगर-रचना के आदर्श ओर मूल भावना को अक्षुण्ण रखते हुए ही जयपुर की नगर परिषद ने राजामल के तालाव की जगह अपने नव-निर्मित वाजार को जनता वाजार का नाम दिया हे।

राजामल का तालाव दस एकड से अधिक उस काली-कलूटी, कूडा-कचरा भरी ऊवड-खावड जमीन का नाम था जो एक ओर व्रहमपुरी, दूसरी ओर ताल कटोरा, वादल महल एव जयनिवास उद्यान तथा तीसरी ओर चादी की टकसाल आर रामप्रकाश नाटकघर से घिरी थी। तालाव तो कभी का सूख गया या सुखा दिया गया था, किन्तु यहा की नम ओर सीलन भरी मिट्टी तथा मटमेले कचरे मे छोटे-छोटे सफेद शख ओर सीपिया वरावर यह प्रतीति कराती थी कि कभी यहा तालाव लहराता था। तथाकथित राजामल भी ओर कोई नही, राजा अयामल खत्री था जो जयपुर आने से पहले वादशाह ओरगजेव के दरवार मे एक वडा ओहदेदार था। सवाइ जयसिह ने उसे यहा लाकर अपना मुसाहिव वनाया, जागीर वख्शी ओर हवेली पर नोवत वजाने का सम्मान भी दिया। जयपुर को वसाने मे राजा अयामल ने अपने स्वामी को भरपूर सहायता दी। जयपुर वालो ने इस पजावी नाम का जयपुरीकरण किया तो "अया" को तो "गया-आया" कर गये और कोरा 'राजा-मल' रख दिया। चूकि राजा मल की विशाल हवेली, दीवानखाना, नोहरे, घुडसाल और हाथी के ठाण पास ही थे (इसे अव 'रायजी का घेर' कहा जाता हे), लोगो ने तालाव को राजामल के नाम से ही प्रसिद्ध कर दिया। इसका अधिकृत नाम "जयसागर" राजकीय कागज-पत्रो तथा तत्कालीन ग्रन्थो तक ही सीमित रहा।

सवाई जयसिह और उसके पुत्र ईश्वरी सिह के समय मे जयपुर के नये-नये नगर मे इस सरोवर की शोभा और सुषमा केसी थी, इसके लिए उनके सम-सामयिक राज-कवि देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट के महाकाव्य "ईश्वर- विलास" के कुछ अश देखिए, जिनका सस्कृत से हिन्दी भावानुवाद इस प्रकार है

"महाराजा सवाई जयसिह ने उच्च, श्वेत ओर समृद्धिशाली कैलाश सदृश भवनो का निर्माण कर व्रहमपुरी वसाई जिसके तट पर ऐसा सुरम्य जलाशय है जिसके किनारे कमल-वनो के पराग से आकृष्ट भौंरो के वीणा-विनदक स्वर गूजते रहते हैं। यह तालाव पौराणिक समुद्र के समान, इन्द्र के ऐरावत हाथी और उच्चैश्रवा घोडे के समान (महाराजा के) हाथी-घोडो से सुशोभित हैं। (श्लेपालकार का चमत्कार दिखाते हुए



कवि कलानिधि आगे कहते है) यह पद्मो का आश्रय हे अथवा पद्मा—लक्ष्मी—का पिता है। इसके मध्य मे विष्णु शयन करते हे जो पुण्डरीकाक्ष हैं (पुण्डरीक से आशय कमल-दल तथा महाराजा के गुरु रत्नाकर पुण्डरीक, दोनो से हैं जिनका विशाल भवन आज भी इस जलाशय के उत्तरी तट पर खडा है)।

''यह तालाव चौकोर, शोभाशाली और पवित्र है, अत इन तीन गुणो से चतुर्मुख, श्रीधर और शकर के समान है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति- सा प्रतीत होता है।

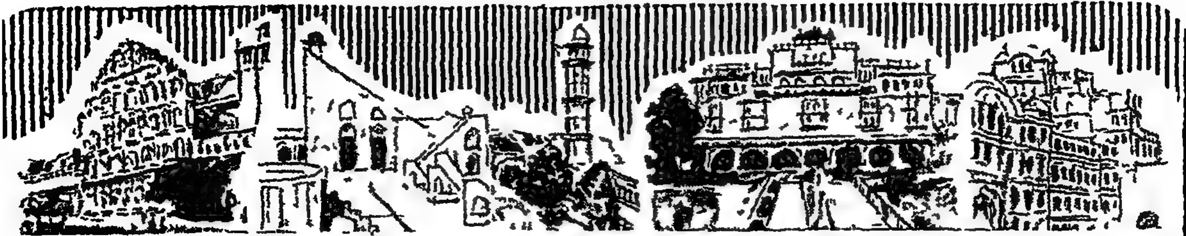
''इसमे उठने वाली तरगो से ऐसा प्रतिभासित होता है कि (ब्रह्मपुरी मे रहने वाली) विप्र सुन्दरियो की कान्ति को देखकर वह भयभीत हो काप रहा हैं। उनके नेत्रो और मुख के सौन्दय से कमल-दल हार गये हैं, उरोजो की शोभा से चक्रवाक हार गये हे, त्रिवली की शोभा से तरग हार गई हे और केशो की शोभा से भौंरे हार गये है।''

''ईश्वर विलास'' के रचनाकार के अनुसार सवाई जयसिह ने ''जय'' शब्द के साथ तीन चीजे वनाईं—आमेर मे जयगढ का दुर्गम गिरि-दुर्ग, जयपुर का ''श्री सदोह शोभा समूह '' नगर और जयसागर का मनोरम जलाशय। ''त्रितयेन वाचा'' सस्कृत का मुहावरा है। किसी वात को पक्का और स्थिर मानने के लिए आज भी लोक मे उसे तीन वार कहने की परम्परा प्रचलित हे। किसी भी नीलाम की बोली तीन वार पुकारने पर ही खत्म की जाती हे। अपनी सार्वजनिक सभाओ मे भापण समाप्त करने पर प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी भी तीन वार ''जय हिन्द'' का उद्घोप करती और सारे जन-समूह से कराती है। इस ''त्रिवाचा'' का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कवि भविष्यवाणी करता है कि इस जय-त्रयी (जयगढ, जयनगर अथवा जयपुर और जयसागर) से ''जय'' सुनिश्चित और असदिग्ध हे। यदि फिर भी किसी को कोई शका हो तो इस जय-त्रयी मे सवाई जयसिह का नाम ओर जोड कर पूरा ''जय-चतुष्क'' कर ले और जयपुर के जय के विषय मे निश्चित हो जाये।

हम देख सकते हैं कि अपने सस्थापक सवाई जयसिह की मृत्यु के वाद पूरे पिचहत्तर वर्षों तक गृह-युद्ध, वाहरी हमलो और लूट-पाट तथा पडयत्र-कुचको के झझावातो के बीच भी यह दर्शनीय नगर किस प्रकार वनता और बढता रहा है। वना ही कुछ ऐसे शकुन से है यह नगर कि ध्वस के बीच भी निर्माण के स्वर बरावर गूजते रहे हैं। यह जयपुर का जय नही तो क्या है कि राजस्थान बनने के बाद इसे इतने विशाल राज्य की, जो भारत का दूसरा सबसे वडा राज्य है, राजधानी वनने का गौरव प्राप्त हुआ, जबकि राजस्थान से बहुत छोटे पजाब ने चडीगढ बनाना आवश्यक समझा और गुजरात के लिए अहमदाबाद और सूरत जेसे ऐतिहासिक तथा वडौदा जैसा प्रगतिशील नगर होते हुए भी गाधीनगर का निर्माण अनिवार्य हो गया। और तो और, उडीसा जैसे राजस्थान से भी कही पिछडे और अल्प साधन-सम्पन्न राज्य ने भी भुवनेश्वर को नये सिरे से वनाकर अपनी राजधानी स्थापित की। जयपुर मे वह सब कुछ पहले से ही था जो इन नव-विकसित राजधानियो मे अब उपलब्ध कराया गया है।

इसमे भी सदेह नही कि राजस्थान की स्थापना के बाद इसकी यह अप्रतिम राजधानी, जिसे ससार के पाच सर्वसुन्दर नगरो मे यद्यपि गिना जाता रहा, पूरे वाइस वर्षो तक शासन और स्थानीय स्वायत्त शासन, दोनो द्वारा ही उपेक्षित रही। द्वितीय विश्व-युद्ध काल मे सर मिर्जा मोहम्मद इस्माइल द्वारा इस नगर मे लायी गई ''म्यूनिसिपल क्रान्ति'' के बाद 1971 ई मे जाकर वरकतुल्ला खा के मुख्यमत्री बनने पर जयपुर के दिन फिर से फिरे। वरकत साहव मानते थे कि जयपुर की सारी दुनिया मे शोहरत है और यहा जो भी सुधार का काम किया जाता है, उसकी तरफ दुनिया भर की तवाजोह अपने आप हो जाती है। इसलिए जयपुर को इसकी शोहरत के मुताविक रखने में उन लोगों का भी नाम ही होता है जो इस शहर मे मसनद पर बैठते हैं।

पते की वात को यो आनन-फानन मे समझने वाले वरकत मिया तो मसनद पर ही क्या, इस दुनिया में भी



ज्यादा नही रह पाये, लेकिन जो शुभ काम उन्होने जयपुर के लिए छेडा था, उसे उनके उत्तराधिकारी हरिदेव जोशी ने भी उसी ताव और लगन से आगे बढाया। अपने सोचे और सपनो मे सजोये गये कामो को पूरा होते देखकर जोशीजी तव बडे आनदित होते थे। जयपुर की गदी और कच्ची वस्तियो के काया-पलट और उनके आदर्श आधुनिक बस्तियो मे परिणत होने को वे एक ऐसी उपलब्धि मानते थे, जिससे उन्हे हार्दिक प्रसन्नता ही नही, आत्मतोष भी मिला। जनता बाजार का विकास भी ऐसा ही काम था जो जयपुर के साथ यहा के शासन और स्थानीय स्वशासन का भी जयजयकार कराने वाले है।

जयपुर के बाद जयगढ को लीजिये, और कवि की वाणी की सार्थकता परखिये। राजस्थान मे किलो और गढ-कोटो की कोई कमी है? गाव-गाव, शहर-शहर पर दुर्गो की प्राचीरे झुकी है। रणथम्भोर हठी हमीर के बलिदान से आज तक उजागर है और सबका सिरमौर है गढ चित्तौड, जिसके सामने और सभी किले'गढैया'।

इतिहास के पृष्ठो मे चित्तौडगढ ने यह प्रशस्ति अर्जित की है तीन-तीन साको मे हजारो राजपूत रण-बाकुरो को तलवार की धार पर और उनकी वीरागनाओ को जौहर की धधकती ज्वाला मे उतार कर। किन्तु जयगढ! न कोई घेरा, न युद्ध, न साका और न जौहर। ऐसे दुर्गम दुर्गो के सुरक्षात्मक महत्त्व के दिन भी लद गये। लेकिन जयगढ निकला तकदीर का सिकन्दर। पिछले दिनो खजाने की खोज के प्रसग मे सारे ससार मे क्या नाम पाया इस किले ने! सारे भारत मे ही नही, यूरोप और अमरीका तक मे जयगढ ही जयगढ हो गया![1] और जयगढ का "जय" अन्त तक बहाल रहा।

जय-त्रयी मे तीसरा जयसागर है जिसका "जय" अब नगरपरिषद द्वारा निर्मित जनता बाजार मे निनादित हो रहा है। जयपुर की पुरानी राज्य-व्यवस्था तो इतिहास के गर्भ मे विलीन होनी ही थी, किन्तु जयपुर का पचरग इस बाजार मे एक नये रूप मे पुराने राजमहल क्षेत्र के शीर्ष पर ही लहरा उठा है। जनता बाजार मे वही जयपुर का रूप और रग है, वही गुलाबी आभा से दमकती दूकाने और उन पर वही ज्यामितिक डिजायनो के कलात्मक कगूरे। किन्तु इन दूकानो के शटर्स पाच रगो मे रगकर जयपुर की पचरगी बहार जैसे फिर से निखारी गयी है।

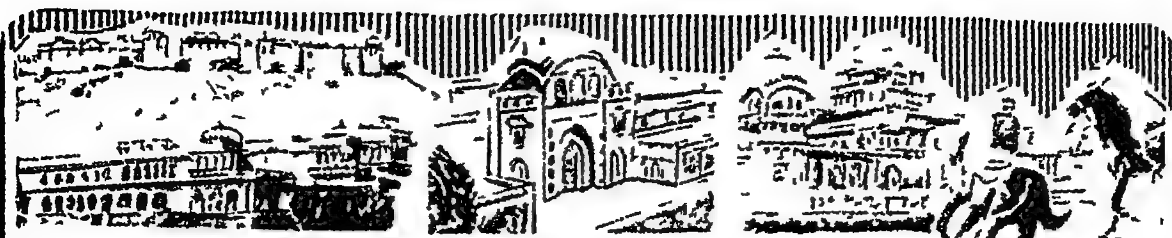
यह सारी जगह दल-दल और गदगी से भरी थी। इसका कारण? जैसे-जैसे शहर बढा और जमीन के लिये लोगो की हविश भी, इस निचले क्षेत्र को कूडा-कचरा डालकर भरा जाने लगा और धीरे-धीरे "ईश्वर विलास" मे वर्णित कमलो से आच्छादित जयसागर सचमुच एक ऐसा ऊबड-खाबड भू-खण्ड बन गया जहा गदगी का एकछत्र साम्राज्य था। वैसे इस निचली जगह मे पानी की आवक का एकदम बन्द होना पचास वर्ष के जयपुर निवासियो की याद की बात है। पिछले तीस-चालीस बरस मे ही जयसागर या राजामल का तालाब ऐसा विकृत हुआ था।

आपात-स्थिति लागू होने के बाद जब जयपुर के प्रशस्त बाजारो की जिला प्रशासन और नगर परिषद ने सुधि ली और सब प्रकार के अतिक्रमण हटाये गये तो प्रश्न उठा कि बेदखल लोग कहा जायेगे? इसलिए विस्थापित थडी-होल्डरो के लिये तो इन्दिरा बाजार बना और अन्य लोगो के लिये जो अवैध कब्जे कर कही किसी केबिन तो कही किसी छोटी-सी आलमारी, कही ठेला तो कही खोचा लगाकर बैठे थे, जनता बाजार की कल्पना की गई जो यहा 489 दूकानो के निर्माण से साकार हो गई।

दस एकड से कुछ अधिक भूमि पर 1 9 एकड मे तो दूकाने आयी हैं, दो एकड क्षेत्र मे उद्यान है, 2 9 एकड मे सडके निकली है और 2 89 एकड फुटपाथो तथा अन्य सुविधाओ मे खप गई हे। दूकाने पाच अलग-अलग समूह या "ब्लाक्स" मे बनाई गई है और छठा ब्लाक बनना अभी शेष है।

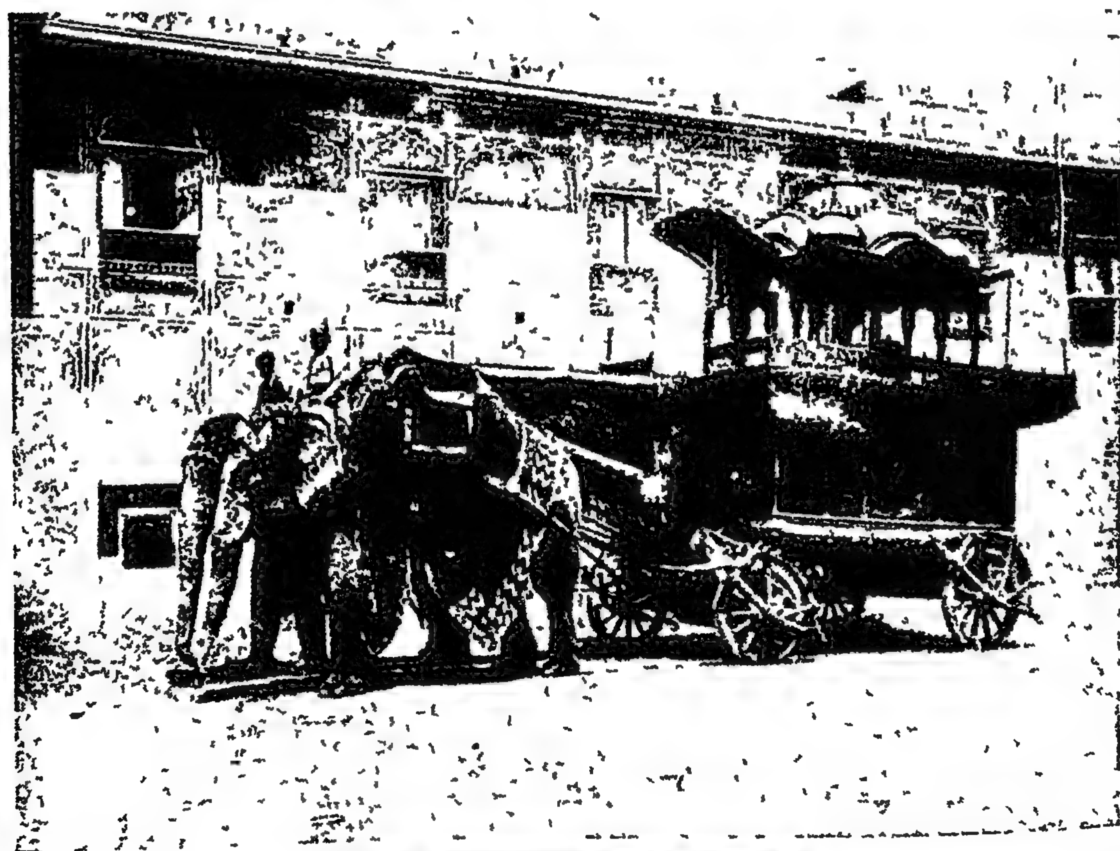
इन्दिरा बाजार मे तो एक बने-बनाये नाले को पाटना ही था, पर जनता बाजार मे नीव के लिए दो फुट

1 1976 ई मे इस दुर्ग मे प्राचीन खजाने की खोज के लिए जो खुदाई हुई थी, उसने दुनिया भर के अखबारो मे जयगढ का नाम कर दिया था।



खोदते तो पानी निकल आता था। जयसागर तो सूख गया था, पर सागर सूख जाने पर भी कीचड रह जाता है, इस कहावत के अनुसार यह बाधा स्वाभाविक थी। फिर जगह-जगह गड्ढे भी थे जिनके लिये मिट्टी की ढुलाई की जाती तो लाखो टन लानी पडती। इसलिये कूडे-कचरे से गड्ढे पाटते रहे और जहा भी पानी निकला उसे पम्पो से हटा-हटा कर नीवे भरी जाती रही। इस तरकीब से कम खर्च मे सारी जमीन समतल भी हो गई और काम भी ऊपर आता रहा। सारे बाजार मे यूकलिप्टिस के वृक्ष लगाये जा चुके है। यह वृक्ष भू-जल को सोखने मे कारगर बताया जाता है।

सन् 1976 की दीपावली के प्रकाश-पर्व पर जनता बाजार पहली बार जगमगाया और इस अबूझ मुहूर्त मे इसके उद्घाटन ने जैसे आश्वस्त कर दिया कि इसकी जय भी सुनिश्चित है। जब सागर लहराता था तो इधर इतनी बस्ती भी कहा थी? अब तो इसके दक्षिण-पूर्व की ओर नगरपरिषद के कर्मचारियो की दो-ढाई हजार परिवारो की आवासीय बस्ती है। उत्तर मे "कैलाश-शलोपमे" ब्रह्मपुरी की बस्ती भी अब पुराणपुरी नही रही, नये-नये मकानो और नये-नये लोगो से आबाद है। कमलनगर और जोशीनगर की बस्तिया भी नाहरगढ के ढलान तक बढ़ गई हैं— जैसे अब तक दबे हुए लोग ऊचे और ऊचे जाने के लिए बेताब है। यह सब इधर की जनता है जिसकी विभिन्न जरूरते नया जनता बाजार ही पूरी कर रहा है।



इन्द्र विमान— सवाई जयसिंह द्वारा बनवाया गया हाथियों का रथ



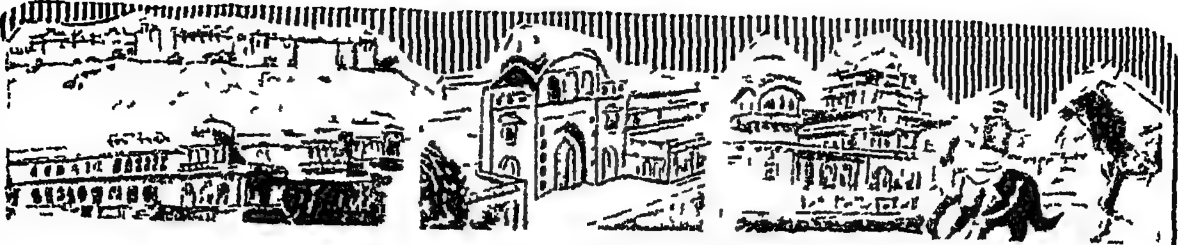
18. रामप्रकाश नाटकघर

जयसागर के आगे अर्थात जनता वाजार के पूर्व मे सिरह ड्योढी वाजार मे खुलने वाला रामप्रकाश नाटकघर कभी इस गुलावी शहर की एक अलग ही शान था। साहित्याचार्य भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने इस नगर के इस भारत-विख्यात रगमच के प्रसग मे खेदजनित आश्चर्य के साथ व्यक्त किया हे कि "नवीनयुग रुच्या नरनाट्यस्थले चित्रनाट्यमीक्षचलज्जल्पच्चित्र वन्धुरे" (इस नाटकघर मे मानव नाट्य-कला के स्थान पर अव चित्रो की नाट्यकला देखता हू)।[1] वस्तुत जिन लोगो को रामप्रकाश मे नाटक देखने का अवसर मिला हे ओर जिन्होने इस रगमच के ऐतिहासिक महत्त्व को आका हे, वे सभी इस वात पर खेद प्रकट करते हें। रामप्रकाश के नाटकघर से सिनेमाघर वन जाने के कारण इस नगर की कोई ऐसी चीज खत्म हो गई हे जो रखने ओर रहने लायक थी। इस नाटकघर को सिनेमा मे परिणत करने का 'अपराध' जयपुर के प्रसिद्ध प्रधानमन्त्री सर मिर्जा इस्माइल ने किया था जिन्हे अन्यथा जयपुर को सुधारने-सवारने का वडा श्रेय हे।

जव ऐसा किया गया था तव भी पुराने ओर जानकार लोगो को यह परिवर्तन वहुत अखरा था ओर उनके इस तर्क मे सचमुच सचाई थी कि सिनेमाघर तो नया भी वन सकता हे (तव से आज तक कई वन गये हे ओर वनते जा रहे हें) किन्तु ऐसा नाटकघर फिर कहा वनेगा? इस नाटकघर के समाप्त हो जाने पर जयपुर मे रगमच का अभाव अनुभव किया गया ओर रवीन्द्र शताव्दी के अवसर पर "रवीन्द्र मच" के निर्माण द्वारा इसकी पूर्ति भी की गई। इस नवीन रगमच की इमारत से इसके उद्घाटनकर्ता स्वर्गीय डा सम्पूणानद की तवीयत कोफ्त हो गई थी ओर उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण मे इसे साफ-साफ अभिव्यक्त भी किया था। यह वात जाने दे, फिर भी यह निर्विवाद हे कि रवीन्द्र मच ने जयपुर मे न वेसी धूम मचाइ हे ओर न मचायेगा जो कभी रामप्रकाश नाटकघर ने मचाई थी।

साहित्य, सगीत ओर कला के प्रेमी रामसिह (1835-1880 ई) ने जयपुर निवासियो को रामनिवास ओर रामवाग, महाराजा कॉलेज ओर महाराजा सस्कृत कॉलेज, गर्ल्स स्कूल, मेयो अस्पताल, जलकल और गेस लाइट के साथ-साथ रामप्रकाश थियेटर या नाटकघर भी दिया था। जब यह वनाकर खोला गया था तो तत्कालीन भारत के सर्वोत्तम नाटकघरो मे इसकी गिनती की गई थी। इसके मच पर विमानो तथा पात्रो के आकाश से अवतरित होने अथवा पृथ्वी से अकस्मात् प्रकट होने के आश्चर्यजनक साधन ओर उपकरण थे ओर पर्दे भी प्राकृतिक दृश्यो ओर महल-मन्दिरो की चित्रकला से अलकृत होकर प्रसगानुकूल पृष्ठभूमि बनाते थे। अपने समय मे यह वडा आश्चर्यजनक ओर एक नवीन आविष्कार था जिसे देखने के लिए जयपुर और

1 जयपुर वैभवम्, पृष्ठ 38



आसपास के क्षेत्रो मे एक नशा ही छा गया था। इक्के-तागेवालो ने नाटक देखने के लिये अपने टट्टओ को वेच डाला था, वहिश्तियो ने अपनी मशके और पखाले। नाटक देखने के नशे मे गाफिल शहर मे चोरिया ओर उठाइगिरी की वारदाते भी वढ गई थी। पोटाश के धमाके के साथ सगीत के मुखरित वातावरण मे रामप्रकाश का पर्दा उठता तो दर्शक दग रह जाते ओर तीन-तीन चार-चार घण्टे वेठकर अपूर्व मनोरजन करते। उस समय खेले जाने वाले नाटको मे "इन्द्रसभा" वडा लोकप्रिय नाटक था जिसमे रामसिह के गुणीजनखाने के अनेक कलावत भी काम करते थे।

जयपुर का गुणीजनखाना तव कलावतो की खान था, किन्तु रामसिह ने इस रगमच को एकदम आधुनिक वनाने मे कोई कोर-कसर नही छोडी ओर नाट्यकला मे सिद्ध-हस्त वम्वई की पारसी थियेट्रिकल कम्पनी के कलाकारो को भी यहा आमन्त्रित किया और स्थानीय अभिनेताओ को उनके प्रशिक्षण मे तैयार करवाया। शीघ्र ही रामप्रकाश की मच-सज्जा, अन्य उपकरण, आर्केस्ट्रा ओर कलाकारो की टोली एसी कुशल हो गइ कि तत्कालीन राजपूताना मे तो कही इसका मुकावला न था।

महिला पात्रो के अभिनय के लिये तवायफो-वेश्याओ-को प्रेरित करना इस नाटकघर का अपने आप मे एक कीर्तिमान था। तव के समाज मे भले घरो की कोन औरते इस गाने-वजाने ओर नाचने-कूदने के काम के लिये आगे आती? सिनेमा के मूक युग मे भी तारिकाये वहुत दिनो तक वेश्याये ही हुआ करती थी।

जयपुर के इस अत्यन्त लोकप्रिय ओर अपूर्व रगमच ने सौ साल पहले जैसी धूम मचा रखी थी उसकी ऐतिहासिक सनद महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास के "वीर विनोद" मे सुरक्षित है। 1880 इ का साल आरम्भ होते ही श्यामलदास मेवाड के महाराणा सज्जनसिह के साथ जयपुर मे महाराजा रामसिह के मेहमान थे। महाराणा ओर उनकी पार्टी पूरे एक सप्ताह यहा रहे और इन सात दिनो की पाच राते उन्होने रामप्रकाश मे नाटक देखने मे विताई। रामप्रकाश नाटकघर की विशेपताओ को उजागर करने वाली इस इतिहासकार की पक्तिया उद्धृत करने योग्य है

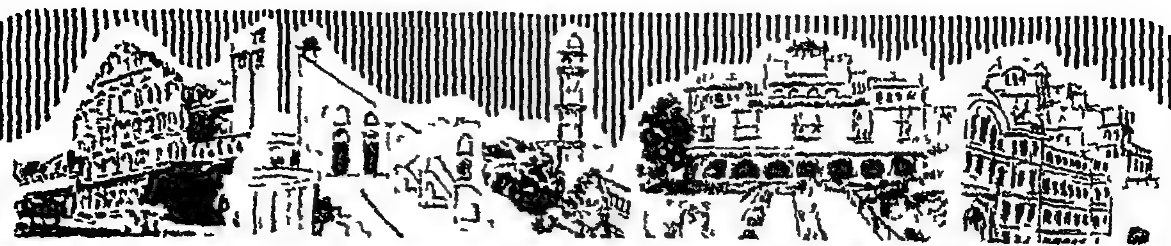
"पहली जनवरी को दोनो अधीश एक वग्घी मे सवार होकर रामनिवास वाग मे पाठशाला के विद्यार्थियो का जल्सा देखने गये और वहा हैडमास्टर की स्पीच सुनकर विद्यार्थियो का कुतूहल देखने के वाद वापस महलो मे आये। रात्रि के समय दोनो अधीशो ने मय सभ्यजनो के नाटकशाला मे पधार कर "जहागीर" वादशाह का नाटक देखा (यह शायद "अनारकली" रहा होगा)।

"यह नाटकशाला इन्ही महाराजा साहव ने वडे खर्च से वनवाकर वम्वइ से पारसी वगेरह शिक्षित मनुष्यो को वुलवाया और स्त्रियो की जगह जयपुर की वेश्याओ को तालीम दिलवाकर तैयार करवाया। इस नाटक मे वस्त्र, भूपण वगैरह सामग्री समयानुसार और बोलचाल, पठन-पाठन आदि सभी वाते अद्भुत और चरित्र की सभ्यता दिखाने वाली थी। परियो का उडना, पहाडो व मकानो की दिखावट और फरिश्तो का जमीन व आकाश से प्रकट होना देखने वालो के नेत्रो को अत्यन्त आनन्द देता था। मैंने एसा नाटक पहले कभी नही देखा था।"

कविराजा के अनुसार दूसरे दिन भी दोनो अधीशो ने "वद्रेमुनीर" और "वेनजीर ' नाटक देखे। चार जनवरी की रात का "अलादीन और अजीव व गरीव चिराग" का नाटक हुआ और पाच जनवरी को "हवाई मजलिस" का नाटक देखा।

"वीर विनोद" मे आगे वताया गया हे "छह जनवरी को दोनो अधीशो का मिलना हुआ और रात के समय 'लैला-मजनू' का नाटक देखा जहा तुकोजीराव होल्कर, इन्दौर के ज्येष्ठ और कनिष्ठ पुत्र भी, जो राजपूताना की सैर करते हुए जयपुर मे आये थे, नाटक देखने मे शरीक हुए।"

महाराणा सज्जनसिह ओर श्यामलदास 30 दिसम्वर, 1879 ई को जयपुर पहुचे थे ओर सात जनवरी,



1880 ई की रात को स्पेशल ट्रेन से वे किशनगढ गये थे। जयपुर प्रवास म उनकी राते जैसे रामप्रकाश नाटकघर के लिए ही आती थी। "वीर-विनोद" मे यह सविस्तार वर्णन नाटकघर के साथ-साथ नाटको और उनके पात्रो के अभिनय की उत्कृष्टता और सफलता का भी परिचायक है। यह भी स्पष्ट हे कि श्यामलदास जैसे विद्वान और इतिहासज्ञ तथा मेवाड के "हिन्दुवा-सूरज" महाराणा ने इससे पहले कभी ऐसे अच्छे नाटक नही देखे थे और उनका इनसे भरपूर मनोरजन हुआ था।

चौडे चौगान दर्शको ओर श्रोताओ की भीड से घिरे तख्तो या पाटो पर "देवर-भाभी" और दूसरे तमाशे देखने के शौकीन जयपुर वालो के लिए कलकत्ता के स्टार थियेटर की प्रतिकृति-रामप्रकाश का रगमच-वास्तव मे अपूर्व मनोरजन का साधन था, जिसने इस शहर की ख्याति दूर-दूर तक फैला दी थी। इस नाट्यशाला के सिनेमाघर वन जाने से इस मच के ऐतिहासिक अवशेष भी नही रहे हैं, हा इमारत का अग्र भाग अव भी वेसा ही है जेसा कविराजा श्यामलदास ने देखा था।

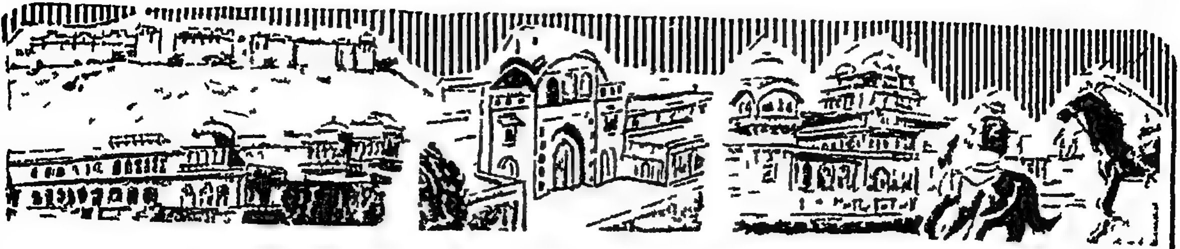
रामप्रकाश नाटकघर की सवसे वडी उपलब्धि यही थी कि इसके रगमच पर स्त्री-पात्रो का अभिनय करने वाली ओरते "सचमुच" ओरते ही थी। यह उन्नीसवी सदी के सातवे-आठवे दशक मे एक अद्‌भुत और अनहोनी-सी वात थी।

भारत मे परम प्रसिद्ध और अत्यन्त लोकपिय होने वाले पारसी रगमच की स्थापना सन् 1864 ई मे हुई थी। उस समय स्त्री का पार्ट करने के लिये लडके ही रखे जाते थे। इससे पहले भी नौटकी, रासलीला आदि मण्डलियो मे स्त्री-पात्रो के लिये लडको को ही सजाया जाता था। भारत की ही क्या वात, रोम और यूनान की प्राचीन सभ्यताओ तक मे नाटक ने स्त्री-पात्रो के लिये पुरुप ही पेदा किये थे और इग्लेण्ड मे भी इसी परम्परा का पालन किया जा रहा था। 19 वी सदी के मध्य मे शेक्सपीयर के नाटको को लेकर जो प्रारम्भिक विदेशी कम्पनिया भारत आई थी, वे भी स्त्री-पात्रो के रूप मे पुरुप कलाकारो को ही अपने साथ लाई थी।

भारत मे स्थापित होने वाली आरम्भिक पारसी कम्पनियो मे न्यू एल्फ्रेड कम्पनी सवसे प्रसिद्ध ओर दीर्घजीवी हुई। पूरे 52 साल यह चली। इसके अपने कारण थे। एक तो यही कि भारतीय जनता की धार्मिक भावनाओ का पूरा-पूरा लाभ उठाते हुए इसने अधिकतर धार्मिक आख्यानो को अपने नाटको के लिये चुना। सनातनी जनता यह नाटक जहा खूब पसन्द करती थी, वहा यह कभी स्वीकार नही कर सकती थी कि कोई वारागना अथवा मगलामुखी सीता, राधा या पावती की भूमिका मे उसके सामने आये। कुछेक कम्पनियो मे जो महिलाये तव अभिनेत्रिया वनी थी, वे सभी पेशेवर थी। न्यू एल्फ्रेड कम्पनी ने इन पेशेवर औरतो को कभी काम नही दिया और अपने पुरुप-पात्रो को ही नारी वनाकर सफलता की कई सीढ़िया चढ गई। उस जमाने मे स्त्री-पात्रो का अभिनय करने वालो मे पजाव मे गुजरानवाला का निवासी "जगली", जौनपुर का महबूब हुसैन, अहमदावाद के पास कडी गाव का लल्लूभाई "छोकरी", जालधर का गुलामुद्दीन "लेडी" और "कलकत्ते की कोयल" मास्टर निसार के नाम वैसे ही लोकप्रिय थे जैसे आज रेखा, हेमा मालिनी और जीनत अमान के है।

सच तो यह हे कि रगमच पर सचमुच की ओरते 1900 ई के बाद ही आना शुरू हुई। यह प्राय सभी पेशेवर थी। पेशेवर कहने से उस जमाने मे आशय यह था कि वे कुलशील की मर्यादा से बाहर और वाजारू थी। इनमे यहूदी पेशेवर गोहर, कराची की असली अरबी पेशेवर जमीलाबाई और शरीफाबाई का वडा दौर-दोरा रहा। "वुलवुले वगाल" जहाआरा वेगम उर्फ कज्जन और मास्टर निसार की जोडी 1931 ई मे वाक्-चित्र आरम्भ होने पर पहले नायक-नायिका के रूप मे रजतपट पर आई। इसके साथ ही पारसी रगमच की परम्परा की भारत मे इतिश्री हो गई।

रामप्रकाश जैसे रगमच का सस्थापक महाराजा रामसिह 1880 ई मे तो स्वर्गवासी हो गया था। यह



जानकर वडा विस्मय और आश्चर्य होता है कि जव वम्वई, कलकत्ता और अन्यत्र भी स्त्री-पात्रो की भूमिका स्त्रिया नही करती थी, तव जयपुर की तवायफे इस रगमच पर तरह-तरह की भूमिकाये अभिनीत कर वाहवाही लूट रही थी।

एक चन्दावाई सौरूवाली थी, जिसे महाराजा "मोलाना" कहकर सम्वोधित करते ओर ग्रीनरूम मे जाकर स्वय उसके पख लगाते, मेक-अप कराते। वह प्राय सब्जपरी की भूमिका करती थी। इसी शृखला मे दो और तवायफो के नाम है-नन्ही और मुन्ना। दोनो वहिने थी और लश्कर से यहा आई थी। इनकी लम्वी-चौडी हवेली घाट दरवाजा वाजार मे नवाव के चौराहे पर आज तक पास-पडोस के लोग वताते हे। अव यह किसी मुसलमान जौहरी ने खरीद ली है। महाराजा रामसिह के जमाने मे जयपुर के नये-नये नाटकघर मे इन दोनो वहिनो ने भी नाटको मे सफल अभिनय किया था और रगमच के दोनो ओर इनके चित्र भी दीवार पर अकित थे। कविराजा श्यामलदास ने अपने "वीर विनोद" मे जिन नाटको की जी भर तारीफ की है उनमे नन्ही-मुन्ना को भी उन्होने अवश्य देखा होगा।

लेखक को जयपुर के प्रधानमत्री कान्तिचन्द्र मुकर्जी के हाथ के लिखे कौंसिल के कार्य-विवरण मे रामप्रकाश नाटकघर सम्वन्धी अनेक दिलचस्प इन्द्राज मिले है। 30 नवम्वर, 1880 के कार्य-विवरण मे लिखा है कि जयपुर कालेज के प्रिसिपल ने, जो तव शिक्षा विभाग का अध्यक्ष भी होता था, एक रुपये आधा आने की मजूरी उन दो स्लेटो और स्लेट-पेन्सिलो के लिए मागी थी जो दिवगत महाराजा (रामसिह) के आदेश से महल मे भेजी गई थी। कौंसिल ने यह मजूरी तव दी जव दिवगत महाराजा के विश्वस्त सेवक किशनलाल चेला ने यह रिपोर्ट दी कि महाराजा ने ही ये स्लेट-पेन्सिले भेजने का हुक्म दिया था और ये रामप्रकाश थियेटर मे काम करने वाली किन्ही अभिनेत्रियो को दी गई थी।

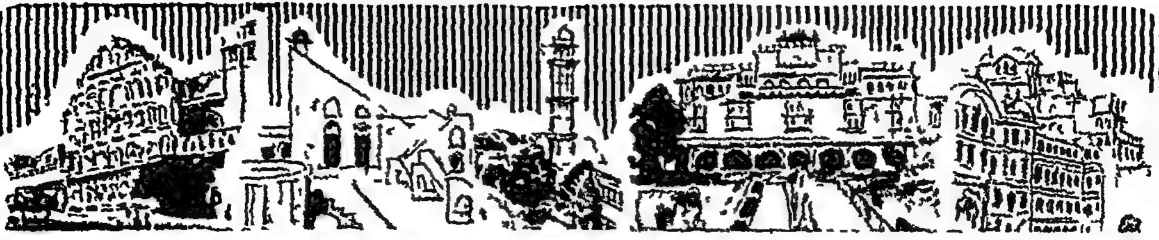
इससे नाटकघर के काम मे इस महाराजा की व्यक्तिगत दिलचस्पी प्रकट होती है। अभिनेत्रियो को कथोपकथन कण्ठस्थ कराने के लिये शायद ये स्लेट-पेन्सिले दी गई थी।

रामप्रकाश मे कई तमाशे हो चुकने के वाद रामसिह ने शायद अनुभव किया था कि इसके आर्केस्ट्रा को आधुनिक रूप दिया जाना चाहिए। भारतीय वाद्य तो थे ही, कुछ पाश्चात्य वाद्य यत्र भी मगवाना उचित समझा गया। कातिचन्द्र मुकर्जी ने 15 नवम्वर, 1880 की कौंसिल की वैठक के विवरण मे लिखा है

"वैंडमास्टर मिस्टर वाकर की 14 अक्टूवर, 1880 की अर्जी आयी जिसमे 581 रुपये दो आने छ पाई की मजूरी मागी गयी है। यह रकम वाद्य यत्रो की कीमत है, जो स्वगीय महाराजा ने इगलैण्ड से खरीदवाकर मगवाये थे। इसमे वम्वई से जयपुर तक का इन वाद्यो को लाने का रेलभाडा भी शामिल है (वाकर एक जर्मन नागरिक था जो उस समय रियासत का बैड-मास्टर था।)। चूकि इन वाद्यो की खरीद का आर्डर स्वय स्वर्गीय महाराजा ने रामप्रकाश थियेटर के लिये दिया था, कौंसिल ने इस रकम की मजूरी दे दी और मोहतमिम खजाना तथा मुसरिम मैगजीन को इस सम्वन्ध मे आवश्यक निर्देश जारी किये। साथ ही वैड-मास्टर वाकर से यह पूछने का भी फैसला किया कि ये वाद्य उसके अधीन बैडो मे काम आ-सकेगे या नही?"

इससे अनुमान होता है कि रामसिह की मृत्यु के वाद रामप्रकाश मे किसी ड्रामा का मचन नही हो रहा था और आयातित वाद्यो का वहा कोई उपयोग होने की सूरत नही रही थी, किन्तु स्वर्गीय महाराजा के आर्डर का सम्मान करते हुए इन वाद्यो की कीमत का चुकारा करा दिया गया और यह भी देखा गया कि यह व्यर्थ ही न पडे रह जाये, जहा भी इनका उपयोग हो सकता हो, किया जाय।

इसी प्रकार उस जमाने मे स्टेट कौंसिल के सामने 8 अप्रेल, 1879 से 30 सितम्वर, 1880तक का एक हिसाव पेश हुआ। यह वम्वई के केवीनेट-मेकर जमशेट जी नौरोजी का था जिसने रामप्रकाश थियेटर ओर नये विलियार्ड रूम के लिये साज-सामान और फर्नीचर भेजा था।



ऊपर कहा जा चुका है कि महाराजा रामसिह ने कुछ पारसियो को भी यहा बुलाकर थियेटर मे नौकर रखा था। सितम्बर, 1880 मे महाराजा की मृत्यु हो जाने के बाद दिसम्बर मे प्रधानमत्री ठाकुर फतह सिह ओर रेवेन्यू मैम्बर कातिचन्द्र मुकर्जी के मौखिक निर्देश से इन पारसियो की छुट्टी कर दी गई। कातिचन्द्र मुकर्जी ने इसका ब्यौरा इस प्रकार दिया है

"मोहतमिम कारखाना की 6 नवम्बर, 1880 की केफीयत मे बताया गया हे कि ठाकुर फतहसिह जी और बाबू कातिचन्द्र मुकर्जी की हिदायत के मुताबिक बम्बई से आये हुए पारसियो की बकाया तनखाह उनकी नौकरी करने के दिन तक चुका दी गई है और नीचे की तहरीर के मुआफिक उन्हे रेल-भाडा भी दिया गया है। खजाने के हिसाब मे अब इस रकम का समायोजन होना है

"दादाभाई रत्लनजी जूली, वेतन 978 रुपये, रेलभाडा 100 रुपये, कुल 1 हजार 78 रुपये।

"बरजोरजी, वेतन 60 रुपये, रेलभाडा 50 रुपये कुल 110 रुपये।

"रूस्तमजी, वेतन 75 रुपये, रेलभाडा 50 रुपये, कुल 125 रुपये।

"कोवासजी, वेतन 29 रुपये 8 आने, रेलभाडा 50 रुपये, कुल 115 रुपये।

"एदल जी(बरजोर जी का भाई), वेतन 65 रुपये, सफर खर्च 50 रुपये, कुल 115 रुपये।

"बरजोरजी को घोडा भत्ता -50 रुपये 8 आना।

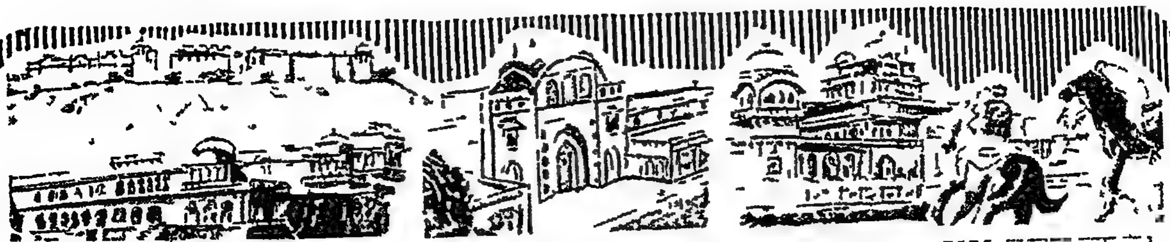
"इन सबके योग 1558 रुपये की रकम का समायोजन करने की इजाजत कौंसिल ने दे दी।"

रामप्रकाश नाटकघर तब नगर-प्रासाद का ही भाग माना जाता था और इसे 'महल रामप्रकाश नाटकघर' कहा जाता था। तब महल की तरह ही यहा के भी कायदे थे। इम्तियाजअली नामक चेला इस महल का अतिम प्रभारी था।

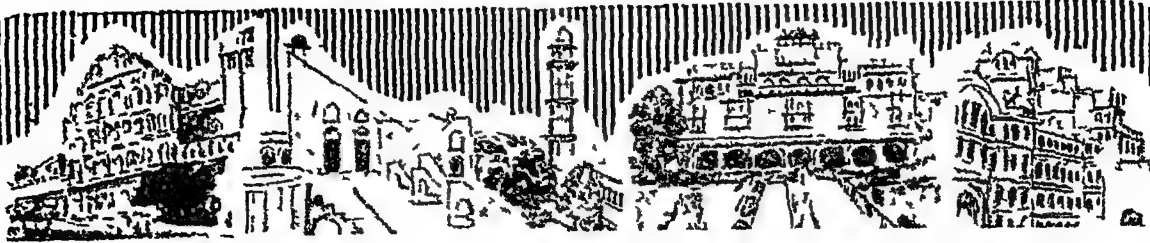
दो सस्कृत नाटको के मचन के उल्लेख के बिना रामप्रकाश का यह वृत्तान्त अधूरा रहेगा। जयपुर मे 1936 से तो सिनेमा का युग आरभ हो गया था, फिर भी 1931 के अक्टूबर ओर 1940 मे इसी नाटकघर के मच पर अभिनीत 'उत्तर रामचरितम्' ओर 'पाण्डव विजय' नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जयपुर का भारत-विख्यात महाराजा सस्कृत कॉलेज महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की अध्यक्षता मे प्रगति के नये सोपान चढ़ रहा था कि 1931 मे महाराजकुमार भवानीसिह का जन्म हुआ। पिछले दो राजाओ के गोद आने के बाद राजमहल मे इस जन्म से सारी रियासत मे ही बडा हर्ष मनाया गया। सस्कृत कॉलेज के छात्रो ने इस उपलक्ष मे भवभूति-रचित 'उत्तर रामचरितम्' का मचन किया। स्वय महाराजा मानसिह यह कह कर नाटक देखने आये थे कि वे आधा घटे बैठेंगे, किन्तु उन्हे इस सस्कृत नाटक मे ऐसा रस आया कि पूरे समय बैठे रहे और अन्त मे दो हजार रुपये का पुरस्कार भी प्रदान करने की घोषणा की। महाराजा ने इस सस्कृत नाटक के मचन को जयपुर नगर के इतिहास मे 'एक नई बात' माना।

इस नाटक मे चन्द्रकेतु की भूमिका वैदिक साहित्य के प्रख्यात विद्वान् स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने की थी और प प्रभुनारायण शर्मा 'सहृदय' को 'नाट्याचार्य' की उपाधि मिली थी।

1940 मे अभिनीत 'पाण्डव विजय' जयपुर के तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजा ज्ञाननाथ ने देखा था। यह मचन भी बडा सफल रहा था ओर राजा ज्ञाननाथ ने जयपुर से विदा होकर इन्दौर जाने के बाद वहा एक अवसर पर कहा था कि "ऐसा अभिनय मैंने पहले कभी नही देखा था।" इस नाटक की तैयारी मे दो हजार रुपये व्यय हुए थे और यह सारा खर्चा टिकटो की बिक्री से ही पूरा पड गया था।



महाराजा रामसिंह द्वारा निर्मित 'नया महल', जिसे 1942-43 में सवाई मानसिंह टाउन हाल बनाया गया और जो अब राजस्थान विधानसभा भवन है



19. बाजदार और बाज़दारी

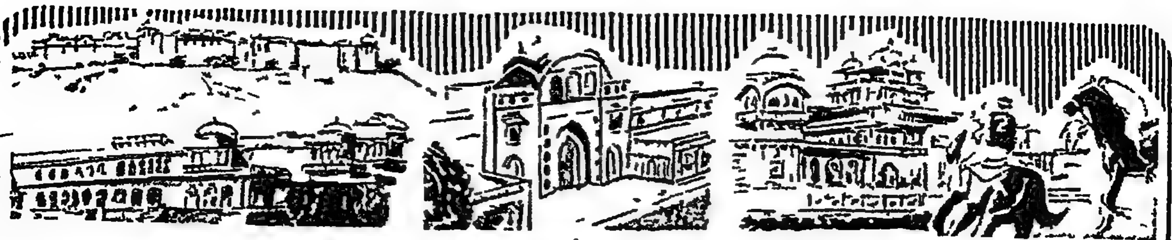
रामप्रकाश नाटकघर के पास ही "बाजदारो की मोरी" है, जहा कभी शिकार के लिए बाजो को प्रशिक्षित करने वाले बाजदार लोग रहते थे। बाजो के द्वारा शिकार खेलने को बहुत लोग मुसलमान बादशाहो और उनके शाहजादो का ही शौक मानते हैं, किन्तु यह भारत के प्राचीन मनोरजनो मे से एक रहा है। चालुक्यराज सोमेश्वर कृत "मानसोल्लास" के आधार पर मन्मथराय[1] का कथन है कि बाज ग्यारह जाति के होते हैं। नर-बाज को 'कोणक' ओर मादा को 'अजडा' कहा जाता हे। मादा नर से आकार मे बडी होती है। शिकार इन सभी जाति के बाजो से खेला जा सकता है।

इस ग्रन्थ के अनुसार बाज कई प्रकार से पकडे जाते हैं—घोसले मे बच्चो को हाथ से पकडना, जाल या फन्दे मे फसाकर पकडना और पीपल के लसीले दूध मे चिपकाकर पकडना। बाज को आकर्षित करने के लिए एक छोटी चिडिया लकडी के साथ बाध दी जाती है और उसके चारो ओर पीपल का गर्म किया हुआ लसीला दूध लगाकर कुछ लकडिया और टहनिया रख दी जाती हैं। चिडिया पर झपटने वाला बाज उन लकडियो पर बैठता है तो चिपक जाता है और पकडा जाता हे। फिर बाज के शरीर पर से लसीला पदार्थ छुडाकर उसकी आखो पर पट्टी और टागो मे डोरी बाध दी जाती है और उसका भय दूर करने के लिए शरीर पर हाथ फेरा जाता है। तीन दिन के बाद बाजदार या प्रशिक्षक उसे सिखाना आरम्भ करते हैं। जब वे सीख जाते हैं तो मनोविनोद अथवा शिकार के साधन बन जाते हैं।

शिकार खेलने के पिछले दिन बाज को न खाना दिया जाता है और न सोने दिया जाता है। इससे वह चिडचिडा हो जाता है। शिकार के दिन इस बाज को जगल मे ले जाया जाता है और चिडियो व खरगोश जैसे जीवो को हाका जाता है। उनके पीछे बाज छोड दिया जाता है जो झपट-झपट कर उनका शिकार करता है। अपने मजबूत डैनो के सहारे बाज आकाश मे बहुत ऊचाई पर भी जाकर चिडियो का शिकार कर लाता है।[2] "मानसोल्लास" मे बाजदारी को "श्येन-विनोद" कहा गया है।

आमेर के राजा रामसिह का इकलौता पुत्र और जयपुर के सस्थापक सवाई जयसिह का दादा किशनसिह, जो 1602 ई मे भरी जवानी मे मर गया था, बाजदारी का बडा शौकीन था। सूरतखाने के चित्र सग्रह मे किशनसिह के अनेक चित्र बताये जाते हैं। किसी मे वह खडा हुआ है, किसी मे बैठा है और किसी मे घोडे पर सवार है, किन्तु शायद ही कोई चित्र ऐसा है जिसमें उसके हाथ पर बाज न हो।[3]

1 प्राचीन भारतीय मनोरजन, मन्मथराय, इलाहाबाद, 1956, पृष्ठ 277-78
2 वही
3 लिटरेरी हेरीटेज आफ दि रूलर्स आफ आमेर-जयपुर, पृष्ठ 47



जयपुर वसने के वाद अन्य किसी राजा को यह शौक होने का कोई सन्दर्भ नही मिलता, किन्तु हरफनमौला महाराजा रामसिह द्वितीय (1835-80 ई) को यह शौक भी खूब था। सायकाल के समय जव दिन भर के हारे-थके पछी रैन-बसेरे के लिए अपने-अपने घोसलो को लौटते होते तो महाराजा और उनके वाजदारो के छोडे हुए प्रशिक्षित बाज उन पर झपटते और वेचारे पक्षियो की आखे फोडकर मार लाते।

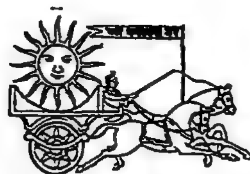
उन दिनो महाराजा के पास प्राय पुरन्दरराम तिवाडी रहते थे, जो रामसिह की वाघेली रानी के कामदार तो थे ही, महाराजा के भी अन्तरग वन गये थे। वे रीवा से आये हुए अक्खड और परशुराम स्वभाव के व्राह्मण थे जो अपनी साफगोई के लिए जाने जाते थे। रामसिह, इस ब्राह्मण को उसकी विनोदप्रियता और हाजिर-जवावी के लिए "बीरवल" कहते थे (सयोग ही था कि अकवर के दरबार का वीरवल भी पुरन्दरराम की तरह कान्य-कुब्ज ब्राह्मण ही था)।

एक शाम जव आकाश मे घर लौटते हुए पक्षियो पर रामसिह ने पुरन्दरराम की उपस्थिति मे ही वाज छोडा तो इस अक्खड व्राह्मण से न रहा गया। महाराजा से उसने कहा कि क्यो इतना पाप करते हो? वेचारे पक्षी इस समय अपने-अपने नीडो को लौटते हैं जहा उनके वच्चे-लवे उनकी वाट जोहते रहते हैं। अपने मा-बाप के न आने पर उनको कितना कष्ट होता होगा ।

1870 ई मे महाराजा रामसिह की दायी आख की दृष्टि मोतियाविद के कारण जाती रही। वडी खोज और पूछताछ के बाद कलकत्ता के डाक्टर मेक्नोमारा को आख के ऑपरेशन के लिए उपयुक्त समझा गया और इस डाक्टर ने गर्मियो मे शिमला मे यह ऑपरेशन किया। पुरन्दरराम महाराजा के साथ थे। ऑपरेशन के बाद एक दिन जव महाराजा ने पुरन्दरराम का हाथ पकडकर अपनी पीडा सुनायी तो इस मुहफट व्राह्मण ने दो टूक जवाव दिया, "एक क्यो, आपकी तो दोनो आखे फूटनी चाहिए।" महाराजा ने विस्मय से कहा, "वाह बीरवल, हमारे साथ तुम्हारी यह शुभकामना और हमदर्दी है।" पुरन्दरराम ने वेझिझक कहा, "वाजो से वहुत पंछियो की आखे फुडवायी हैं, भगवान के घर क्या उनका हिसाब नही है?"

महाराजा ने इस ऑपरेशन के बाद जयपुर मे दूसरी आख का ऑपरेशन भी इसी डाक्टर से कराया था, और कहते है कि इसके वाद उन्होने वाजदारी छाड दी थी। महाराजा माधोसिह के समय मे बाजदारी के कोई चर्चे नही मिलते।

पोथीखाने मे वाजदारी पर अनेक ग्रन्थ उपलव्ध हैं, जिनमे वाजो के प्रकार, उनके प्रशिक्षण के तरीको और उनसे शिकार करने के ढग पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। जैसे गजीफा, चौपड, शतरज, चगा-पो आदि घर पर खेलने के खेल थे, वैसे ही वाजदारी और कवूतरबाजी वाहर के मनोरजन थे जो राजाओ आर रईसो को प्रिय थे।





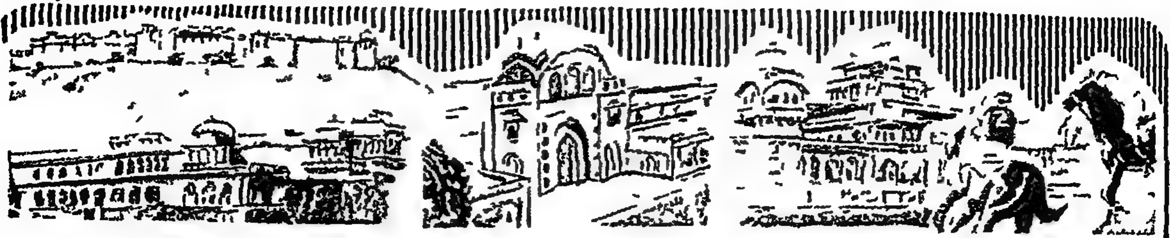
20. माधोविलास

जयपुर मे आयुर्वेद कॉलेज पहले महाराजा सस्कृत कॉलेज का ही अग था। रियासती जमाने मे ही सवाई मानसिह मेडीकल कॉलेज की स्थापना के कुछ आगे-पीछे आयुर्वेद कालेज को सस्कृत कॉलेज से सर्वथा स्वतन्त्र सस्था के रूप मे स्थापित किया गया और उसके लिए मुद्दत से खाली पडे माधोविलास महल की इमारत चुनीगई जो नगर-प्रासाद के उत्तर-पूर्व मे राजामल के तालाव की पाल पर माधोसिह प्रथम (1750-1767 ई) ने अपने आमोद-प्रमोद के लिए बनवायी थी। अब तो आयुर्वेद कालेज का आधुनिक भवन भी पास ही बन गया है और माधोविलास मे इससे सबद्ध आतुरालय चलता है।

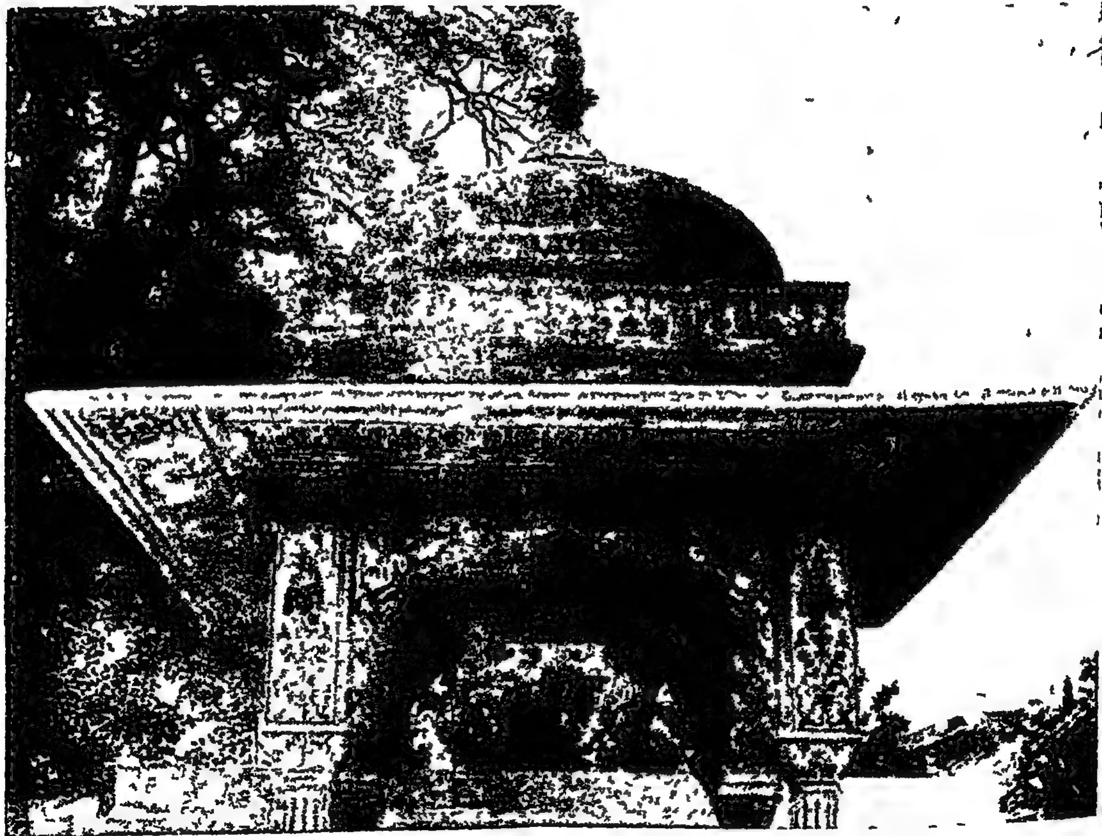
माधोसिह अपनी युवावस्था तक अपनी ननिहाल उदयपुर मे रहा था और गृह-कलह और युद्ध के बाद, जिसका अन्त उसके बडे और सौतेले भाइ इश्वरीसिह के विषपान के साथ हुआ, वह जयपुर का राजा बना था। उदयपुर के स्थापत्य का सौन्दर्य झीलो से द्विगुणित हुआ है और माधोसिह को यहा राजामल के तालाव ने नगर-प्रासाद के पास ही निर्माण की वसी ही आकाक्षा को मूर्त रूप देने का अवसर दिया। इस तालाव के किनारे उसने गिरिधारीजी का मन्दिर भी बनवाया जिसका सौन्दर्य अब ट्रकवालो की बडी-बडी टीन की टालो के पीछे दब गया है। पश्चिम की ओर इस मन्दिर का प्रवेशद्वार ऊची कुर्सी पर खडा है जिसमे तीन ओर सीढ़िया बनी ह। जब राजामल का तालाव हिलोरे लेता था तो माधोविलास और इस मदिर, दोनो की ही शोभा बडी भव्य थी।

माधोविलास की लम्बी-चोडी महलायत इस राजा के राग-रग और हास-विलास के लिए ही बनी थी। तालाब के झराव से इसका अहाता सघन वृक्षो से भरा था और यह जयपुर के सुन्दर बगीचो मे गिना जाता था। महल के मेहराबदार दीवानखाने मे सगमरमर के दुहरे शुण्डाकार स्तम्भ दर्शनीय और कलापूर्ण हैं। इसमे पीछे की ओर एक ऊची दीर्घा या गेलरी है, जो छोटे-छोटे स्तम्भो पर कमनीय मेहराबो से खुली है। कमानीदार गुम्बज सहित यह दीर्घा एक झरोखे की तरह है जिसमे सामने दीवानखाने का आगन पानी की नहरो से कट-छटकर शतरज की चोकी की तरह बना है। मध्य मे अनेक-कोणो वाला एक छोटा-सा जलाशय है जिसमे चारो ओर की नहरो का पानी आता ह और उत्तर की ओर बगीचे मे बह जाता है। इसकी दक्षिणी दीवार लाल पत्थर की सात महिला-मूर्तियो से मण्डित है।

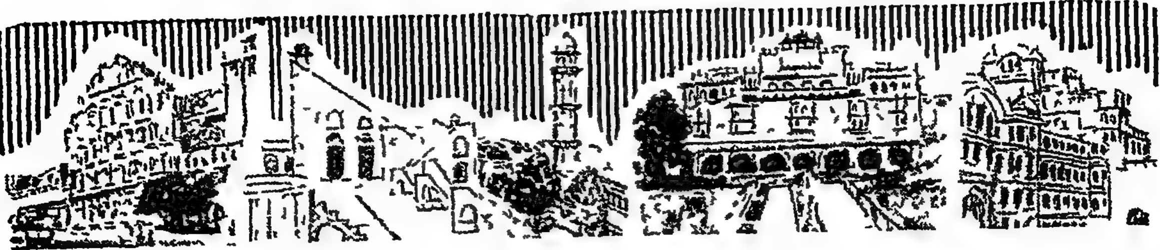
अब माधोविलास की इमारत का उपयोग आतुरालय के रूप मे हो रहा है और बाग-बगीचे का स्वरूप भी आधुनिक हो गया है, अत उस छटा का केवल अनुमान ही किया जा सकता है जो जाली-झरोखो से युक्त इस राजमहल मे पाषाण-पुतलियो और होज मे से चलने वाले फव्वारो के कारण रहती होगी। बाहर से



माधोविलास की इमारत देखकर ऐसा लगता ही नही कि भीतर ऐसे स्वप्नलोक की सृष्टि है। आये दिन के रक्तपात और लडाई-झगडो मे उलझे रहने वाले उस काल के राजा लोग अपने अवकाश के क्षण ऐसे कृत्रिम स्वप्नलोक मे ही विताते थे। फिर माधोसिह के समय मे तो जयपुर का वैभव बहुत-कुछ सवाई जयसिह के जमाने जैसा ही था। जिस प्रकार "दरस-परस" के लिये प्रतापसिह के समय मे हवामहल का निर्माण हुआ, उसी प्रकार माधोविलास भी बनाया गया। जयपुर मे यह महल हवामहल की भूमिका माना जाना चाहिए।



महाराजा इश्वरीसिह की छत्री



21.ईश्वरीसिंह की छत्री

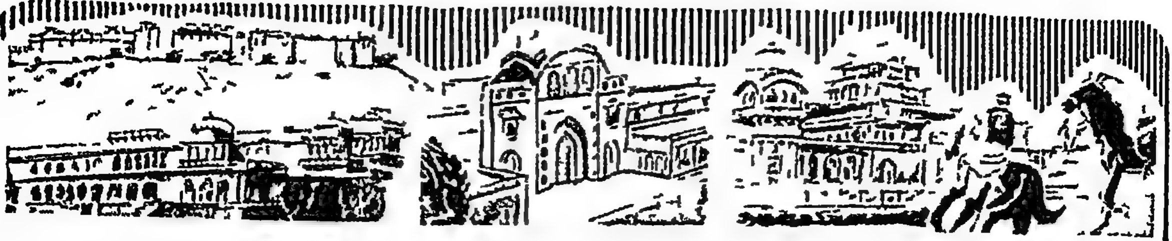
बादल महल के उत्तर-पश्चिम मे एक रास्ता ईश्वरीसिह की छतरी पर जाता है। जयपुर के राजाओ मे ईश्वरीसिह के साथ उसकी वीरता, गुण-ग्राहकता और कला-प्रेम के बावजूद जो-कुछ बीती उसे विधि का विधान मानकर ही सब्र करना पडता है। अन्य राजाओ की छतरिया जहा गेटोर (ब्रह्मपुरी) मे हैं, वहा ईश्वरीसिह नगर-प्रासाद के अहाते मे ही ताल-कटोरा के पास समाधिस्थ है। चार स्तम्भो पर बनी गुम्बजदार छतरी जिसके पलस्तर मे नीले अलकरण "लोई" मे रगडकर चमकाये गये है, वह स्थान है जहा सवाई जयसिह के इस लाडले वेटे को चैन और आराम नसीब हुआ।

1721 ई मे दिल्ली के जयसिहपुरा मे रानी सुखकवर के गर्भ से जन्मे ईश्वरीसिह को जयसिह कितना प्यार करता था, यह इसी से सिद्ध है कि दो साल के "चीमाजी" (ईश्वरीसिह का बचपन का प्यार का नाम) को "चबेणी" के लिये लगभग पाच हजार रुपये की वार्षिक आय की जागीर निकाल दी गई थी। इस बालक को राजधानी से दूर बसवा मे रखा गया और जब वह चार साल का था तो पिता ने जयसिहपुरा (दिल्ली) से ही उसके लिए जेवर, हथियार और लवाजमा भेजा।[1] अपने मरने के दस बरस पहिले 1733 ई मे जयसिह ने बाकायदा राज-दरबार जोडकर ईश्वरीसिह को अपना युवराज घोषित किया।[2] 1743 ई मे जयसिह की मृत्यु के समय युवराज ईश्वरीसिह राजसूय यज्ञ कर रहा था। उसने पिता की मृत्यु का समाचार सुना तो तुरन्त दौड आया और वह यज्ञ पूरा नही हो सका। गद्दी पर बैठने के बाद ईश्वरीसिह ने अपनी जिन्दगी के अगले सात साल अपने सौतेले भाई माधोसिह और उसका साथ देने वाले पडौसी राजाओ के षडयन्त्रो का सामना करने और लडने-झगडने मे ही बिताये। 1750 ई मे जब होल्कर ने जयपुर पर धावा बोला तो उसके ढीठ मुसाहिब हरगोविन्द नाटाणी ने उसे अधेरे मे रखा और धोखा दिया। इस नाटाणी ने जयसिह को उसकी मृत्यु शैय्या पर ईश्वरीसिह का साथ देने का वादा किया था और उसके साथ दीवान विद्याधर ने भी। नाटाणी तो साफ मुकर गया और वृद्ध तथा अशक्त विद्याधर तटस्थ रह गया। अब ईश्वरीसिह के सामने पराजय या मौत मुह बाये खडी थी। उसने पराजय और आत्मग्लानि की जिन्दगी से मौत ही बेहतर समझी और विषपान कर अपना जीवन समाप्त कर दिया। सवाई जयसिह के चहेते बेटे का अन्त बादशाह शाहजहा के लाडले दाराशिकोह के अन्त जैसा दर्दनाक तो नही, किन्तु मर्मान्तक अवश्य है।

सात साल का कुल समय और उसमे भी बडी-बडी लडाइया, षडयन्त्र और कुचक्र। लेकिन इतने-से

1 ईश्वर विलास, पृष्ठ 62

2 वही, पृष्ठ 63



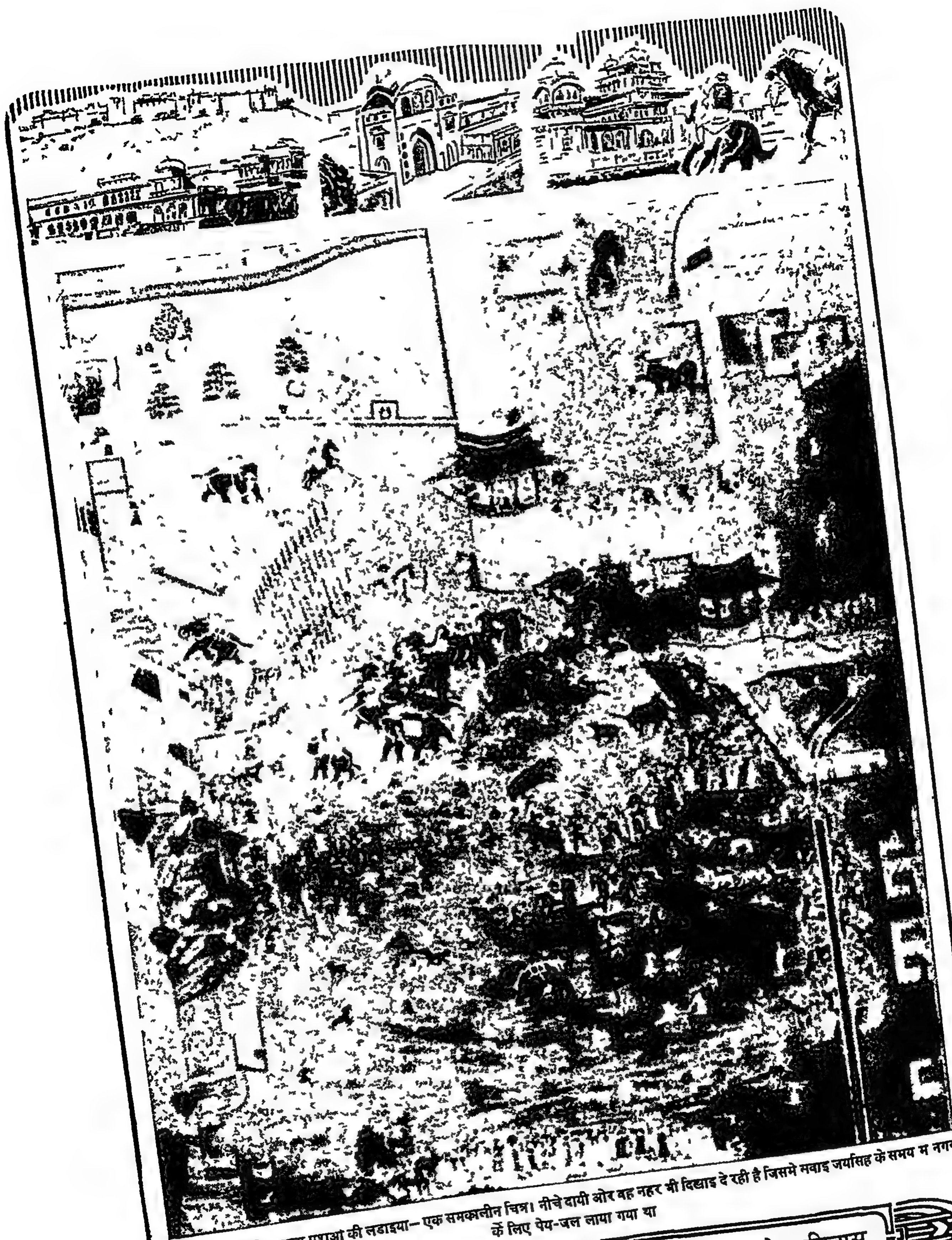
अरसे मे ईश्वरीसिह ने गेटोर मे अपने महान् पिता की स्मृति मे सगमरमर की भव्य छतरी वनवाई, चोगान मे मोती वुर्ज खडी करवाई और ईसरलाट या सरगासूली के निर्माण से जयपुर की आकाश-रेखा स्थापित की। "ईश्वर विलास ' महाकाव्य उसके साहित्य प्रेम और मोनी वुर्ज कीडा-प्रेम के परिचायक हैं। उसे वचपन से ही हाथियो की लडाई देखने का वडा शोक था और वह खुद घोडे पर सवार होकर "साटमारी" करता था। जयपुर के निकट गेटोर मे सवाई जयसिह की छतरी के इजारे पर इश्वरीसिह को साटमारी करते हुए वताया गया हे। कागज पर अत्यन्त वारीक कटाई करके चित्र वनाना भी उसकी 'हॉवी' थी, और जयपुर नरेश सग्रहालय मे उसके वनाये हुए ये कमनीय चित्र देखकर वाह-वाह करना पडता हे। सागानेर का हाथ कागज उद्योग ईश्वरीसिह की ही देन हे। विशेप प्रकार से घोटकर तैयार की जाने वाली कागज की गड्डिया "ईश्वरसाही पाठो" के नाम से जानी जाती रही हे। उसके समय मे इन पाठो को कौडियो से घिसने की तकनीक विकसित की गई थी और 'क्वालिटी कट्रोल' के लिए मुहर लगती थी। तव के सागानेरी पाठे 'डेढ मोहरिया' और 'दो मोहरिया' कहलाते थे।

जैसा हमारे देश मे दस्तूर है, इश्वरीसिह को मरने के लिए मजवूर करने ओर स्वय राजा वनने के वाद माधोसिह ने अपने सौतेले अग्रज को "ईश्वरावतार" कह कर पूजा। गुणीजनखाने के गायक और वादक उसकी छतरी पर जाकर गाते-वजाते। सुरम्य जयनिवास वाग के एक कोने मे खडी यह उदास छतरी इस गाने-वजाने के समा मे जैसे और भी उदास नजर आती।

नगर-प्रासाद मे "ईश्वरावतार" की समाधि ही एकमात्र समाधि है।



इश्वरीसिह साटमारी करत हुए। यह कीडा सवाई जयसिह की छत्री क इजार पर उत्कीर्ण है



चौगान में हाथियो व अन्य पशुओ की लडाइया— एक समकालीन चित्र। नीचे दायी ओर वह नहर भी दिखाइ दे रही है जिसमे सवाइ जयसिह के समय म नगर के लिए पेय-जल लाया गया था



ऐसो हू न और कोई भूप पातसाहन के,
सुन्यो होन देख्यो हम सगरे जहान मे।।
मुरलीधर कहे सवाई प्रतापसिंह को,
चचल गज खडे दिन-रात चौगान मे।।[2]

दूसरी बुर्ज है "मोती बुर्ज" जो नगर-प्रासाद के अहाते की मुख्य दीवार से सटी हुई हे। यह ईश्वरीसिह ने बनवाई थी। इसमे जयपुर के राजा खुद बैठकर चौगान मे होने वाले खेल-तमाशो और करतबो को देखते थे। यहा से घूमकर उत्तर-पूर्व के कोने मे चतर-महल ओर चतर की बुर्ज भी हे। चतर महल के मेहराबदार दालान बडे अनुपात से बने ह ओर सादा होने पर भी शानदार हैं। यह सवाई जयसिह के समय की इमारत बताई जाती ह जिसका प्रवेश द्वार "चतर की ड्योढी" इसके सामने के खुले चौक के पूर्व की ओर हे। चतर को कोई-कोई सवाई जयसिह के काल मे बडी प्रभावशालिनी "बडारण" या प्रधान दासी भी बताते हैं जिसकी याद आज तक इन इमारतो से कायम ह। इस महल के दालानो से राजपरिवार के लोग नीचे चोक मे हाथियो की लडाई देखा करते थे जो उन्नीसवीं सदी के अन्त तक एक बडा मनोरजन था।

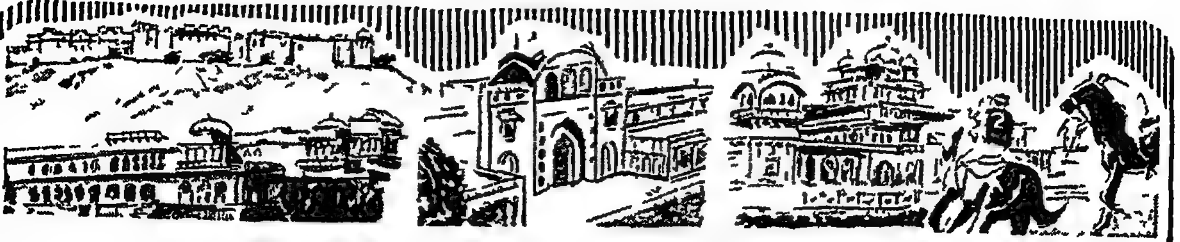
महाराजा रामसिंह पहला राजा था जिसने बात-बात मे औपचारिकता बरतने से इकार किया था। वह खातीपुरा, झालाना या रामनागर के जगलो मे शिकार के लिए जाता तो यह बडा अटपटा लगता कि जब भी चन्द्रमहल से निकले तो सिरह ड्योढी के रास्ते से ही पूरे लवाजमे के साथ निकले। इसलिये वह अक्सर घोडे पर सवार होकर अपने दो-चार विश्वस्त साथियो-सेवको को साथ लेकर चतर की ड्योढी से बाहर आ जाता ओर बिना धूमधाम के चला जाता।

मोती बुर्ज के उत्तर मे "श्याम बुर्ज" ह। इस बुर्ज के भीतर एक विशाल कुआ हे जिसका पानी रहट या पर्शियन व्हील द्वारा ऊपर बने हुए एक हौज मे भरा जाता था। इस पानी से कभी जयनिवास बाग के सारे फव्वारे चलाये जाते थे। बुर्ज की ऊपरी मंजिल एक अष्टकोणीय बरामदा है जिसकी मेहराबो मे चारो ओर जालिया लगी ह। यहा रनिवास की औरते बैठकर नीचे मैदान मे होने वाले खेल-तमाशे देख सकती थीं और छत से महाराजा और उनके सामत।

इन बुर्जो और चतर महल तक ऊपर ही ऊपर आने-जाने के लिए चन्द्रमहल ओर जनानी ड्योढी तक जो मार्ग बने हुए ह, उन्हे "सुरग" कहते हैं। इन एक-एक सुरग पर कोई भी बडी इमारत बनाने जितनी लागत आई होगी जिसकी अब कल्पना ही की जा सकती हैं। यह भी कल्पना का ही विषय हे कि जब यह महल-मालिये पूरी तरह आबाद होगे, चौगान मे हाथियो की लडाई ओर दूसरे मनोरजन होते होगे ओर इन सुरगो मे होकर बराबर स्त्री-पुरुषो का आवागमन रहता होगा तो आज सूने ओर वीरान पडे हुए इन स्मारको मे कैसा रग, कसी चहल-पहल और कैसी जिन्दगी अठखेलिया करती होगी।

नवीनतम अध्ययनो मे इस बात का पता चलता हे कि जयपुर का सस्थापक सवाई जयसिह भी चौगान के खेल का शौकीन था और एक बार जब वह अपनी ससुराल उदयपुर मे था तो उसने वहा इस खेल मे भाग लिया था।[3] जयपुर के चौगान मे, जो सवाई जयसिह ने ही बना दिया था, उसकी किसी ऐसी गतिविधि के सम्बन्ध मे अभी कोई जानकारी उपलब्ध नही हुई है, किन्तु कुछ वर्षो पूर्व कुछ बडे आकार के चित्र उपलब्ध हुए हैं जिनमे उसके उत्तराधिकारी ओर पुत्र ईश्वरीसिह को चौगान मे जानवरो की लडाइया देखते हुए बताया गया हे। महाराजा सवाई मानसिह सग्रहालय की प्रदर्शनी दीघा मे 1978 मे ये चित्र पहली बार प्रदर्शित किये गये थे। अब ऐसा ही एक चित्र वर्तमान महाराजा ने सग्रहालय को प्रदान किया हे, जिसमे ईश्वरीसिह के बाद

2 राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार, जयपुर, पृष्ठ 224-225
3 कलचरल हेरीटेज आफ जयपुर, यदुवेन्द्र सहाय, पृष्ठ 83



राजा बनने वाले उसके सौतेले भाई माधोसिह को चौगान मे ऐसी ही लडाइया देखते हुए चित्रित किया गया है।

सग्रहालय के एक अधिकारी यदुएन्द्र सहाय ने इन चित्रो के आधार पर अपने अध्ययन मे कहा है कि ये सभी चित्र बडे सजीव और फिल्म की तरह है, एक नजर मे तो यह एक ही कलाकार की तूलिका के प्रतीत होते है, किन्तु वास्तविकता यह है कि हर चित्र सूरतखाने के किसी सिद्धहस्त चित्रकार की कृति है। इनमे एक चित्र है 'शिकार अगड की," जो सतराम और ऊदाराम की सयुक्त कलाकृति है। सवाई ईश्वरीसिह इसमे काले फूलो की बूंटियो वाले पशमीने का "आतम-सुख" पहिने है और चीनी की बुर्ज मे बैठा है। बुर्ज के नीचे ही एक गोलाकार घेरे मे एक शेर बधा है और उस पर सब ओर से शिकारी कुत्तो का दल झपट रहा है। चौगान के चारो ओर बनी सभी बुर्जे, दीवारे और मैदान महाराजा के मेहमानो और दूसरे तमाशबीनो से भरे हैं। एक मस्त हाथी ने भी बडा बखेडा मचा दिया है और उससे कुचले जाने के भय से लोग भाग रहे है। अनेक लोग कोडे और कपडो के टुकडे हाथ मे लिये उसे नियन्त्रित करने मे लगे है। सारा चित्र ऐसी सजीवता और तन्मयता से बनाया गया है कि फोटो की तरह एक-एक बात को उजागर करता है ओर लगता है जैसे कलाकार ने किसी विमान या हैलीकॉप्टर मे बैठकर इसे बनाया हो।

सुख निवास (चन्द्रमहल) के इजारो पर भी पशुओ की लडाई के ऐसे ही चित्र बने है और यह कहना मुश्किल है कि पहले ये बने या वे और कौन किसकी अनुकृति है?

और तो और, चित्र मे प्रदर्शित मकानो और दीवारो का रग भी वही गाढा गुलाबी रग है जिसके लिए जयपुर सरनाम हुआ। जयपुर को सवाई रामसिह द्वितीय ने गुलाबी रग दिया था, यह एक जानी-मानी बात है, किन्तु इस चित्र को देखकर अनुमान होता है कि जयपुर मे यह रग कही-कही तो 1750 ई मे ही हो गया था अथवा होने लगा था।

एक अन्य चित्र मे, जो जगरूप का बनाया हुआ है, ईश्वरीसिह मोती बुर्ज मे बैठा दिखाया गया है। इसमे चतर की आड के दोनो ओर से अपने सवारो सहित हाथी आकर एक-दूसरे से भिड रहे हैं। इसी प्रकार एक चित्र मे, जो ऊदा का बनाया हुआ है, मोती बुर्ज के नीचे घोडो के दो जोडो की लडाई दिखाई गई है। दर्शको की भीड मे कुछ यूरोपीय पादरी भी साफ नजर आते है।

अन्य चित्रो मे ईश्वरीसिह इसी प्रकार भैसो और ऊटो की लडाई भी देखता है। ये सभी पशु उत्तेजना और क्रोध की प्रतिमूर्ति बने हुए है।[4]

एक चित्र जयसिह, ईश्वरीसिह और प्रतापसिह, तीनो को देखने वाले अनुभवी चितेरे साहबराम का बनाया हुआ है, जिसमे एक शेर और हाथी की लडाई है। मैदान को बहिश्ती लोग अपनी मशको से बराबर छिडक रहे है। आकाश मे तरह-तरह के पतग भी उड रहे है।

इन चित्र मे यूरोपियन पादरियो की उपस्थिति उल्लेखनीय है। यूरोपियन लोग इस नगर मे इसके निर्माण के बाद से ही आने लगे थे और मनोरजन के लिए उस जमाने मे चौगान से बेहतर और क्या था!

जिस चित्र मे माधोसिह प्रथम दस जोडे हाथियो की लडाई देख रहा है, वह भी उपरोक्त चित्रो के आकार का ही है।

चौगान से गणगौरी दरवाजे मे होकर नगर-प्रासाद या चौकडी सरहद के बाहर निकला जा सकता है। राज-दरबार और रनिवासो की इस उपनगरी का वह पश्चिमी द्वार है। किन्तु, अभी नगर-प्रासाद का एक वैभव तो छूट ही गया, जिसका वर्णन किये बिना यह समूचा वर्णन अधूरा ही माना जायेगा। जयपुर को मन्दिरो का नगर भी कहा गया है और राज-प्रासाद की परिधि मे ही ऐसे अनेक मन्दिर हैं जो स्थापत्य की दृष्टि से तो दर्शनीय है ही, ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

4 कलचरल हेरीटेज आफ जयपुर, पृष्ठ 85



23. गोविन्ददेवजी का मन्दिर

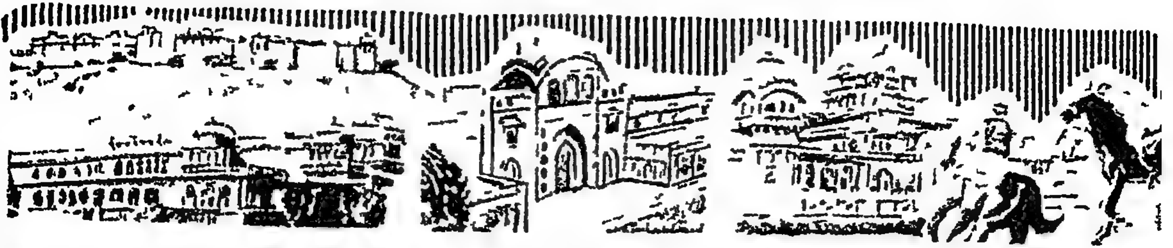
जयपुर के सैंकडो मदिरो मे गोविन्ददेवजी के मदिर का नाम दूर-दूर तक है। जो भी हिन्दू यात्री या पर्यटक इस शहर मे आता है, वह यहा के अन्य दर्शनीय स्थानो के साथ गोविन्ददेव की झाकी करने के लिए भी अवश्य जाता है। जयपुर के राजा भी अपने जमाने मे गोविन्ददेव को राजा और अपने को उनका दीवान मानते थे। गोविन्द आज भी राजा हैं। उनके दरवार मे हजारो भक्त हाजिर होते है और राधा-कृष्ण की लीलाओ के भजन-कीर्तन से सारे जयनिवास उद्यान को निनादित करते रहते है। वृन्दावन की-सी धूम, अनेक अवसरो पर तो उससे भी अधिक, गोविन्ददेव के मदिर मे मची रहती है। इत्र और फूलो की महक यहा की हवा मे तैरती है। वगाल के चैतन्य महाप्रभु ने चार सदियो पहिले भक्तिभाव और कीर्तन का जो रास्ता सासारिक लोगो को वताया था, उसका जादू अव भी वरकरार है। गोविन्ददेव के मदिर मे यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

यह विख्यात मदिर उस वारहदरी मे हैं जो "सूरजमहल" के नाम से जयनिवास वाग मे चन्द्रमहल और वादल महल के मध्य मे वनी थी। किवदन्ती है कि सवाई जयसिह जव यह शहर बसा रहा था तो सबसे पहले इसी वारहदरी मे रहने लगा था। उसे रात मे स्वप्न आया कि यह स्थान तो भगवान का है और उसे छोड देना चाहिए। अगले ही दिन वह चन्द्रमहल मे रहने लगा और यहा गोविन्ददेवजी पाट बैठाये गये।

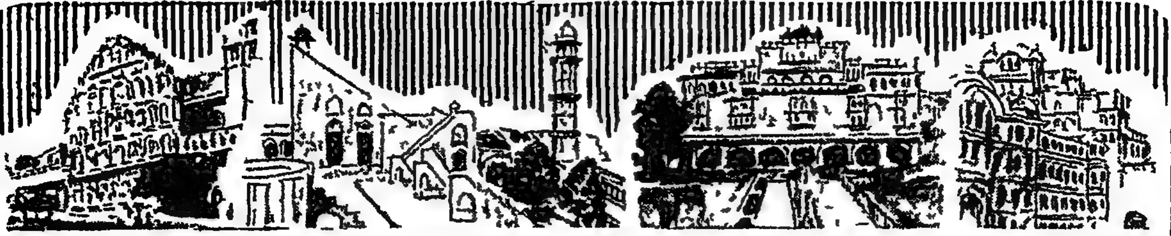
मुगल वारहदरी को वीच मे बन्द कर किस आसानी से मदिर मे परिणत किया गया, यह गोविन्ददेवजी के मदिर मे भलीभाति समझा जा सकता है। जयपुर मे इसके बाद तो प्राय वैष्णव और जैन, दोनो ही मदिर इसी शैली पर वनने लगे। यहा के सगमरमर के अत्यत कलात्मक दोहरे स्तम्भ ओर "लदाव की छत" जिसमे पट्टिया नही होती, जयपुर के इमारती काम का कमाल है। मध्यकालीन राज-दरवारो की भव्यता और देवालय की शुचिता की यहा एक साथ प्रतीति होती है।

गोविन्ददेजी की झाकी सचमुच मनोहारी है। भावुक भक्तो का मानना हे कि भगवान कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने यह विग्रह वनवाया था। वज्रनाभ की दादी ने कृष्ण को देखा था, इसलिये सबसे पहले वज्रनाभ ने जो विग्रह तैयार कराया उसे देखकर वह वोली कि भगवान के पाव और चरण तो विल्कुल उन जैसे वन गये, पर अन्य अवयव कृष्ण से नही मिलते। वह विग्रह मदनमोहन के नाम से जाना गया, जो अब करौली में विराजमान है। वज्रनाभ ने दूसरी मूर्ति वनाई जिसमे भगवान का वक्षस्थल और वाहु सही वने। इसे गोपीनाथ का स्वरूप कहा गया। फिर तीसरी मूति वनाई गई जिसे देखकर वज्रनाभ की दादी कह उठी "अहा, भगवान का अरविन्द नयनो वाला मुखारविन्द ठीक ऐसा ही था।" यह गोविन्ददेव की मूर्ति थी।

चैतन्य महाप्रभु ने व्रज-भूमि के उद्धार और वहा के विलुप्त लीला-स्थलो को खोज निकालने के लिये



भगवान गोविन्ददेवजी की हिंडोले री झांकी



अपने दो शिष्यो, रूप और सनातन गोस्वामी, को वृन्दावन भेजा था। ये दोनो भाई थे और गौड राज्य के मुसाहिब थे, लेकिन चैतन्य से दीक्षित होकर ससार-त्यागी बने थे। रूप गोस्वामी ने गोविन्ददेव की मूर्ति को, जो गोमा टीला नामक स्थान पर वृन्दावन मे भूमिगत थी, निकालकर 1525 ई मे प्राण-प्रतिष्ठा की। अकबर के सेनापति और आमेर के प्रतापी राजा मानसिह ने इस पवित्र मूर्ति की आराधना की। वृन्दावन मे 1590 ई मे उसने लाल पत्थर का जो विशाल और भव्य देवालय गोविन्ददेव के लिये बनाया वह उत्तरी भारत के सर्वोत्कृष्ट मदिरो मे गिना जाता है। भीतर से यह क्रास के आकार का है— पूर्व से पश्चिम 117 फुट लम्बा तो उत्तर से दक्षिण 105 फुट।[1] मुगल साम्राज्य मे इससे वडा और भव्य देवालय कदाचित ही बना हो। स्वय वादशाह अकवर ने गोविदजी की गायो के चरने के लिये 135 बीघा भूमि का पट्टा प्रदान किया था।[2]

वृन्दावन के गोविन्ददेव मन्दिर मे चार नागरी-लेख सुरक्षित है, जिनसे इसके निर्माण-काल के साथ इसे वनाने वाले अधिकारियो व कारीगरो का भी पता चलता है, जो अधिकाश मे आमेर राज्य के ही थे।[3] अकबर के 34 वे राज्य-वर्ष (1590 ई) का लेख इस प्रकार है—

"सवत् 34 श्री शकबन्ध अकबर शाह राज श्री कूर्मकुल श्री पृथ्वीराजाधिराज वश श्री महाराज श्री भगवतदास सुत श्री महाराजाधिराज श्री मानसिह देव श्री वृन्दावन जोग पीठ स्थान मदिर कराजो श्री गोविन्ददेव को काम उपरि श्री कल्याणदास आज्ञाकारि माणिकचन्द चोपाडु शिल्पकारि गोविददास बाल करिगरु गोरखदास वीमवल।।"[4]

जव इस मंदिर का मडान पूरा हुआ तो चैतन्य महाप्रभु की अपनी निजी सेवा की गौर-गोविन्द की लघु प्रतिमा भी किसी काशीश्वर पडित के साथ वृन्दावन आ गई और गोविन्द के विग्रह के वरावर ही इस पावन प्रतिमा को प्रतिष्ठित किया गया। गोविन्ददेव के साथ राधा का विग्रह तो बाद मे प्रतिष्ठित हुआ। यह विग्रह उडीसा के किसी प्रतापरुद्र नामक शासक ने बनवा कर भेट किया था।[5]

अप्रेल, 1669 मे जब औरगजेब ने शाही फरमान जारी कर ब्रजभूमि के देव-मदिरो को गिराने और उनकी मूर्त्तियो को तोडने का हुक्म दिया तो इसके कुछ आगे-पीछे वहा की सभी प्रधान मूर्तिया सुरक्षा के लिये अन्यत्र ले जायी गई। माध्व-गौड या गौडिया सम्प्रदाय के गोविन्ददेव, गोपीनाथ और मदनमोहन, ये तीनो स्वरूप जयपुर आये। इनमे गोविन्ददेव पहिले आमेर की घाटी के नीचे बिराजे और जयपुर बसने पर जयनिवास की इस बारहदरी मे पाट वैठे।

जयपुर नगर के इतिहास मे ए के राय ने वृन्दावन से जयपुर तक गोविन्ददेव की यात्रा का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया है

1590 ई से 1667-1670 ई के बीच -वृन्दावन के गोविन्द मदिर मे।

1670 ई से 1714 ई तक कामा या वृन्दावन मे ही विग्रह को छिपा रखा गया।

1714-1715 ई — आमेर के निकट वृन्दावन मे (इसे कनक वृन्दावन कहते थे)।

1715-1735 इ —जयनिवास वाग मे (राय के अनुसार यह जयनिवास बाग आमेर के नीचे ही था)[6]।

1 इण्डियन आर्किटेक्चर, पर्सी ब्राउन, बम्बई 1942, पृ 157

2 गोविददेवजी के वर्तमान गोस्वामी प्रद्युम्नकुमार से ज्ञात

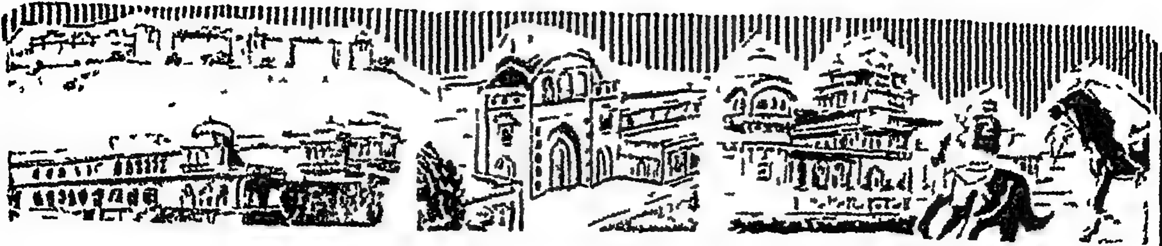
3 ब्रज का इतिहास, दूसरा भाग, मथुरा, 1958, पृष्ठ 73

4 वही

5 गोस्वामी प्र कु देव से ज्ञात

6 इसका कोई प्रमाण नही मिलता। वध के दरवाजे से आमेर की घाटी तक 'कनक वृन्दावन' था जो 'सवाई जयसिह चरित' के अनुसार जयनिवास के माग म पडता था। यह जयसिह क दरबारी कवि आत्माराम की समसामयिक रचना है, अत प्रामाणिक है। इसमे कहा गया है

बंध निकट आमैरि तैं जै निवास की राह।
वृंदावन रचना रची, फेरि भूप जयसाह ।।452।।



1735 ई से आज तक नगर-प्रासाद के वर्तमान मंदिर मे।

आगे चलकर गोविन्ददेव के भोग-राग तथा गोस्वामी के निर्वाह के लिये जयपुर के महाराजा ने जागीर दी और स्वतन्त्रता के वाद जागीर उन्मूलन हो जाने पर 32,063 93 रुपये का वार्षिक अनुदान जयपुर के इस सर्वप्रमुख मन्दिर को दिया जाने लगा।

गोविन्ददेवजी की सेवा-पूजा गोडिया वेष्णवो की पद्धति से की जाती हे।[7] सात झाकिया होती हें ओर प्रत्येक झाकी के समय गाये जाने वाले भजन ओर कीतन निधारित हे।

गोविन्ददेवजी की झाकी मे दोनो ओर दो सखिया खडी ह। इनमे एक 'राधा ठकुरानी की सेवा के लिए' सवाई जयसिह ने चढाइ थी। प्रतापसिह की कोई पातुर या सेविका भगवान की पान-सेवा किया करती थी। जव उसकी मृत्यु हो गई तो प्रतापसिह ने उसकी प्रतिमा वनाकर दूसरी सखि चढाई, जिससे इस झाकी की शोभा ओर सुन्दरता मे ओर वृद्धि हुइ।

सवाई प्रतापसिह के काल मे राधा-गोविन्द का भक्तिभाव वहुत वढ़ गया था। गोविन्ददेव को यह राजा अपना इष्टदेव मानता था। अपनी कविनाओ मे उसने कहा है

हमारे इष्ट है गोविन्द।
राधिका सुख-साधिका सग-
रमत वन स्वच्छन्द।।

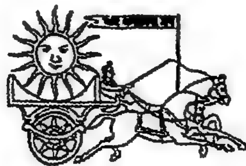
प्रतापसिह सारी जिदगी समस्याओ मे उलझा रहा था ओर उसे वार-वार मरहठो से टक्कर लेनी पडती थी। ऐसी ही किसी नाजुक घडी मे उसने गोविन्द के सामने यह कातर पुकार भी की

विपति विदारन विरद तिहारो।
हे गोविन्दचद "व्रजनिधि" अव
करिके कृपा विघन सब टारो।।

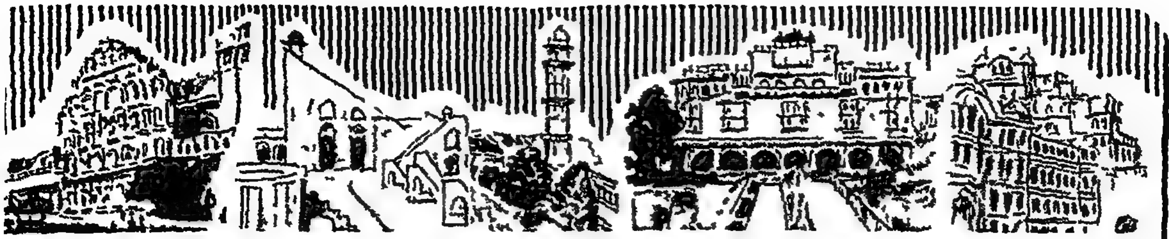
प्रतापसिह अपने उपनाम "व्रजनिधि" को गोविन्द का इनायत किया हुआ भी कहता है। उसका एक रेखता है

दिल तडपता है हुस्न तेरे को
कव मिलेगा मुझे सलौना स्याम।
अव तो जल्दी से आ दरस दीजै
जो इनायत किया है 'व्रजनिधि' नाम।।

गोविन्ददेव के इस विग्रह के सामने राजा मानसिह जैसे वीर योद्धा का सिर झुका और अकवर जैसे वादशाह ने भी इसका सम्मान किया। माध्व-गोड वेष्णव सम्प्रदाय की इस सर्वोच्च और शिरोमणि मूर्ति को जयपुर वाले तो इष्ट मानते ही हें, चैतन्य के हजारो अनुयायी वगाल, विहार, मणिपुर और असम तक से दर्शनो के लिये आते है। जयपुर इसी विभूति के कारण इन भावुक भक्तो के लिये वृन्दावन बना हुआ है।



7 गोविन्ददेवजी क गोस्वामियो की परम्परा जा रूप गास्वामी से आरभ होती है, परिशिष्ट 2 में दी गई है।



24. गंगा-गोपालजी के मंदिर

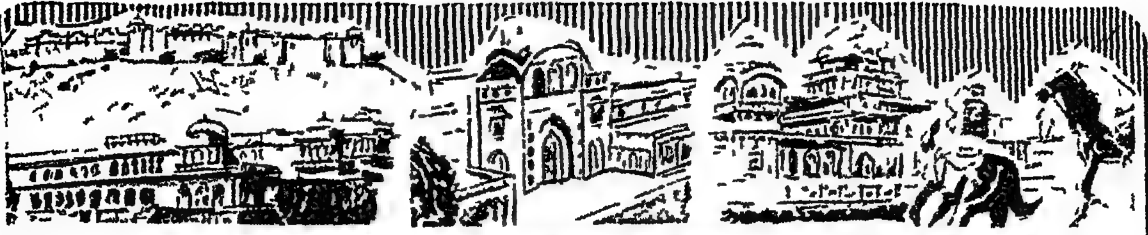
भक्ति-भावना से ओत-प्रोत जयपुर मे मदिरो की भरमार है। यहा अनेक विशाल और भव्य मदिरो की वर्तमान दशा और शोचनीय अवस्था को देखकर जहा दु ख होता है, वहा नगर-प्रासाद की सीमा मे गोविन्ददेवजी के मन्दिर के पिछवाडे गगाजी-गोपालजी के आमने-सामने बने लघु मदिरो को देखने से सचमुच आनन्द प्राप्त होता है। महकती हुई मेहदी की भीनी गध से सुवासित वातावरण मे सीढिया चढकर दर्शनार्थी उस गैलरी मे पहुचता है जो दोनो मंदिरो केप्रवेश द्वारो को जोडती है। मदिर क्या हैं, कुज भवन हैं जो धर्म-कर्म के पक्के और कट्टर सनातनी महाराजा माधोसिह ने "अपने इष्टदेव के प्रसन्नार्थ" बनवाये थे। प्रवेश करते ही दोनो मंदिरो मे खुले चोक हैं, जिनमे गढे हुए पत्थरो का समतल आगन और दूब के छोटे लान हैं। गोपालजी के मंदिर मे सगमरमर का बना एक तुलसी का बिरवा है तो गगाजी के मंदिर मे दो बडे सुघड ओर सुन्दर बिरवे है, देखने लायक। आगे सगमरमर के तराशे हुए कमनीय खम्भों पर बने हुए बरामदो के "जगमोहन" है और उनके बीच मे गर्भ-गृह या निज मन्दिर। गगा मदिर मे तो जयपुर की कलम के दो-तीन चित्र भी लगे हैं, राधा-कृष्ण के और एक चित्र हरिद्वार की हर की पौडी का भी है जिससे पता चलता है कि महाराजा माधोसिह के समय मे यह कैसी लगती थी।

अपनी आदत के अनुसार महाराजा माधोसिह ने दोनो ही मदिरो मे सगमरमर पर उत्कीर्ण लेख भी लगवाये थे। गगाजी का मंदिर सम्वत् 1971 (1914 ई) मे बनकर तैयार हुआ और इस पर 24,000 रुपये की लागत आई। बाद मे इसमे एक रसोई "मय गैस और टूटी" के और जोडी गई तो 11,444 रुपये और लगे। इस प्रकार कुल 35,444 रुपये इस पर व्यय हुए। छोटा होने पर भी मदिर की निर्माण सामग्री मे सगमरमर और करौली के सुघड बलुआ पत्थर के प्रयोग की प्रचुरता को देखते हुए यह लागत कम ही मानी जायेगी।

गोपालजी का मदिर इसके बाद बनवाया गया था। उसके लेख मे निर्माण के साल का उल्लेख नही है। यह निश्चित है कि यह अगले तीन-चार सालो मे ही बना होगा क्योकि 1922 ई मे तो माधोसिह की मृत्यु हो गई थी।

मन्दिरो की इस "जुगल-जोडी" से माधोसिह की धर्मप्रियता और ऐसे कामो के लिये उदारता का अच्छा परिचय मिलता है। जयपुर का यह राजा गगा माता के साथ राधा-गोपाल का भी अनन्य भक्त था। गगाजल का प्रयोग और सवेरे जागने पर सबसे पहले राधा-गोपाल का दर्शन उसका नित्य-नियम था।

जयपुर बसाये जाने के समय से ही यहा मदिरो की सख्या किस प्रकार बढती गई, इस प्रकिया के अध्ययन के लिये भी यह दोनो मन्दिर अच्छे उदाहरण है। गगाजी की मूर्ति महाराजा माधोसिह की पटरानी, जादूणजी



राधागोपालजी की झांकी– जयपुर के इंग्लैण्ड रिटर्न्ड ठाकुरजी



की सेव्य मूर्ति थी और इसकी सेवा-पूजा जनानी ड्योढी मे महिलाये ही करती थी। जादूणजी के बाद भी इसकी सेवा-पूजा का मडान पूर्ववत् चलता रहे, इस दृष्टि से यह मदिर बनवाकर वैशाख शुक्ला 10, सोमवार, सवत् 1971 मे गगाजी को पाट बैठाया गया। अगले वर्ष, सवत् 1972 मे अलवर राजसभा की कवि मण्डली के एक सिद्ध और सरस कवि पंडित रामप्रसाद के ब्रजभाषा मे रचित तीन छन्दो को सगमरमर की फलक पर उत्कीर्ण करवाकर इस मदिर मे लगाया गया। प रामप्रसाद उपनाम "परसाद" के प्रसाद-गुण सम्पन्न इस काव्य को देखकर आजकल की स्मारिकाओ का विचार होता है तो लगता हैं कि उस जमाने में यह स्मारिका का ही रूप था। इससे कुछ साहित्य-सेवा भी होती चलती थी, जबकि हजारो का विज्ञापन जुटाकर आज की स्मारिकाओ से क्या बन पाता है?

पडित रामप्रसाद सचमुच सफल कवि थे। अलवर के गौड ब्राह्मण परिवार मे जन्म लेकर उन्होने सोलह वर्ष की आयु मे ही समस्त अलकार ग्रथ पढकर हिन्दी साहित्य का अच्छा ज्ञान पा लिया था और हिन्दी काव्य का कोई पठनीय ग्रथ उनकी दृष्टि से नही बचा था। किन्तु, सुविज्ञ कवि से अधिक पडित रामप्रसाद व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। अलवर जैसी छोटी-सी जगह मे जाये-जन्मे और बडे हुए, किन्तु तत्कालीन राजपूताना की सभी रियासतो के राजाओ से वह व्यक्तिश मिले और अपनी कविता से मुग्ध कर प्रत्येक से पुरस्कार प्राप्त किया।[1] इग्लैण्ड की मलिका विक्टोरिया की गोल्डन जुबली पर जयपुर से एक अभिनन्दन-पत्र लन्दन भेजा गया था। वह काव्यमय था और पडित रामप्रसाद का ही रचा हुआ था। जब महाराजा माधोसिह ने 1902 मे इग्लड यात्रा की और जयपुर लौटे तो पडित रामप्रसाद ने उनके स्वागत मे भी अपनी काव्य रचनाये सुनाई। महाराजा बडे प्रसन्न हुए और इस प्रसन्नता का प्रमाण वह दो गाव हैं– यशोदानन्दनपुरा और मुस्कीमपुरा–जो जागीर मे इस कवि को बख्शे गये। इस प्रकार जयपुर रियासत मे सम्मानित होने पर पंडित रामप्रसाद की गणना जयपुर के राज-कवियो मे भी की जाने लगी। पडित रामप्रसाद का देहान्त 1918 ई मे हुआ। अपने जीवन मे उन्होने 48 ग्रथो की रचना की, जिनमे कई प्रकाशित हैं।

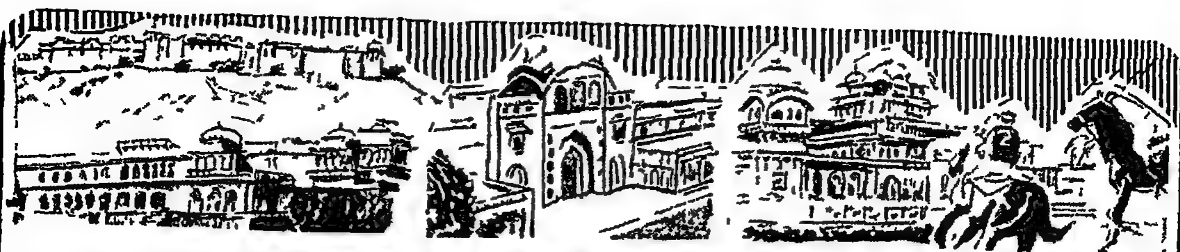
यहा उनकी कविता के नमूने के लिये उन तीन छन्दो मे से एक दिया जाता है जो गगाजी के मंदिर की शिला-फलक पर अंकित हैं। अलवर और जयपुर के इस कुशल कवि का नाम इस मदिर के साथ अमर है

ब्रह्मा के कमडल ब्रह्ममडली पर्यो नाम,
विष्णु-पद गये विष्णुपदी नाम पाई है।
शिव की जटा मैं विराजी जटाशकरी होय,
जन्हु के गये पै नाम जान्हवी सुहाई है।।
कहै "परसाद"हो भागीरथी भगीरथ के,
याही महिमा से तीन लोकन मे गाई है।
ऐसे कलिकाल मे बहतर के साल बीच-
माधव ने राखी जासौ माधवी कहाई है।

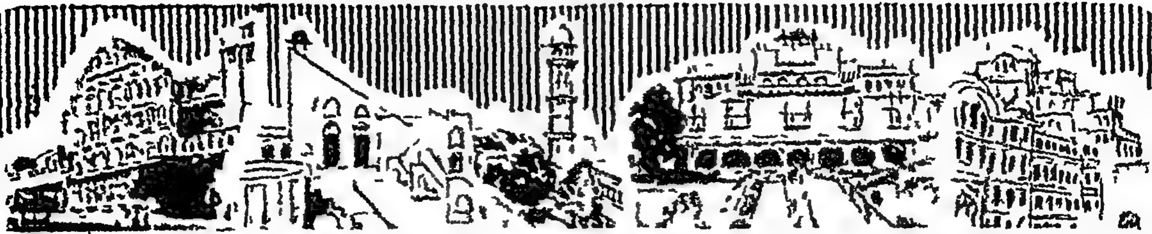
गगा का यह मंदिर जयपुर के अनेक बडे और नामी मदिरो की तरह सुनसान, वीरान नही, आज भी जिन्दगी और भक्ति-भाव से भरा है। प्रात -साय गोविन्ददेव के जाने वाले भक्तजन यहा भी पहुचते हैं और *"जय गगा मैया"* बोलते दर्शन-परिक्रमा करते हैं। कलिकाल मे भी मदिर के निर्माता का उद्देश्य जैसे पूरा हो रहा है।

माधोसिह की गगा-भक्ति अगाध थी। जयपुर की गर्मियो की लू और तपन से बचने के लिए वह राजा न विलायत जाता था और न किसी हिल स्टेशन पर। हरिद्वार मे गगा का किनारा ही उसे दैहिक सुख और

1 राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार, जयपुर, पृष्ठ 45



श्री गगाजी– महाराजा माधोसिह के समय मे जिन्हे 'बडा दरबार कहा जाता था



आत्मिक सन्तोप प्रदान कर देता था। उसका गगाजल-प्रेम मुगल सम्राट अकबर की तरह था। यह सब जानते हुए ही महामना मदनमोहन मालवीय ने इस राजा को प्रमुख हिन्द नरेशो के उस सम्मेलन मे विशेप रूप से आमंत्रित किया था जो हर की पोडी से गगा का प्रवाह न हटाने का पक्ष प्रवल करने के लिए भीमगोडा (हरिद्वार) मे हुआ था—दिसम्वर, 1916 मे। इस सम्मेलन मे लम्वे विचार-विनिमय के वाद वताया गया कि भीमगोडा मे गगा पर नये वाध (वीयर) के निर्माण से गगा की पवित्रता मे किस प्रकार अन्तर आ जाएगा। अन्त मे "सात घण्टे के विचार-विनिमय के वाद इस वात पर समझौता हो गया कि सरकार पहले से वने हुए दस दरवाजो से ही पानी का प्रवाह जारी रखेगी और दस रेगूलेटर वनाने की योजना पर अमल नही किया जाएगा। राजाओ ने यह मान लिया कि हर की पाडी पर छह हजार क्यूसेक पानी का प्रवाह पर्याप्त होगा और यह पानी पिछवाडे के वाध तथा मायापुर रेगूलेटर से आयेगा।"[2]

इस प्रकार हरिद्वार ओर हर की पाडी की यथास्थिति रखने के साथ जयपुर के इस महाराजा का नाम भी जुडा है। गगोत्री का गगा मन्दिर भी माधोसिंह का ही वनवाया हुआ है।

गगाजी के इस माहात्म्य के साथ गोपालजी या राधा-गोपालजी की वात ही कुछ ओर हे। रजवाडो के रजवाडे इस शहर मे यह 'इग्लेण्ड रिटर्नड' ठाकुरजी है।

राधा-गोपाल महाराजा माधोसिह के इष्ट थे। सवेरे विस्तर छोडते ही वे सवसे पहले इन्ही मूर्त्तियो के दर्शन करते ओर इसके वाद ही ओर किसी का मुह देखते। इस सदी के आरम्भ मे जव महाराजा को एडवर्ड सप्तम की ताजपोशी मे शामिल होने के लिये इग्लेण्ड जाना पडा तो अपने इष्टदेव को भी उन्होने साथ ले जाने का फेसला किया। "ओलम्पिया" नामक पूरा जहाज, जो महाराजा ने अपनी यात्रा के लिये किराये लिया था, गगाजल से पवित्र किया गया ओर उसके एक कक्ष मे वाकायदा राधा-गोपाल का मन्दिर वनाया गया। जयपुर छोडने के वाद 3 जून, 1902 के दिन लन्दन पहुचने तक पच्चीस दिन की समुद्री यात्रा मे महाराजा अपने नित्य नियम के अनुसार गोपालजी के दर्शन करते, तुलसी-चरणामृत लेते ओर प्रसाद पाते।

जव यह लम्वा सफर पूरा कर महाराजा लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन पर उतरे आर कम्पडन हिल पर उनके प्रवास के लिये निश्चित "मोरेलाज" नामक कोठी जाने लगे तो सवा सो आदमियो के उनके दल-वल का अच्छा-खासा जुलूस वन गया जिसमे सवसे आगे एक गाडी पर राधा-गोपालजी की सवारी थी। आज तो "हरे राम हरे कृष्ण" का प्रताप विश्व-व्यापी हो गया हे, किन्तु 3 जून, 1902 को सूय अस्त न होने वाले ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी मे राधाकृष्ण की यह पहली रथ-यात्रा थी जो इस भारतीय राजा ने निकाली थी।[3]

लन्दन के शहर मे यह अद्भुत ओर अभूतपूर्व नजारा था। अखवारो ने सुर्खिया लगाई 'महाराजा और उनके देवता', 'देवता सहित एक राजा लन्दन मे', "देवता गाडी मे" आदि आदि। "मार्निंग पोस्ट" ने लिखा "आज समस्त हिन्दू यह देखकर वडे प्रसन्न हैं कि इस यात्रा मे महाराजा ने सारे भारत मे इस वात का उदाहरण रख दिया है कि हिन्दुस्तान के राजा-महाराजा चाहे तो किस प्रकार अपने धर्म का पालन कर सकते है।"

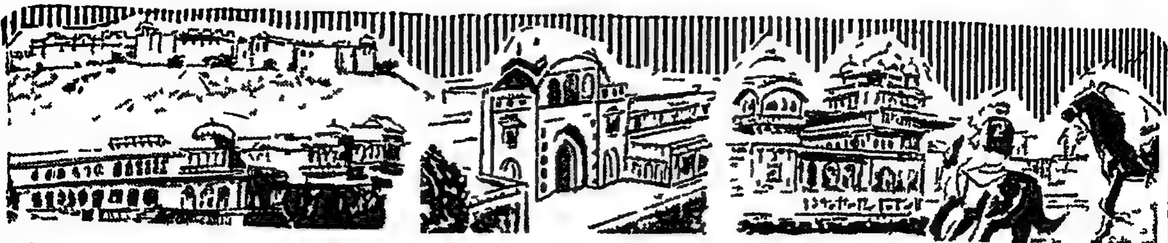
"क्रानिकल" ने टिप्पणी की "इस देश मे हजारो हिन्दू आ चुके हैं, किन्तु ऐसा अव तक कोई न आया जो अपने धर्म का इतना पालन करने वाला हो। अच्छे हिन्दू का धर्म है कि वह अपनी धार्मिक मर्यादा का पालन करे।"

अखवारो की ऐसी अनुकूल टिप्पणियो के साथ-साथ कुछ प्रतिकूल और आलोचनात्मक टिप्पणिया भी

---

2 सर पु गोपीनाथ की डायरी (ह लि)। पुरोहित जी इस सम्मलन में महाराजा माधोसिंह के साथ थे

3 देखिये परिशिष्ट 5, महाराजा माधोसिंह की इग्लैण्ड -यात्रा



थी जिनमे मूर्ति पूजा को ढकोसला और अधविश्वास करार दिया गया था। ऐसे हिन्दू-विरोधी कट्टर ईसाई आलोचको को स्वामी प्रेमानन्द भारती नामक एक सन्यासी ने "वैस्ट-मिनिस्टर" मे एक तीखा लेख लिखकर मुह-तोड जवाब दिया। उसने लिखा "द्रोही ईसाइयो और उनके मिशनरियो को यह याद रखना चाहिए कि पानी से बैतिस्मा की रस्म अदा करना, लकडी के कॉस के सामने घुटने टेक कर आराधना करना और वादशाह की ताजपोशी मे जैतून का रोगन लगाना भी ठीक वैसा ही है जैसा जयपुर महाराजा का प्रतिदिन श्रीगोपालजी के पूजन मे फूल व गगाजल काम मे लाना।"

इसमे सन्देह नही कि महाराजा माधोसिह की इग्लैण्ड यात्रा ने तब जो धूम मचाई थी, उसके पीछे सबसे बडा कारण उनका अपने रग और अपनी मर्यादाओ को न छोडना ही था। राधा-गोपाल का इष्ट इसका मूलाधार था। जयपुर के इस छोटे से मन्दिर का यह महत्त्व क्या कम है?

ब्रजराज बिहारीजी के मन्दिर का अन्तरग



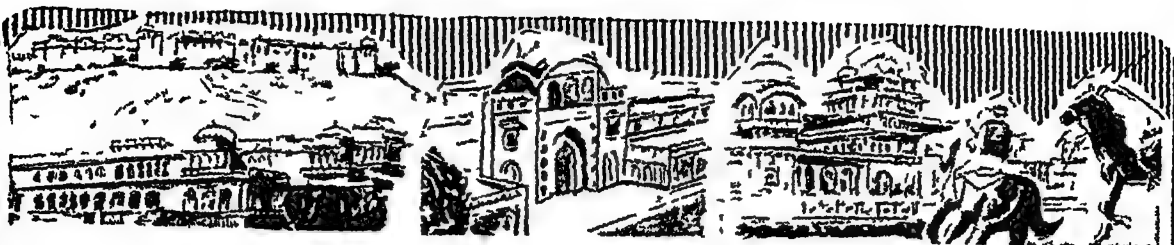
25. अन्य मंदिर

जयपुर वाले जिसे "व्रजनन्दजी" का मन्दिर कहते हे वह व्रजनिधि का मन्दिर नगर-प्रासाद के चादनी चोक मे स्थित हे। यह "व्रजनिधि" उपनाम से काव्य रचना करने वाले महाराजा प्रतापसिह की भक्ति-भावना का प्रतीक तो ह ही, देवालय निमाण की उस शेली का विशिष्ट प्रतिनिधि भी हे जो जयपुर वसने के साथ ही आरम्भ हुई थी ओर प्रतापसिह के समय मे अपने चरम विकास को पहुची थी। इस शेली की विशेषता दुर्ग के समान ऊचे ओर भव्य प्रवेश द्वार, ऊची उठान का आतरिक द्वार या पोल, खुले विशाल चोक ओर जगमोहन या मण्डप की ऐसी सयोजना ह जहा पहुचकर प्रतीति होती हे जेसे किसी हवेली के "गवले" या अन्त पुर मे आ गये। आज कल यह देखकर वडा क्लेश होता हैं कि जयपुर के इतिहास, सस्कृति और कला की दृष्टि से ऐसे महत्त्वपूण देवालय भी घोर उपेक्षा के शिकार ह आर सस्कारहीन शासको तथा लालची प्रवन्धको ने मन्दिरो को वस्तुत अपने-अपने मर्जीदानो आर यार-दोस्तो क रहने के मकानो मे परिणत कर दिया हे। ठाकुरजी तो वेचारे वस उस निज मन्दिर या गभ-गृह के मालिक ह जहा वे विराजे हुए हें।

सवाई प्रतापसिह ने कई प्रकार से अपनी रचनाओ मे कहा है, "हमारे इष्ट ह गोविन्द"। कहते ह एक रात स्वप्न मे उसे गोविन्द की आज्ञा हुइ कि वह अपने प्रेम आर अपनी भावना के अनुसार पृथक प्रतिमा वनवाकर महल के समीप एक नये मन्दिर मे विराजमान करे। प्रतापसिह ने इस आज्ञा को शिरोधार्य कर यह विशाल देवालय वनवाया और व्रजनिधि के नाम से भगवान कृष्ण की श्याम ओर राधा की पीत मूर्ति को पाट बैठाया।

जव मन्दिर का पाटोत्सव होने लगा तो वडा उत्सव मनाया गया। जयपुर के मुसाहिब दौलतराम हल्दिया की जाहरी वाजार स्थित हवेली मे ठाकुर व्रजनिधिजी अपने विवाह के लिये पधारे और वहा प्रिया-प्रियतम का पाणिग्रहण सस्कार हुआ। इसके वाद ही राधा की मूर्ति मन्दिर मे लाकर विराजमान की गई। दौलतराम हल्दिया के लिये यह समारोह वेटी के व्याह से कम न था। वडी तवियत से उसने वरात की खातिर की, लम्वी-चौडी ज्योणार का आयोजन किया ओर दहेज देकर प्रियाजी की मूर्ति को विदा किया। इस मन्दिर की ठकुरानी राधा के साथ हल्दिया वश ने आज तक यह सम्वन्ध वरकरार रखा है। वेटी के घर पर्व-त्योहारो को उपहार भेजने की प्रथा सारे राजस्थान मे हे और व्रजनिधिजी के मन्दिर मे विराजमान राधा के लिये हल्दियो के यहा से तभी से "तीज का सिजारा" आता रहा है।

इस विवाहोत्सव का वर्णन करते हुए प्रतापसिह ने पद भी लिखा, कवित्त भी लिखे ओर रेखते या गजले भी। यहा एक रेखता ही देना प्रासगिक होगा



शादी मे रायजादा से तुमने किया है क्या।
नाजुक बदन की नाज का प्याला पिया है क्या।।
खुशरूह की खूबी का खजाना लिया है क्या।
ब्रजनिधि बदस्त उसके दिल को दिया है क्या।।

जटिल समस्याओ से भरे अपने जीवन मे सवाई प्रतापसिह निराशा की घडियो मे भक्ति करता और आशा की किरणे फूट पडने पर तव के राजाओ के युग धर्म के अनुसार भोग-विलास ओर आमोद-प्रमोद मे डूव जाता। उसकी मौत खून-विकार और अतिसार रोग वढ जाने से हुई। उस दशा मे वह ठाकुर ब्रजनिधिजी के चरणो के तले तहखाने मे ही प्राय विश्राम करता था। 1803 इ मे सावन के सजल महीने मे इस सरस और वहुरगी व्यक्तित्व के धनी राजा का अन्त हो गया।

आनन्दकृष्णजी का मदिर

चादनी चौक मे ब्रजनिधिजी के मदिर के सामने ही ज्योतिष यत्रालय या वेधशाला की ओट वनाते हुए आनन्दकृष्णजी का अति विशाल मदिर है। यह प्रतापसिह के समय माजी भटियानी ने बनवाया था। विशालता मे यह बडे रामचन्द्रजी के मदिर (जिसमे सस्कृत कालेज है) से कुछ ही छोटा होगा। सामने वाले व्रजनिधिजी के मदिर से इसका चौक छोटा, किन्तु जगमोहन वडा है और यह दोनो मदिर उस स्थापत्य शैली के सच्चे प्रतिनिधि हैं जो प्रतापसिह के समय मे अपने विकास की पूर्णता को पहुची थी।

आनन्दकृष्णजी के साथ आनन्देश्वर महादेव और ब्रजनिधिजी के साथ अलग से बना हुआ प्रतापेश्वर महादेव का मंदिर है। वैष्णव मत के साथ यो शैव मत का भी सामजस्य रखकर चला गया है। आनन्देश्वर और प्रतापेश्वर, दोनो ही शिव मदिरो मे शिवलिग के साथ शिव-परिवार के सभी सदस्यो की मरमरी मूर्तिया भी प्रतिष्ठित है जिनका सेवा-शृगार शिवरात्रि पर देखते ही वनता है। आनन्देश्वर का मंदिर तो वडा अहाता होने के कारण आनन्दकृष्णजी के मदिर से ही जुडा है, किन्तु प्रतापेश्वर शिव का मदिर ब्रजनिधिजी के मदिर से अलग् वना है— दोनो के वीच 'चोहत्तर का दरवाजा' नामक द्वार है, जहा से जनानी ड्योढी और ग्वालेरा के वीच से गणगौरी बाजार तक रास्ता गया है।

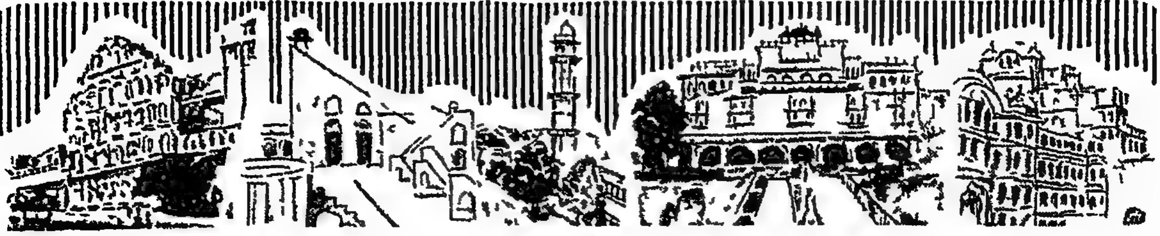
राजराजेश्वर शिवालय

चादनी चौक के उत्तरी-पश्चिमी कोने मे रसोवडा की ड्योढी से ही महाराजा रामसिह द्वितीय द्वारा निर्मित राजराजेश्वर शिवालय मे जाने का खुर्रा है। रामसिह शिव-भक्त थे और वे नित्य शकर का पूजन और दर्शन करते थे। महाराजा के लिये प्रतिदिन चौडा रास्ता स्थित विश्वेश्वर शिवालय मे जाना शक्य नही था। अत उन्होने जनानी और मर्दानी ड्योढियो के बीच अपने कमरे के पास ही सवत् 1921 मे यह शिवालय वनवाया था। मंदिर क्या है, एक छोटा सा मकान है जिसमे श्मशान-वासी शिव राजमहलो के बीच ही अचल हो गये हैं। किन्तु, राजराजेश्वर का सेवा-शृगार यथा नाम तथा गुण है, एकदम राजसी। महाराजा रामसिह के समय के कुछ दीर्घाकार सुनहरी कलम के चित्र भी इस मदिर की शोभा बढाते हैं।

वैसे यह मदिर जनता के लिये आज भी खुला नही है, केवल शिवरात्रि और अन्नकूट को ही इसका द्वार जनता के लिये खोला जाता है।

रामसिह स्वय तो इस मदिर मे प्रतिदिन दर्शन करता ही था, उसके समय मे जयपुर आने वाले वडे-बडे मेहमान भी इस मदिर मे जाकर भेट चढाना नही भूलते थे।

रामसिह के एक समकालीन कवि राधावल्लभ ने शायद इस मदिर के निर्माण एव पाटोत्सव पर ही यह छप्पय कहा था



झरत गग धमकत मृदग झुल्लत भुजग गल।
गरल सग लोचन सुरग, मोचन अनग खल।।
दमक अग दिक्खत अभग चक्खत सुभग फल।
डमरु चग बीना मृदग बज्जत उमग तल।।
"वल्लभ" विरचि नित उच्चरत छन्द वृन्द आनन्द धर।
पावन पत्थ तुव गत्थ को, जयति राज-राजेसुवर।।[1]

महाराजा माधोसिह के समय के प्रसिद्ध कविवर और जयपुर की "कवि मण्डल" सस्था के जन्मदाता गौरीलाल के पिता मन्नालाल कान्यकुब्ज ने भी राजराजेश्वर की महिमा इस प्रकार बताई है

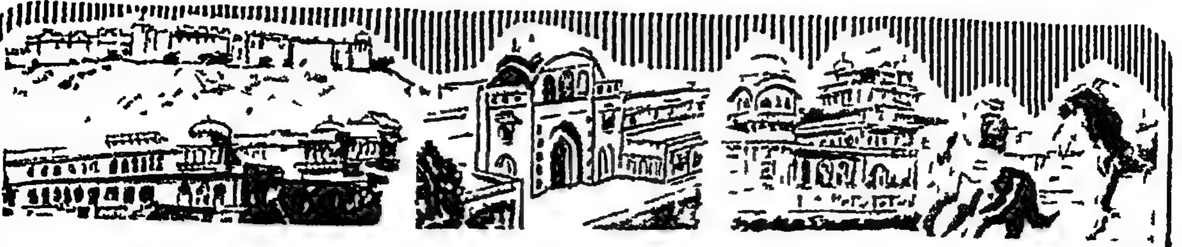
सीस पर गग सोहे, भाल बिच चन्द सोहे,
गरे मे गरल सोहे, पन्नग सुहाये है।
अग मे विभूति सोहे, गौरी अरधग सोहे,
भूत प्रेत सग सोहे, मन्न कवि गाये है।।
देव ओ अदेव सोहे वर सब लैन-लैन सोहे,
मागत ही देत दान ऐसे शिव पाये हैं।
कूरम सवाई जयसिह जू के नन्दन के,
राजेश्वरनाथ निसिद्योसक सहाये हैं।।[2]

इस शिव मंदिर मे एक 'राजराजेश्वरी यत्र' भी है। इसकी पूजा के लिये महाराजा ने पण्डित नाथूनारायण को नियुक्त किया था। नाथूनारायण सवाई जयसिह के समय के विद्वान पण्डित घासीराम का वशज था। उसकी एक सुन्दर सस्कृत कृति "गायत्री कल्पलता" की पाण्डुलिपि वहुराजी ने देखी है और उसके कुछ श्लोक भी उद्धृत किये हैं।[3]

राजराजेश्वरजी का मदिर उस धर्मसभा के कारण भी जयपुर मे बहुत विख्यात है जिसे महाराजा रामसिह ने "मोद मदिर" के नाम से स्थापित किया था। जयपुर वाले इसे "मौज मदिर" बोलते हैं। बहुराजी के अनुसार इस धर्मसभा का इतिहास पुराना है। मिर्जा राजा जयसिह ने आमेर मे एक पण्डित सभा स्थापित की थी जिसमे धर्मशास्त्र के उच्च कोटि के विद्वान सदस्य थे। धर्मशास्त्रीय विवादो मे इस पण्डित सभा का निर्णय देश भर मे मान्य होता था। जब छत्रपति शिवाजी के राज्यारोहण का विचार हो रहा था तो आमेर की पण्डित सभा की सम्मति भी मागी गई थी और सभा ने कहा था कि पहले यज्ञोपवीत सस्कार हुए बिना राज्यारोहण नही हो सकता। तदनुसार शिवाजी का लगभग 44 वर्ष की आयु मे "मौन्जी सस्कार" किया गया था।

यही पण्डित सभा रामसिह द्वितीय के समय मे मोद मदिर बनी और आज भी यह नाम के लिये तो चल ही रही है। जयपुर में रामसिह ने ही अदालते स्थापित की थी और मोद मदिर का महत्व भी बहुत बढ गया था। हर अदालत मे एक पण्डित अथवा धर्मशास्त्री की भी गद्दी होती थी और धर्मशास्त्र सम्बन्धी मामलो मे न्यायाधीश उसकी राय अवश्य लेते थे। मोद मदिर की पूरी सभा राजराजेश्वरजी के मदिर मे ही होती थी। अव तो जमाना जहा आ गया है, उसमे मोद मदिर की पूछ ही क्या रह गई है ।

1 राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार, पृष्ठ 180
2 वही, पृष्ठ 215
3 लिटरेरी हेरीटेज आफ दि रूलर्स आफ आमेर- जयपुर पृष्ठ 118



सीतारामद्वारा

जयपुर के राज-परिवार का निजी मदिर सीतारामद्वारा कहलाता है जो जयनिवास मे चन्द्रमहल के उत्तरी- पूर्वी पार्श्व मे स्थित है। कछवाहा अपने को भगवान राम के दूसरे पुत्र कुश की सन्तति मानते आये हें और सीताराम का अत्यन्त प्राचीनकाल से इष्ट रखा हे। उनका पारस्परिक अभिवादन का प्राचीन तरीका भी "जय सीतारामजी की" रहा है। पुराने पट्टो-परवानो के शीष पर भी "श्री सीतारामो जयति" अथवा "श्री सीतारामजी सहाय" लिखा मिलता हे। वाद मे राधाकृष्ण की भक्ति के अधिक लोकप्रिय हो जाने पर जयपुर मे गोविन्ददेव सीतारामजी से वाजी मार गये और यहा के राजा अपने ऐश्वर्य को गोविन्द का प्रसाद मानकर अपने को "गोविन्द-दीवाण" कहने लगे। किन्तु, गलता का तीर्थ ओर राजा के खास महल की वगल मे ही सीतारामद्वारा यही जताते हैं कि यहा के राज-परिवार की भगवान राम मे गहरी आस्था ओर प्रगाढ भक्ति रही हे।

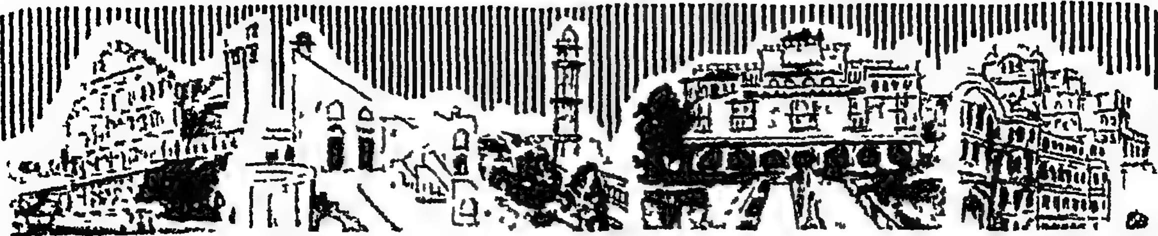
सीतारामद्वारा के प्रधान ठाकुरजी "वडा सीतारामजी" हैं। कहते है कि यह मूर्ति मुगल वादशाह वावर के समकालीन आमेर के राजा पृथ्वीराज ओर उसकी रानी वाला वाई को महात्मा कृष्णदास पयहारी ने दी थी। पयहारीजी ही गलता पीठ के सस्थापक माने जाते हैं। इन मूर्तियो के साथ शालिग्राम रूप मे नृसिह की प्रतिमा भी इन महात्मा से पृथ्वीराज दम्पति को मिली थी और पयहारीजी के निर्देशानुसार उस मूर्ति की सेवा-पूजा आज तक आमेर के उस पुराने महल मे ही होती हे जहा "वाला वाई की साल" है। चमत्कारो मे विश्वास की वात नही है, किन्तु जयपुर मे यह जनश्रुति सभी पुराने लोगो ने सुनी होगी और याद भी होगी कि "जद तक नरसग देळी मे, जद तक राज हथेळी मे"। आमेर मे विराजमान वह नृसिह-मूर्ति राजस्थान मे जयपुर रियासत के विलय के कुछ ही समय पहले चोरी चली गई थी और वाद मे सरगमी के साथ किसी कुए से वरामद भी कर ली गई थी। नृसिह के अपने देहरी से वाहर निकल जाने की इस घटना ने तव सारे जयपुर मे वडा हगामा खडा कर दिया था। मूर्ति तो वरामद हो गई, लेकिन तव "राज सवाई जयपुर" नही रहा था, राजस्थान वन गया था।

सीतारामजी के लिये भी महात्मा पयहारीजी का यह निर्देश वताया जाता है कि "युद्धादि की सवारी मे सीतारामजी का रथ आगे रहेगा तो तुम्हारा जय होगा।" जयपुर मे कहावत रही हैं 'गोला खावा में सीतारामजी, अर लाडू खावा मैं गोविन्दजी।' जयपुर के राजाओ ने अपना राज चलाने तक वरावर इस नियम का पालन किया था और दशहरे की सवारी मे अव भी सीतारामजी का रथ ही आगे जाता है।

वडे सीतारामजी के साथ "सीतारामजी हुजूरी" भी सीतारामद्वारे मे विराजमान हैं। जव सीतारामजी की वडी मूर्ति वाहर जाती थी तो यह छोटी मूर्ति उन्हें "आफीशियेट" करने के लिये प्रतिष्ठित होती थी। जुलूसो मे वडे सीतारामजी के साथ मन्त्री या "मिनिस्टर इन वेटिग" की हैसियत से सीतावल्लभजी की मूर्ति भी जाती थी जिनका मदिर सिरह ड्योढी के दरवाजे या कपाट कोट का के ठीक सामने है। इनके कार्यवाहक होते थे- "सीतावल्लभजी हुजूरी" जो सीतारामद्वारे मे ही विराजमान है। यह मूर्ति माधोसिह प्रथम के साथ उदयपुर से आई वताई जाती हैं।

सीतारामद्वारे के प्रागण मे बीचो-बीचँ एक यज्ञ-वेदी वनी है जहा पर्व-त्योहारो को हवन आदि किये जाते है। जयपुर के राजा अपनी वर्ष-गाठ पर यहा हवन करते और सबसे पहले सीतारामजी के भेट चढाकर फिर गोविन्ददेवजी के जाते है। यह परिपाटी आज भी निभाई जाती है।

एक दिलचस्प तथ्य यह है कि बडा सीतारामजी की सेवा-पूजा का अधिकार आज भी कृष्णदास पयहारी की गलता गादी के अधिकारियो को ही है। प्रधान ठाकुरजी और उनके एवजी ठाकुरजियो के मदिरो से मडित सीतारामद्वारा वस्तुत चन्द्रमहल के निवासियो का निजी देवद्वार रहा है।



लक्ष्मणद्वारा

जयपुर के मंदिरो मे लक्ष्मणद्वारा भी सचमुच विलक्षण है। नगर-प्रासाद मे गडा की ड्योढ़ी के बाहर वेधशाला के सामने ही लक्ष्मणद्वारा हे, सीतारामद्वारा के दक्षिण- पूर्व मे। स्वय सवाई जयसिह ने यह दोनो द्वारे शायद साथ-साथ ही बनवाये थे। दोनो ही मे ऐसे देव-विग्रह पूजित हे जिनमे आमेर-जयपुर के राजाओ की गहरी आस्था रही हे।

लक्ष्मणद्वारा लक्ष्मणाचार्य के नाम पर हे जो वेष्णव-भक्ति ओर सगुण उपासना के प्रतिपादक रामानुजाचार्य का ही दूसरा नाम हे। रामानुजाचार्य ने दक्षिण भारत मे भक्ति की जो गगा प्रवाहित की उसमे आमेर के राजा ओर मुगल बादशाह अक्बर के सूबेदार मानसिह ने भी अवगाहन किया ओर सवत् 1620 (1563 इ) मे भगवान व्येंकटेश (वेकुन्ठनाथ) ओर उनके साथ भूदेवी ओर नीलदेवी की मूर्तिया भी तिरुपति से आमेर भेजी। रामानुजाचाय द्वारा प्राण-प्रतिष्ठित अष्ट धातु की यह मूर्तिया वहा किसी जुलूस मे ले जाई जा रही थी। मानसिह ने अपनी राजधानी आमेर को इनसे पवित्र बनाने की सोची थी ओर इन्हे जुलूस मे से ही आमेर भेजा गया था। आमेर मे फूल बाग, जिसे अब मावलियो का बाग कहते ह, इन मूर्तियो का देवस्थान बना ओर जयपुर की स्थापना के बाद सवाई जयसिह ने इन्हे लक्ष्मणद्वारा मे पाट बेठाया।

भगवान व्येंकटेश यहा अपनी त्रिविध शक्तियो के साथ तभी से विराजमान हें। श्रीदेवी या लक्ष्मी को तो वह अपने वक्षस्थल पर ही धारण किये ह ओर दोनो ओर भू-देवी तथा नील-देवी की मूर्तिया ह। भगवान के दो हाथो मे ता शख आर चक्र ह, किन्तु शेष दो हाथो मे गदा ओर पद्‌म नही हे। वह रीते ओर "वर" तथा "अभय" मुद्राओ मे ह। विष्णु मूर्ति मे यह मुद्राये अन्यत्र नही मिलती बताइ। रामानुजाचार्य के सेव्य यह ठाकुर इन मुद्राओं मे इहलौकिक ओर पारलौकिक, दोनों ही प्रकार के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते ह।

लक्ष्मणद्वारा का देवालय नक्काशी, सगतराशी ओर अन्य अलकरण से सर्वथा हीन हे, किन्तु इसकी दीवारो के आसार कही भी तीन फुट से कम चोडे नही। सीधा-सादा इकमजिला मदिर, लेकिन बडा सुदृढ़ बना ह। दरवाजो आर खिडकियो के किवाड आधे आसार ही चिपक कर रह जाते हैं।

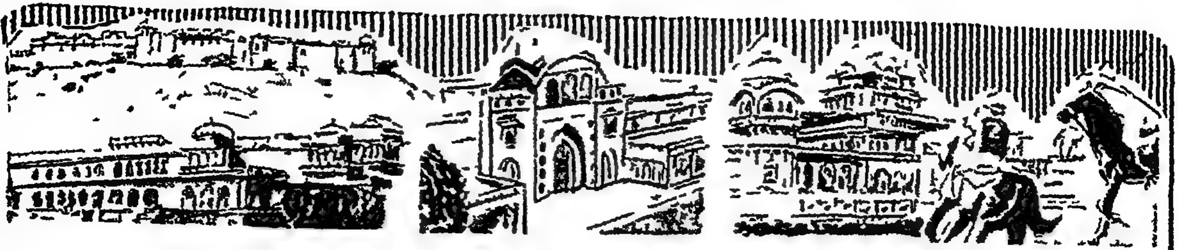
सवाई जयसिह के समय मे भगवान व्येंकटेश का देनिक भोग सवा मन चूरमे का हुआ करता था। जितना पेसा तब सवा मन चूरमे मे लगता था, अब उतना ही ढाई सेर आटे मे लग जाता हे, क्योकि वक्त भागकर कहा से कहा आ गया ह! लक्ष्मणद्वारे के भोग के नाम पर ही सवा सेर आटे की बाटिया अभी हाल तक उस सदावर्त से प्रतिदिन बाटी जाती रही ह जो महाराजा रामसिह ने अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व स्थापित किया था। रामसिह की दी हुइ रकम के सूद से चलने वाला यह "सूद सदावत" सिरह ड्योढी बाजार मे महाराजा सस्कृत कॉलेज वाले मंदिर मे चलता था, किन्तु अब गोविन्ददेवजी के बाहर हे।

लक्ष्मणद्वारा जयपुर मे रामानुज सम्प्रदाय के कीर्ति-स्तम्भो मे से हे। बालानन्दजी की गादी ओर गलता के ठिकाने के बाद रामावत भक्तो की यह प्रमुख पीठ हे ओर अपनी मूर्तियो के कारण तो इसका महत्त्व वास्तव मे बडा ह।

जयनिवास के दो लघु मदिर

नगर-प्रासाद की परिधि मे जितने महल हें उतने ही, शायद उनसे भी अधिक, मन्दिर हे। दो लघु मन्दिर चन्द्रमहल के सामने जयनिवास उद्यान की दोनो ओर की भित्तियो से सट कर आमने-सामने बने है। एक मे मदनमोहनजी ओर दूसरे मे लक्ष्मीनारायण की सेवा हे, जिनके साथ शालिग्राम रूप मे नृसिह भगवान की भी पूजा होती हे।

जयनिवास उद्यान के साथ शायद आमने-सामने ये खुली तिवारिया ही बनी थी। बाद मे जब इनमे ये विग्रह विराजमान किये गये तो थोडा परिवर्द्धन कर इन्हे मन्दिरो का रूप दिया गया। मदनमोहन सवाई



प्रतापसिह की निजी सेवा के ठाकुर है जो उसके जीवन मे तो चन्द्रमहल मे ही विराजते थे, माधोसिह के राधा-गोपाल की तरह। लक्ष्मीनारायण और नृसिह माधोसिह प्रथम के सेव्य रहे थे। इन दोनो ही नरेशो के निधन के वाद उनकी निजी सेवा के ये ठाकुर यहा विराजमान किये गये।

गोवर्द्धननाथजी का मन्दिर

जयपुर के व्यक्तित्व के प्रतीक झीने जाली-झरोखो से सुशोभित हवामहल की कमनीय इमारत से जुडा हुआ जो देवालय है उसे इस नगर के प्रमुख वैष्णव मदिरो मे गिना जाता है। यह गोवर्द्धननाथजी का मदिर है जिसे 1790 ई मे हवामहल के साथ ही साथ सवाई प्रतापसिंह ने वनवाया था। मदिर के कीर्त्ति स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख इस प्रकार है

"श्री गोरधननाथजी को मीदर वणायो हवामहल श्री मन्महाराजाधिराज राजे श्री सवाई प्रतापसिंहजी देव नामाजी मिती माह सुदी 13 वुधवार सवत् 1847।"

यह मदिर उन अनेक देवालयों मे से एक है जिन्हे स्वय सवाई प्रतापसिंह ने वनवाकर इस नगर को (जो तव गुलावी नही था अत गुलावी नगर भी नही कहलाता था) मदिरो का नगर वना दिया था। नगर-प्रासाद की परिधि के भीतर व्रजनिधिजी, आनदकृष्णजी, प्रतापेश्वर और आनन्देश्वर महादेव के मदिर तो उस समय वने ही थे, सिरह ड्योढी वाजार मे गोवर्द्धननाथ के आगे पीछे ही मदनमोहन, अमृत रघुनाथ और रत्नेश्वर महादेव के मदिर भी वने और माणक चौक पुलिस थाने वाला आनन्द विहारी का मदिर भी।

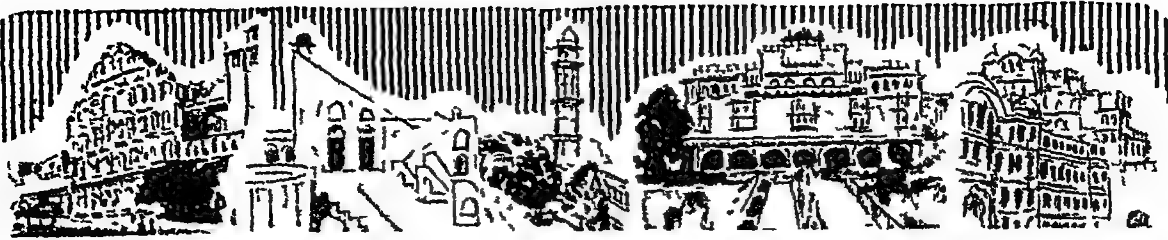
गोवर्द्धननाथ का मदिर उस काल के अन्य मंदिरो से अपेक्षाकृत छोटा है, किंतु सगमरमर के शुडाकार स्निग्ध स्तम्भो और पलस्तर मे फूल-पत्तियो के अलकरण की जिस कला ने जयपुर शैली के मदिरो को प्रतापसिंह के समय मे इतना सुन्दर वनाया था, वह इस मदिर मे भी कम नही है। हवामहल के प्रवेश द्वार के वरावर ही इसका प्रवेश द्वार भी जयपुर शैली की सभी विशेषताओ को सुरक्षित रखता है। फिर खुले चौक के पार इसका छोटा किंतु सुघड अनुपात से वना जगमोहन और निज-मंदिर या गर्भ-गृह है जिसमे गोवर्द्धनधारी कृष्ण का विग्रह विराजमान है। सावन के महीने मे जव सभी मदिरो मे भगवान हिडोले मे झूलते है, गोवर्द्धननाथ की भी हिडोले की झाकी होती है और श्रद्धालु भक्तो की भीड आकर्षित करती है। इस मदिर में हवामहल की वगल मे सिरह ड्योढी वाजार से भी रास्ता गया है।

माधोसिह प्रथम के गुरू भट्टराजा सदाशिव से प्रश्रय प्राप्त और सवाई प्रतापसिंह द्वारा 'महाकवि' उपाधि से सम्मानित भोलानाथ शुक्ल ने जो दो सस्कृत ग्रन्थ उस समय लिखे थे, उनमें से एक–'श्री कृष्णलीलामृतम्''–की रचना का निमित्त यह नव-निर्मित मदिर ही था। इस कृति मे 104 पद हैं और उनका विषय है श्रीकृष्ण की लीलाये। समूची रचना का आधार है श्रीमद्‌भागवत का दशम स्कध जिसने सूरदास सहित व्रजभाषा के अनेक छोटे-वडे कवियो को वालकृष्ण के चरित्-गान के लिये प्रेरित किया था। भोलानाथ की कृति का महत्व न केवल इसके सस्कृत काव्य होने मे, वरन् इसलिये भी है कि सारा वर्णन सरस ओर सुललित है। अपनी कृति के अत मे कवि ने इसका सवध गोवर्द्धननाथजी के मदिर से इस प्रकार इगित किया हे

श्री प्रतापस्य नृपते
न्यवसन् सुखसद्यनि।
श्रीरामस्वामिनो भर्त्ता
गोवर्द्धनधर प्रभु ।।104।।

यह रामस्वामी सभवत इस मंदिर के गोस्वामी थे।

हवामहल के निर्माता सवाई प्रतापसिंह ने भी इस महल के साथ मदिर का सम्वध जोडते हुए ही यह दोहा लिखा होगा–



हवामहल यातै कियो
सब समझो यह भाव।
राधे-कृष्ण सिधारसी
दरस-परस को हाव।।

गिरिधारीजी का मन्दिर

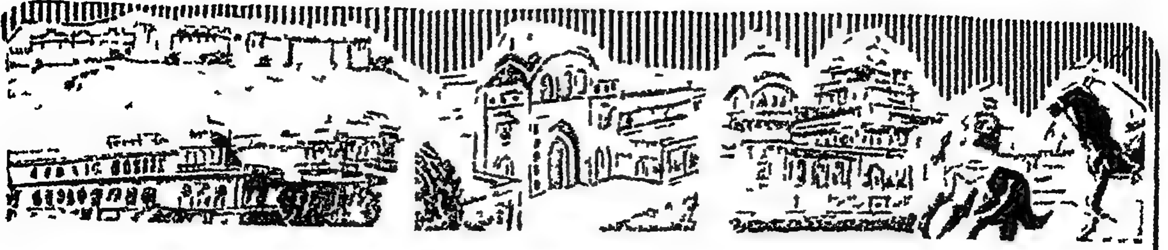
जयपुर मे राजामल का तालाव मिट्टी और कूडे— कचरे से भर जाने के कारण जिस प्रकार ताल कटोरा कोरा ताल रह गया, कटोरा न रहा, वेसे ही सिरह ड्योढी वाजार के उत्तरी छोर पर वने हुये गिरिधारीजी के मंदिर का भी मंदिर तो रह गया, किंतु इसकी प्रमुख विशेषता जाती रही। यह विशेषता थी इसके प्रवेश द्वार पर वनी हुइ सीढियो के एक स्नान-घाट होने की। राजामल के तालाव मे शहर के उत्तरी भाग का पानी आता था जो मुख्यत नाहरगढ की पहाडी का होता था। यह पानी नाहरगढ की छाया मे वनी वारह विशाल और मजवूत मोरियो मे होकर आता था ओर एक-दूसरे के ऊपर वनाये गये चार चोकोर मोखो की तीन कतारो मे होकर इस झील या तालाव मे पहुचता था। ये मेहरावदार मोरिया और मोखे वहा परकोटे की दीवार मे अव भी देखे जा सकते हैं ओर 'वारह मोरी' ही कहलाते हैं। तालाव भर जाने पर अतिरिक्त पानी निकालने की मोरिया माधोविलास महल से सटी हुई है। जयपुर मे अभी वहुत लोग हे जिन्हे वारह मोरियो से निकलने वाला पानी गणगौरी वाजार से व्रह्मपुरी जाने वाली सडक पर घुटनो तक भरा हुआ याद है ओर व्रह्मपुरी से जोरावरसिंह के दरवाजे जाने वाली सडक पर माधोविलास से निकलने वाले पानी के प्रवाह मार्ग को आज भी "नन्दी" (नदी) ही कहा जाता हे जिसके किनारे पहले छीपो ही छीपो के घर थे। अव तो सातो जातो ने सारी जल-प्लावित होने वाली जमीन पर कव्जा कर अपने-अपने घर-घरोंदे वना लिये है।

गिरिधारीजी का मंदिर माधोविलास के निर्माता माधोसिंह प्रथम ने ही वनवाया था। एक विशाल और ऊचे चोक को (जैसे आमेर रोड पर जलमहल मे) चार वुर्जो और दालानो से घेरा गया है। इसमे पूर्व की ओर कमानीदार छत की "इकदरी" या छोटे दालान के नीचे भगवान गिरिधारीजी का मदिर है। मदिर के सामने जो चौकोर खुला चोक है, उसके अग्र-भाग मे दोनो कोनो पर अष्टकोण छतरिया वनी हुई है। तीनो वाजुओ के मध्य मे खडी सुन्दर कमानीदार छतो वाली लम्वी छतरिया हे जिनके दोनो सिरे आयताकार कक्षो से जुडे है जिन पर गोल गुम्वज हैं। सामने की वाजू के ठीक मध्य मे वनाये गये प्रवेश-द्वार से तीन ओर घूमती हुई सीढिया उतरती हे जो तालाव के पूरा भर जाने पर पानी मे डूव-डूव जाती थी। यह स्नान-घाट का नजारा था जिसकी कल्पना सीढियो को देखकर अव भी की जा सकती है।

गिरिधारीजी का मदिर इस जलाशय के तट पर केसा भव्य देवालय रहा होगा, इसका अनुमान आज इसलिये नही किया जा सकता कि सारा मंदिर लोह-लक्कड ओर काठ-कवाड से घिर गया है। इसकी दीवारो के सहारे ट्रकों की मरम्मत करने के कारखाने वन गये हे जिससे इसकी वाहरी सुचित्रित दीवारो पर भी वुरी तरह आ वनी है। सव ओर ग्रीस, तेल और गले हुए लोहे की दुर्गन्ध है। गिरिधारीलाल के मदिर मे केसर-चन्दन, धूप आर फूलो की जो सुगन्ध आनी चाहिए, वह ठेठ जगमोहन मे भी अव नही आती।

गिरिधारीजी के मदिर को माधोसिह ने जिन महन्तो को भेट किया वे उसके साथ उदयपुर से ही यहा आये वताये। इनमे एक "प्रेम कवि" के नाम से व्रजभाषा की वडी सुन्दर कविता करते थे। "छन्दतरंगिनी" के नाम से उनकी एक पुस्तक भी वताई जाती है। रचना की एक वानगी देखिये

छकी प्रेम छकिन कै नेम मे छवीली छैल,
छैल के वसुरिया के छलन छली गई।
गहरे गुलावन के गहरे गरूर भरे,



गोरी की सुगन्ध गैल गोकल गली गई।
दर मे दरीन हू मे दीपति दिवारी दुति,
दतो की दमक दुति दामनी दली गई।
चौसर चमेली चारु चचल चकोरन ते,
चादनी मे चदमुखी चौकत चली गई।।[1]

प्रेम कवि जव ऐसी सरस पद्य रचना करते थे तव यहा का माहोल ओर था। इस मदिर की सेवा-पूजा अद्यावधि वल्लभ सम्प्रदाय की पद्धति मे होनी है। माधोसिह काकरोली (मेवाड) के गोस्वामी व्रजभूपणलाल का शिष्य था।

गिरिधारीजी के मदिर से सवधित एक उल्लेखनीय वात यह है कि अठारहवी सदी के आठवे दशक मे जव रससिद्ध महाकवि पद्माकर राज्याश्रय ओर आजीविका की तलाश मे ग्वालियर से जयपुर आया तो वह इसी मंदिर मे ठहरा था। यही रहते हुए पद्माकर ने सवाई प्रतापसिह से भेट करने की वडी कोशिश की, लेकिन दरवार के परस्पर विरोधी धडो के आगे इस परदेशी कवि की कुछ न चली। पद्माकर निराश हो चला था कि एक दिन गोविन्ददेवजी के मदिर मे यह वाछित भेट हो ही गई और इसके साथ पद्माकर का भाग्य जाग उठा। इस कवि को फिर इतना वैभव प्राप्त हुआ कि पद्माकर ने गद्‌गद्‌ होकर कहा है—"हम कविराज है प्रताप महाराज के।"

डा भालचन्द्रराव तैलग[2] ने महाराजा से पद्माकर को मिलाने का श्रेय महाराजकुमार जगतसिह को दिया है, जवकि कुछ लोग यह श्रेय दूणी के राव शम्भूसिह को देते है।

बलदाऊजी का मदिर

नगर-प्रासाद प्रागण का एक और मदिर वलदाऊजी का मंदिर है जो सिरह ड्योढी वाजार मे महाराजा रामसिह के "नये महल" (वाद मे कोसिल भवन ओर अव राजस्थान विधान सभा भवन) के दक्षिण मे तथा रथखाने के पूर्व मे है। यह सवाई प्रतापसिह (1778-1803ई) के राज्यकाल मे बना हुआ मदिर है। वाजार से इसके प्रवेश द्वार तक ऊची उठी हुई सीढिया इसके देवस्थान होने की द्योतक हैं। स्थापत्य की दृष्टि से इस मदिर का विशेप महत्व नही है, किंतु वलदेव का अकेला मदिर होने के कारण इस धार्मिक नगर मे सावन के महीने मे यह मदिर भी वहुत भक्तो और दर्शनार्थियो को आकर्षित करता है।

मेहताब बिहारीजी का मदिर

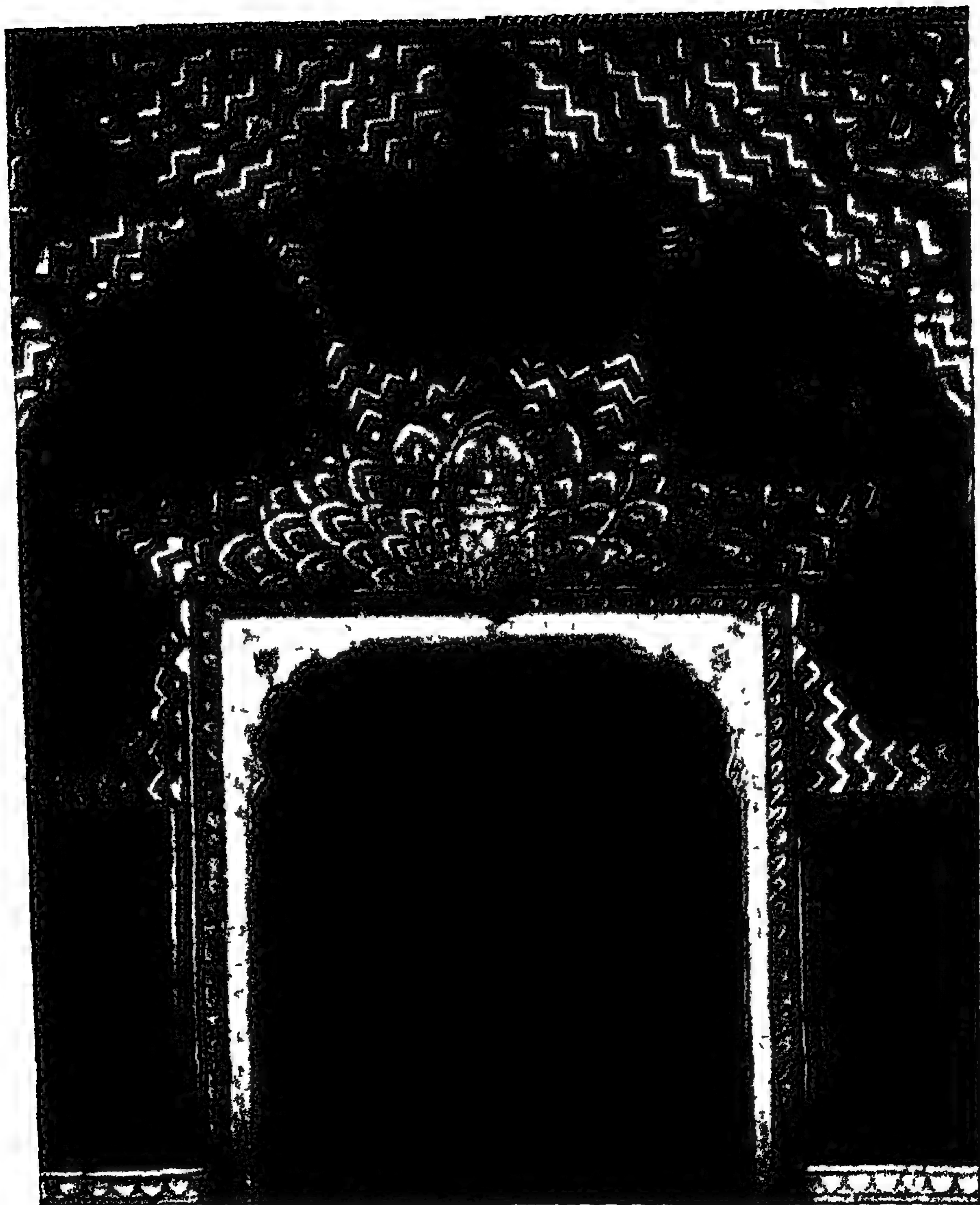
व्रजराजविहारीजी से कुछ आगे मेहताव विहारीजी का मदिर है जो जगतसिह की एक रानी मेहताव कुवर ने वनवाया था। यह मदिर उपरोक्त दोनो मदिरो मे छोटा है ओर वैसा दर्शनीय भी नही। इसके जगमोहन की कुर्सी भी ऊची नही, प्रवेशद्वार के वाद चाक मे सामने ही यह है। स्तभ वही सगमरमर के हैं और उनकी कढाई-कुराई भी अच्छी हुई है, किंतु ये स्थूल है और जगमोहन के आकार के अनुपात मे वहुत भारी लगते हैं।

जव तक जयपुर रियासत थी तो इसी मदिर मे "राज सवाई जयपुर" का प्रधान डाकघर था।

चन्द्रमनोहरजी का मन्दिर

त्रिपोलिया से कुछ कदम चलने पर पहला मदिर चन्द्रमनोहरजी का है। यह मदिर जयसिह तृतीय (1818-35 ई) की रानी ओर सवाई रामसिह द्वितीय (1835-80ई) की विमाता माजी मेडतणीजी ने वनवाया था और गोविन्ददेवजी के गोस्वामी की पुत्री को कन्यादान मे दिया था। इस कन्या के पति नीलमणि चटर्जी ही इस मदिर के गोस्वामी वने। मदिर को तव तीन हजार रुपये सालाना की जागीर भी दी गई थी।

1 राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार
2 पद्माकर श्री औरगावाद 1959, पृष्ठ 59-60



प्रीतम निवास मयूरा का थाल



चन्द्रमनोहरजी के दर्शन अतीव सुन्दर हैं। गोस्वामी कन्या का नाम चन्द्रकिशोरी था, अत मंदिर के विग्रह को चन्द्रमनोहरजी के नाम से ही पाट वेठाया था। स्थापत्य की दृष्टि से इस मदिर मे वे सभी विशेषताए हैं जो जयपुर के अन्य वडे मंदिरो मे पाई जाती हैं। प्रवेश द्वार को पार करने पर चोक, जिसमे दोनो ओर दालान वने ह, ओर फिर दूसरा चोक आता है। आयताकार मण्डप या जगमोहन का वीच का द्वार वडा और उसके दोनों ओर दो अपेक्षाकृत छोटे द्वार हैं—मुगल मेहरावे जो सगमरमर के दोहरे स्तम्भो पर उठी हैं। यह स्तभ वडे सुघड ओर सुन्दर ह। मण्डप के मध्य मे निज मंदिर या गर्भ-गृह सगमरमर की चोखट मे जडा हे जिसके ऊपर छतरियो ओर नाचते हुए मयूरो के अलकरण ह। गर्भ-गृह के दोनो ओर द्वारपाल या छडीवरदार भी सगमरमर के ही वने हे। गर्भ-गृह के पीतल के कपाट भी देखते ही वनते हैं।

व्रजराजबिहारीजी का मन्दिर

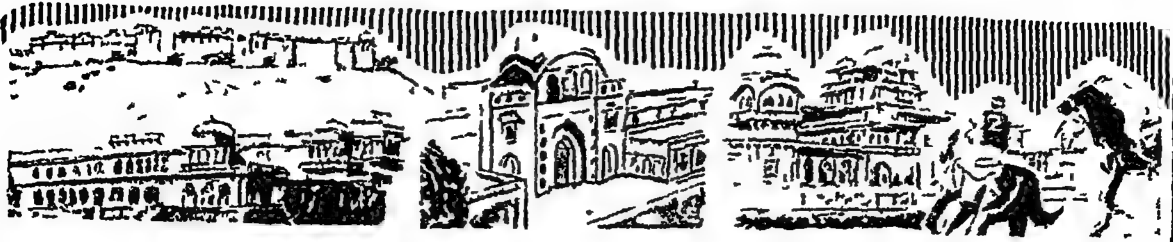
व्रजराजविहारीजी का मंदिर थोडा आगे जाने पर आता हे। यह एकमात्र इमारत हे जो जयपुर के विलासी राजा सवाई जगतसिह (1803-1818ई) ने वनवाई थी। जयपुर के इस सर्वथा अयोग्य राजा के शासन-काल के पन्द्रह वर्ष वडे घटनापूर्ण थे। इस अवधि मे रियासतो मे चलने वाले लडाई-झगडे तो अपनी पराकाष्ठा को पहुचे ही, ईस्ट इण्डिया कपनी ने भी रजवाडो के साथ कभी सम्वन्ध वनाये, कभी विगाडे ओर अतत उनसे संधिया कर वह अमन-चेन कायम किया जिसके लिये अग्रेज इतिहासकारो ने वडा गर्व किया है। सत्तर-अस्सी वर्षों से राजाओ ओर सामन्तो की आपसी ईर्ष्या ओर कलह से इस प्रकार राजस्थान के निवासियो को भी शाति की सास लेने का अवसर मिला था ओर सात समदर पार से आये फिरगी को लोगो ने इसलिये त्राता मान लिया था कि आये दिन के उपद्रवो ओर टटे-वखेडो से तो उसने मुक्ति दिला दी।

जगतसिह जव गद्दी पर वठा तो सत्रह साल का जवान था। यद्यपि माचेडी का राव स्वतत्र अलवर रियासत वनाकर सवाई जयपुर से अलग हो चुका था ओर प्रतापसिह के समय मे तुगा की वडी लडाई तथा मरहठो को वार-वार दी जाने वाली चोथ के कारण "जय मदिर" का खजाना प्राय रीत चुका था, फिर भी जयपुर जयपुर था। अपने रसिक पिता प्रतापसिह की परम्परा को निभाते हुए जगतसिह ने वाइस रानियो ओर अनेक पासवानो से अपने रनिवास को आवाद किया ओर उदयपुर की सुन्दरी राजकुमारी कृष्णाकुमारी को पाने के लिये उसने अपने सारे साधन-स्रोतो को दाव पर लगाकर जोधपुर के मानसिह से लोहा लिया। राजस्थान के दो वडे राजाओ के वीच हुइ इस रस्साकशी मे पिडारी नेता अमीरखा की खूब वन आई जिसने जयपुर ओर जोधपुर के साथ उदयपुर को भी लूटने मे कोई कसर न छोडी। कृष्णाकुमारी किसी के हाथ न लगी, उसे विपपान करना पडा ओर जयपुर के सामतो ने जगतसिह को गद्दी से ही उतार दिया होता यदि वह अपनी चहेती रखेल वेश्या रसकपूर पर दुश्चरित्र होने का आरोप लगाकर नाहरगढ के किले मे वदी न बना देता। रानियो ओर पासवानो मे इस सवाधिक चहेती वारागना का अन्त फिर केसे हुआ, कोई नही जानता।

जगतसिह ने गद्दी पर वेठते ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि कर सुख-चेन से रहने का प्रयत्न किया था, किंतु कपनी की नीति तव तटस्थता की थी ओर वह रियासतो मे कोई वखेडा मोल लेना नही चाहती थी। 1818 ई मे जगतसिह की मृत्यु से कुछ पूर्व आखिरकार यह संधि हो गई। इस राजा के शासन-काल की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी।

जगतसिह ने विनाश ओर विप्लव के उस काल मे अपने पूर्वजो की परम्परा के अनुसार यह मंदिर अवश्य वनाया। इस राजा का स्मारक भी एक प्रकार से यह मदिर ही है, क्योकि गेटोर मे उसकी छत्री भी उस विप्लव काल मे नही वन पाई।

कई वर्षो से इसके वाहर ठण्डे जल की प्याऊ लगने के कारण जयपुर वाले इसे "ठण्डी प्याऊ" का मदिर भी कहते है। जयपुर आखिर जयपुर था, इसलिये जगतसिह जैसे राजा को भी ऐसा मंदिर वनवाने का अवसर



और साधन तव भी मिल गये। यह इस शहर के वडे ओर दर्शनीय मदिरो मे से हे। जगतसिह के पिता के समय मे इस शहर मे वहुत मदिर वने थे। इसलिये स्वाभाविक था कि राजनीतिक अस्थिरता के वावजूद जगतसिह का यह मदिर भी सुन्दर वनता।

मंदिर के भीतर वाले वडे चौक मे तीन ओर हवामहल के समान जालिया ओर छोटी खिडकिया इसके स्थापत्य का सौष्ठव वढाती हैं। यह तीनो ही दीवारे सुचित्रित हैं। निज मदिर की चौखट सगमरमर से इस प्रकार वनी है जैसे किसी तस्वीर का फ्रेम हो। मण्डप की तीन मेहरावो के ऊपर वाहर की ओर चूने के पलस्तर का जैसा अलकरण इस मदिर में है, वह उस जमाने मे ही हो सकता था जव जयपुर का चूना पत्थर की तरह पुख्ता होता था।

गर्भ-गृह के द्वार पर पाच मरमरी शिखर वने हैं और उनके वीच मे चार नाचते हुए मोर हैं। इसका जगमोहन या मण्डप भी वैसा ही हे जैसा चद्रमनोहरजी का है, कितु है उससे वडा। वीच की मेहराव वडी और उसके दोनो ओर की छोटी है। इन मेहरावो के अलकरण ओर चौक मे तीनो ओर जालियो तथा चितराम के कारण व्रजराजविहारीजी का भीतरी चोक अपनी ही भव्यता ओर सुन्दरता रखता है।

गोपीजनवल्लभजी का मन्दिर

श्रीजी की मोरी मे प्रवेश करते ही वायी ओर गोपीजनवल्लभजी का मदिर भी नगर-प्रासाद ओर इस नगर के विशाल और सुन्दर मदिरो मे से एक हे। कहते है कि यह मंदिर पहले निम्वार्क सप्रदाय का था। इस सप्रदाय के 39वे जगद्गुरु श्री वृन्दावनदेवाचार्य सवाई जयसिह के अश्वमेध यज्ञ मे जयपुर आये थे। आमेर की सडक पर परशुरामद्वारा नामक स्थान तभी का हैं और वृन्दावनदेवाचार्य वही ठहरे थे। सवाई जयसिह ने अपने नये नगर को सभी सप्रदायो के स्थानो से मण्डित किया था और वृन्दावन देवाचाय को उसने यह मंदिर दिया था। रामसिह द्वितीय के समय तक इस देवस्थान के महन्त निम्वार्क सप्रदाय के ही होते रहे। फिर जव शैवो और वैष्णवो मे खटक गई ओर व्रहमपुरी से गोकुलनाथजी तथा पुरानी वस्ती से गोकुलचन्द्रमाजी के गोस्वामी अपने देव-विग्रहो के साथ जयपुर छोड गये तो निम्वार्काचाय गोपेश्वरशरण देवाचार्य भी यहा से सलेमावाद (किशनगढ) चले गये और फिर नही लौटे।[1]

महाराजा रामसिह ने यह मदिर फिर द्राविड विद्वान प जयराम शेष की महन्ताई मे दे दिया। फिर रामनाथ शास्त्री, जिन्हे जयपुर मे "मन्वाजी" के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त थी, महन्त वने और 1872 ई मे महाराजा रामसिह ने यह मंदिर उन्ही को भेट कर दिया। तव से इस मदिर को मन्वाजी के मदिर के नाम से ही जाना जाता है।

इस मंदिर का प्रवेशद्वार पूर्व की ओर देखता है, कितु राधा-कृष्ण के सुन्दर विग्रह, जो ऊपर जाने पर हैं, नगर की ओर दक्षिणाभिमुखी है। भगवान के मंदिर का यहा वही रूप है जो गोविन्ददेवजी के मंदिर मे देखा जाता है। पाच मेहराबो की विशाल वारहदरी के वीच मे चार स्तम्भो को वद कर गर्भ-गृह बना है, जिसमे गोविन्द के समान मुह बोलते राधा-कृष्ण विग्रह है। गर्भ-गृह के दोनो ओर चवरधारी द्वारपाल हैं। दीवानखाना या वारहदरी दो ओर से जालियो से वद है और ऊपर छत पर गुम्वजदार छत्रिया तथा आयताकार खुले दालान इमारत के देवस्थान होने की सूचना देते है।

इस मंदिर के दिवगत महत प गोपीनाथ द्राविड साहित्याचार्य जयपुर के सस्कृत विद्वानो मे गणनीय थे। जयपुर के प्रसिद्ध वीतराग दक्षिणात्य विद्वान पण्डित वीरेश्वर शास्त्री भी इसी मंदिर मे रहे थे और उनसे साहित्य एव शास्त्र-चर्चा के लिए यहा अनेकानेक विद्वान, अध्यापक और धर्मशास्त्री आते ही रहते थे।

□ □ □

1 जयपुर की सस्कृत साहित्य को देन, प्रभाकर शास्त्री, जयपुर, 1980, पृष्ठ 164



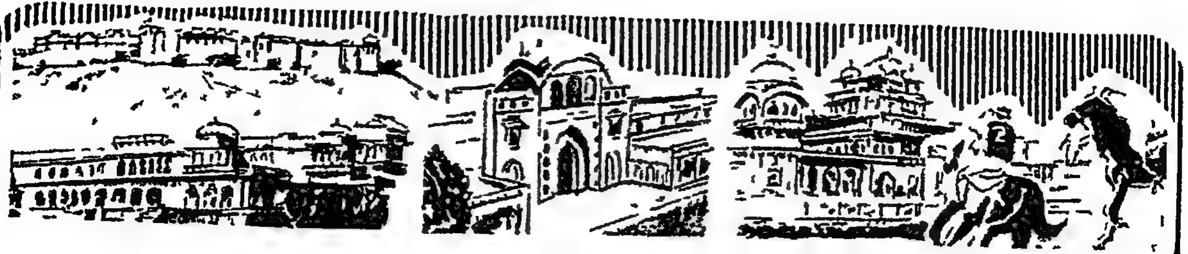
26. त्रिपोलिया

चादनी चाक ओर पूरविया की ड्योढी के ठीक दक्षिण मे तीन पोलो या दरवाजो का "त्रिपोलिया" नामक द्वार हे जो नगर-प्रासाद का दक्षिणी दरवाजा हे। गुलाबी रग से पुते त्रिपोलिया वाजार मे यह पीले रग का द्वार इसके ठीक सामने चोडे रास्ते या सवाइ मानसिह हाइवे के मोर-मुकुट के समान हे। इस पर जालियो से बद जो कक्ष हे, वह शहर मे निकलने वाले जुलूसो आदि को देखने के लिए रानियो के वेठने का स्थान था। दीपावली तथा अन्य हर्षोल्लास के अवसरो पर इसरलाट के साथ त्रिपोलिया पर भी विजली की रोशनी हो जाती हे तो नगर-प्रासाद की यह वाह्य प्राचीर जगमगा उठती हे।

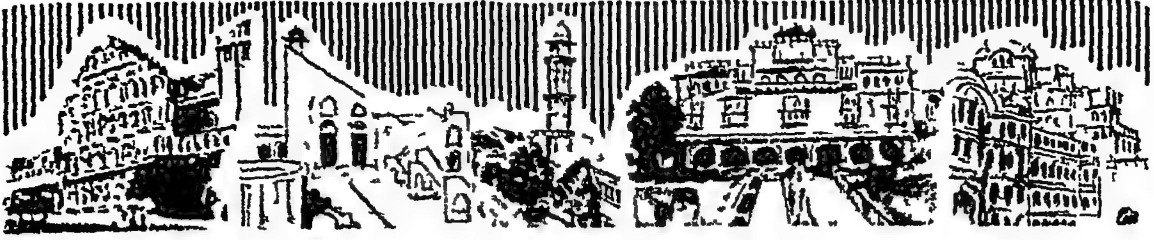
त्रिपोलिया, जेसा इसके नाम से प्रकट हे, तीन पोलों या द्वारो से वना हे। वाहरी दरवाजा तो त्रिपोलिया वाजार मे खुलता हे ओर स्थापत्य की दृष्टि से वडा नयनाभिराम ओर भव्य हे। इसकी छत वगाल के बास की छतों की तरह कमानीदार हे जिस पर कलश चढे हे। यह सुन्दर प्रवेश द्वार सवाई जयसिह ने ही अपने सात चौको वाले "सतखणे महल" (चन्द्रमहल) के साथ ही वनवाया था। दरवाजे की भव्यता और सोन्दर्य को वढ़ाने के लिए महाराजा मानसिह (1922-70ई) ने इसके वहिरग मे झरोखे ओर अश्वारोही प्रहरियो के "वाक्स" वनवाये थे ओर तभी से त्रिपोलिया आम जनता के लिए बद हे। पहले नगर-प्रासाद मे सभी के प्रवेश के लिए यह दरवाजा भी खुला था। अव तो राज-परिवार के सदस्य ओर खासा मेहमान ही इस द्वार से प्रवेश पाते ह। त्रिपोलिया का वाहरी द्वार लम्वा, सुरग की तरह हे। उसके पीछे एक छोटा और फिर तीसरा दरवाजा या पोल है जो चादनी चोक मे प्रतापेश्वर महादेव के मदिर से सटी हुई हे। गुलाबी शहर मे पीत रग का यह राजसी द्वार अपने वहिरग मे "खत के काम" की सजावट से जेसे अपनी विशिष्टता प्रकट करता हे।

यह उल्लेखनीय हे कि नगर-प्रासाद की दक्षिणी सरहद मे पहले यह एक ही द्वार था। महाराजा रामसिह ने इसके पश्चिम मे आतिश का वह दरवाजा निकलवाया था जिसकी चर्चा यथास्थान आ चुकी हे। आतिश के बाजार बन जाने पर ओर आगे पश्चिम मे ही एक दरवाजा ओर खोला जा चुका हे तथा पूर्व मे एक दरवाजा हवामहल ओर राजेन्द्र हजारी गार्ड्स मे जाने के लिए सर मिर्जा इस्माइल के जमाने मे खोला गया था। इसी दरवाजे से अव रथखाना होकर राजस्थान विधानसभा मे भी जाने का सीधा रास्ता हो गया हे। इस प्रकार कुल मिलाकर अव नगर-प्रासाद के दक्षिण मे चार दरवाजे—त्रिपोलिया, आतिश, आतिश का नया दरवाजा और हवामहल का दरवाजा—तथा एक मोरी (श्रीजी की मोरी) हे।

त्रिपोलिया से माणक चौक की ओर जाने पर कुछ ओर मदिर हें जो है तो नगर-प्रासाद के प्रागण मे ही, कितु उनके प्रवेशद्वार नगर मे पूर्व-पश्चिम जाने वाले मुख्य राजमार्ग—त्रिपोलिया बाजार—मे है।



त्रिपोलिया– नगर- प्रासाद का दक्षिणी द्वार



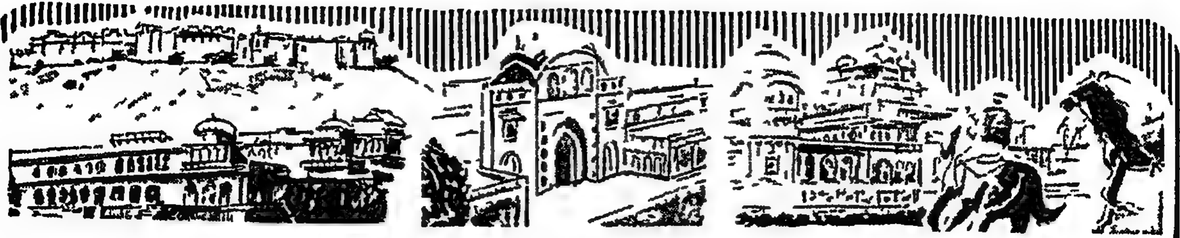
27. ईसरलाट

आतिश के अहाते मे ही वह लाट या मीनार है जो आज तक गुलाबी नगर की आकाश-रेखा बनी हुई है। जयपुर वाले इसे सरगासूली कहते हैं, किन्तु इसका अधिकृत और उपयुक्त नाम "ईसरलाट" है।

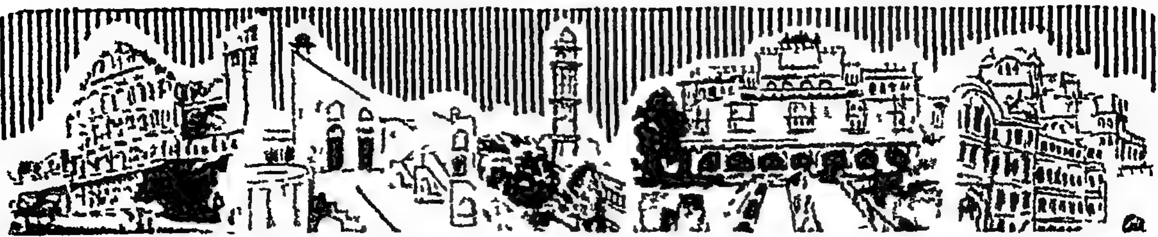
1743 ई मे सवाई जयसिह की मृत्यु होने के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिह उसका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु उसके नसीब मे न राज लिखा था और न चैन। उसका सोतेला भाई माधोसिह अपने मामा, उदयपुर के महाराणा की शह से स्वय जयपुर का राज्य हथियाने के सपने सजो रहा था। जब माधोसिह ने महाराणा, कोटा के दुर्जनसाल और बूदी के उम्मेदसिह के सहयोग से जयपुर पर धावा बोला तो ईश्वरीसिह ने अपने प्रधानमत्री राजामल खत्री और धूला के राव के नेतृत्व मे एक सेना भेजी। दोनो ही सेनानायक बडी वीरता से लड़े और उन्होंने आक्रमणकारी को रणक्षेत्र छोडकर भागने पर विवश कर दिया। 1744 ई मे यह हमला तो विफल रहा, लेकिन 1748 ई मे माधोसिह ने महाराणा, मल्हार राव होल्कर, जोधपुर, कोटा, बूदी और शाहपुरा के राजाओं की सहायता से फिर कूच किया। जयपुर से बीस मील दूर बगरू के पास दोनों सेनाओ की मुठभेड हुई और सात शत्रुओं की सम्मिलित सेना को ईश्वरीसिह के सेनापति हरगोविन्द नाटाणी ने फिर परास्त किया। यह सफलता सचमुच बडी महत्त्वपूर्ण थी और ईश्वरीसिह ने इसके उपलक्ष मे 1749 ई मे सात खण्डो या सात मंजिल का यह विजय-स्तम्भ बनवाया-ईसरलाट।[1]

इस ऐतिहासिक तथ्य की अवहेलना कर जयपुरवासियो ने इस मीनार के साथ एक कहानी जोड दी। यह कहानी ईश्वरीसिह को अपने प्रधानमत्री और सेनापति हरगोविन्द नाटाणी की बेटी का प्रेमी बताती है और जताती है कि उसे देखने के लिये ही ईश्वरीसिह ने यह मीनार बनवाई। उन्नीसवी सदी के अन्त मे श्री कृष्णराम भट्ट ने भी अपने "कच्छवश महाकाव्य" मे इस कहानी को स्थान देकर कुछ श्लोक लिख डाले। किन्तु, उस काल मे राजा की ऐसी इच्छा को पूरी करने के और भी अनेक रास्ते हो सकते थे। यह नितान्त हास्यास्पद ही है कि ईश्वरीसिह जैसा विवेकवान और वीर राजा अपनी किसी चहेती को मात्र देखने के लिये इतनी ऊची मीनार पर चढ़ता। यह कहानी सभवत पहली बार सूर्यमल्ल मिश्रण के "वश भास्कर" मे आई है, जो ईसरलाट के बनने के कम से कम सौ वर्ष बाद लिखा गया था। "वश भास्कर" बूदी के आश्रय मे लिखा गया था और बूदी उस युद्ध मे पराजित हुई थी जिसके उपलक्ष मे यह विजय-स्तम्भ बना। इस कहानी से बूदी के विजेता ईश्वरीसिह और हरगोविन्द दोनो का ही अपयश हो जाता था और उनकी विजय की बात भी गौण। फिर ईश्वरीसिह के आत्मघात के बाद राजा बनने वाले माधोसिह को भी यह विजय-चर्चा नही सुहाती होगी,

1 इस युद्ध का वर्णन 'ईश्वर विलास' के राणा पराभव सर्ग में किया गया है।



ईसरलाट— ईश्वरीसिंह द्वारा निर्मित विजय- स्तंभ, जो जयपुर नगर की आकाश- रेखा है। (अन्तर में) महाराजा रामसिंह द्वारा आरंभ किया गया सोना-चांदी का ताजिया, जो मोहर्रम के जुलूस में अब भी निकलता है।



अत नाटाणी हरगोविन्द की दुहिता ओर ईश्वरीसिह के प्रेम की वात का वतगड ही वनता गया और "कच्छवश महाकाव्य" मे भी स्थान पा गया।

अशीम कुमार राय ने इस प्रेम कहानी को सर्वथा अनर्गल ओर वेतुकी माना है, किन्तु उनसे एक भूल हो गई है। उन्होने हरगोविन्द नाटाणी का मकान छोटी चोपड पर स्थित कोतवाली को वताया है जो ईसरलाट से कोई 500 मीटर दूर है। कोतवाली वास्तव मे सवाई जयसिह के समकालीन लूणकरण नाटाणी की हवेली थी, जवकि हरगोविन्द की हवेली इस लाट के सामने ही नाटाणियो के रास्ते मे हे।[2]

हरगोविन्द नाटाणी था तो वनिया, लेकिन था वडा दिलेर ओर हिम्मतवाला सिपाही। राजमहल की लडाई मे वह जयपुर की फौज की हरावल मे था ओर अपनी व्यूह-रचना से उसने मरहठो, कोटा और उदयपुर की मिली-जुली फोज के छक्के छुडा दिये थे। वेशक, इस कामयावी ने उसके होंसले काफी वुलन्द कर दिये थे ओर वह फोज वख्शी से रियासत के सवसे वडे ओहदे मुसाहिवी पर पहुचना चाहता था। उस वक्त मुसाहिव था केशवदास खत्री जो सवाई जयसिह के विश्वासपात्र ओर काविल प्रधानमत्री राजामल खत्री का ही पुत्र था आर खुद भी वडा काविल था। लेकिन जव हरगोविन्द महाराजा ईश्वरीसिह ओर केशवदास मे मनमुटाव कराने मे सफल हुआ तो ईश्वरीसिह ने केशवदास को जहर खाने के लिये मजवूर कर दिया। केशवदास का मरना था कि ईश्वरीसिह ओर जयपुर के वुरे दिन आ गये ओर सारे शहर मे यह वात चल गई

> **मत्री मोटो मारियो,**
> **खत्री केशवदास।**
> **अव थे छोडो ईसरा,**
> **राज करण री आस।।**

माधोसिह जयपुर की गद्दी हासिल करने के लिये वरावर जोड-तोड कर रहा था ओर अपने मामा उदयपुर के महाराणा की मदद से उसने होल्कर की मरहठा फोज को अपनी हिमायत पर फिर वुला लिया था। ईश्वरीसिह के काविल मुसाहिव को मरवाने वाला हरगोविन्द ईश्वरीसिह का भी नही रहा। 1750 ईस्वी मे जव होल्कर जयपुर पर चढ आया ओर ईश्वरीसिह ने हरगोविन्द से फोज जुटाने के लिये कहा तो पहले तो वह दिलासे देता रहा कि 'एक लाख कछवाहे मेरे खीसे (जेव) मे है' ओर बाद मे जव हमलावर शहर के वाहर ही आ खडे हुए तो उसने ढिठाई से जवाव दिया कि "हुजूर, खीसा तो फट गया।" अव ईश्वरीसिह क्या करता। सवाई जयसिह के इस वडे वेटे ने तव अपने को जलील होने से वचाने के लिये सोमलखार (सखिया) खाया और काले साप से अपने आपको डसाया। सारे राजनीतिक जजालो से उसे छुट्टी मिल गई।

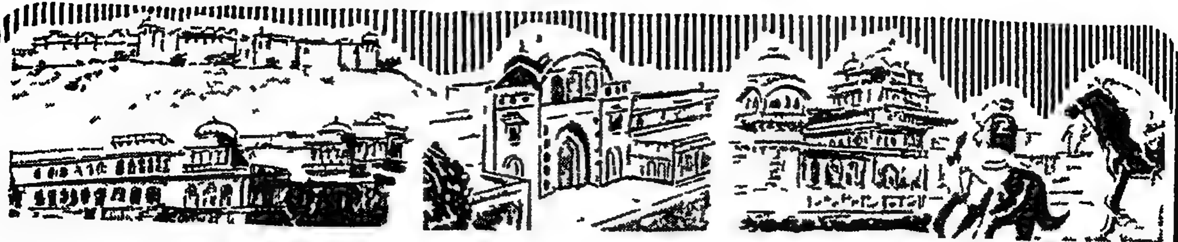
हरगोविन्द आर विद्याधर दीवान ने ईश्वरीसिह की आत्महत्या का समाचार खुद होल्कर को दिया और पन्द्रह दिन वाद होल्कर माधोसिह को हाथी पर अपने साथ वेठाकर इस शहर मे निकला। इस ऐतिहासिक घटना का एक जयपुरी टप्पा है

> **माधो मागे आधो**
> **ईसर दे नै पाव।**
> **ज्यो गोविन्द किरपा करै-**
> **तो सारा ही पर दाव।।**

ईसरलाट की साती मजिले अष्टकोणीय वनी हे ओर हर दो मजिल के वाद चारो ओर घूमती हुई गैलरी या दीर्घा हे। दीपावली और अन्य अवसरो पर जव यह मीनार विजली की रोशनी से देदीप्यमान हो जाती है तो इसकी शोभा देखते ही वनती है।

---

2 हिस्ट्री आफ जयपुर सिटी, ए के राय, दिल्ली, पृष्ठ 54



ईसरलाट को बनाने वाले उस्ता का नाम गणेश खोवाल बताया जाता है।

राजकीय ताजिया

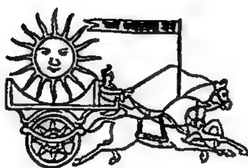
आतिश घुडसाल रहा और अब बाजार है, किन्तु इसके साथ ही जयपुर की मिलीजुली सस्कृति और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का एक प्रतीक जुडा है। हर साल मुहर्रम पर जयपुर के राजघराने की ओर से निकलने वाला सोने-चादी का ताजिया आतिश के दरवाजे पर एक गोखे पर रखा जाता है और ताजियो के जूलूस मे कर्बला तक ले जाया जाता है।

जयपुर मे राजाओ का राज भले ही रहा पर धर्म निरपेक्षता भी शुरू से ही रही। मुहर्रम यहा बडी धूमधाम से सदैव मनाया जाता है और कुछ जानकार जहा यह कहते है कि कारीगरी मे जयपुर मे बनने वाले ताजियो का हिन्दुस्तान भर मे कही मुकाबला नही है, वहा कुछ दूसरो का मत है कि जयपुर का स्थान लखनऊ के बाद है, पर दिल्ली, आगरा, रामपुर आदि मुस्लिम सस्कृति के अन्य केन्द्रो से शर्तिया ऊपर।

हिन्दुओ मे, कहते है, जितने बेटे उतने ही श्राद्ध। जयपुर मे ताजियो के लिये भी कहावत है कि जितने मोहल्ले, उतने ही ताजिये। इतने ताजिये निकलते है कि माणक चौक की चौपड के चारो ओर तथा पूरे सिरह ड्योढी बाजार की लम्बाई मे चमचमाते ताजिये ही ताजिये कर्बला की ओर जाते नजर आते है और शहर मे बडा हुजूम हो जाता है।

कहते है एक बार महाराजा रामसिह (1835-1880ई) बीमार हो गये थे। उनके सगीत के उस्ताद रजब अली खा ने कहा कि अन्नदाता, ताजियो की डोरी पहिन लीजिये। महाराजा ने यह नुस्खा भी आजमाया और डोरी बाधते ही तकलीफ रफा-दफा हो गई। तब से महाराजा की ओर से भी सोने-चादी का बना हुआ ताजिया निकलने लगा। राज तो चला गया, पर भूतपूर्व राजघराना आज तक यह ताजिया आतिश के दरवाजे से कर्बला (जलमहल) तक भेजता है।

"मत्स्य देश का इतिहास" मे लिखा है कि सोने-चादी का यह ताजिया महाराजा ने नवाब फैज अली खा के प्रधानमत्री होने के बाद निकालना शुरू किया था। अपने ढग का यह देश भर मे एक ही ताजिया निकलता है।





28. पर्व-त्योहार

जब 'राज सवाई जयपुर' का संचालन इस राजप्रासाद में होता था तो यहां का वैभव और ऐश्वर्य वर्णनातीत था। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने जयपुर को "नित्योत्सवशाली" नगर कहा है, जहां सात वार, नौ त्योहार हुआ करते थे। जिस नगरी के पुरजन ही इतने उत्सवप्रिय हों, वहां के राजा के महल में आये दिन कोई न कोई आयोजन होता रहे तो आश्चर्य ही क्या था! इन्द्र की अमरावती के समान तब इस राजसी नगरी में हर दिन कोई न कोई नया आयोजन लेकर आता था और हर्षोल्लास, राग-रंग व धूमधाम में कोई विराम ही नहीं लगता था।

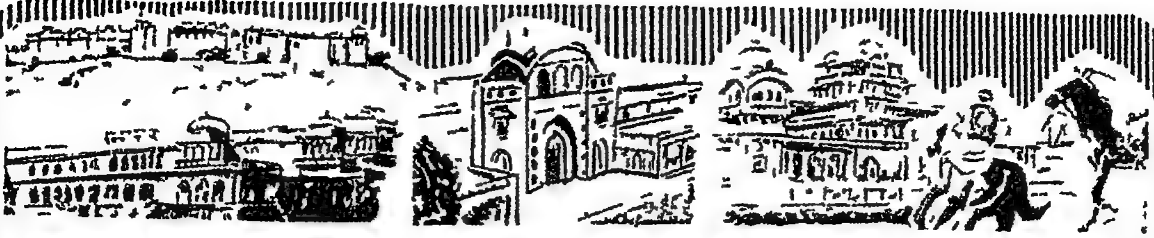
महाराजा मानसिंह की नाबालगी (1922-31 ई.) के दौरान स्टेट कौंसिल के वाइस-प्रेसीडेंट और महाराजा माधोसिंह के समय में 1907 ई. से 1922 ई. तक कौंसिल मेम्बर रहने वाले सर पुरोहित गोपीनाथ ने, जो जयपुर के पहले-पहले एम.ए. भी थे, उत्सव-त्योहारों का एक कलैण्डर तैयार किया था। संक्षेप में यह विवरण भी यहां प्रासंगिक होगा[1]

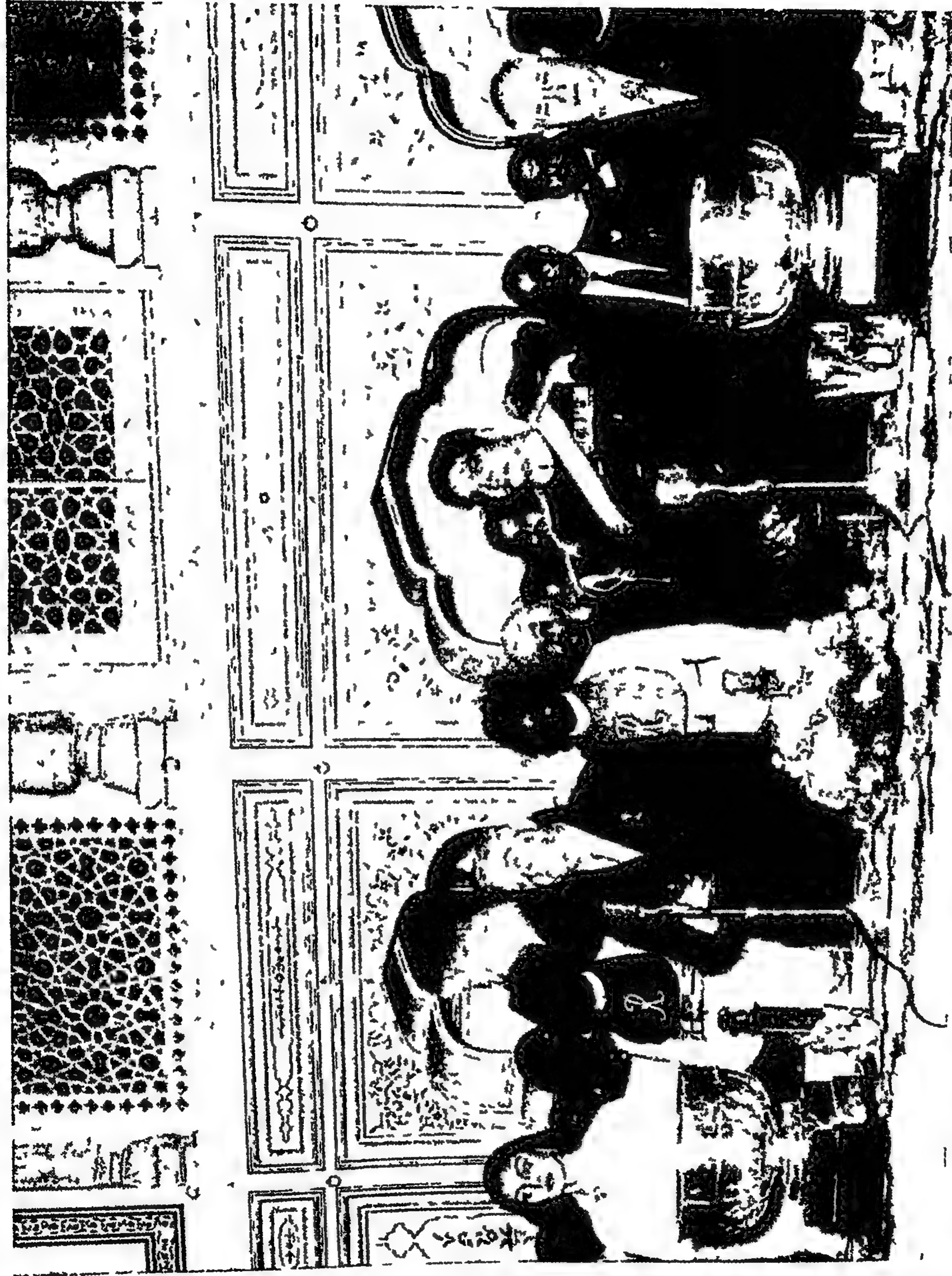
वसन्त पंचमी: माघ शुक्ला पंचमी वसन्त पंचमी कहलाती है, क्योंकि इसी दिन से वसन्त का, जिसे षड्ऋतुओं में ऋतुराज कहा गया है, आरम्भ माना जाता है। इस मादक मास के उपलक्ष में राणा, ढोली आदि वन्दीजन हरी दूब लाकर महाराजा को भेंट करते थे। ज्ञान-विज्ञान की देवी सरस्वती और प्रेम के देवता कामदेव का भी इस दिन पूजन होता था। पहले (शायद महाराजा रामसिंह के समय में) दरबार भी होता था जिसमें सभी दरबारी वसन्ती या गुलाबी साफे और पगड़िया बांध कर आते थे।

भानु सप्तमी: वसन्त पंचमी के दो दिन बाद आने वाली भानु सप्तमी या सूर्य सप्तमी जयपुर के राजाओं के लिये विशेष महत्व रखता था, क्योंकि कछवाहा राजपूत अपने को सूर्यवंशी मानते आये हैं। इस दिन गलता की पहाड़ी पर स्थित सूर्य मंदिर से सूर्य की प्रतिमा को रामगंज बाजार तक एक पालकी में लाया जाता था और महाराजा अपने सरदार-सामन्तों व हाकिमों के साथ पूरे शाही-मरातिब लवाजमे के जलूस में सिरह ड्योढ़ी से निकलकर वहां तक जाते थे और आमेर की चौपड़ तक सूर्य के रथ के पीछे-पीछे चलते थे। इस चौपड़ से सूर्य का रथ रामगंज तक वापस जाता था और महाराजा जब अपने महल में लौट आते तो सूर्य-प्रतिमा पुनः पालकी में अपने मन्दिर चली जाती थी।

जयपुर की सूर्य सप्तमी का मेला सारे राजस्थान में प्रसिद्ध था। सूर्य भगवान के दर्शन और महाराजा की सवारी देखने के लिये नगर के मुख्य राजमार्ग पर रंग-बिरंगे परिधानों में स्त्री-पुरुषों और बालकों की भीड़

1 दि जयपुर एलबम, अध्याय 15, जयपुर, 1935





नगर- प्रासाद में सोवियत नेताओं के सम्मान में महाराजा मानसिंह द्वारा दिया गया राजकीय भोज।(दायें से बायें) निकिता ख्रुश्चेव महाराजा मानसिंह, मार्शल बुलगानिन और महारानी गायत्री देवी।



उमड पडती थी और इस चित्रोपम नगर मे यह एक चित्रोपम दृश्य ही होता था।

महाशिवरात्रि फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी महाशिवरात्रि का पर्व होता है। इस दिन सभी शिव मन्दिरो मे विशेष पूजा और झाँकियो का आयोजन होता है। महाराजा रामसिंह के समय मे राजराजेश्वर का मन्दिर शिवरात्रि पर विशेष आयोजन का केन्द्र होता था। यह महाराजा शिवोपासक था।

होली फाल्गुन की पूर्णिमा होलिका- दहन का दिन है। जयपुर की जिन्दगी जब राज- दरबार के इद-गिर्द ही चलती थी तो नगर मे हर चौराहे पर जलाई जाने वाली नागरिको की होलिया तभी जलाई जाती थी जब राज- प्रासाद मे होली मगल हो जाती थी। विभिन्न मोहल्लो के नागरिक 'गज की होली' मे अपना पूला जलाकर भागते थे और पहले किसकी होली मगल हो इसकी होड लग जाती थी।

महाराजा की फाग की सवारी जयपुरवासियों के लिये बडी आल्हादकारी होती थी। महाराजा हाथी पर सवार होकर सारे शहर मे होली खेलते हुए भरे- बाजार निकलते थे। सडको, फुटपाथो, दुकानो और मकानो की छतो, झरोखो तथा इक्खालियो पर बैठे नर- नारियों पर महाराजा गुलाल- गोटे फेंकते। टेनिस की गेंद के आकार के ये चपडी के गोटे जहा लगते वही फूट पडते और लाल, हरी, नीली गुलाल से सराबोर कर देते। विशेष उल्लेखनीय राज- प्रासाद के "पिचकारे" (पिचकारी नहीं) थे और अपने पीछे चलने वाले रग के पानी से भरे टैंकर से कम्प्रेसर द्वारा पानी ले लेकर महाराजा जब अपना पिचकारा चलाते तो उसकी मार जयपुर के चौडे बाजारो के पार नागरिको को तर कर देती। ये पीतल के पिचकारे अपने आप मे एक कलाकृति होते थे। कुछ नमूने नगर-प्रासाद के सग्रहालय मे अब भी देखे जा सकते है।

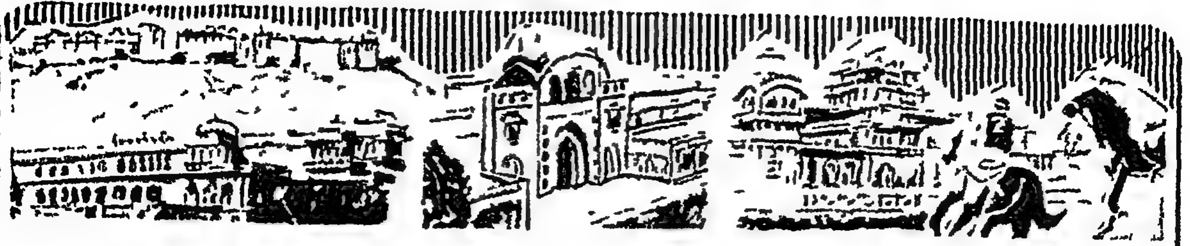
जनानी ड्योढी मे महिलाये आपस मे रग खेलती और महारानिया भी इसमे अपनी परम्परागत वेशभूषा और आभूषणों से सज- धज कर भाग लेती। महाराजा भी बाहर होली खेल लेने के बाद जनानी ड्योढी मे आते तो रग, अबीर और गुलाल से एक- दूसरे को सराबोर करने की होड लग जाती।

महाराजा माधोसिंह के जमाने मे 1913 ई की होली की एक टिप्पणी पुरोहित गोपीनाथ ने अपनी डायरी मे भी लिखी है। उस दिन होली थी और पुरोहित गोपीनाथ सवेरे ही महाराजा से मिलने गये थे। मुलाकात नही हो सकी, क्योंकि जनानी ड्योढी मे सवेरे- सवेरे ही शानदार जल्सा हो रहा था और महाराजा भी उसी मे थे। "इस जल्से मे ना नई पडदायतें बनाई गई और अनेक को सोना तथा गगा- जमनी (सोना- चादी दोनो) जेवर बख्शे गये। दो एक नादरो (खोजो) तथा अन्य नौकरो की तनख्वाह मे इजाफा किया गया और लालजी साहब गोपालसिंहजी व लालजी साहब गगासिंहजी को पचास- पचास हजार रुपये, भीतर के दो छोटे लाल जी व आठ बाईजी लालो को एक- एक हजार रुपये इनायत हुए।"

इस डायरी मे 4 दिसम्बर, 1914 को भी एक ऐसे ही जनाने जल्से का यह हाल लिखा है "पिछली रात श्रीजी ने सुख निवास मे बडा भारी जनाना जल्सा किया। उसमे छोटा पडदायतजी रूपरायजी को जो पाच हजार रुपये सालाना के गाव बख्शे गये, उनका पट्टा निज कर- कमलो से उनको प्रदान किया। चेला रूपनारायणजी को उनके पिता के मुआफिक चार रुपये रोजाना के गाव बख्शे, बजाय चार रुपये रोजाना खानगी के जो वह रोकड पा रहे थे। वल्लभजी चेला की तनख्वाह एक रुपये से दो रुपये रोजाना हुई। गोपीनाथजी नादर के दो रुपये से चार रुपये रोजाना किये गए। दूसरे कई नादरो की तनख्वाह मे एक- एक रुपये का इजाफा हुआ। सेठ रामनाथजी को सालाना के गाव अता हुए और नायब रामनाथजी की तनख्वाह 30 रुपये से 50 रुपये माहवार की गई।"[2]

दावात- पूजन होली के अगले दिन धुलेडी और उसके अगले दिन दावात- पूजन होती। महाराजा कामिल हाल मे जाकर शुभ मुहूर्त मे अपने कौंसिल मेम्बरो के साथ कलम और दावात की पूजा करते।

2 डायरी (ह लि), सर पु गोपीनाथ, जयपुर



महाराजा न होते तो वरिष्ठ राजगुरु उनका स्थान लेता। इस पूजा के बाद सबको प्रसाद के लड्डू बांटे जाते। इस दिन रियासत भर में दावातें धोई जाती, उनमें नई स्याही डाली जाती और नेजे की नई कलमें रखी जाती। मसि- जीवी या नौकरी- पेशा लोगों के लिये जयपुर में यह दिन विशेष महत्व का होता था।

शीतला अष्टमी जयपुर जिले भर का सबसे बडा मेला आज भी इस दिन चाक्सू के निकट सील की डूगरी पर लगता है। अपने दो अनोरस पुत्रों के शीतला निकलने पर महाराजा माधोसिंह स्वयं वहां गया था। इस दिन सभी घरों में ठंडा बासी भोजन किया जाता है। जयपुर के संस्कारशील राजप्रासाद में भी इस दिन ठंडा ही खाया जाता था।

गणगौर कुमारियों और सुहागिनों का त्योहार गणगौर चैत्र शुक्ला तृतीया को आता है। जनानी ड्योढ़ी में महारानियों द्वारा गणगौर या गौरी की काष्ठ- प्रतिमा की पूजन की जाती और फिर इसकी शहर में सवारी निकलती। जनानी ड्योढ़ी के लोग लाल पोशाक में गणगौर के साथ चलते और उनके आगे हाथी, घोडे, ऊंट, रथ, पालकी आदि पूरा लवाजमा। महाराजा चौगान की मोती बुर्ज में बैठकर अपने सामंतों के साथ इस जुलूस को देखते। गणगौर की सवारी पाल के बाग तक जाकर जनानी ड्योढ़ी लौट जाती और महाराजा बादल महल में जाते। सभी दरबारियों की पोशाकें लाल होती, स्वयं महाराजा की भी। यहां नाच- गाना चलता रहता और सभी दरबारी महाराजा को नजर पेश करते। बादल महल से महाराजा तख्ते- रवां में बैठकर चन्द्रमहल लौटते तो सारे रास्ते जयनिवास बाग के सकडों फव्वारे चलते रहते।

गणगौर का मेला दो दिन का होता था जो अब भी होता है।

रामनवमी चन्द्रमहल के पास ही राजमहल का मुख्य देवालय- सीतारामद्वारा— है। रामनवमी के दिन— चैत्र शुक्ला नवमी— यहां हवन- पूजन होता और महाराजा जाकर दर्शन करते।

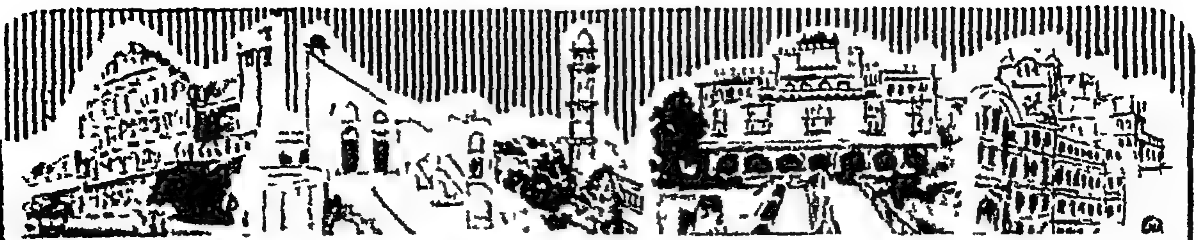
रामनवमी का मेला भरता रामगंज में। राजमहल से गलता के सीतारामजी के मन्दिर में विशेष भेंट भेजी जाती। गलता और बालानन्दजी के मन्दिर जो क्रमशः नगर के पूर्वी और पश्चिमी छोरों पर है, जयपुर के राजाओं की गुरु- गद्दियां हैं।

गंगा सप्तमी वैशाख शुक्ला सप्तमी गंगा सप्तमी अथवा गंगा के उद्भव का दिन मानी जाती है। महाराजा माधोसिंह गंगा का उपासक था और उसके समय में गंगाजी को बडा दरबार कहा जाता था। उसकी गंगा- भक्ति का इस पुस्तक में प्रसगानुकूल उल्लेख किया जा चुका है।

आषाढी दशहरा आषाढ़ का सतरहवां दिन आषाढी दशहरे का होता है। इस दिन महाराजा अपने सब सरदारों और पूरे लवाजमे के साथ सिरह ड्योढी बाजार में चांदी की टकसाल के सामने लगाये जाने वाले एक शामियाने में जाते थे। उनके आगे सीतारामजी का रथ चलता था। वहां रथ में विराजमान सीतारामजी का पूजन किया जाता और फिर महाराजा की सवारी लौट आती।

गुरु पूर्णिमा आषाढ का अन्तिम दिन गुरु पूर्णिमा होता है। इस दिन राजगुरु लोग जिनमें गलता व बालानन्द के महन्त, बडे और छोटे ओझाजी मुख्य होते थे, महल में जाते और महाराजा उनकी पूजा कर आशीर्वाद प्राप्त करते। एक बार की बात है, बडे ओझाजी पण्डित विद्यानाथ ओझा निरे बालक थे। महाराजा माधोसिंह का जमाना था। बालक ओझाजी को पगडी- अंगरखी और कमरबंद में देखकर दरबार के लोगों को बडा अटपटा लगा और किसी ने कह भी दिया कि ऐसे छोटे- से गुरु की क्या पूजा! छोटे-से ओझाजी का मन छोटा होता, उससे पहले ही उस धर्मनिष्ठ और आस्थावान राजा ने कहा कि खबरदार, ऐसी बात नहीं कहनी। गुरु तो गुरु ही है। शालिग्राम तो सब भगवत् विग्रहों में सबसे छोटा है, किन्तु क्या इससे वह कम पूज्य हो जाता है?

नाग पंचमी सावन की सजीले महीने का पहला त्योहार जयपुर में नाग पंचमी है। इस दिन चांदपोल के



वाहर पुलिस लाइन्स के पीछे हरदेवजी का मेला भरता ह। हरदेवजी कोई सिद्ध (हरिजन) सन्त हो गये ह जिनका सर्पो पर भी नियत्रण वताया जाता है। जयपुर की जनानी ड्योढी से माजी या महारानी की ओर से इस मेले मे हमेशा "ढोलणी" जाती थी— इसमे एक छोटा पलग, विस्तर, हरदेवजी की पोशाक, मिष्ठान्न व नक्द भेट भी शामिल होती थी।

तीज इमारतो मे जेसे हवामहल जयपुर का प्रतीक है, वसे ही पव- त्योहारो मे सावन की तीज का मेला जयपुर के उत्सवो मे सर्वोपरि महत्त्व रखता है। तीज के दस्तूर सव जनानी ड्योढी मे आज भी होते ह, अव भी मेला भरता ह, सवारी निकलती ह आर राज्य सरकार भी इसमे सहयोग देकर राजकीय स्तर पर यह त्योहार मनाती ह, किन्तु यहा 1940-41 इ की उस तीज का वर्णन उद्धृत हे जिसमे जयपुर का राज भोगने वाली महारानी गायत्री देवी (अव राजमाता) ने व्याह कर यहा आने के वाद पहली वार भाग लिया था

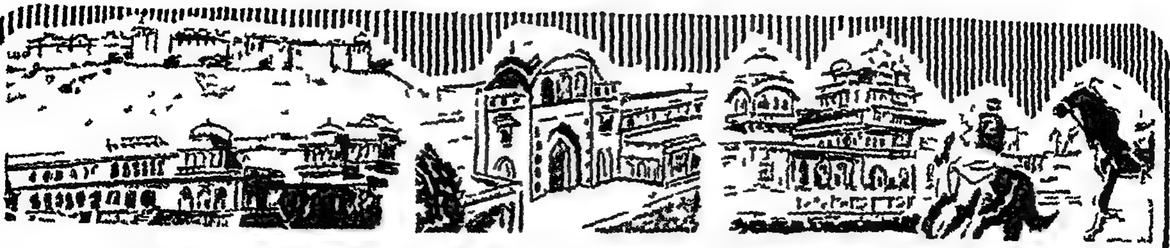
"जयपुर मे जिस त्योहार मे मने पहले- पहल भाग लिया, वह तीज था इस त्योहार को जनानी ड्योढी मे विशेष महत्व दिया जाता था। पाराणिक कथाओ के अनुसार पार्वती ने भगवान शिव जेसा पति पाने के लिये वर्षो तपस्या की थी। अत इस दिन कुमारिया पार्वती का पूजन कर शिव जसा पति पाने की प्रार्थना करती है। सुहागिने अपने पति के दीर्घ जीवन की कामना करती ह ताकि उन्हे विधवा के सफेद वस्त्र न पहनने पडे आर वे 'सदा लाल परिधान पहिनती रहे।' हम तीनो महारानियो को ही नगर-प्रासाद मे पूजा और प्रार्थना की रस्मे पूरी करनी थी। मेरे आने के वाद पहली तीज को जय[3] की अन्य दोनो पत्निया राज्य से वाहर थी आर मुझे कहा गया कि मुझे हर रस्म तीन वार करनी होगी— एक वार सवसे वडी महारानी के लिये, दूसरी वार दूसरी महारानी के लिये अन्त मे मेरे अपने लिये

"नगर- प्रासाद मे इस पूजा- प्रार्थना के वाद देवी की मूर्ति को शहर के वाजारो मे होकर जलूस मे ले जाया गया। इन नजारे को देखने के लिये ड्योढी के नादर या खोजे अधेरी सुरगो ओर गलियारों की भल- भुलया आर ऊचे- नीचे खुर्रो से होकर आरतो को एक दीघा मे ले गये, जहा महल के उत्तरी- पश्चिमी किनारे पर मुख्य वाजार को देखा जा सकता था। हम नादरो के पीछे- पीछे घूमती ओर मुडती हुइ कोइ आधा मील चली होगी। मने समय ओर दिशा का सारा एहसास खो दिया आर हम जेसे- जसे जल्दी- जल्दी उनमे गये, केवल रेशम की सरसराहट आर पायजेवो की झनझनाहट की ही प्रतीति होती रही। जव हम अन्त मे अपने स्थान पर पहुच गइ तो मने देखा कि जय अपने सरदार- सामतो से घिरे एक अन्य छत्री मे वठे ह। हमारे अपने मण्डप के पाषाण- पर्दे से, जो महल की प्राचीर पर ही वना था, हम अपने नीचे उस विशाल प्रागण को देख सकती थी जहा पुराने राजपूत नरेशो का मन-पसन्द खेल— हाथियो की लडाइ— होता था। यह सारा प्रागण मेले के कारण आज नर- नारियो से भरा था— शहर के लोग भी थे, लेकिन अधिकतर जयपुर के आसपास के देहातो के किसान थे।

"वडा ही भरापूरा और उल्लसित करने वाला नजारा था। हम सभी ने सराहना के साथ प्रागण के एक ओर जयपुर कैवलरी की कूद- फाद ओर टेंट- पेगिग का प्रदर्शन करते देखा, जवकि दूसरी ओर सैनिक साधुओ (नागाओ) की जमात एक अवर्णनीय तलवार- नृत्य कर रही थी। हाथी सव कतारवन्द खडे थे और उनके हादो से साटन ओर मखमल की झूले लटक रही थी। सैनिक भी मुस्तैदी के साथ खडे थे, उनकी यूनीफार्म ओर रूपहरी तमगे धूप मे चमक रहे थे और सव ओर जयपुर के निवासियो का हिलोरे मारता जन-समुद्र था— सव अपनी प्रखर पगडियो और वहुरगी पोशाको मे थे।

"मैने कोई घटे भर तक यह सब मत्रमुग्ध होकर देखा। फिर चलने का सकेत हुआ तो मै अनिच्छापूर्वक वहा से उठी ओर सवके साथ हमे फिर उन खिडकी- विहीन सुरगो मे होकर जनानी ड्योढी मे पहुचा दिया

3 महाराजा मानसिंह स आशय ह



गया। इस बीच जय अपने सरदारो के साथ नगर- प्रासाद के एक अन्य मण्डप मे गये जहा गायको और नर्तको ने उनका मनोरजन किया "[4]

रक्षा बन्धन व बडी तीज सावन का अन्तिम दिन रक्षावन्धन होता है। इसके बाद भाद्रपद की तृतीया काजली तीज या बडी तीज कहलाती है। इस दिन कुमारिया और सुहागिने उपवास रखती है। वैसे यह मारवाड मे विशेष रूप से मनाया जाता है। जनानी ड्योढी मे जोधपुर- बीकानेर- मेवाड सभी ओर की स्त्रिया रहती थी और यह त्योहार यहा भी धूमधाम से मनाया जाता था। इस दिन अमल गालने और उसे बाटने का रिवाज भी था।

जन्माष्टमी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी भाद्रपद का सबसे बडा धार्मिक उत्सव है। राजमहल मे सवाई जयसिह के समय से ही सभी धार्मिक पर्व बडे विधि- विधान से मनाये जाते थे। सवाई प्रतापसिह "राधा- कृष्ण उपासी" था ओर महाराजा माधोसिह राधा- गोपाल का इष्ट रखता था। फिर गोविन्ददेवजी का मन्दिर तथा ब्रजनिधि और आनन्दकृष्ण के मन्दिर भी इस पर्व पर सदैव विशेष आकर्षण का केन्द्र बन जाते थे। गोविन्ददेव के तो जन्माष्टमी और नन्दोत्सव आज भी ब्रज प्रदेश- का सा वातावरण बना देते है।

गोगानवमी जन्माष्टमी के अगले-दिन गोगानवमी उस लोकदेवता को मनाने का दिन होता था जिसका प्रधान मंदिर गोगामेडी (बीकानेर) मे है। गोगाजी सर्पो के देवता माने जाते है।

महाराजा की सालगिरह जनानी व मर्दानी, दोनो ही ड्योढियो मे महाराजा की सालगिरह बडी धूम- धाम का अवसर होता था। इस दिन महाराजा सवेरे ही अपने ठाकुरद्वारा— सीतारामद्वारा— मे जाते, यज्ञ करते और अपने गुरुओ का पूजन करते। फिर महाराजा एक जुलूस मे गोविन्ददेवजी, गोपालजी आदि के मंदिरो मे भेट चढाने जाते। ईश्वरीसिह की छत्री पर भी भेट चढाई जाती। चन्द्रमहल लौटने पर सुखनिवास मे वर्ष- पूजन किया जाता। शाम को दीवाने- आम मे दरबार होता और सभी सरदार— जागीरदार व हाकिम— अहलकार महाराजा को नजरे करते।

रात को महाराजा जनानी ड्योढी जाते और वहा जनानी मजलिस मे भाग लेते। वहा से लौटकर महाराजा अपने सामत- सरदारो को एक बडा भोज देते।

जयपुर ब्याह कर आने के बाद 1940 मे महारानी गायत्री देवी ने तीज के बाद महाराजा की सालगिरह का जश्न ही देखा था। अपनी आत्मकथा मे उन्होने लिखा है कि जय की पहली दोनो पत्निया भी इस दिन अवश्य- अवश्य जयपुर आ जाती थी और स्वय महाराजा भी। जनानी ड्योढी मे माजी साहब महिलाओ के दरबार मे मसनद पर बैठती और यही एक ऐसा अवसर होता था जबकि "हम लोग, जय की पत्निया, उनकी उपस्थिति मे भी अपने मुह उघाड सकती थी।" दीवाने-आम मे महाराजा अपना समारोहिक दरबार करते। दरबार- हाल के एक छोर पर नाच- गाना चलता रहता और सभी दरबारी अपनी- अपनी नजरे महाराजा को पेश करते। "सेना के अफसरो ने अपनी म्यानो मे से तलवारे आधी बाहर निकाली और जय ने उनकी वफादारी कबूल करने के लिये उनकी मूठ छू ली। सब कुछ ऐसे करीने और सलीके से किया जा रहा था कि मैने पहले ऐसा कभी नही देखा था। बाद मे महाराजा भीतर जनाने दरबार मे आये और माजी साहब के बायी ओर एक सिहासन पर बैठे। महाराजा के सामने किसी भी औरत से पर्दे की अपेक्षा नही की जाती, हालाकि वे बडी- बूढियो के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिये सामान्यत अपने मुह ढक ही लेती। यहा भी गाने- बजाने से मनोरजन चलता रहा और जनानी ड्योढी की औरतो ने बारी- बारी से नजरे की।"[5]

महाराजा माधोसिह की सालगिरह पर एक सक्षिप्त टिप्पण 1920 ई का मिला है जो सर पुरोहित

---

4 ए प्रिन्सस रिमम्बस गायत्री देवी व शान्ता रामाराऊ, पृष्ठ 172-174

5 ए प्रिन्सेस रिमम्बस, पृष्ठ 174-175



गोपीनाथ ने अपनी डायरी मे लिखा था। इसके अनुसार महाराजा 18 मई, 1920 से बराबर बीमार चल रहे थे, इसलिये अनेक रस्म- रिवाज गत वर्ष की भाँति अनिच्छापूर्वक छोड दिये गये। सीतारामद्वारा मे आचार्य लक्ष्मीनारायण ने कौसिल मेम्बरो की उपस्थिति में 'वर्द्धापन- पूजन' कराया और गुरु- पूजन भी। प्रीतम निवास मे खवास बालावख्श ने महाराजा की ओर से बालानन्दजी के महन्त को भेट की। शाम को 159 कैदी छोडे गये और रात को प्रीतम निवास मे सरदारो की गोठ का आयोजन किया गया। फतह टीबा पर हमेशा की तरह सलामी की तोपे छोडी गईं।

जलझूलनी भाद्रपद शुक्ला एकादशी को जयपुर नगर के सभी महत्वपूर्ण मन्दिरो की मूर्तियो को उसी प्रकार पालकियो और विमानों मे तालकटोरा ले जाया जाता था, जिस प्रकार तीज और गणगौर की सवारिया वहा जाती है। नगर- प्रासाद के इस जलाशय के तट पर नगर के देवताओ का यह सम्मेलन भी पुराने जयपुर का एक दर्शनीय दृश्य था।

दशहरा आश्विन शुक्ला दशमी या विजयादशमी राजपूतो का विशेष पर्व है। इस दिन महाराजा शस्त्र और सिहासन- पूजा के बाद सर्वतोभद्र या सरबता मे एक भव्य दरबार करते। दरबार के बाद विभिन्न सवारियो या वाहनो की पूजा होती। सूर्यास्त के समय महाराजा अपने सरदारो और अन्य राजवर्गी लोगो के साथ पूरे लवाजमे की सवारी लगाकर सिरह ड्योढी से निकलते और आमेर की सडक पर विजय बाग जाते। वहा शमी वृक्ष का पूजन किया जाता और रात नौ बजे के लगभग महाराजा की सवारी चन्द्रमहल मे लौट आती। सारे शहर में महाराजा की दशहरे की सवारी को देखने का एक अजीब चाव रहता।

1940 के दशहरे की एक झलक महारानी गायत्री देवी ने ऐसी देखी थी "जय ने शस्त्रास्त्र की पूजा कराई और बाद मे छह सफेद घोडो द्वारा खीची जाने वाली एक सुनहरी बग्घी मे तीन मील दूर एक विशेष महल मे गये जिसका उपयोग केवल दशहरे के दरबार के लिये ही होता है। इस जुलूस में पैदल दस्ते, घुडसवार सैनिक, बैलगाडिया और ऊट, सेना के बैण्ड और खासा बग्घी के आगे काले घोडो पर जय के अपने निजी बाडीगार्ड थे। जय के पीछे जर्क- वर्क पोशाको मे सरदार- सामत थे और उनके घोडे खूब सजे- धजे थे (इनमे कुछ लोग अच्छे सवार नही थे और जब यह जुलूस हमारी खिडकियो के नीचे से गुजरा तो हम औरतों में बडी हसी- मजाक और ठिठोलिया होने लगी)। सारे रास्ते जय का अभिनन्दन होता रहा। हर खिडकी, हर झरोखे और ऊचे स्थान पर लोग जय की झलक देखने के लिये बैठे थे और सवारी समीप जाने पर 'महाराजा मानसिह की जय' का उद्घोष आप से आप हो जाता।"[6]

शलक दशहरे का अगला दिन शलक के मेले का दिन होता। इस दिन शाम को महाराजा की सवारी सिरह ड्योढी से निकलकर जौहरी बाजार होती हुई फतह टीबा तक जाती। इस सवारी मे भी पूरा लवाजमा साथ होता। महाराजा फतह टीबा जाकर हाथी से उतर जाते और दो हाथियो द्वारा खीचे जाने वाले अनूठे रथ— इन्द्र विमान— मे बैठते। फिर तोपखाना, घुडसवार दस्ते, शुतर सवार और पैदल सैनिक पाच- पाच राउण्ड फायर करते। महाराजा की सवारी रात को नौ बजे चन्द्रमहल को लौट आती।

शरद् पूर्णिमा दीवाली के दो सप्ताह पूर्व शरद् पूर्णिमा को सरबता की छत पर शरद् का दरबार महारानी गायत्री देवी के शब्दो में सबसे खुशनुमा हुआ करता था। इस दिन अधिक तो कुछ नही होता, किन्तु महाराजा और उनके दरबारी सब दूधिया सफेद पोशाके पहनते और चादनी रात मे अपनी तलवारो और जवाहरात की चकाचौंध मे खुले छत पर दरबार लगाते। गायत्री देवी को यह दृश्य "असाधारण, प्राय अलौकिक" लगा था "जो आज तक मेरी स्मृति मे सदा के लिये अंकित है।"[7] इस दरबार मे पगडिया मोतिया

6 वही, पृष्ठ 174-175
7 वही, पष्ठ 175



जयपुर नरशा क लवाजम का अम्वा वाडी का हाथी। दनर हाथी पर माही- मरातिब क चिन्ह हैं



रग की वाधी जाती थी और मावे व चीनी मे जमाई हुई भग की माजूम से सरवराह करने का रिवाज था।

दीपावली. दीपावली तो त्योहारो का त्योहार होता था जव सारे शहर के साथ राज-दरवार ओर रनिवास भी असख्य दीपो से जगमगा उठते थे। जयपुर मे नाहरगढ, गणेशगढ, गलता का सूर्य मन्दिर आदि भी दीपावली की रात जगमगाते तो ऐसा लगता जैसे परियो के महल अधर मे झूल रहे हे। नगर-प्रासाद के चोक (प्रीतम निवास)मे दीपावली को प्रात से साय तक तवायफो के नाच होते। रात को जयनिवास वाग मे शोरगर आतिशवाजी के करतव दिखाते। महाराजा काली अचकन और वैसे ही जरी के साफे मे अपने सरदारो के साथ औपचारिकता निभाने के लिये वहा जाते। जनानी ड्योढी मे भी इस दिन सभी महिलाये गाढ़ी नीली पोशाके पहनती—ऋतु— परिवर्तन की प्रतीक।

सूर्यास्त के समय जव मरवते के चारो ओर की गुलावी दीवारे एक गुलावी आभा से दीप्त हो जाती तो दीपावली का दरवार होता और प्रमुख सरदार व हाकिम लोग महाराजा को नजरे पेश करते। रात को चन्द्र महल के विशेष कक्ष मे महाराजा धन-सम्पदा और ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की विधि-विधान से पूजा करते। दीपावली की रात जुआ खेलने की परम्परा भी रही है जिसे परम्परा के नाते ही महाराजा मानसिह भी निभाते थे।

अन्नकूट दीपावली के अगले दिन अन्नकूट महोत्सव होता तो नगर-प्रसाद के मदिर भी विशिष्ट व्यजनो से भर जाते और शाम को गोवर्धन-पूजा होती नगर-प्रासाद की डेयरी ग्वालेरा मे।

महाराजा माधोसिह इस दिन मार्गपाली की सवारी निकालता था। पूरे लवाजमे के साथ यह सवारी सिरह ड्योढी से निकलकर माणक चोक तक जाती और फिर त्रिपोलिया होकर महल मे लोट आती। सिरह ड्योढी के दरवाजे पर इसी दिन नई "वादरवाल" (वन्दनवार) लगाई जाती। इस दरवाजे को इसीलिये 'वादरवाल का दरवाजा' भी कहते है।

मकर सक्रान्ति प्रति वर्ष 14 जनवरी को मकर सक्रान्ति जयपुर का एक विशिष्ट पर्व है। इस दिन ब्राह्मणो व निर्धनोको चावल, मूग, तिल, लड्डू, फीणी, तिलसकरी आदि का दान दिया जाता है। जनानी ड्योढी के रावलो मे यह दान दिया जाता। इस दिन पतगवाजी जयपुर की विशिष्टता हे ओर महाराजा रामसिह व महाराजा माधोसिह के इस शोक की चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है।

इन त्योहारो के अतिरिक्त और छोटे- मोटे त्योहार ओर उत्सव होते ही रहते। गणेश चतुर्थी के वाद शहर भर के जोशी (चटशालाए चलाने वाले अध्यापक) अपनी-अपनी शालाओ के वच्चो को लेकर जनानी ड्योढी जाते। ये वच्चे तव के जयपुर मे भी हजारो की सख्या मे होते। जनानी ड्योढ़ी के वाहरी चौक मे ढोलक की ताल पर ये वालक डके वजा-वजाकर नाचते। फिर हर वच्चे को एक वडा हरा दोना मिलता जिसमे चीनी और गुड की गेहू की धानी तथा चार लड्डू रहते। जोशीजी को एक टोकरा इन्ही चीजो से भरा मिलता और साथ मे पाच रुपये दक्षिणा स्वरूप भी। यह जनानी ड्योढी की ओर से उस जमाने मे अध्यापको या गुरुओ का सम्मान ही था।

महाराजा रामसिह के समय मे शिवरात्रि राज-रनिवास का प्रधान पर्व था तो माधोसिह के समय गगादशमी, जन्माष्टमी ओर राधा अष्टमी विशेष उत्साह के साथ मनाये जाते थे। महाराजा मानसिह शिला देवी के अनन्य उपासक थे, इस कारण नवरात्र को विशेष महत्त्व देते थे ओर आमेर मे सप्तमी-अष्टमी को होने वाले वलिदान के अवसर पर वे स्वय वहा उपस्थित होते थे।

जयपुर के नगर-प्रासाद मे 1949 के मार्च तक ये सभी पर्व-त्योहार प्राचीन परम्परा के अनुसार मनाये जाते रहे—ठीक वेसे ही जेसे नगर-प्रासाद और जयपुर के सस्थापक सवाई जयसिह के समय मे मनाये जाते थे। हर त्योहार ओर पर्व की अपनी पोशाके होती थी, अपना ही रग ओर एक ऐसा सलीका व करीना जो गुलावी

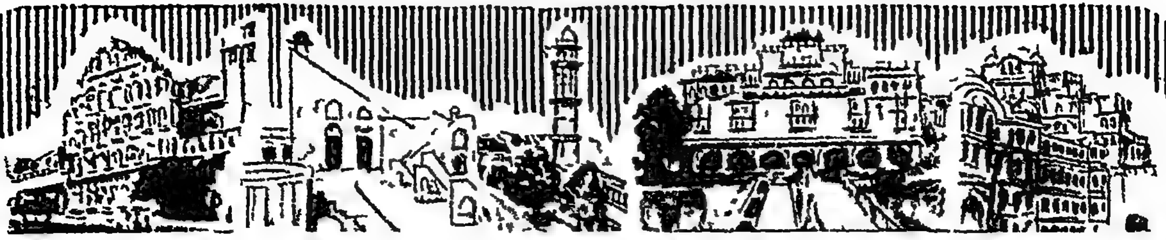


शहर के राजमहल का अपना ही था।

रस्म-अदायगी या लकीर पीटने के लिये अव भी सरवते मे 'दरवार' होते है, दशहरे पर कर्नल भवानी सिह आमेर रोड के विजय वाग मे भी जाते है और शमी वृक्ष को पूजते हैं, दीवाली का पूजन भी होता है ओर होली भी खेली जाती है, किन्तु वह भव्यता, शान-शोक्त और गरिमा अव कहा जो इस राज-दरवार ओर रनिवास के हर आयोजन मे पहले रहा करती थी ।

□□□

सिरह ड्योढ़ी वाजार म महाराजा री सवारी र जलस म आग- आग हाथी



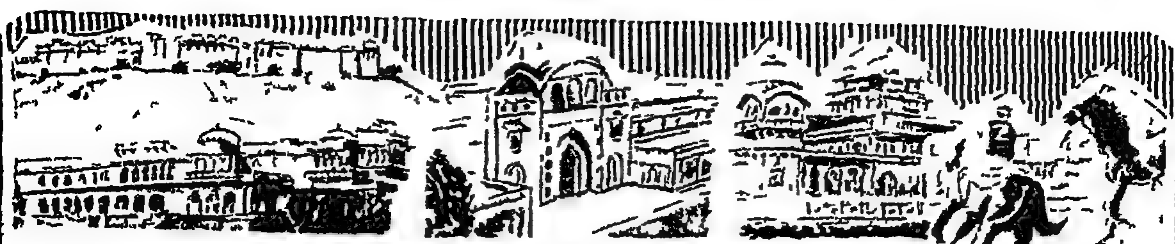
29. शेष-विशेष

भारत के स्वतन्त्र होने के अनन्तर रियासतो-रजवाडो का विलय भी होना ही था। एक-एक कर रियासतो के भारतीय सघ मे आत्मसात होने की यह प्रक्रिया उन लोगो के लिये सचमुच दर्दभरी रही होगी जो राजमहलो के स्वप्नलोक मे रहते थे। जयपुर और इसके अतिम शासक महाराजा मानसिह ने इस प्रक्रिया मे न केवल पूरा-पूरा सहयोग दिया, वरन् एक प्रकार से पहल भी की। आजादी के पहले जयपुर को सर मिर्जा इस्माइल जैसा दूरदर्शी प्रधानमत्री मिला था और आजादी आइ तो सर वी टी कृष्णामाचारी यहा का दीवान था। इन दोनो प्रधानमन्त्रियो ने जयपुर मे ऐसे वधानिक सुधारो का सूत्रपात कर दिया था कि राजशाही से लोकशाही का परिवर्तन कम से कम यहा तो वडे सहज और स्वाभाविक रूप मे आ गया और महाराजा मानसिह ने भी इस वदलाव को वैसे ही लिया जैसे पोलो के खेल मे अपने घोडे को वदल लिया हो।

इस युगान्तर के वाद जयपुर के नगर-प्रासाद की जिन्दगी और हैसियत दोनो मे फर्क आना भी स्वाभाविक था और यह अन्तर अठारहवी सदी के इस राजपूत राजप्रासाद को अव एक जीवत राजमहल के स्थान पर एक दर्शनीय और ऐतिहासिक स्मारक वनाकर रख देता है। गोविन्ददेव तो जयपुर के 'वास्तविक' राजा है, इसलिये उनका दरवार तो शायद पहले से भी कही अधिक भीडभाड का होता है, किन्तु अन्य मंदिरो मे दर्शनार्थियो की इतनी सख्या भी नही होती कि व्रजनिधि और आनन्दकृष्ण जसे विशाल मदिरो को सजीव वनाये रखे। इन मदिरो की देखभाल अव राज-दरवार का काम नही, राज्य सरकार के देवस्थान विभाग का दायित्व है और यह दायित्व जिस प्रकार निभ रहा है, वह भगवान ही जानते है !

महाराजा मानसिह के विवेक और दूरदर्शिता का स्थायी स्मारक उनके द्वारा सस्थापित सग्रहालय है जिसे देखने के लिये आज भी ससार भर के पर्यटको की पदचाप नगर-प्रासाद के विभिन्न प्रागणो मे वरावर सुनाई पडती हैं। इस स्वप्निल ससार मे भ्रमण करने वाले सैलानी यहा की भव्यता, सुन्दरता और मौलिकता पर वाह-वाह करते हुए शायद उन दिनो की कल्पना करते ह जव नगर-प्रासाद के हर कक्ष मे राज-दरवार की मर्यादा, शिष्टता और कुरव-कायदो का वोलवाला था। जैसा इस पुस्तक के आरम्भ मे कहा गया है, जयपुर के राज-दरवार की एक अपनी ही शान और आन-वान रही है-- एक ऐसी चकाचौध जो अन्य राजा-रानियो को भी चकित और विस्मित कर देती थी।

किन्तु, राजशाही की समाप्ति और लोकशाही के प्रादुर्भाव के वाद इस राजप्रासाद को अव सजीव नही कहा जा सकता। हा, देश के आजाद हो जाने और जयपुर रियासत के राजस्थान मे विलीन होने तक के अन्तराल मे दो आयोजन ऐसे अवश्य हो गये थे, जिनसे जयपुर का राज-दरवार और रनिवास एक बार फिर



पहले की तरह सजीव हो उठे थे। इनमे पहला आयाजन था जयपुर के 39 वे ओर अन्तिम शासनारूढ महाराजा मानसिह के राज्यकाल की रजत जयती, जो जयपुर रियासत के भारतीय सघ मे सम्मिलित हो जाने के कोई चार माह बाद दिसम्बर, 1947 में मनाई गई थी।

महाराजा मानसिह के शासन के पच्चीस वर्षों मे जयपुर का वडा कायाकल्प हो चुका था ओर महाराजा माधोसिह के जमाने की मध्ययुगीन परम्पराओ को छोडकर यह रियासत ऐसी प्रवुद्ध और प्रगतिशील हो गई थी कि इसे तत्कालीन "राजपूताना की तकदीर को वदलने वाली"[1] कहा जाने लगा था। सवाई जयसिह ने जयपुर को वनाया था तो सवाई मानसिह ने विगत पच्चीस वर्षों मे इसका पुनर्निर्माण कराया था।[2] ऐसे महाराजा की रजतजयती के लिये स्वभावत सारी रियासत मे वडा उत्साह था– इसलिये भी कि आने वाले दिनो मे न जाने रियासत का क्या होगा ओर महाराजा की क्या हैसियत रहेगी !

जयपुर शहर और नगर-प्रासाद तव दुल्हिन की तरह सजाये गये थे। सव ओर ध्वजा-पताकाए, तोरण-द्वार और वन्दनवारे लगी थी। रात को सारी महलायत ओर गढ-किलो व राजकीय इमारतो पर रोशनी हुई थी। जयपुर के नागरिको के विभिन्न वर्गो ने इस अवसर पर अपने महाराजा का अभिनन्दन किया था और ये आयोजन कई सप्ताह तक चलते रहे थे। राजकीय समारोहो के साथ सेना ने भी टेटू का आयोजन किया था। महाराजा को चादी से तोला गया था और यह तुलादान निर्धनो मे वाट दिया गया था। जनानी ड्योढी मे महाराजा की दोनो जीवित्त रानियो– किशोर कुमारी और गायत्री देवी– को भी इसी प्रकार चादी से तोला गया था।

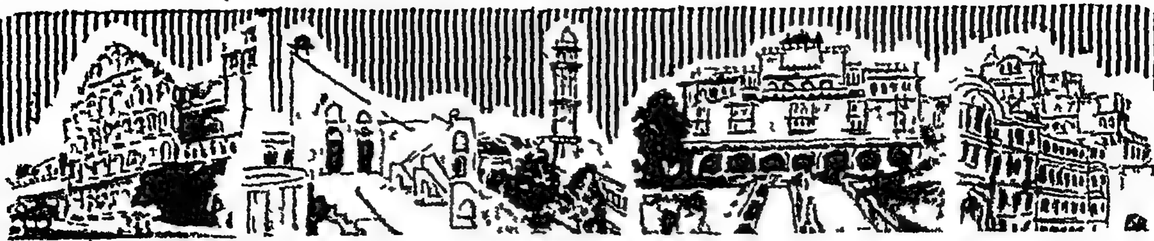
रजत जयती समारोह मे चौदह महाराजा और इनमे से कइयो की महारानिया भी जयपुर आई थीं। रामवाग मेहमानो के लिये खाली कर पूरा राजपरिवार नगर-प्रासाद मे ही जा रहा था। इससे जनानी और मर्दानी ड्योढियो के सभी विशाल कक्ष जिन्दगी की चहल-पहल से भर गये थे।

समारोह का सवसे उल्लेखनीय आयोजन वह राजकीय भोज था जिसमे भारत के अन्तिम वायसराय लार्ड माउटवैटन और लेडी माउटवैटन ने भी भाग लिया था। यह भोज तो रामवाग मे हुआ था, किन्तु रजत जयती दरवार दीवाने-आम में ही हुआ था। इसमे लार्ड माउटवैटन ने महाराजा को जी सी एस आई (ग्राड कमाडर आफ दि स्टार आफ इण्डिया) से अलकृत किया था।

1948 मे महाराजा मानसिह ने अपनी एकमात्र पुत्री "मिकी"– प्रेमकुमारी– का विवाह वारिया (गुजरात) के महाराजकुमार के साथ किया था। जयपुर के राज परिवार मे सो से भी अधिक वर्षों वाद किसी लडकी का विवाह था यह, इसलिये इस अवसर पर आयोजित जुलूस, भोज, मनोरजन व अन्य सभी कार्यक्रम अभूतपूर्व चमक-दमक और शान-शौकत वाले थे। स्वय महारानी गायत्रीदेवी के शब्दो मे "यह सभवत रियासती भारत की चकाचौंध का आखिरी भव्य प्रदर्शन था।"[3]

रजत जयती की तरह इस विवाह मे भी वहुत राजा-महाराजा और अन्य लोग आये। राज-परिवार ने उनके लिये फिर रामवाग खाली किया और नगर–प्रासाद सजीवहोगया। विवाह की धूमधाम का अनुमान इसी वात से किया जा सकता है कि सारे कार्यक्रम और व्यवस्था सम्वन्धी निर्देश-पुस्तिका ही कोई दो इच मोटी वनी थी। कोई दो सप्ताह तक पार्टियाँ, भोज और मनोरजन चले। गायत्रीदेवी इस धूमधाम को याद करती हुई लिखती है "यही एक अवसर था जव मैने नगर-प्रासाद को पूर्णत सजीव देखा, लोगो से भरा और पार्टियो से महकता, जनानी ड्योढी के भी सभी रावले उपयोग मे आ रहे थे, सब कही फूलो और महिलाओं की

1 दि इण्डियन रिव्यू, मद्रास, अप्रेल, 1945
2 आर वी मूर्त्ति, 'कामर्स', बम्बई, 1945
3 ए प्रिन्सेस रिमम्बर्स, पृष्ठ 212



राजपूती वेशभूषा के प्रखर रग थे, हसी-खुशी की आवाजे थी, सगीत और महिलाओ की पायजेबो की छमछम सुनाई पडती थी।

"बाद मे विशाल भोज हुआ आतिशबाजी के प्रदर्शन ने एक जादुई सृष्टि कर दी, निर्धनो और ब्राह्मणो के भी भोज हुए, कुछ कैदी भी छोडे गये अखबारो मे विवाह समारोह की खबरे मुख पृष्ठो पर छपी। 'दि गाइनीस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स' मे इसका उल्लेख 'ससार की सबसे खर्चीली शादी' कहकर किया गया है।"[4]

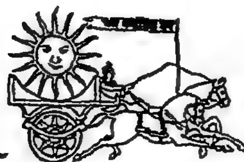
यह सबसे खर्चीली शादी ओर रजत जयती तो हुई, किन्तु रियासती दुनिया मे शीघ्र ही चुपके-चुपके ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन हो गये कि वह सजीवता बुझते दीप की लौ की तरह अपनी क्षणिक दीप्ति दिखाकर लुप्त हो गई और राजमहलो के निवासियो को यथार्थ की कठोर भूमि पर अपने पाव रखकर नई परिस्थितियो मे ढलने के लिये तैयार होना पडा। *अपनी आत्मकथा मे महारानी गायत्रीदेवी ने राजप्रासाद के दीवाने-आम,* मुबारक महल, सरबता आदि को जयपुर नरेश सग्रहालय बनाये जाने की प्रक्रिया का मार्मिक वर्णन करते हुए बताया है कि किस प्रकार उन्होने फीलखाने के हाथियो के जेवर और अन्य सजावटी सामान को, जिसमे साटन ओर जरी की झूले तथा सोने-चादी के होदे भी थे, नीलाम किये जाने से रोकाजिससे उस विगत वैभव के इन प्रतीको को नये सग्रहालय मे प्रदर्शित किया जा सके ओर जयपुर की इस सास्कृतिक थाती को सारा ससार देख सके।

नगर प्रासाद मे आज यही हो रहा हे। जो भव्य भवन राजदरबारो ओर मजलिसो के लिये बने थे, उनमे अब दरबार नही होते, जयनिवास बाग अब आधा चन्द्रमहल के साथ लगा है और आधा (निचला बाग) जयपुरकी बढती जनसख्या के लिये सार्वजनिक उद्यानो की कमी दूर करने को जयपुर नगर परिषद की सम्पत्ति बन गया हे (यह कर्नल भवानीसिह ने परिषद को दे दिया है), जयसागर जनता बाजार मे परिणत हो हो गया हैं, आतिश मे घोडे नही हिनहिनाते, वहा का पूरा मैदान हार्डवेयर ओर नल-बिजली वाले दूकानदारो के काठ कबाड से पटा पडा है, फीलखाने मे कोई हाथी नही झूमता, ग्वालेरा मे गाय नही है, बग्घीखाना और रथखाना भी नाम-शेष है ओर जनानी ड्योढी प्राय सूनी पडी है। राजमहलो ओर रनिवासो के स्वप्निल ससार के स्थान पर अब सग्रहालय की कलादीर्घा, शस्त्रागार और वस्त्र विभाग के प्रदर्शन कक्ष है और जयपुर के महाराजाओ के विशाल रगभरे तैल चित्र दीवारो से उन देशी-विदेशी पर्यटको को निर्निमेष निहारते है जो उनके इन अप्रतिम महलो से आकर्षित होकर यहा आते है।

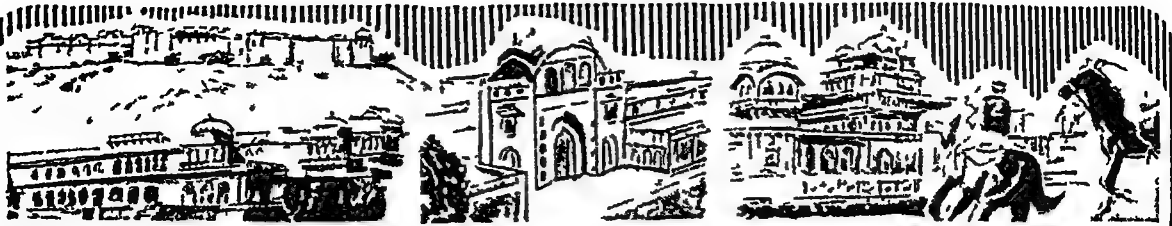
राज-दरबार क्या उठ गये, जाजम ही उलट गई, लेकिन विगत की यादो के साथ सवाई जयसिह और उसके उत्तराधिकारियो की यह नगरी अपने स्थापत्य,शिल्प-सोष्ठव तथा कला-वैभव के कारण आज भी आकर्षक और मोहक बनी हुई है। जयपुर क्या था, और क्या हो गया है !!

इसी जयपुर के लिए प्रतापसिह और जगतसिह के दरबार के रससिद्ध महाकवि पद्माकर ने कहा था

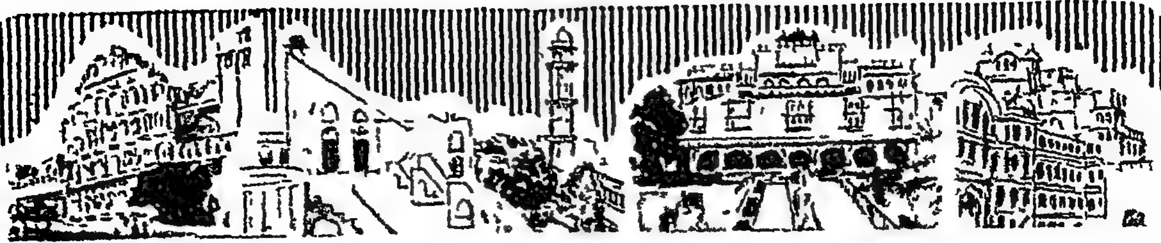
जय जयपुर सुरपुर सदृश
जो जाहिर चहु ओर।



4 वही, पृष्ठ 213-14



जयपुर रियासत का राजस्थान में विलय। 30 मार्च, 1949 को सरदार वल्लभभाई पटेल महाराजा मानसिंह को राजप्रमुख पद की शपथ ग्रहण कराते हुए



परिशिष्ट

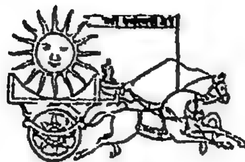


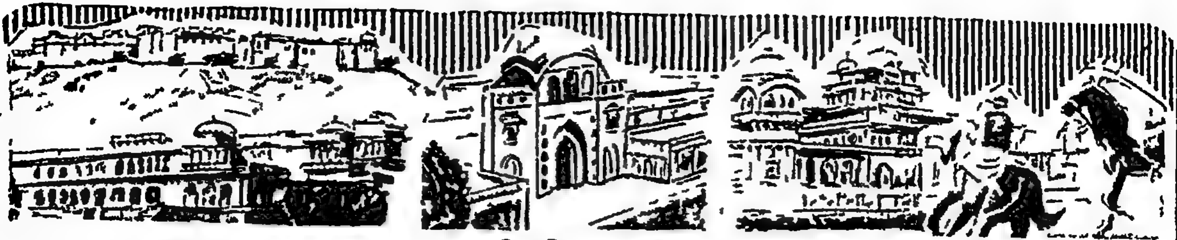
परिशिष्ट-1
जयपुर के राजा

1-सवाई जयसिंह द्वितीय	1699-1743 ई
2- सवाई ईश्वरीसिंह	1743-1750 ई
3-सवाई माधोसिंह प्रथम	1750-1767 ई
4-सवाई पृथ्वीसिंह	1767-1778 ई
5- सवाई प्रतापसिंह	1778-1803 ई
6-सवाई जगतसिंह	1803-1818 ई
7-सवाई जयसिंह तृतीय	1818-1835 ई
8-सवाई रामसिंह द्वितीय	1835-1880 ई
9-सवाई माधोसिंह द्वितीय	1880-1922 ई
10-सवाई मानसिंह द्वितीय	1922-1970 ई (1949 ई मे जयपुर रियासत राजस्थान मे विलीन हो गई)
11-कर्नल सवाई भवानीसिंह (वर्तमान)	-1970

उपरोक्त तालिका मे केवल जयपुर मे रहने वाले राजाओ के नाम ही दिये गये है, जयपुर बसने से पहले आमेर के राजाओ के नही। जयसिंह प्रथम (मिर्जा राजा), रामसिंह प्रथम और मानसिंह प्रथम आमेर मे हुए थे, जिनके समय क्रमश इस प्रकार हे

मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम	1611-1667 ई
रामसिंह प्रथम	1667-1689 ई
राजा मानसिंह प्रथम	1589-1614 ई



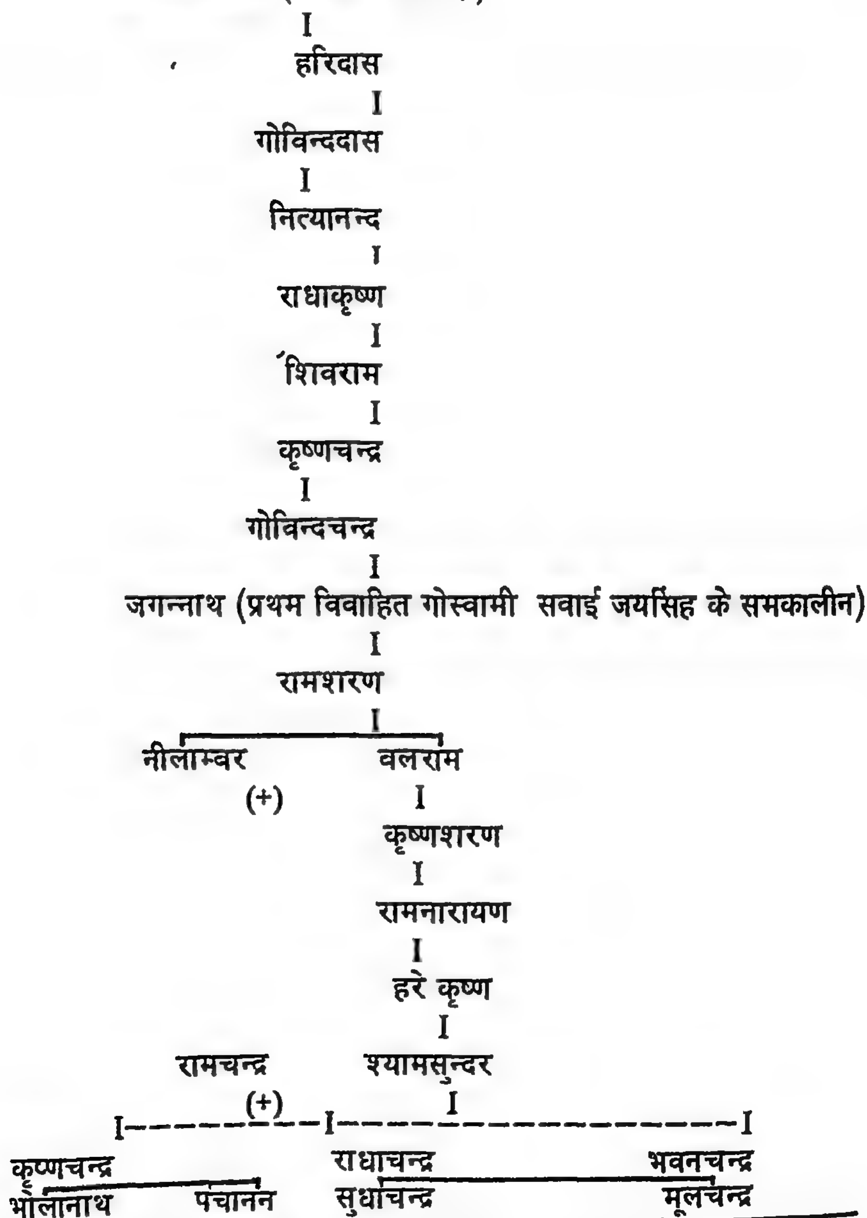


परिशिष्ट-2

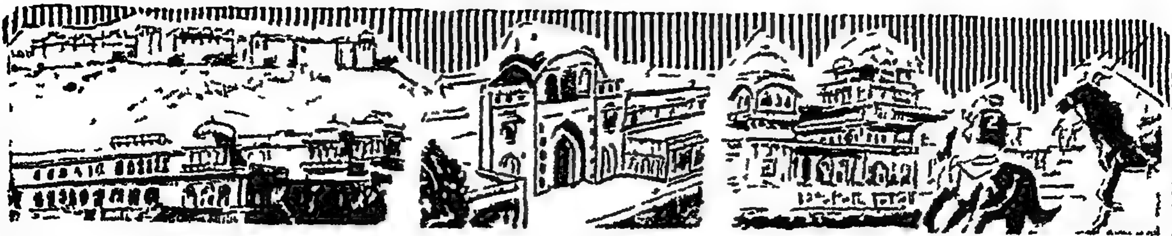
गोविन्ददेवजी के गोस्वामी

जयपुर के भारत- विख्यात मदिर श्री गोविन्ददेवजी के गोस्वामियो का वश-वृक्ष इस प्रकार है

रूप गोस्वामी (1490–1563 ई)



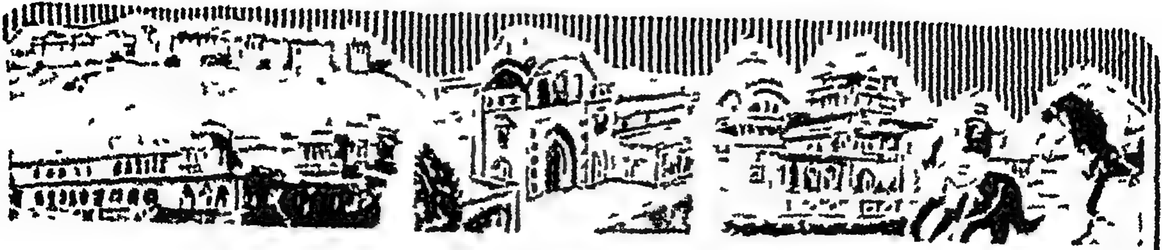
प्रद्युम्न कुमार (वर्तमान गोस्वामी) निरजनकुमार कोनीत कुमार रजीतकुमार अजीतकुमार



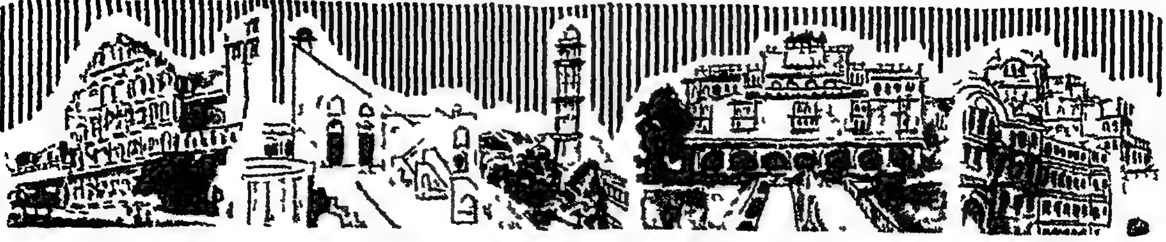
धनवान जु व्योपारी कितेक,
वहु देस सुदेमनि त आऐ अनेक।
ते करत विणज अति निसक होय,
परदेस सुदेसहि जात कोय।। 103।।
मिलि साहूकार धनाढि मित,
वागनि में गोठि करै नचित।
या विधि सौ सुप निसि दिन वितात,
देवन समान नर तिय लसात।। 104।।

छद आऐ निजमी जोतिगी, वहुर्यौं फिरगी कौतिगी।
तिन रच्यौ जत्र विसाल है, तामै ग्रहो की चाल है।। 105।।
तिथिपत्र मिलि ठान्या नयौ, सिरिनाम भूपति कौ दयो।
सो "जयविनोद" कहात है, जग माहि सौ विप्यात है।। 106।।
वहु विप्रि विद्यावान ते, आऐ दिसा- विदिसान ते।
साहित्य तर्क सु न्याय के, पाठी प्रवीन सुभाय के।। 107।।
मिलि वैठि वे चरचा करे, 'वानी सुरनि की' उच्चरै।
वोले सु अधिक मरोर सौ, वहु जोर करि कै सोर सो।। 108।।
सुनि भूप चरचा तिन- तनी, हिय हरपि क कवि गुनी।
धन देत तिनहि अपार है, ऐसी अनेक सभा रहे।। 109।।
भापा कवी परवीन ते, जस करत नव प्राचीन ते।
वारहट भाट सुभावतै, वहु पढत कवि चित चावतै।। 110।।
गज वाजि धन सिरपाव ते, वकसीस लहि गुन गावते।
विचरै सु पर हू देसते, आसिषा देत हमेस ते।। 111।।

छद पद्धरी वहु विधि के कारीगर अनूप,
परिवार सहित वुलवाय भूप।
तिनको पुर मैं दीन्हे वसाय,
हासिल सवको माफी कराय।। 112।।
यह सुजस वढ्यौ चहुधा अनत,
आऐ वहु जन तिनकौ न अत।
व्यौपार करन लागे अनेक,
वहु भातिन के करि करि विवेक।। 113।।
कहु महूर रूपैया लेत देत,
जौंहार विकत सुवरन समेत,
कहु वस्त्र पाट के वहुरि स्वेत,
मैहमूदी षासा तनसुषेत।। 114।।
कहु पसमीना फुनि विकत पान,
कहु विकत किराने वहुरि धान।
कहु लिऐ कसेरा धात पात्र,



वहु- मोल सु कोमल वस्त्र अग,
भूपण मणि- जटित सुवर्ण मग।
जरवाफ आदि पहरें वनाय,
नर लसत मनो सुर वसे आय।।।25।।
नारी सुदर अति चतुर चार,
झीने पट-भूपणजुत सिगार।
सुकुमार स्वकिय पिय मन हरत,
देवागना न ममता करत।।।26।।
पुर- छोर वशी वारागना सु,
वहु करत नाच मनु अपछरा सु।
तिनका लपि सुनि सगीत- गान,
वहु देत रसिक जन रीझि दान।।।27।।
अव सुनहु भप सपति वयान,
वरनो कछु क मोसमि प्रमान।
यक हुतो वाग निह ज- निवास,
नृप रच्या वड जयस्यघ तास।।।28।।
ताको लपि नदन- वन लजात,
जल- जत्र फुहारें वहु छुटात।
तिनत ग्रीपम की मिटत झार,
विन नभ होत पावस वहार।।।29।।
मधि है अनक पादप रसाल,
कहु नृत नृत नतन तमाल।
कहु वकुल केलि अजीर वर
कहु सेव नासपाती नरेर ।।।30।।
कहु पारिजात पीपलि लवग,
पिस्ता विदाम केसरि सुरग।
कहु पनस पुगि महुवा अरिष्ट
गूलर कपित्थ दाडिम सुमिष्ट।।।31।।
कहु ताल हिताल सु वीजपूर,
भल्लात-वेलि परवर पिजूर।
कहु आमिलवेत जमूनि निव,
करणा नारिग सु पक्क विव।।।32।।
अभया विभीति आमिल छुहार,
कहु दाप इप एला अपार।
जाती फुलन्योज जभीर वोट,
सीताफल मीठे ह परोट।।।33।।
वहु फले वृक्ष अनेक जाति,



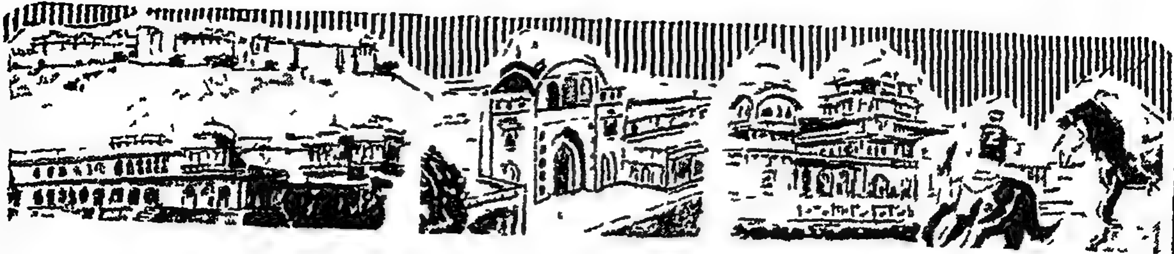
करूणा केतगी कदव- पाति।
केवरा कुद चपा गुलाव,
मचकुद सेवती मोगराव।।134।।
कहु गुल व गुला फूल्यो नवीन,
कहु कुसम फिरगी गुल अचीन।
गुललाला दाऊदी हजार,
कहु गुलहवास रग वहु प्रकार।।135।।
चदन असोक कहु कोविदार,
वधूक वहुरि सिगार- हार।
ईह विधि फूले वहुवृछ वेलि,
तिन माहि भ्रमर मन करत केलि।।136।।

अरिल अन्योक्त

सीतल मद सुगध पौन सचु पायके,
सघन छाह मै वेठि विहगम आयके।
मैने मुदि अति चेंन भरे अव रेपिऐ,
मनों महा मुनि लीन वृहममय देषिऐ।।137।।
विरह- वेदना कहत मनो पिक टेरिके,
सुनत भोरि हुकार देत मन फेरिकै।
तरू- वेलनि कै रहे फूल- फलझूलि वे,
देपत सुर नर आत- जात मग भूलि वे।।138।।
वहुरि ताल यक तालकटारा है तरें,
मनौ सरोवर मान देपि छवि कौ हरें।
वहुरि सवाई जयसागर यह नाम है,
ताकी तीरन सुभटादिक के धाम हे।।139।।
विमल नीर ते भरे लपे आनद ह्वै,
पछी- गन तह विहरत आय सछद ह्वै।
चकवाक चातिक चकोर चहु देपिऐ
कहु कपोत कलहस कोकिला पेपिऐ।।140।।
कहू मोर नाचन छत्री करि चावसो,
कहु सारिस कहु वुग ठाढे इक पाव सौ।
कहू वेठि कलवक सक तजि रति करै,
कहु ट्टिटट्टिभ कुकटनु आदि वहू पग तिरै।।141।।
कहू करत नर कामिनि आय सनान कौ,
मनो सुरसरी आए छाडि विमान कौ।
वहुरि मानसागर यक दीरघ ताल हैं,
तामै सरिता मिली सु अति सोभा लहै।।142।।

दोहा

या विधि कछु सछेप सै, वरने सरवर वाग।
ऊव नृप मदिर वन कछु सुनिऐ करि अनुराग।।143।।



छद पद्धरी

लपि वाग सघन अद्भुत नरिद,
वनवाऐ ता मधि महल- वृन्द
सतपणे कलस सुवरण उतग,
तिना परि ध्वज फहरत पचरग।।144।।
आगन फट्टिक स मले पषान,
मनु रचे विरंचिजु करि सयान।
दै आव सलिल सम तिह वनाय,
तह प्रगट परत प्रतिविव आय।।145।।
मणि-कचन- जटि मधि करी भीति,
दुति लपी परत लषि कै पछीति।
जह कनक- पाट दीने कपाट,
किय जटि विडूर सोपान वाट।।146।।
मणि- पचित षभ मधि जगमगात,
मनु रतन- सान वहु विधि लसात।
वहु रची चित्रसाली विसाल,
राजिद्र रमत तह सहित वाल।।147।।
कवहू मणि- मदिर माहि जाय,
तिय दूजी लपि प्यारी रिसाय।
तव मानवती लपि पिय हसाय,
कर जोरि जोरि लेहै मनाय।।148।।
मणि- जटित कुभ अति जगमगाहि,
वहु भरे सुव्व जल तै लसाहि।
दधि- दूव- धूप- जुत- हेम सार,
सोहत अतहपुर द्वार द्वार।।149।।
प्रीतम- निवास फुनि सुप निवास,
बैठक दीवान सभा- निवास।
फुनि चद्र- महल आदि जु आवास,
कवि करै कहा लौ वरन तास।।150।।
ऊँचे दरवाजे सुगम वाट,
कचन- सम जटित वने कपाट।
लगते बनवाऐ चौक ईस,
तह रहै कारषाने छतीस।।151।।
यह हुतो कारपाने त नौंस,
पारसी नाम ता मद्धि दोस।
नृप काढि हिदवी नाम कीन,
गृह- सग्या यह ठानी नवीन।।152।।
गज- ग्रह मै गज मद झर लसात,

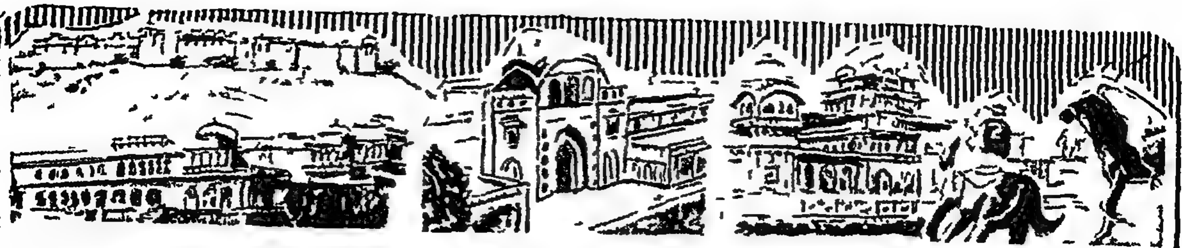


ऐरावत है तिनु लपि लजात।
सुडिन मैं ते लं क पहार,
फंक्त है पारावार पार।।153।।
वहु अस्व- साल मधि हैं तुरंग,
राजत है सुंदर अति उतंग।
फेरत'र के विनु मैं फिर सु,
मन पवनहु तैं आधे क्ढ सु।।154।।
फुनि रतन- गृह अरू धन- भंडार,
तिनके वरनन को है न पार,
इन आदि ग्रह जो है समस्त
भरि पूरि रही तिन माहि वस्त।।155।।

छंद मन्त्री घने वुधिवान है, जाने जिन्है सु जिहान है।
नाप्या तिन्है नृप भाग का, हक देत है हक्दार को।।156।।
अगी अनेक पवास ते, अति चतुर गिनत उसाल ते।
वहु काम के वहु भाति के, सपति सहित सुभ काति के।।157।।
वहु सुभट सजि आवै जहा, वैठे सभा मधि नृप तहा।
जैसे हुकम भूपति कर, तैसे कर नाही टर।।158।।
इन आदि चाकर है जिते, हक पाय राजी है तिते।
प्रभु- भक्ति करि जस गात है, सुप माँहि द्योम वितात है।।159।।

दोहा पाचा विधिजुत राज पुरि, राजत कूरम भान।
गति सुपी भडार वहु, नीति सु दान कृपान।।160।।

छंद पद्धरी चहुधा पुर के गिर हे उतंग,
तिनप गढ़ बनवाएं उतंग।
पूरव दिसि गढ रघुनाथ नाम,
तलि तीर्थ गलता हे सु ठाम।।161।।
दक्षिण दिसि सकर- गढ अनूप,
वनवायो माधवस्यघ भूप।
हथरोही का गढ़ दुतिय जानि,
पछिछम हि सुदरसन गढ वपानि।।162।।
उत्तर अवावति है सुथान,
ताप स्वाई ज- गढ महान।
उत्तर दक्षिण की कूण पाय,
इक व्रहमपुरी दीन्ही वसाय।।163।।
नृप कीन्हे असमेदादि जग्य,
वहु दान दिऐ लपि द्विज गुणग्य।
यह जस फेल्यो चहु दिसि मझार,
सुनि विप्रादिक आये अपार।।164।।



तिनु ब्रह्मपुरी मैं दे वसाय,
धन धान्य ठौर दिय अधिक राय।
फुनि पूरव दक्षिण वीचि और
गिर परि अवागढ विषम ठौर।।165।।
चहुधा पुर कै उपवन अनेक,
तरू सुफल फले तिनमैं प्रतेक।
फुनि वन गिर सोभा अति लसत,
तहा ध्यान धरत मुनिजन महत।।166।।

दोहा
हुतौ राज अवावती, सो जयपुर मै ठानि।
करन लगे जयसाहि नृप, सुरपति सम सुष दानि।।167।।
भये भूप जयसाहि कै, पुत्र दोय अभिराम।
ईस्वरस्यघ भये प्रथम, लघु माधोस्यघ नाम।।168।।
रामपुरो दुर्ग भान कौ, ताकौ लै कै राज।
दीन्हौ माधोस्यघ कौ, सगि दये दल साज।।169।।
वहुत वर्ष लौं राज किय, श्री जयस्यघ अवनीप।
जिनकै पटि वैठे स्वदिनि, ईस्वरस्यघ महीप।।170।।
तिनकी दान कृपान कौ, जग जस करत अपार।
जिन सौ जग जुरे तिन्हे, करि छाडे पतझार।।171।।

कवित्त प्रतापीक
प्रथम कुमर पदई मैं वडी जग जीत्यौ,
कूट्यौ दल दषिनी कौ, गहे सर चाप सौ।
बूंदी जिन रूदी कोटावारे पर डड लयो,
सवही सराहत सवाई भयौ वाप सौ।।
विरचि वचैगे न मवासे महि मडल मै,
समृति विचारि जे वचैगे जय जाप सो।
सवाई ईस्वरसिघ महाराज नरनाह,
राग भयौ राना तेरे पावकप्रताप सौ।।172।।

दोहा
वहुरि पाटि वेठें नृपति, रामपुरे तै आय।
भाई माध्वस्यघ जु, दुरजन कौ दुपदाय।।173।।

कवित्त
जिन रामपुरे में करी निज चाकरी,
सो धरि राषी विचारि हियें।।
फिरि पाय कै राज ढुढाहर को,
सुनऊ निधि के सुष आनि लिये।।
भनि "राम" कपातै भले ही भले,
अमरेस के से जिनु दान दिये।
हरि ऐक सुदामा निवाज्यो कहू,
नृप माधव केई सुदामा किये।।174।।

सोरठा
दिये दिवाये दान, जस प्रगट्यो दसहू दिर्सानि।



उवे जगत परि भान, राज कियो यम मुलक परि।।175।।
आग नृपति अनत, जतन किये आयो न गढ।
रणथभोर महत, सा माधव सहजे लह्यो।।176।।

कवित्त
ऐसी मोज क्ढत मवाइ माधवेस कर,
सुवरन- झर ज्या प्रवाह नदी नद के।
मान-वस- भान जयसाहि क समान स्याम,
हरत गुमान निज दान सा धनद के।।
मोती अनहद के जराऊ साज सदके,
कर हार रद के अनाथ दीन दरद के।
जीन जवनद के तुरग करी- कद के,
मतग मति मद के क्ढत सदा मदके।।177।।

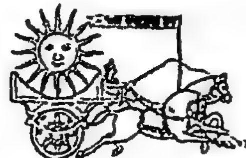
सोरठा
चटी फाज करि कोप, भिरि भागे जट्टा प्रवल।
नई चढी यह वोप, कछवाहन की तेग का।।178।।

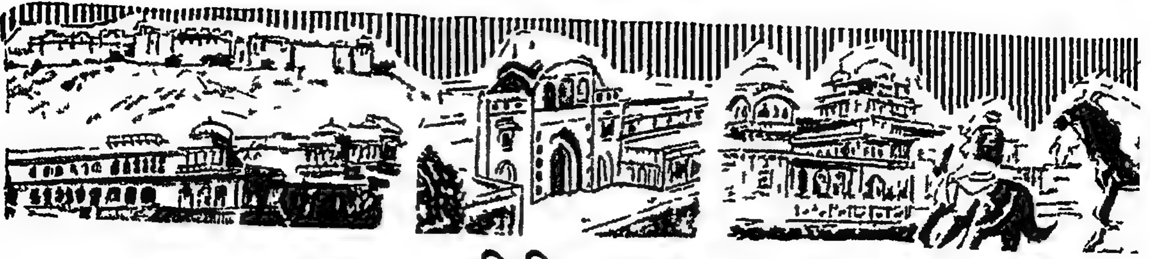
दोहा
तिनक पटि वठे पुहमि, प्रथ्वीस्यघ नरिद।
मकल पजा पोपण मना, पगटे आय नरिद।।179।।

छद भुजग प्रयात अन्योक्त
उद श्रग अवावती पीठि उग्या,
मना अर्क ना उग्र तेजा महाया।
धर धर्म सेतून के दिव्वि वाने,
वडे भाग का छत्र माथे तनायो।।
म्हाराज गजेस्वरी की कपा त,
महागजि राजान का विश्व भायो।
प्रथी पालिवे का प्रथीराज माना,
प्रथीस्यघ का धारि क रूप आया।।180।।

सोरठा
प्रथ्वीस्यघ विख्यात, जा दिन त भूपति भऐ।
मिटे मर्कल उतपात, सुपी भई सारी प्रजा।।181।।

दोहा
लपा भागि- वल भूप का, मर्‍या गयो रिपु जाट।
भऐ सत्रुत मित्र सिप, इह पुन्य को थाट।।182।।
नर- नारी दे आसिप, प्रथ्वीस्यघ नरेस।
अचल राज करि जगत की, रक्ष्या करा हमेस।।183।।





परिशिष्ट-4

"भोजनसार" का जयपुर वर्णन

"भोजनसार" की रचना 1739 ई मे जयपुर की स्थापना के बारह वर्ष बाद- गिरधारी नामक हिंदी कवि ने की थी। इसकी एक मात्र प्रति पूना के भण्डारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीट्यूट मे है। जयपुर नगर के वर्णन से सबधित इसके पद्य अब तक कई जगह उद्धृत हो चुके है। यहा ए के राय की "हिस्ट्री आफ जयपुर सिटी" मे ही दिये गये अश उद्धत किये जा रहे है जिनसे जयपुर के बगाली नगर-नियोजक विद्याधर और नगर को बसाने का प्रमाणिक वर्णन मिलता है –

अथ सवाई जैपुर बसायो ताकौ वर्णन ।।दोहा।।
पुराकरे बहु हरष करि मनमहिमोद बढाय
विद्याधर सौ वोलि कहि सहरसु एक बसाय।।182।।
जैनिवास या सहरमधि आवै यहै विचारि
चौपरि केरू बजार बहु घरि पिछवारै सारि।।183।।

अथ जैनिवास वर्णण।।दोहा।।

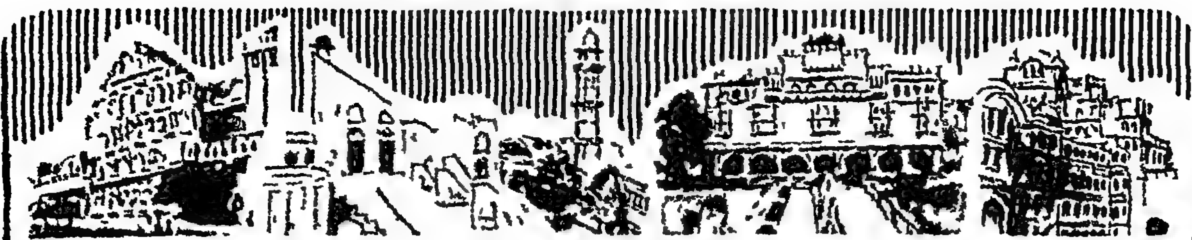
मुकत महल राजहि महल बादल महल सुजानि
सिदरा और हमाम सुनि बुरजि रसोई ठानि।।184।।
बडी बडी नहरै जहा हौद तडागहि देषि
भर फहरि नलिन तै कुडा चादरि पेषि।।185।।

कविता

देषौ नये तरू नये पातनि केनी केन
येन ईन ईसापा नये फलफूल नये है
नये नये सौरभ सुवात निमै आवै
नये नये अलि गुजे बौले वोल नये है
नये नये कैकी कीर चातक चकोर नये
नये नये कोकिल कुहुकै बानी नये हैं
सवाई असाह रहाराजनि मुकाटमनि
जै निवास बाग मे बसत नित नये है।।186।।

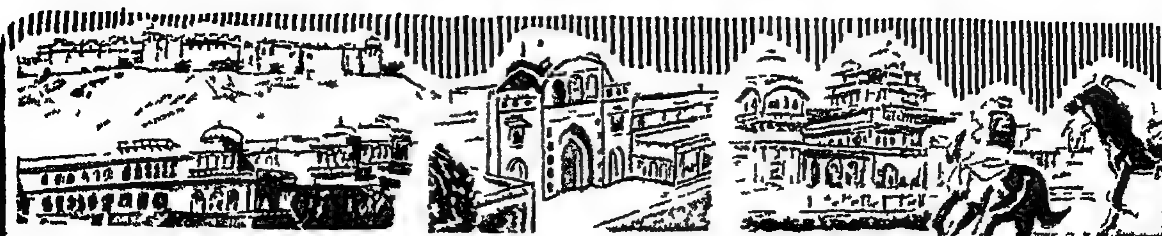
।।दोहा।।

बेग बसै यक वर्ष मै बारहै कोस ही फेर।
देस देस के बौलियो व्योपारी सुनिहैरी।।187।।
कूचे टीवे रेत नले बहुत है पूर।
तिनकौ दुरिकराय कै करो हवेली सूर।।188।।
लेहु षजानौ बहुत है लागै सोही लगाय।
सवाई जैपुर सुनो सहरसु येक बसाय।।189।।
करि असीस बिनती करी देहो बेग बसाय।
सबत सतरेसे सुनी चौरासी मनुलाय।।190।।
पौसहि सुदि परिवाजहा वारसनी सरवरा।



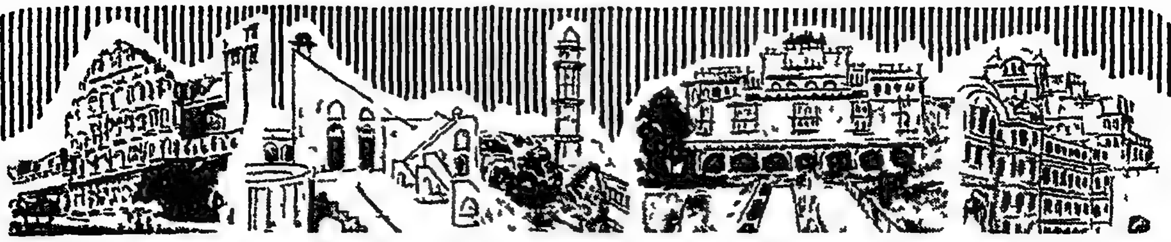
गिरधारी या सहर को जनम महासुभवार।।191।।
या काडर नवजगत ह व्ह यद विचारि,
या काडरना ही न कहु गिरधारी यह धारी।।192।।
वहु द्विजको भोजन दयं दक्षिना दइ वुलाय।
दे अनीन यह उच्चर वसहु सहर वह माय।।194।।
।।कविता।।
मंदिर अनेक जहा गाव्य देव गोपीनाथ
शिवरू गनेशरू दिनेस के दिवाले ह।
देवी दव पियत गह गेह झालरिन् घटा
झांझिददभि के नादनी के चाले हं।
वापी कूप वाग मानसागर मपूर भरे नदी
चली आव नाव चढ नर नाले ह।।195।।
।।दोहा।।
चोपर केरू वजार ह हाटक इ हजार
देम देन के करते ह व्योपारी व्योहार।।196।।
।।कविता।।
गजवाजी विकेंदरी यावनिक अरू कछक उट अनेक्ही आव
वैलविकेक करे जी घने अन्न मे मिवर्तासी कीलापनुयाव
जरीजरवाव पटवर अवर- जरायके भपण जव विसाह
राजाधिराज वसायोसु जपुर क्त तहा तेपरीदिक ल्यावे।।197।।
।।दोहा।।
वमत फिरगी हून हासागर तजिक आय।।
जिनके वुधि ववक वहुकहिये क्हा वनाय।।198।।
जसे देस देम के आय हं वहु माह।
लाप करोरि नकीसुना हूडी चलत सुताह।।199।।
जिनके लछि अयार है करत रहत व्यापार।
गिरधारी सुपते रहेतत सकर नही निहारि।।200।।
काऊ काहतं कछु हन नाहक नही वोल।
गिरधारी या महर म कस्यो वतीसहितोल।।201।।
।।कविता।।
यज्ञ कर द्विज प्रातहित फुनि वेद पढे अरू ओरे पढावे।
मुभ्रत साधिक ह सव धर्म्म अधर्म्म की वात ही दूरि नसावे।
घर ही घरमाड कथा सुनियेरपुरान अठारहरू सवगावे।
राजाधिराज वसाया सुजपुर जे ज करे हरिनाव सुनावे।।202।।

□□□





महाराजा माधोसिह के 1902 ई मे इग्लैण्ड जाने के समय लिए गए चित्र की प्रतिकृति। महाराजा (वीच में) के एक ओर प्रधानमत्री ससारचद्र सेन तथा दूसरी ओर सु इजीनियर स्विन्टन जैकब बैठे है। पीछे खभे पर हाथ टिकाये प मधुसूदन ओझा और महाराजा के आगे वालाबख्श खवास (मध्य में) हैं।



परिशिष्ट-5

महाराजा माधोसिंह की इंग्लैंड यात्रा*

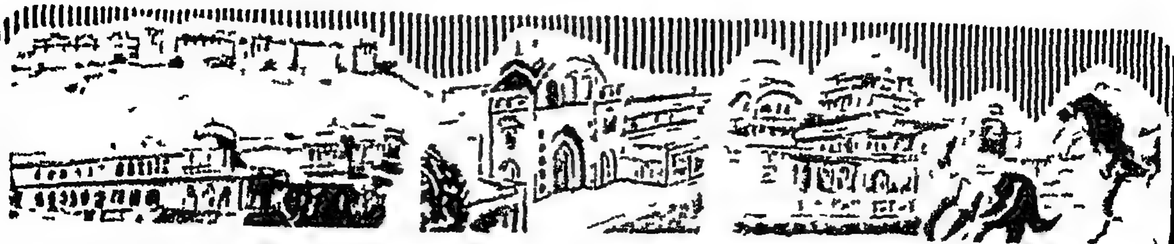
ईसा की 19 वी सदी का उत्तरार्द्ध। 1857 के सिपाही विद्रोह मे एकबारगी डगमगाने के बाद ब्रिटिश साम्राज्य भारत मे अपने पूरे तेज और प्रताप के साथ जम चुका था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बदले इग्लैड की साम्राज्ञी के साथ भारतीय नरेशो के सीधे सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे और 1876 मे महारानी विक्टोरिया ने ब्रिटिश पार्लियामेट के कानून के आधार पर भारत की साम्राज्ञी- एम्प्रेस आफ इण्डिया— का नया खिताव स्वय धारण किया था। इस प्रकार भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चिरस्थायी बनाने के लिए जिस सामन्तशाही ढाचे को सुदृढ किया जा रहा था, उसमे भारतीय राजा- महाराजाओ की महत्ता वायसराय के दरबारो मे उनकी वैठको के कम, सलामी की तोपो और "स्टार आफ इण्डिया"— सितारे- हिन्द- जैसे खिताबो और तमगो से ही आकी जाने लगी थी। भारतीय नरेशो, विशेपत राजपूत राजाओ के लिए अग्रेजो का यह आधिपत्य कोई अटपटी बात न थी। राजस्थान के रजवाडे मुगल साम्राज्य की अधीनता मे सदिया बिता चुके थे और इस साम्राज्य के क्षय के अनन्तर मरहठो की "चौथ" और पिडारियो की लूट ने उन्हे कोई एक सदी तक चैन की नीद न सोने दिया था। उनके अपने दरवारियो और जागीरदारो के षडयत्रो एव कुचको, आतरिक अशाति और शोचनीय शासन- व्यवस्था से अग्रजो ने ही उन्हे उवारा था और उनका वशानुगत उत्तराधिकार सुरक्षित किया था। इसलिए इग्लैड के राजमुकुट के प्रति इन राजा- महाराजाओ को अपनी निष्ठा और वफादारी प्रदर्शित करने मे कोई भी झिझक या सकोच नही रह गया था।

किन्तु राजस्थानी नरेश जहा अग्रेजो से प्रशसा और आदर प्राप्त करने मे गौरव का अनुभव करने लगे थे, वहा पुरानी परिपाटी का निर्वाह करने मे भी वे एक अजीव आत्मतुष्टि और गर्व की अनुभूति करते थे। वैसे राजनीतिक विवशता, प्रशासनिक दुरावस्था, सामाजिक विपमता और आर्थिक अव्यवस्था के परिणामस्वरूप तब समूची जनता का दृष्टिकोण भी पूर्णतया सकुचित और सकीर्ण था और इस जनता के स्वाभाविक नेता, राजा- महाराजा, अग्रेजो द्वारा सुरक्षित उनके विशेषाधिकारो और सुख- सुविधाओ का उपयोग करते हुए और भी रूढिवादी और दकियानूस थे।

भारत जैसे विशाल देश पर ब्रिटिश ताज का एकछत्र प्रभुत्व स्थापित हो जाने के अनन्तर प्रथम विश्व- युद्ध के पूर्व तक का यह काल इग्लैड मे "केयर- फ्री एडवर्डियन एज"— बेफिकी का एडवर्ड युग— माना गया है जिसमे अग्रेज जाति निश्चित भाव से अपने साम्राज्य का विस्तार करने मे लगी थी। भारत मे यह निश्चित भाव अथवा वेफिकी किसी मे देखी जा सकती थी तो वह यहा के राजा- रईसो मे ही। उस काल मे यदि कोई सामान्य अथवा खाता- पीता नागरिक कानून की ऊची पढाई अथवा अन्य किसी प्रयोजन से इग्लैड चला जाता तो उसका जाति से बहिष्कृत होना एक आम बात थी। साथ ही यह बात भी आम थी कि इस प्रकार के जाति- वहिष्कृत व्यक्ति को कुछ पूजन- हवन, दान- पुण्य और अपने स्वजातीय बधुओ को सहभोज मे तृप्त करा देने के बाद जाति मे पुन प्रवेश दे दिया जाता था।

विलायत जाते समय जयपुर के महाराजा माधोसिह के असमजस की यही पृष्ठभूमि थी जो तत्कालीन राजस्थान की सामाजिक परिस्थिति और यहा के राजा- रईसो के पारस्परिक ईर्ष्या- द्वेष और तनाव- खिचाव पर भी अच्छा प्रकाश डालती है। माधोसिह जयपुर जैसी बडी और सम्पन्न रियासत का महाराजा था, कितु उसके इग्लैड जाने से पाच वर्ष पूर्व जयपुर के ही एक करद राज्य, खेतडी का राजा अजीतसिह इग्लैड तथा

* महाराजा माधासिह (1880-1922ई) की इग्लैण्ड यात्रा पर यह सामग्री एक लेखमाला— एक राजा सात समन्दर पार— के रूप म 'राजस्थान पत्रिका' में मइ- अगस्त 1969 म प्रति रविवार प्रकाशित हई थी। —लेखक



अन्य यूरोपीय देशो मे घूम- फिर आया था ओर वह भी महाराजा की इच्छा के विपरीत। 1902 मे जव स्वय महाराजा को वादशाह की "आज्ञा" से इग्लड की यात्रा करने के लिये विवश होना पडा तो उन सभी कारणो का निराकरण कराया गया जिनके आधार पर अजीतसिह की विदेश- यात्रा का विरोध किया गया था।

राजा अजीतसिह का राज्य तो वहुत छोटा था ओर जयपुर के वडे राज्य के आधीन भी था, किंतु अजीतसिह मे किसी भी वडी रियासत का शासक होने की योग्यता ओर गुण विद्यमान थे। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के शव्दो मे गणित शास्त्र मे राजा अजीतसिह की अद्‌भुत गति थी और विज्ञान भी उसे वहुत प्रिय था। राजनीति मे वह दक्ष ओर गुणग्राहता मे अद्वितीय था। दर्शन ओर अध्यात्म की रुचि इतनी थी कि विलायत जाने से पहले ओर पीछे स्वामी विवेकानन्द उसके यहा महीनो रहे थे आर राजाजी तथा स्वामीजी मे घण्टो शास्त्र- चर्चा हुआ करती थी। ज्ञान- विज्ञान की नयी- नयी वातो को जानने आर अनुभव प्राप्त करने के लिये वह सदेव उत्सुक ओर जिज्ञासु बना रहता था।

1895 ई मे जव राजा अजीतसिह अस्वस्थ था तो डाक्टरो ने उसे विलायत जाने की सलाह दी जिसे उसने तुरत स्वीकार कर लिया। इग्लेड मे तव मलिका विक्टोरिया की हीरक जयती मनाने का आयोजन हो रहा था। राजा अजीतसिह ने इसे एक सुयोग माना आर इग्लड जाने की तेयारी की।

भारत सरकार ने तो तत्काल अनुमति दे दी, किंतु महाराजा माधोसिह की आज्ञा से जयपुर के प्रधानमत्री कान्तिचन्द्र मुखर्जी ने 27 अप्रेल, 1897 ई को राजा अजीतसिह को एक पत्र मे लिखा —

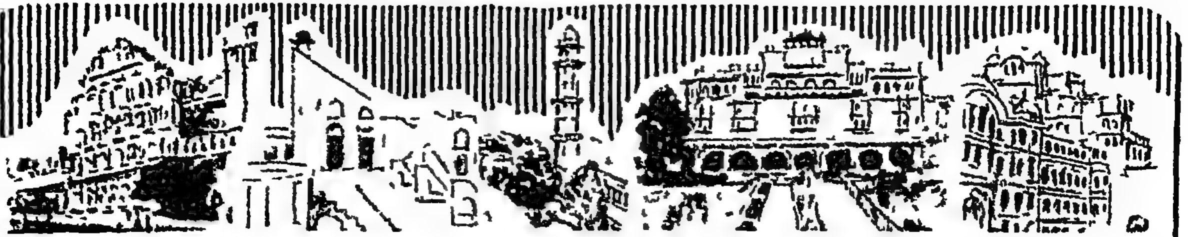
"आप इग्लड जायेगे ओर जव वहा से लोट कर आयेगे तव सरदारो ओर स्वजातीय सम्वन्धियो द्वारा सामाजिक झगडा खडा हो जायेगा। इसलिये आप पहले इन सव वातो पर अच्छी तरह विचार कर लीजिये।"

जयपुर के प्रधानमत्री ने 28 अप्रेल, 1897 को राजा अजीतसिह को फिर लिखा कि "महाराजा साहव व्यक्तिश आपकी प्रस्तावित इग्लेड यात्रा के विरुद्ध नही ह, किंतु कल के पत्र का अभिप्राय यह था कि इस यात्रा के गभीर परिणाम को आपके सामने इंगित कर दिया जाये। आपके इस कदम से जो गभीर परिणाम निकल सकते है, उन्हे ध्यान मे रखते हुये महाराजा साहव आपको स्वय विचार करने की अनुमति देते ह। उनकी अपनी राय मे अव भी कोई परिवर्तन नही हुआ है।"

इन पत्रो से स्पष्ट हे कि महाराजा माधोसिह राजा अजीतसिह की इग्लैड यात्रा के विरुद्ध था और इसे धर्म- विरोधी तथा प्रचलित सामाजिक आचार- विचार के विपरीत मानता था। किंतु, अजीतसिह अपने निश्चय पर दृढ़ था। इग्लैड के ठण्डे जलवायु ओर समुद्र यात्रा को अपने स्वास्थ्य के लिए लाभदायक मानते हुये, मलिका विक्टोरिया की हीरक जयती के अवसर पर उपस्थित होने को सुअवसर वताते हुये और विदेशों के अनुभव तथा ज्ञान को अपने राज- काज के लिये उपयोगी होने की आशा लेकर वह 1 मई, 1897 ई को इग्लैड जाने के लिये वम्वई से जहाज पर सवार हुआ। जोधपुर का महाराजा सर प्रताप भी उसी जहाज से इग्लैड जा रहा था।

राजा अजीतसिह प्राय छह महीने वाद भारत लौटा और वम्वई मे उसका शानदार अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन समारोह की अध्यक्षता वम्वई हाईकोर्ट के जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे ने की थी। उसकी सफल विलायत यात्रा, सम्राज्ञी विक्टोरिया के हाथो स्वर्ण- पदक की प्राप्ति और इस मान- सम्मान से महाराज माधोसिह अवश्य ही ओर कुढ़ गया होगा। राजा अजीतसिह तभी से उसका कोपभाजन बना रहा।

अजीतसिह वहुत नीति- निपुण था और उसने इग्लैड जाने से पहले और वाद मे अपने शेखावत वन्धु- वान्धवो को पूरे विश्वास मे लेकर अपनी इच्छा पूरी की थी, किन्तु जयपुर दरवार की अकृपा को मिटाना उसके लिये भी साध्य नही था। फरवरी, 1898 ई मे जव अजीतसिह जयपुर आया तो यहा तीन अवसरो पर उसने रियासत के प्रमुख सरदारो के साथ भोजन किया। एक वार पोकरण के ठाकुर के जयपुर आने पर, जो



चौमू ठाकुर का मेहमान था, अजीतसिह ने दावत का आयोजन किया और इसके निमत्रण उन सभी सरदारो को भेजे गये जिनके साथ वह सहभोजो मे सम्मिलित हुआ था। महाराजा माधोसिह के इशारे पर काले पानी की यात्रा कर आने वाले खेतडी के राजा की इस दावत मे वे कई सामत- सरदार नही आये जिन्हे मान- मनुहार से वलाया गया था। अजीतसिह को इससे वडा मानसिक सताप हुआ था ओर उसे इस अपमान को जहर की घूट की तरह पीना पडा था।

अपने इग्लैड जाने का प्रसग आने पर महाराजा माधोसिह को राजा अजीतसिह की इग्लैड यात्रा का प्रसग भी याद आया होगा। अव तो धर्म- हानि स्वय उसी के द्वारा होने जा रही थी। न जाने से शाही आज्ञा का उल्लघन होता था ओर जाता था तो प्रश्न यह उत्पन्न होता था कि इतने लम्वे समय तक नित्य- कम कैसे चलेगा? शाही आज्ञा या निमत्रण को म्वीकार करने की सार्वजनिक घोपणा करने के साथ ही महाराजा अपने इस धम- सकट का निवारण ढूढने मे लग गया, क्योकि अपने धार्मिक आचार- विचार की रक्षा वह हर हालत मे करना चाहता था।

निमंत्रण का खरीता

यह परिस्थिति तव मारे भारत की थी, फिर जयपुर ही इसका अपवाद कैसे होता। इसी परिस्थिति मे अक्टूवर, 1901 मे महाराजा माधोसिह को सम्राट् एडवर्ड सप्तम की ताजपोशी मे उपस्थित होने का खरीता मिला। यह ममारोह जून, 1902 मे लदन मे होने वाला था, लेकिन राजपूताना के ए जी जी कर्नल ए वी थार्नटन ने पूरे सात महीने पहले इसे शायद इसीलिए भेजा कि महाराजा सुविधापूर्वक इस वडे ओर लम्वे सफर की इच्छानुसार व्यवस्था कर सके।

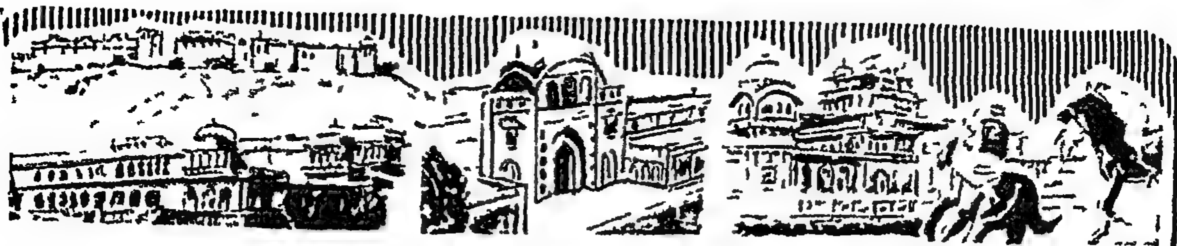
इस निमत्रण को स्वीकार करने के अलावा आर चारा ही क्या था? खरीते मे ए जी जी ने साफ- साफ लिखा था "सम्राट की इस 'आज्ञा' का उत्तर आपके पास से आने पर जनाव हुजूर वायसराय गवर्नर जनरल वहादुर की सेवा मे भेज दिया जायेगा।" महाराजा ने 10 अक्टूवर, 1901 को दीवाने- आम मे आम दरवार किया जिसमे जयपुर- स्थित ब्रिटिश रेजीडेट, काव ने भापण देते हुए यह "खुशखवरी" सुनाई कि "जनाव शहन्शाह एडवर्ड सप्तम ने आपको आगामी जून मे विलायत आने के लिए ओर उत्सव ताजपोशी मे शामिल होने के लिए आज्ञा फरमाई है।"

महाराजा की ओर से जो जवाव दिया गया उसमे ब्रिटिश सरकार को यकीन दिलाया गया कि "अगले जमाने मे जिस गरमजोशी से मेरे वुजुर्ग अहकामशाही वजा लाते रहे हे, उसी तरह मे भी अपने वादशाह आली मुकाम का हुक्म खुशी ओर फरहत के साथ वजा लाऊगा। जिस जश्ने- मुवारक मे शामिल होने के लिए मुझको हुक्म फरमाया गया है, उसमे मे अपनी जान- खास से यह दिखलाने की उम्मीद करता हू कि गवर्नमेट इगलीशिया के साथ रियासत जयपुर की खैरख्वाही किस आला मरतवे की है।"

इस प्रकार शाही आज्ञा या निमत्रण को स्वीकार करने की सार्वजनिक घोषणा तो करदी गई, लेकिन महाराजा अपने धार्मिक आचार- विचार के कारण वडे असमजस मे था। काला पानी अथवा समुद्र पार कर यह यात्रा सम्पन्न करने के विपय मे उसके अपने मन मे अनेक शकाये उत्पन्न हो गई। कैसे उस दूर देश मे धर्म का निर्वाह कर पायेगे? क्या खायेगे- पीयेगे? कोई दो- चार दिन की तो वात नही, इतने लम्वे समय तक कैसे नित्यकम चल पायेगा?

पण्डित सभा का निर्णय

यह सव सोच- विचार चल ही रहा था कि स्वर्गीय महाराजा रामसिह द्वारा स्थापित "मोद मदिर" की व्यवस्था प्राप्त करने की युक्ति सामने आई। यह रियासत की सर्वोच्च पण्डित सभा थी जो धर्म- कर्म के



मामले मे अपना निर्णय देती थी और यह निर्णय सबको मान्य होता था। सारी शकाओ पर विचार कर इस पडित सभा ने यह निर्णय किया कि यदि अन्नदाताजी अपने इष्टदेव, श्रीगोपालजी महाराज के साथ यह यात्रा करे और उनके प्रसाद के अतिरिक्त अन्य कोई भोजन न करे तो इस यात्रा से धर्म मे किसी प्रकार की हानि नही हो सकती। विदेश यात्रा का ओचित्य सिद्ध करने ओर इसे धर्मानुकूल वताने के लिए तव पण्डित काशीशेष वेकटाचल शास्त्री ने "अब्धिनौयान मीमासा" नामक एक कृति की रचना भी की थी।

मोद मदिर की इस व्यवस्था ने महाराजा के धर्म-सकट को वहुत कुछ दूर कर दिया ओर यह तय रहा कि महाराजा की निजी सेवा के ठाकुर, श्रीगोपाल जी का विग्रह सात समन्दर पार उनके साथ ही रहेगा। भगवान की सेवा- पूजा का जो कम जयपुर मे चलता है, वही विलायत मे भी चलता रहेगा ओर महाराजा अपने प्रवास-काल मे भगवान का प्रसाद ही ग्रहण करेगे। किन्तु, इस समाधान ने एक नयी अडचन पैदा कर दी– जिन जहाजो मे गो- हत्या होती है ओर मास- मदिरा का खुला उपयोग चलता है, उनमे श्री ठाकुरजी को कैसे ले जाया जाएगा?

इस समस्या का समाधान पाने मे भी देर न लगी। यात्रा के प्रवधको ने पता लगाया कि प्रसिद्ध अतर्राष्ट्रीय यात्रा एजेसी, टामस कुक एण्ड सन्स ने एक जहाज एकदम नया वनवाया है। तत्काल कुछ कर्मचारियो को वम्वई भेजा गया और इसे पूरे के पूरे जहाज, एस एस ओलम्पिया, को महाराजा के नाम से "रिजव" करा लिया गया। साथ ही इसमे महाराजा की आवश्यकता और सुविधाओ के अनुसार कुछ अदला- वदली भी की गई। जहाज मे कुल मिलाकर छ तो रसोईघर ही वनवाए गए। इनमे पहला श्री ठाकुरजी का रसोवडा था तो दूसरा स्वय महाराजा का। तीसरा तामीजी सरदारो के लिए था तो चौथा वेद- वाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा के लिए। पाचवा और छठा कमश अन्य पण्डितो व ब्राह्मणो तथा मुलाजिमो (साधारण कर्मचारियो) और शागिदपेशा (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो) के लिये थे।

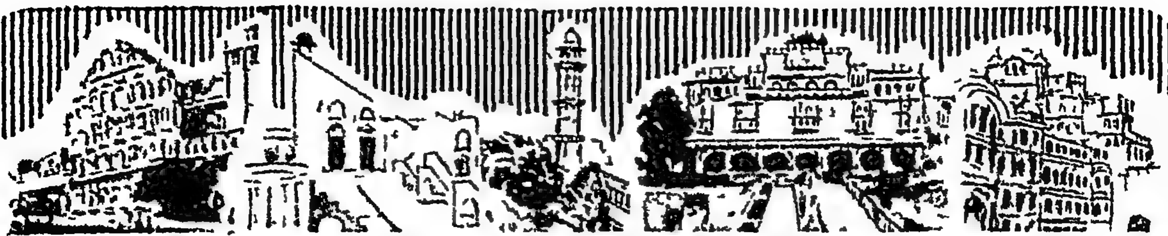
गगाजल और मिट्टी

जहाज मे वने हुए सामान्य गुसलखानो के अतिरिक्त चार नए गुसलखानो का प्रावधान किया गया आर पीने का पानी भरने के लिए एक विशाल हौज तेयार कराया गया। महाराजा स्वय गगाजल का उपयोग करते थे और उनके लिए पूरे छ माह की आवश्यकता के लिए पर्याप्त गगाजल जिन विशाल रजत- पात्रो मे भर कर ले जाया गया था, वे अव भी जयपुर के राजप्रासाद मे सरवता अथवा दीवाने- खास की शोभा वढा रहे हे। और तो और, शौच कर्म से निवृत्त होने के अनन्तर हाथ धोने के लिए भी भारत भूमि की वालुका को जहाज मे भर लिया गया था।

जहाज का किराया कुल डेढ लाख रुपया तय पाया गया और इसके मालिक, टामस कुक एण्ड सन्स, से यह सनद लिखवाई गई कि जव तक जहाज महाराजा की यात्रा मे रहेगा, उसमे ऐसी कोई वस्तुए काम मे न लाई जाएगी जो हिन्दू धर्म मे निषिद्ध हो। जहाज मे आटा, चावल, घी, मसाले आदि खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा मे सचित कर दिए गए थे, साथ ही यह प्रवध भी सुनिश्चित किया गया था कि ऐसी आवश्यक वस्तुए प्रति सप्ताह जयपुर से लदन पहुचती रहे।

यह सब निश्चित हो जाने पर विलायत- यात्रा की तैयारिया जोर- शोर से चलने लगी ओर पूरे पाच माह इनमे लग गए। महाराजा के मुलाजिमो का एक दल वरावर बम्वई मे यह देखता रहा कि जलपोत ओलम्पिया मे सारी व्यवस्था करार के अनुसार हो रही है और उसमे आवश्यक वस्तुओ का भण्डार भी सुरक्षित हो गया है। किन्तु, यह भण्डार तभी स्थापित किया गया जव जहाज को धोकर शुद्ध कर लिया गया। इसके लिए पच्चीस ब्राह्मणो की एक टोली जयपुर से वम्वई भेजी गई थी।

इग्लैड यात्रा के इस शोर- शरावे और लम्बी चौडी तैयारियो ने रियासत की आम जनता को भी इसकी



चर्चाओ मे लिप्त कर दिया। जयपुर की एक प्रसिद्ध तानवाजी, जिसे महिलाए भी गाती थी, इस प्रकार थी–

अगरेजो ने दिया तार
विल्लात पधार्‌या रे।
राजा- महाराजा पधार्‌या रे।।

–अग्रेजो ने तार दिया तो विलायत पधारे, राजा- महाराजा पधारे।

जयपुर की गली-गली मे तव महाराजा की विलायत-यात्रा के चर्चे थे। जो भी तयारिया चल रही थी, वे अपने आप मे वेहद लम्वी-चाडी ओर निहायत रईसाना थी। फिर जव गली-कूचो मे, हाट-वाजारो मे या मकान-दूकान पर कही यह यात्रा-पुराण छिड जाता तो पूरा होने का नाम न लेता। राज-भक्त प्रजाजन इसे आर भी वढा-चढ़ा कर कहते-सुनते। यदि कोई चेला-खवास, खवरनवीस या छडी-वरदार जिसका ड्योढी या दरवार से सरोकार होता, इस चर्चा मे कोई नई सुर्खी छोड जाता तो वातचीत के ओर पख लग जाते। वेसे वुजुर्ग लोगो को जहा इस वात का सतोप था कि महाराजा उस अनजाने-अनदेखे देश मे भी सनातन धर्म की पूरी पावन्दी के लिये क्तिने आतुर ह, वहा जवान ओर पढने-लिखने वाले लोगो को उस शान-शोकत ओर रईस-मिजाजी से चकाचाध होती थी जो महाराजा ने अपने विदेश प्रवास मे प्रदर्शित करने की पूरी तैयारिया की थी।

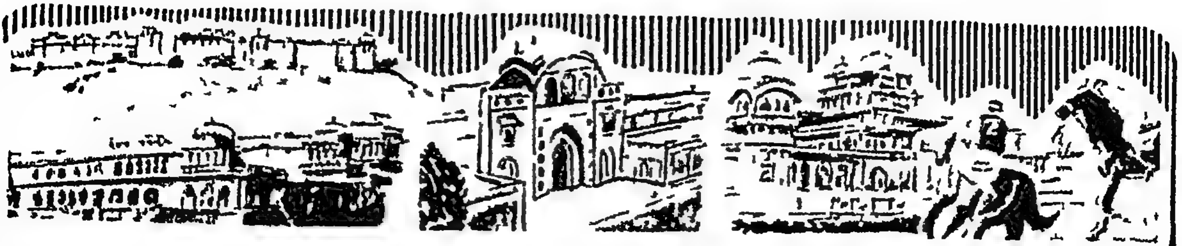
जहाज एस एम ओलम्पिया का किराया डेढ़ लाख रुपया तय प्पाया गया था, लेकिन सफर के दोरान कुछ "गेर-मामूली जरूरियात" भी उठ खडी हो सक्ती थी। इसके लिये यात्रा के प्रवन्धक टामस कुक एण्ड सस के पास ही पन्द्रह लाख रुपये की राशि नकद जमा रखी गई थी। इसके अलावा महाराजा के साथ तीस लाख रुपये का जेवर था जो अधिकाश मे जडाऊ था। इसकी कीमत का अन्दाज इस वात से लगाया जा सकता है कि 45 हजार पाड मे इसका वीमा कराया गया था।

"जैकम साहव"

स्वय महाराजा सहित उनके दल के सदस्यो की सख्या पूरी सवा सो थी जिन्हे सवाई जयपुर से विलायत तक जाना ओर वापस आना था। इनमे 103 तो कमचारी ओर शागिर्दपेशा ही थे जिन्हे आजकल की परिभापा मे क्लर्क, "क्लास फोर" आर "आर्डरली" क्हा जा सक्ता हे। शेप 22 मे ताजीमी सरदार या प्रथम श्रेणी के जागीरदार ओर आला अफमरान अथवा उच्चाधिकारी थे। जयपुर स्थित पोलीटिकल एजेन्ट या रेजीडेट की ओर मे जा रहा था कर्नल स्विन्टन जेकव, जिसे जयपुर वाले "जैकम साहव" कहते थे। इस साहव का भी जयपुरियो के माथ ऐसा तादात्म्य वठा था कि रियासत के चीफ इजीनियर के नाते वह किसी वध, सडक या इमारत की तामीर देखने जाता तो कारीगरो आर दूसरे मजदूरो से शुद्ध जयपुरी मे ही वोलता-वतराता। जयपुर शहर को पीने का पानी देने वाला रामगढ़ का मजवूत वन्ध ओर रामनिवास वाग मे एलवर्ट हाल या म्यूजियम की नायाव इमारत इस अग्रेज इजीनियर की कार्य-कुशलता का प्रमाण ह।

स्वय महाराजा साहव के जयपुर से प्रस्थान करने का मुहूर्त 9 मई, 1902 का था, किन्तु दल के अन्य लोग 5 मई से ही वम्वई जाने लगे थे। महाराजा ओर उनके अमले का सामान लेकर पहली स्पेशल रेलगाडी इसी दिन जयपुर से वम्वई रवाना हुई। इसमे कुल आठ डिव्वे थे जिनमे लादे गये सामान का वजन कोई दो हजार मन था। दूसरी स्पेशल ने 8 मई की रात जयपुर छोडा। इस गाडी मे खास-खास ताजीमी सरदार ओर वडी सख्या मे शागिर्दपेशा लोग थे।

9 मई को जयपुर स्टेट कासिल से एक "खास रोवकार" अथवा "गजट एक्सट्राडिनेरी" जारी हुआ जिसमे श्रीजी-महाराजा-के इगलैण्ड जाने की वाकायदा घोषणा की गई थी। इस दिन महाराजा सवेरे से ही अपने विशाल अन्त पुर अथवा जनानी ड्योढी और रियासत की प्रवन्ध-व्यवस्था के लिये मुसाहिबो और



उच्च अधिकारियो से महत्त्वपूर्ण मत्रणा मे व्यस्त रहा आर दोपहर वाद धार्मिक रीति-रिवाजो को पूरा करने मे लग गया। प्रस्थान से पूर्व, रात को लगभग आठ वजे, विधिवत पूजन किया आर नाहरगढ के किले मे पच्चीस तोपो के धमाको के वीच महाराजा की सवारी सिरहड्योढी दरवाजे मे महलो के वाहर निकली।

मेले का-सा समा

विलायत-प्रस्थान की इस सवारी को देखने के लिये सारे शहर मे मेले का-सा समा था। तत्कालीन विवरण के अनुसार सिरेहड्योढी वाजार आर जोहरी वाजार की पटरियो तथा दूकानो आर मकानो की छतो पर "मर्द, औरत, वूढे, जवान सभी ठ्ट्ठ के ठट्ठ खडे नजर आते थे।" महाराजा की सवारी सागानेरी दरवाजे से ठण्डी सडक ओर फिर अजमेर सडक पर आई। यह दोनो पुराने नाम अव मिर्जा इस्माइल रोड मे लुप्त हो गये हे। यहा होकर सवारी खासा कोठी (आज के राजस्थान स्टेट होटल) के पश्चिमी पार्श्व मे स्थित "विमान भवन" पहुची जहा "छोटी लीक" या मीटर गेज पर चलने वाले महाराजा के निजी सैलून 'श्री माधवेन्द्र विमान,' 'इन्द्र विमान' आदि रहते थे। "वडी लीक" के सलून सवाईमाधोपुर के विमान भवन को सजाते थे, किन्तु उनकी कोई आवश्यकता नही थी, क्योकि महाराजा ने अजमेर आर अहमदावाद होकर जाना तय किया था। महाराजा की स्पेशल रात को पाने वारह वजे जयपुर से रवाना हुई ओर 10 मई को दिन मे मारवाड जक्शन पहुची। वहा जोधपुर रियासत की ओर से महाराजा का स्वागत-सत्कार करने के लिये मुसाहिव-आला, अथवा चीफ मिनिस्टर और प्रमुख सरदार व ओहदेदार विशेष रूप से उपस्थित थे। उन्होने प्लेटफाम पर ही जयपुर-दरवार को अपनी "नजरे" पेश की।

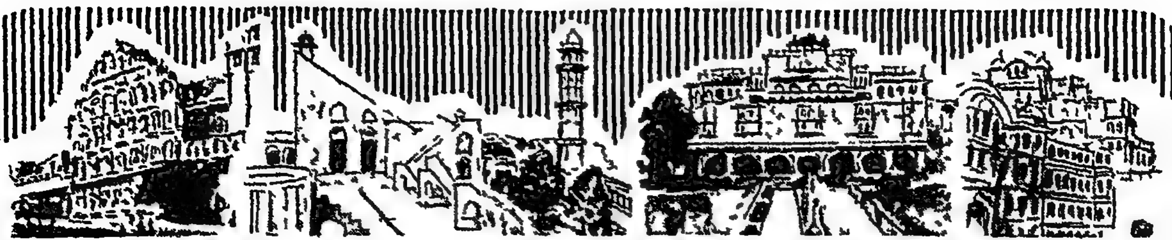
गाडी से उतरते ही महाराजा के लिए एक "ताम-झाम" अथवा खुली पालकी हाजिर थी जिसमें विराजमान कर उसे पास ही के एक वगले मे ले जाया गया जो उसकी "सरवराह" या आवभगत के लिये वनवाया और सजाया गया था। मारवाड की गर्मी मे इस वगले मे "खस की टट्टियो आर पखो वगैरह का ऐसा माकूल इतजाम था कि गर्मी नाम को भी नही मालूम होती थी।" ठाकुर श्री गोपालजी तो महाराजा के लश्कर मे सदैव आगे चलते थे। उनका चलता-फिरता मन्दिर भी रेलगाडी से इस वगले मे आया ओर यहीं सध्या-आरती की शोभा हुई। इसके वाद महाराजा स्टेशन लौट गया क्योकि गाडी का समय हो रहा था।

महाराजा की स्पेशल रात भर के सफर के वाद अहमदावाद पहुची और 11 मई को दिन का कयाम वहा के प्रसिद्ध नगरसेठ जयसिह भाई धारा की आलीशान कोठी मे रहा। एक रात आर रेल का सफर करने के वाद 12 मइ को महाराजा वम्वई के कोलावा स्टेशन पर पहुच गया।

वम्वई जैसे शहर मे भी महाराजा का स्वागत राजसी शान-शौकत के साथ हुआ—जैसा प्राय विदेशो से आने वाले मोअज्जिज मेहमानो का हुआ करता हे। स्पेशल गाडी प्लेटफाम पर पहुची ही थी कि सलामी की तोपे दागी गई। वम्वई के अनेक सेठ-साहूकारो ने स्टेशन पर ही डालिया पेशकर महाराजा की अगुवानी की। जयपुर के ब्रिटिश रेजीडेन्ट और सरदार-जागीरदार पहले ही वम्वई पहुच चुके थे ओर उन्होने इस स्वागत सत्कार को शानदार वनाने मे कोई कसर न छोडी थी।

स्वागत की सारी औपचारिकताओ से निवट कर महाराजा ने सैलून मे ही पोशाक बदली ओर रेजीडेट, काव साहव के साथ ओपेलो वन्दर के लिए रवाना हुआ जहा से उसकी इग्लैड यात्रा का दूसरा चरण सागर-मार्ग से पूरा होना था।

अभिनन्दन कराने और मान-पत्र स्वीकार करने का मर्ज हमारे आजकल के माननीय मंत्रियो मे बहुत वढा-चढा वताया जाता है, किन्तु इस सदी के आरम्भ मे भी यह बीमारी चल पडी थी। महाराजा माधोसिह का इगलिस्तान जाना तव कोई तीर मारने से कम न था। हिन्दी के पुराने और प्रतिष्ठित समाचार-पत्र, "श्री वेकटेश्वर समाचार", ने महाराजा को मान-पत्र भेट कर इस अवसर की गुरुता जताई। तत्कालीन वम्वई के



सुप्रसिद्ध श्री वेकटेश्वर स्टीम प्रेस के सचालक ने महाराजा का अभिनन्दन करते हुए जो मान-पत्र पढा उसमे न केवल एक प्रजा-पालक और लोकरजक नरेश के नाते महाराजा की प्रशस्ति की गई, अपितु उसे सनातन धर्म का सच्चा सरक्षक और प्रतिपालक भी बताया गया जो राजभक्ति और सम्राट् के प्रति अपनी वफादारी निभाने के साथ-साथ धर्म पर भी अटल रहने के लिये कृत-सकल्प होकर उस दूर-देश को प्रस्थान कर रहा था।

इस अभिनन्दन समारोह मे महाराजा ने कोलावा से ओपैलो बन्दर जाते समय भाग लिया था। इसके तत्काल वाद वह बन्दरगाह पहुचा जहा जहाज का डाक्टर महाराजा के दल के एक-एक सदस्य की स्वास्थ्य-परीक्षा कर यात्रा के लिये "पास" दे रहा था। जहाज ओलम्पिया महाराजा का सब सामान-असबाब लादे तैयार खडा था, लेकिन रवानगी मे अभी थोडा समय बाकी था। महाराजा ने यह समय अपने पण्डितो के परामर्श के अनुसार सागर का विधिवत् पूजन करने मे बिताया।

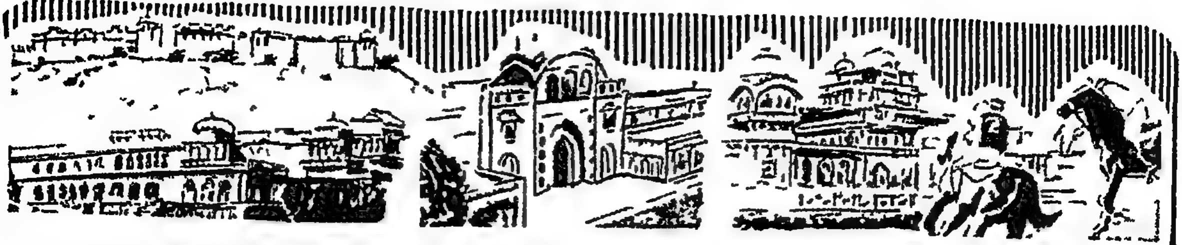
सागर की पूजा

सागर-तट पर बिछाये गये राजसी आसन पर महाराजा पालथी मारकर इस धार्मिक क्रिया मे सलग्न हुए। ब्राह्मणो ने वेद मत्रो से वातावरण को झकृत कर दिया। वरूणदेव की स्तुतिया गाई गई। पूजन का विधि-विधान ठीक उसी प्रकार रखा गया था जिस प्रकार रामायण मे रामचन्द्र की समुद्र-पूजा का वर्णन आता है। त्रेता युग मे लका जाते समय सेतुवध पर श्रीराम ने जैसे सागर की अर्चना की थी, वैसे ही उनके कछवाहा वशज, महाराजा माधोसिह ने इस कलि-काल मे सागर की पूजा की। समुद्र-पूजा के इस कार्यक्रम ने बम्वई वालो को वडी सख्या मे आकर्षित किया। हजारो लोगो ने सभी उपलब्ध नौकाए किराये पर ली और पूजन को देखने के लिये चारो ओर जमा हो गये। जब महाराजा ने शुद्ध सोने और चादी के कलश, सच्चे मोतियो की मालाये और रेशमी पारचे के कीमती वस्त्र समुद्र को अर्पित किये तो उस कुबेर-नगरी के सेठ साहूकार दर्शक भी देखते ही रह गये। महाराजा ने अपने हाथो जव समुद्र अथवा वरूण देव की आरती उतारी तो एक अविस्मरणीय दृश्य उपस्थित हो गया। बम्बई मे वैसा दृश्य इसके बाद शायद कभी देखने को नही मिला। पूजा के वाद ब्राहमणो ने महाराजा का अभिषेक कर स्वस्ति-वाचन किया और यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न होने के आशीर्वचन कहे।

समुद्र-पूजन के अनन्तर जलपोत, ओलम्पिया, की भी पूजा की गई जिसे जयपुर से गये हुए पच्चीस ब्राह्मणो की टोली ने पहले ही धो-पोछकर शुद्ध कर दिया था। इसके तत्काल बाद ही जहाज ने लगर उठा दिया और महाराजा को सदल-वल सात समन्दर पार इगलैण्ड की ओर ले चला।

ओलम्पिया जहाज जब मन्थर गति से बम्बई का किनारा छोडकर समुद्र मे लहराने लगा तो महाराजा शातचित्त कभी भारत-भूमि के तट को निहारते तो कभी आगे फैले हुए अपार सागर पर दृष्टिपात करते। महाराजा को फख्र था तो यह कि मुगल सम्राटो की आज्ञा पर जैसे उसके पूर्वज अटक से लेकर सुदूर दक्षिण और गुजरात से बगाल और असम तक शाही फरमान बजाने मे कोई उहापोह नही करते थे, वैसे ही वह भी ताज के प्रति अपनी निष्ठा बताने के लिये भारत से दूर, सात समन्दर पार जा रहा है। इस बात का आत्मतोप था कि अपने धर्म और रीति-रिवाजो का कडा पालन करने की उसकी पूरी तैयारी है, साथ ही यह बल भी कि उसके इष्टदेव, ठाकुर श्रीगोपालजी जव साथ है तब किसी भी अनिष्ट की आशका निर्मूल है!

सागर की लहरो की अठखेलियो और कलावाजियो से आरम्भ मे तो सवका मनोरजन हो रहा था, किन्तु रात का अन्धकार होने से कुछ पहले ही समुद्र की यह लहरे उत्ताल तरगो मे बदलने लगी। नव-निर्मित और सुदृढ जलपोत, ओलम्पिया, डगमगाकर कभी कई फुट ऊचा उठ जाता तो कभी एक गारगी ही कई-कई फुट नीचे धसकता मालूम होता। समुद्र की वडी-वडी लहरे जहाज और उसके तख्तो मे टकराकर ऐसा शोर



मचाने लगी जो वेचारे जयपुरी यात्रियो के लिए सर्वथा अनजाना था।

जमीन भी अव अन्तर्धान हो चुकी थी और चारो ओर अथाह सागर फेला था। सामुद्रिक पक्षी-सीगल-के अतिरिक्त कोई परिन्दा भी नजर नही आता था। समुद्र तो समुद्र था, जयपुर वालो को किसी वडी नदी के दर्शन भी प्राय सुलभ न थे। इसलिए जिस नए अनुभव मे होकर वे गुजर रहे थे, वह उनका कलेजा वेठाने के लिये काफी था। साथ वालो की इस घवराहट से महाराजा भी अनभिज्ञ नही था। उन्हे आश्वस्त करने और स्वय आश्वस्त होने के लिये उसने अपने कुछ विश्वस्त सेवको को जहाज के कप्तान के पास भेज ही तो दिया।

जहाज के कप्तान ने वताया कि तूफान आया हुआ है, किन्तु इससे जहाज को किसी भी प्रकार का नुकसान होने का कोई अन्देशा नही है। इस इत्मीनान से सबको तसल्ली हुई पर किसी को नीद न आई क्योकि तूफान देर रात तक वना रहा था।

सामुद्रिक रोग

सभी का जी मिचलाने लगा, चक्कर आने लगे और कुछ लोगो को कै तक हो गई। डाक्टर ने वताया कि यह कुछ नही, "सी-सिकनेस" है जो समुद्र यात्रा मे प्राय हो जाती है, विशेषत उन लोगो को जो इसके अभ्यस्त नही होते। जयपुर से आने वाले ऐसी यात्रा से नितान्त अनभ्यस्त थे और सभी इस सामुद्रिक रोग से पीडित थे। किन्तु, स्वय महाराजा इसका अपवाद सिद्ध हुआ। उसका न जी मिचलाया और न कोई चक्कर आया।

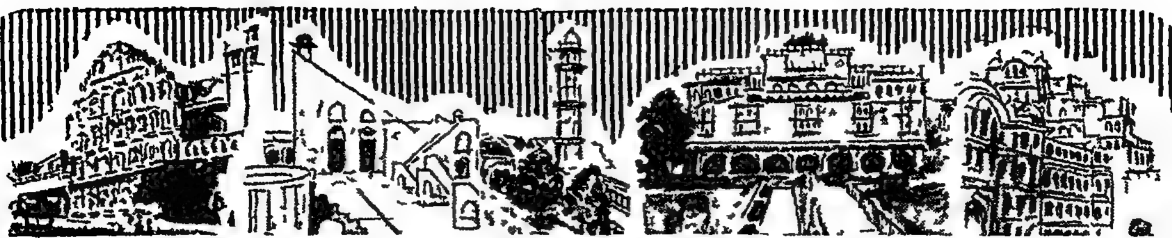
वास्तव मे महाराजा अपने "केविन" मे लेटे हुए था। डाक्टर ने वताया और तजुर्वे से भी यही मालूम हुआ कि सामुद्रिक रोग का असर उन लोगो पर नही होता या कम होता है जो किसी वडी लहर के आने के समय लेटे हुए होते है।

दरियाई सफर की यह कैफियत जयपुर वालो की भी आदत वनने लगी। वम्वई छोडे अव पूरे छह दिन हो चले थे। जहाज के कप्तान ने बताया कि अदन का वन्दरगाह करीव है और जहाज अगले दिन वहा पहुच जायेगा। यह सूचना पाकर सभी की मायूसी खुशी मे वदलने लगी और लोग आने वाली सुवह का वेसब्री से इतजार करने लगे। वैसे मौसम भी अव ठीक था, पिछले दो दिनो मे जो तेज हवा सामने से चल रही थी, वह भी बन्द हो गई थी। दूर क्षितिज पर अरव के सूखे पहाड और कही-कही वालू रेत के टीले भी नजर आने लगे थे। महाराजा के दल के एक सदस्य, मेरे मोहल्ले के एक वयोवृद्ध खवास जी वावाजी का कहना था कि दूर से यह पहाड अजमेर को घेरने वाले पहाडो की तरह मालूम होते थे और रेत के टीले शेखावाटी की याद दिलाते थे। यह खवासजी बाबाजी जो कोई चालीस साल पहले 76 वर्ष की आयु मे इस दुनिया से उठ गया, अक्सर लोगो की हजामत बनाते समय अपनी विलायत यात्रा के सस्मरण सुनाता। इस "इगलैण्ड-रिटर्न्ड" हज्जाम से सिर मुडवाने या दाढी वनवाने वालो को यह और इजाफा होता।

जयपुर छोडने के दस दिन और बम्बई से रवाना होने के पूरे एक सप्ताह वाद ओलम्पिया जहाज 19 मई, 1902 को सवेरे ही अदन के बन्दरगाह मे दाखिल हो गया। अपने पावो के नीचे फिर जमीन पाकर सभी यात्रियो को बडी खुशी हुई और सबने श्री गोपालजी महाराज का जय-जयकार किया।

अदन का दृश्य, पोर्ट सईद की सैर

खवासजी बाबाजी था तो शागिर्दपेशा, लेकिन मर्दानी ड्योढी या महाराजा के महल खास मे रहते- रहते उसकी दृष्टि सूक्ष्म और सूझबूझ पैनी हो गई थी। "इग्लेड रिटर्न्ड" होकर उसके अनुभव और दुनियादारी को जैसे चार चाद लग गये थे। घुटनो तक की धोती और प्राय मैले से मलमल के कुर्ते मे भी उसका व्यक्तित्व भरी- भरी सफेद दाढी और सिर पर ऊची पगडी के कारण बडा रौबीला लगता। दाढी और पगडी, यह दोनो चीजे उसे साफ माधोसिह युग का प्रतिनिधि जताने के लिए काफी थी। चाल- ढाल मे युवको जैसी स्फूर्ति और



बातचीत के अन्दाज मे एक अजीब विश्वास जैसा जानकार लोगो को हुआ करता है, खवासजी बाबाजी मे था। फिर स्वामी- भक्ति और नमकहलाली तो उसमे कूट- कूट कर भरी थी। "बडे श्रीजी"[1] अर्थात दिवगत महाराजा की विलायत यात्रा के जो भी सस्मरण वह सुनाता वे उसके चरित्र के इस गुण और व्यक्तित्व की विशेषता से अछूते न रहते। 'बडे श्रीजी' का नाम जुबान से निकलना होता कि उसकी बूढी आखो मे एक चमक आप से आप आ जाती— चमक जिसमे खुशी से ज्यादा अदब होता, आभार और कृतज्ञता के वह भाव होते जो जिन्दगी भर उस राजा की बन्दगी करने और उसके बदले मे खाने- पहिनने और रहने की चिन्ता से एकदम मुक्त रहकर उस बूढे हज्जाम ने अपने दिल मे पाले थे। इग्लैड यात्रा उसके इस सुख- सन्तोष से भरी सेवा- चाकरी की जिन्दगी का ही एक दिलचस्प और साहसिक अध्याय था।

महाराजा के अदन पहुचने का आखो देखा हाल बताते हुए खवासजी बाबाजी ने एक दिन कहा था "बडा श्रीजी की बाता काई क्हणी! जहाज का कप्तान नै भी गरब- गरूर हो गयो छो क वो जाणै किस्याक आला रईस नै ले र बिलायत जा र्‌ह्यो छै।।" (बडे श्रीजी की बातो के क्या कहने है! जहाज का कप्तान भी यह गर्व करता था कि वह न जाने कैसे आला रईस को लेकर विलायत जा रहा है।।)

खवासजी बाबाजी के अनुसार वहा, अदन मे, महाराजा के इग्लैड जाने का पहले से ही काफी गुल- शोर था। रग- बिरगे झण्डो से सजे, जिनमे जयपुर का पचरग सबसे ऊपर फहराता था, जहाज "ओलम्पिया" को देख देख कर सब चकित थे। जहाज के ठाठ और उसके यात्रियो की "जर्क- बर्क पोशाको" को देखकर अदनवासी समझ रहे थे कि किसी देश का बादशाह इस जहाज मे सफर कर रहा है। महाराजा की हैसियत के बारे मे ऐसी धारणा अकारण भी नही थी क्योकि जहाज जैसे ही बन्दरगाह मे दाखिल हुआ था, अदन के ब्रिटिश किले से इक्कीस तोपो की सलामी दागी गई थी, ठीक उसी तरह जैसे जयपुर मे नाहरगढ के किले से दागी जाती थी।

अदन मे एकत्रित भीड को जब महाराजा के दर्शन हुए तो स्त्री, पुरुष और बच्चे बार- बार उनकी ओर सकेत कर आपस मे बताने लगे "दी किग, देयर इज दि किग।" — राजा, वह है राजा!

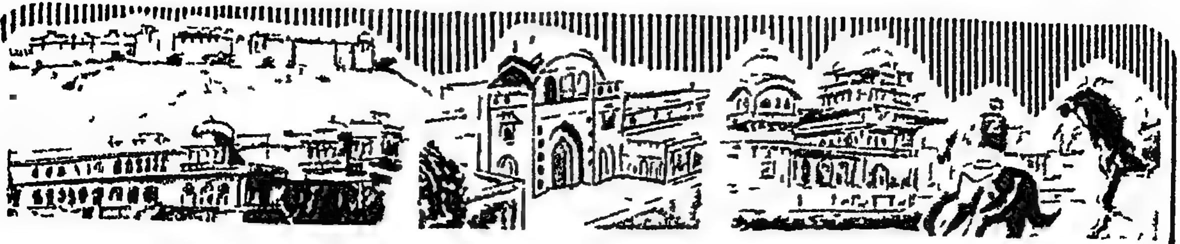
"कुण जाण्यो?"

किनारे पर जब "ओलम्पिया" को देखने के लिए भीड आतुर थी और तोपो के धडाके शुरू हो गए थे तो महाराजा स्वय अदन के दृश्यावलोकन के लिए कप्तान के कमरे मे गया। खवासजी बाबाजी के शब्दो मे वह राजा राजा ही था, उस भाग्यवान के साथ जिस ऐशआराम और ठाठ- बाठ के साथ उस जैसे अदना लोग भी सात समन्दर पार हो आए, वह क्या अब राजा- महाराजाओ को भी नसीब हो सकते है? इस प्रश्नवाचक के साथ खवासजी की एक निरूत्तर करने वाली उक्ति और होती "अब देखल्यो, मानसिहजी म्हाराज रोजीना आवै छै और जावै छै, पण कुण जाण्यो!" —देख लीजिए, (वर्तमान) महाराजा मानसिह जब- तब (विलायत) चले जाते है और लौट आते है, किसी को मालूम तक नही होता।

खवासजी बाबाजी अरब के काले- कलूटे, नग- धडग छोटे- छोटे बालको की गोताखोरी के कमाल भी याद करता था। गरीबी के शिकार यह बालक यात्रियो से पैसे मागते थे। यात्री उनके लिए समुद्र मे पैसो की बौछार करते और सारे बालक उनके पीछे पानी मे गोते लगाते, डूबते पैसो को दातो से पकडकर बाहर निकाल लाते। फिर वह अपने मुह खोल- खोलकर एकत्रित पैसो को यात्रियो को दिखाते। उनका मुह ही गल्ले- पैसे रखने की पेटिका- का काम देता। इन लडको की तैराकी भी गजब थी, बहुत गहरे पानी मे भी कुछ ऐसे करिश्मे से खडे दिखाई देते जैसे जमीन पर ही खडे हो।

अदन मे ही महाराजा ने यह दर्दनाक समाचार सुना कि बम्बई और अदन के बीच जिस तूफान का उनके

1 मृत्यु के बाद महाराजा माधोसिह को 'बड श्री जी' के नाम से ही याद किया जाता था



जहाज ने सामना किया था, वह एक जर्मन जहाज के डूब जाने का कारण बना था। कुछ यात्रियो को बचाया जा सका, फिर भी कम से कम 32 व्यक्ति डूब गये। इस दुर्घटना पर स्वय महाराजा ने दिल से अफसोस जाहिर किया। चर्चा थी तो यही कि "ओलम्पिया" की रवानगी बम्बई से दो दिन बाद हुई जब समुद्र मे तूफान का जोर काफी घट गया था। यदि उनका जहाज भी पहले बम्बई छोड देता और इस तूफान मे फस जाता तब? सुरक्षित अदन आ पहुचने के सयोग को सबने इश्वरीय वरदान और श्री गोपालजी महाराज की कृपा माना और भगवान के दर्शन कर भेट चढाई।

अदन मे "ओलम्पिया" ने भी कोयला लिया और आगे की यात्रा के लिए रवाना हुआ तो वहा के किले से फिर सलामी की 21 तोपो के धडाके हुए। कइ दिनो बाद जमीन पाकर फिर समुद्र पर लहराने के इस अवसर पर सभी को एक बार पुन घर याद आया। अब तो हिन्दुस्तान के पडोसी मुल्क भी पीछे छूटे जा रहे थे। जल्दी ही जहाज लाल समुद्र मे दाखिल हो गया। तभी एक मल्लाह ने यह कहकर सबको चौकस कर दिया कि पेरिम का टापू करीब है। यह वह जगह थी जहा पहले अक्सर जहाज टकराकर चूर- चूर हो जाते थे और डूब जाते थे। किन्तु इस तग मुकाम पर अब वैसा कोई खतरा नही रहा था क्योकि अब इन चट्टानो पर एक "लाइट हाउस" या प्रकाश- स्तभ खडा था।

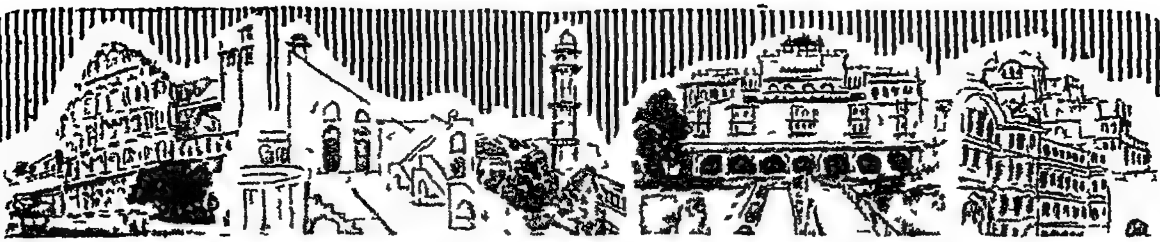
मौसम बदला

पैरिम पीछे छूटा कि मौसम बदला, यह बात महाराजा और उनके सहयात्रियो को पहले से ही बता दी गई थी। सचमुच अब वह गर्म हवा न थी जो अरब सागर और लाल समुद्र के रास्ते भर चलती रही थी। शीतल समीर ने सबके मनो को हुलसा दिया। स्वय महाराजा और उनके खास- खास सलाहकार शाम की हवाखोरी के लिए "ओलम्पिया" के डेक पर चले गये और उडान भर- भर कर पानी मे डुबकिया लगाने वाली मछलियो की अठखेलिया देखते रहे। ये मछलिया चालीस या पचास गज की दूरी तक छलाग लगाती थी और पानी मे डूब जाती थी। जयपुर वालो के लिए यह अपने आप मे एक तमाशा था।

इस तरह तीन दिन बीत गये और चादनी रात मे जहाज ने स्वेज नहर को पार किया। अगले दिन दोपहर से पहले ही जहाज पोर्ट सईद के बन्दरगाह पर पहुच चुका था। चूकि यहा जहाज को फिर कोयला लेना था और ठहराव का समय वैसे भी अधिक था, महाराजा ने सब मुलाजिमान और शागिर्दपेशा को किनारे पर जाकर सैर- सपाटे की इजाजत दे दी।

सब लोगो ने इस इजाजत का पूरा फायदा उठाया। बन्दरगाह तरह- तरह की नौकाओ और अनगिनत सौदागरी जहाजो से भरा पडा था तो जमीन पर सैकडो घोडा- गाडियो के बीच ट्राम भी चल रही थी। नर- नारियो का खासा हुजूम था, बेहद रौनक थी। अपनी चित्र- विचित्र पोशाको से जयपुर वाले सबको आकर्षित करते थे और उस अजनबी देश के रग- ढग जयपुर वालो के लिए कौतुहल की सामग्री थे।

शाम को जहाज ने पोर्ट सईद छोड दिया और इसके साथ ही भूमध्य सागर की लहरो ने फिर जहाज को डगमगाना शुरू किया। अनेक लोग फिर सामुद्रिक रोग से पीडित हो गये और इस लम्बे सफर के दौरान तरह- तरह के शक- शुबहे बेचैन करने लगे। किन्तु, रात का यह आलम रात के साथ ही समाप्त हो गया। सवेरे समुद्र शान्त था जिससे आम तौर से सभी का जी हल्का हो गया था। लेकिन इसी समुद्र मे अभी दो दिन और चलना था, तब कही फिर जमीन के दर्शन होने वाले थे। यह जमीन थी सिसली के टापू की। इसी का इन्तजार था, लेकिन इतने दिन की यात्रा के बाद अब लोग दरियाई सफर के खतरो और आनद, दोनो के बहुत कुछ अभ्यस्त भी हो चले थे। करतार की कारीगरी या भगवान की माया को सराहते, दूर देशो के प्रति अपनी जिज्ञासा को मिटाते, डरते- डराते, लहरो पर लहराते और मजा लेते महाराजा का दल यूरोप के उस दक्षिणी सागर मे अपनी मजिल की ओर आगे बढने लगा।



समुद्र की शाति से सभी के चित्त भी शात थे और दोपहर के भोजन के बाद महाराजा स्वय अपने केबिन मे आराम करने लगा। उसकी आख लगी ही होगी कि खडबड- भडबड की आवाजे रह- रह कर आने लगी और नीद आते- आते उचट गई। लोग यह खोजने के लिए इधर उधर दौडने लगे कि महाराजा की नीद मे खलल डालने वाली यह आवाज दरअसल कोई खतरा है या कोई और माजरा? सागर तो शात था, लेकिन हवा वेशक तेज चल रही थी। जहाज के तख्ते, यानी डेक पर जाने से मालूम हुआ कि यह केवल एक पिगपाग की टेबिल की आवाज थी जो तेज हवा के कारण इधर- उधर लुढक रही थी और अजीबोगरीब आवाजे पैदा कर रही थी।

जो हो, महाराजा की नीद उचट चुकी थी, इसलिए दूसरे सरदारो को भी जगा दिया गया और सब लोग जहाज के डेक पर ही चले गए जहा शाम का पूरा समय समुद्र की सैर करने मे काटा गया। दो दिन और भूमध्य सागर मे चलने के बाद 29 मई को सवेरे ही जहाज के दाहिनी ओर फिर जमीन दिखाई देने लगी। यही सिसली का द्वीप था।

खवासजी बावाजी ने अपने हमजोलियो के साथ इस टापू का नजारा दूर से, दूरबीन की मदद से, देखा था। तव से उस युवा दर्शक की कोई चालीस साल वाद भी वह कल की- सी वात की तरह याद था। एक ओर बर्फ का पहाड नजर आता था, इटना, और दूसरी ओर दूर तक हरे- भरे खेत फैले थे। पहाड के नीचे समुद्र तट के वरावर वडी दूर तक एक सीधी लकीर चली गई थी जो नजदीक जाने पर पक्की सडक के रूप मे प्रकट हुई। सडक के ठीक सामने ही रेल की "लीके" या पटरिया थी जिन पर एक छोटी रेलगाडी भी "फक्- फक्" कर रही थी।

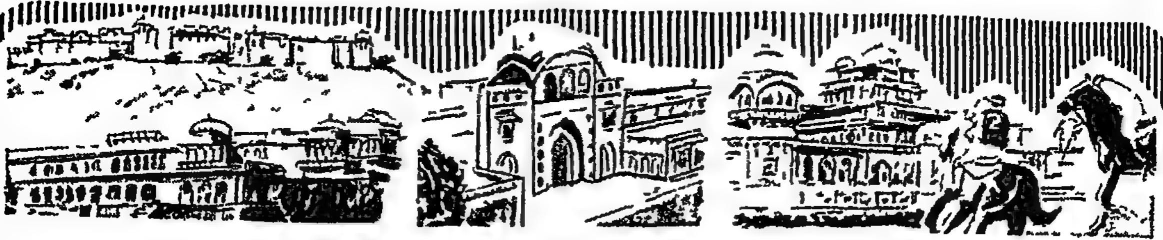
सब लोग इस दृश्य को देख-सराह रहे थे कि आसमान पर बादल छा गये और शात सागर में फिर से हलचल पैदा हो गयी। तूफान की लहरो पर जहाज भी डगमगाने लगा और कुछ ही मिनट पहले का सुहावना दृश्य भयावह मालूम होने लगा। महाराजा को वताया गया कि यह मैसीनिया की खाडी है और यहा इन दिनो अक्सर ऐसा मौसम हो जाता है। राम-राम कर जयपुर के यात्रियो ने इस खाडी को भी पार किया और मार्सेलीज वन्दरगाह की ओर बढने लगे। अव केवल एक दिन का सफर और था।

मार्सेलीज की "राहदारी"

महाराजा को मालूम कराया गया कि मार्सेलीज मे महसूली माल-सामान की तलाशी ली जाती है और यूरोप की यह "राहदारी" या चुगी नाका जहाज "ओलम्पिया" को भी तलाशी लिये विना नही जाने देगा। लिहाजा जहाज के सारे असवाव की एक याददाश्त-फेहरिस्त या विस्तृत सूची तैयार कराई गई, साथ ही एक तार लदन भेजा गया, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पोलीटिकल ए डी सी कर्जन वायली को। इस तार मे उसे मार्सेलीज के चुगी अधिकारी को यह हिदायत देने का अनुरोध किया गया था कि महाराजा जयपुर के महसूली सामान की जाच-पडताल मे वक्त जाया न किया जाय।

यह सारी आवश्यकता इसलिये पडी कि महाराजा ने जहाज का सफर मार्सेलीज मे ही तमाम करने का फैसला किया था। इसके दो कारण थे। पहला यह कि जब दक्षिणी फ्रास के इस वन्दरगाह से कैले तक रेल से पहुचा जा सकता है तो दरियाइ सफर का खतरा उठाने मे कोई तुक नही। दूसरे, मल्क फ्रास की भी सैर हो जायेगी। इसलिए "ओलम्पिया" को तो यह हिदायत दी गई कि वह सीधा इग्लैण्ड के लिवरपूल वन्दरगाह पर पहुचे और महाराजा सदल-वल मार्सेलीज की जमीन पर उतर गये।

मार्सेलीज मे चुगी अधिकारियो ने जहाज का "हस्वमामूल" मुआयना कर अपना कायदा पूरा किया। उन्हे लदन से, और पेरिस से भी, आवश्यक निर्देश मिल चुके थे। यह अधिकारी जहाज के सव केविनो मे घूम भर गये। खवासजी बाबाजी के अनुसार उनके श्रीजी की विलायतो तक ऐसी धाक थी कि महाराजा के खासा



केबिन और ठाकुर श्रीगोपालजी के मन्दिर मे घुसकर मुआयना करने की किसी ने जुर्रत नही की। सब मुसाफिरो का डाक्टरी मुआयना अलबत्ता किया गया, लेकिन किसी को भी किसी तरह की कोई दिक्कत नही हुई।

गरीबो को खैरात

मार्सेलीज मे महाराजा ने पहला काम यह किया कि वहा के अग्रेज हाकिम को एक चिट्ठी के साथ दो हजार फ्राक (फ्रास का सिक्का) भेजकर यह इच्छा प्रकट की कि यह रकम गरीबो को बाट दी जाय। वास्तव मे यह खैरात हिन्दुस्तान से यूरोप तक के दरियाई सफर के शातिपूर्वक सम्पन्न हो जाने के उपलक्ष मे थी। "दान-पुण्य तो वह राजा पग-पग पर करता चलता था।" मेरे खवासजी बाबाजी ने बताया था कि मार्सेलीज मे उन लोगो को अच्छा वक्त मिला और वह स्वय भी कई लोगो के साथ थियेटर देखने गया था। लेकिन जब वे वापस लौटे तो एक अजीब ही नजारा देखने को मिला "जो थियेटर से किसी कदर कम न था।"

यह नजारा पैदा किया था भारतीय फलो के राजा, आम ने। महाराजा के खान-पान के सामान मे जयपुर से आम भी अच्छी तादाद मे रखे गये थे। मार्सेलीज पर जब सामान उतरने लगा तो वहा के लोगो की नजर आम पर पडी। बस क्या था, मुह मे पानी भर आया। खवासजी बाबाजी कहते थे "आम भी क्या फल है, उधर विलायतो मे होता ही कहा है यह! फिर श्रीजी के खासा "जीमण" के आम, छाट-छाट कर रखे गये "दरसणी" दसेरी, लगडे और रेशे या तन्तु से सर्वथा मुक्त मोहनभोग आम!! " आम देखे कि "बडे-बडे कोट-पेट-हैट-धारी साहबो और मेमो की नीयत डिग गई" और कुछ लोगो ने तो—"बेसबरी" (बेसब्री) और "बेसरमी" (बेशर्मी) से मागना भी शुरू कर दिया।

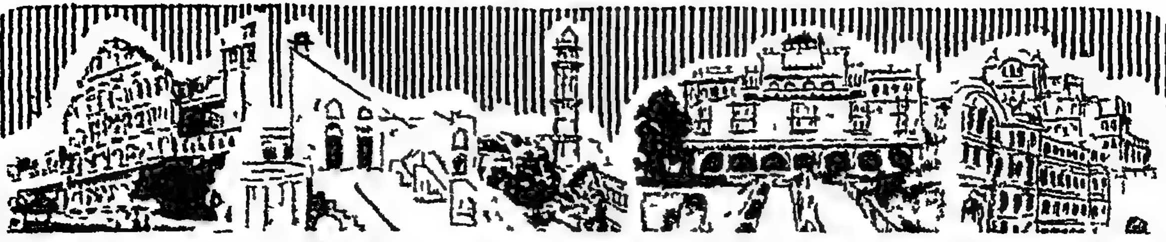
महाराजा को मालूम हुआ तो फौरन कुछ आम बाट देने का हुक्म फरमाया गया। यह बट ही रहे थे कि भीड बढ गई और अब तो सभी हाथ फैला-फैलाकर आम मागने लगे। महाराजा ने स्वय यह नजारा देखा तो अपने भण्डार के तमाम आम के टोकरो को खाली करा दिया। मार्सेलीज की उस भीड म किसी मनहूस को ही न मिला हो तो न मिला हो, वरना चखने को सबको आम मिल गया, लोगो ने आखे मटका-मटका कर बडे चाव से भारत के इस लज्जतदार फल का लुत्फ लिया।

जहाज से स्पेशल रेल में

मार्सेलीज से कैले बन्दरगाह तक का सफर 24 घण्टे का सफर था जो फ्रास के बीचो-बीच होकर किया जाना था। जयपुर की तरह यहा भी महाराजा के दल के लिए एक स्पेशल रेलगाडी प्लेटफार्म पर आ लगी और जहाज "ओलम्पिया" की तरह उसकी भी शुद्धि की गई। तभी अपने इष्टदेव गोपालजी की मूर्ति के साथ महाराजा माधोसिह इसमे विराजमान हुआ।

लेकिन सवारियो से ज्यादा महाराजा के साथ सामान था जिसे रखने-रखाने मे यह गाडी अपने नियत समय से कोई आधा घण्टा देर से छूट पाई। फ्रास के हरे-भरे खेतो और बाग-बगीचो से भरपूर देश की प्राकृतिक शोभा को सराहते महाराजा और उसके सहयात्री जब कैले पहुचे तो "लेडीज एण्ड जैन्टिलमैन" की भारी भीड ने "चियर्स" देकर उनका स्वागत किया। इगलिस्तान पहुचने के लिए अब केवल इगलिश चैनल को पार करना ही शेष था और मात्र आधे घण्टे की इस यात्रा के लिए "डचेज आफ यार्क" जहाज तैयार खडा था।

यह सफर आनन-फानन मे पूरा हुआ और डोवर के बन्दरगाह मे जहाज के दाखिल होते ही एक ब्रिटिश युद्ध-पोत ने सलामी की इक्कीस तोपे दाग कर जयपुर-नरेश के इग्लैण्ड पहुच जाने की सूचना दी। महाराजा जैसे ही जहाज से उतरे, सप्तसागरा ब्रिटेन के सम्राट की ओर से दो सुन्दर गुलदस्ते भेट किये गये। "बादशाही कृपा का यह पहला प्रसाद" महाराजा ने ठाकुरजी श्रीगोपालजी के कैबिन मे रखवाया।



डोवर मे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पोलीटिकल ए डी सी सर कर्जन वायली, भारत सचिव के निजी सचिव ओर दूसरे अग्रेज अधिकारियो ने महाराजा की अगुवानी की। डोवर के लार्ड मेयर ने महाराजा को एक मानपत्र भी भेट किया। महाराजा ने इसके लिए धन्यवाद देते हुए इस बात पर बडी प्रसन्नता प्रकट की कि "बादशाह सलामत की ताजपोशी जसे मुबारक माके पर पहले-पहल इग्लेण्ड आना हुआ हे।"

डोवर मे इस अवसर पर पुलिस का विशेष प्रबन्ध किया गया था। महाराजा के सामान के कोई छह सा अदद थे जिन्हे हिफाजत के साथ उतारने आर रेल मे लादने मे दो घण्टे से भी अधिक समय लगा। खवासजी बाबाजी ने फख्र के साथ बताया था कि काली साटन का चुगा धारण किए महाराजा माधोसिह और रगीन अगरखियो तथा लहरिया के पेचो की जयपुरी पोशाक मे उनके हमराहियो ने कसे एक ही झलक मे इगलिस्तान वालो पर अपनी जादू भरी छाप डाली थी। कैसे वहा पर एकत्रित मेमे आर साहब लोग विस्मय के साथ सबको देख रहे थे आर महाराजा की शान-शौक्त के साथ उसके मान-सम्मान पर तरह-तरह की कल्पनाये आर टिप्पणिया भी कर रहे थे।

डोवर से लन्दन फिर स्पेशल रेलगाडी का सफर था जो डोवर की भीड के "चियर्स" के बीच महाराजा ने आरम्भ किया। आगे लन्दन तक वे "गाडन ऑफ इंग्लेण्ड" की प्राकृतिक सुषमा से सम्मोहित रहे आर कर्जन वायली व दूसरे अग्रेज अधिकारियो से सूर्य अस्त न होने वाले साम्राज्य की मुख्य भूमि की भूरि-भूरि प्रशसा करते रहे। कूटनीतिक वार्तालाप मे ऐसी स्तुति परम आवश्यक हे, इस बात से अग्रेजी न जानने वाला महाराजा माधोसिह भी अनभिज्ञ नही था।

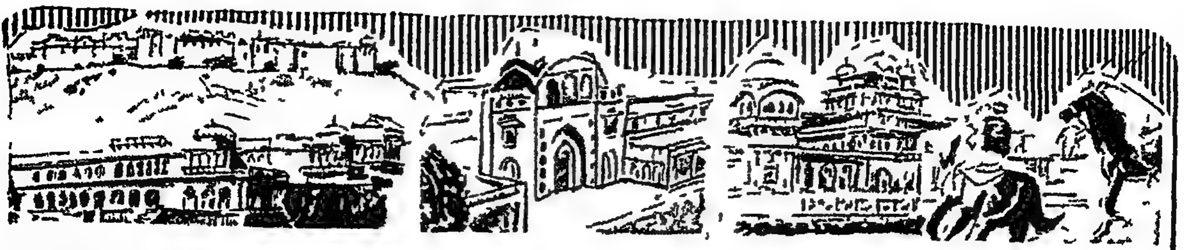
डोवर से लदन का रेल-मार्ग इग्लेण्ड के जिस क्षेत्र मे होकर जाता हे, उसे वहा की प्राकृतिक शोभा के कारण "गार्डन ऑफ इग्लेण्ड" कहते हैं। जयपुर के श्रीजी आर उनके साथ वाले सरदारो तथा अधिकारियो ने इस "कुदरत की जादूगरी" को बहुत सराहा। इग्लेण्ड का यह प्रथम दर्शन था ओर लन्दन से महाराजा की अगुवानी के लिये आये हुए अग्रेज अधिकारियो के साथ पहला-पहला ही वार्तालाप। निश्चय ही महाराजा ने इस थोडे-से वार्तालाप मे ही अग्रेज अधिकारियो को अपने व्यक्तित्व ओर ताज के प्रति अपनी वफादारी का कायल बना दिया। वसे यह सफर कोई लम्बा न था आर शाम को छह बजते-बजते महाराजा की स्पेशल रेलगाडी लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन मे दाखिल हो गई।

यह दिन था 3 जून, 1902 — जयपुर से प्रस्थान करने के बाद ठीक पच्चीसवा दिन।

मेरे मोहल्ले के खवासजी बाबाजी ने ससार के उस महानगर मे अपने महाराजा के स्वागत ओर सम्मान का जो आखो देखा हाल मेरे कानो मे डाला था, उसकी मोटी-मोटी बाते कोई भी श्रोता कभी भुला नही सकता। वहा, लदन मे, पहले से ही इस बात का शोर हो रहा था कि केसे भारत का एक महाराजा अपनी परम्परागत शान-शाकत के साथ सदल-बल बादशाह की ताजपेशी मे शामिल होने के लिये इगलैण्ड आ रहा हे। जितनी जिज्ञासा लोगो को महाराजा के बारे मे थी, उतना ही कौतूहल उस सामान के लिये भी था जो एक पूरा जहाज रोक कर इगलिस्तान तक पहुचा था। स्टेशन के प्लेटफार्म पर मर्द-औरतो और बच्चो का बडा हुजूम था जिन्होने स्पेशल रेलगाडी के वहा पहुचते ही अपने हैट और रूमाल उछाल-उछाल कर महाराजा माधोसिह का अभिनन्दन किया।

लाल कालीन पर स्वागत

प्लेटफार्म पर एक विशाल लाल कालीन बिछाया गया था जिस पर अपने पाव रखते हुए महाराजा स्पेशल रेलगाडी से गोराग महाप्रभुओ की धरती पर उतरे। भारत सचिव के निजी सचिव तथा कोई आधी दजन अग्रेज उच्चाधिकारी महाराजा की अगुवानी के लिये खडे थे और उन सबने फूलो के गुलदस्ते भेट किये। महाराजा जब इन सब लोगो से हाथ मिलाकर यह सम्मान स्वीकार कर रहे थे तो भीड के हैट और रूमाल



बराबर हिल रहे थे और "चीयर्स" दिये जा रहे थे। महाराजा का रोबीला व्यक्तित्व और जयपुर वालो की "जर्क-बर्क पोशाके" सबकी चर्चा के विषय थे। इतने बडे अमले ओर सैकडो की तादाद में सामान के अदद लोग आखे फाड-फाड कर देख रहे थे ओर उनसे महाराजा की अहमियत और रूतबे को आक रहे थे।

स्वागत की औपचारिकताएँ खत्म हो जाने के बाद महाराजा "खास बादशाह के वेटिंग रूम" मे पधार गये जो खवासजी बाबाजी के अनुसार शाही मोअज्जिम मेहमानो के लिये ही खोला जाता था ओर श्रीजी के लिये खोला गया था। महाराजा की सवारी के लिये भी बादशाह की ओर से एक "खासा गाडी" भेजी गई थी जो स्टेशन के बाहर उनके इतजार मे खडी थी।

महाराजा ने थोडी देर वेटिंग रूम मे आराम फरमाया और फिर शहर लन्दन मे उनकी सवारी आरम्भ हुई जो लन्दन वालो ने एक मुद्दत तक याद रखी। सवारी मे महाराजा की गाडी तो पीछे थी और आगे-आगे गोपालजी महाराज की मूर्ति को विराजमान कर एक अन्य गाडी चल रही थी। "लन्दन मे जैसे भगवान की रथयात्रा ही निकल रही थी" ——खवासजी बाबाजी ने कहा था, "यू समझो, जैसे अपने यहा दशहरे की सवारी निकलती है जिसमे आगे-आगे सीतारामजी का रथ ओर पीछे महाराजा की बग्घी चलती है ओर वे रावण मारने के लिये दशहरा कोठी तक जाते है।" लन्दन की सडको पर होकर जब यह भारतीय जुलूस गुजरा तो लोगो के "ठट्ठ के ठट्ठ" देखते रह गये इस नजारे को और इग्लैण्ड के अखबारो के लिये यह उस दिन का एक विशेष समाचार बन गया।

"देवता गाडी मे"

विक्टोरिया स्टेशन से कैम्पडन हिल तक, जहा महाराजा के ठहरने की व्यवस्था एक तिमजिले आलीशान बगले मे की गई थी, यह जुलूस गया और समाचार-पत्रो ने इसके लिये विस्तार से लिखा। समाचार के साथ कुछ सुर्खिया भी थी जिनके शीर्षक थे "महाराजा और उनके देवता", "देवता सहित एक राजा लन्दन मे, "देवता गाडी मे" आदि आदि। कुछ अखबारो ने जहा महाराजा की इस धर्मपरायणता के पक्ष मे लिखा, वहा कुछ ने इस रूढिवादिता और मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए विरोधी टिप्पणिया भी दी। इस प्रकार गोपालजी की मूर्ति को लेकर तत्कालीन ब्रिटिश प्रेस मे एक मिश्रित प्रतिक्रिया देखी गई। इसके निष्कर्ष मे यह अवश्य कहा जा सकता है कि वर्तमान सदी के आरम्भ मे भी इगलैण्ड उस धार्मिक कट्टरता से सर्वथा मुक्त नही हो पाया था जो वहा के पिछले इतिहास मे बहुत बार सामने आती है।

जो हो, महाराजा के अनुकूल जो टिप्पणिया थी, उनमे से कुछ उनकी यात्रा के वृत्तान्त मे उपलब्ध है और यहा उद्धृत की जा रही है।

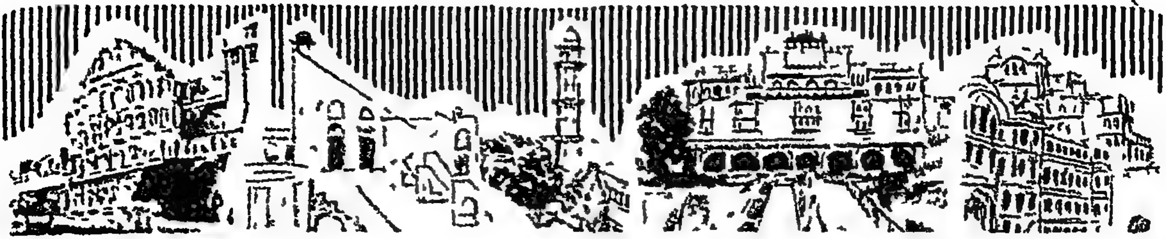
"मार्निंग पोस्ट" ने लिखा

"मुगल सम्राटो के समय मे भी जयपुर के राजा-महाराजा बडे सम्मानित गिने जाते थे। 1857 के गदर मे जयपुर महाराजा ने ब्रिटिश सरकार को बहुत सहायता दी थी। आज समस्त हिन्दू यह देखकर बडे प्रसन्न हैं कि इस यात्रा से महाराजा ने सारे भारत मे इस बात का उदाहरण रख दिया है कि हिन्दुस्तान के राजा-महाराजा चाहे तो किस प्रकार अपने धर्म का पालन कर सकते है।"

"कानीकल" की सुर्खी इस प्रकार थी

"इस देश मे हजारो हिन्दू आ चुके है, किन्तु ऐसा अब तक कोई न आया जो अपने धर्म का इतना पालन करने वाला हो। अच्छे हिन्दू का धर्म है कि वह अपनी धार्मिक मर्यादा का पालन करे। जयपुर राजपूताना और मध्यभारत की बडी और विख्यात रियासतो मे से एक है और यह महाराजा है भी बडे बुद्धिमान और प्रजा-हितैषी।"

इसी प्रकार "ग्रेट थाट्स" ने महाराजा की उदारता की प्रशसा करते हुए यह टिप्पणी दी



" सच तो यह है कि महाराजा जयपुर की गद्दी पर बेठने के समय से अब तक उदारता के अनेक कार्य कर चुके हे। करीब दो साल पहले जब हमने सुना था कि महाराजा ने ट्रासवाल युद्ध के पीडितो के लिये एक लाख रुपये की धनराशि प्रदान की है तो यहा आम तौर पर खयाल किया गया था कि यह उनकी उदारता का ही प्रतीक है।"

हिन्दू विरोधी भावना

इन प्रशास्तियो से महाराजा माधोसिह को जहा खुशी हुई, वहा मूर्ति-पूजा की निन्दा करने वाली टिप्पणियो से खिन्नता भी कुछ कम न हुई। महाराजा सोच ही रहा था कि इनका कैसे निराकरण किया जाय कि एक भारतीय सन्यासी, बावा प्रेमानन्द भारती ने सब काम हल्का कर दिया। यह बावा उन दिनो लन्दन मे ही था ओर मूर्ति-पूजा के विरोध मे उसे कट्टर ईसाइयो की हिन्दू-विरोधी भावना नजर आई। सारी आलोचना के जवाब मे उसने एक तीखी प्रत्यालोचना "वेस्ट मिनिस्टर" मे प्रकाशित कराई। इसके कुछ महत्त्वपूर्ण अश इस प्रकार थे

"जयपुर महाराजा का अपने साथ यहा श्री गोपालजी की मूर्ति लेकर आना एक विशेष हल-चल का कारण बन गया है। जो लोग मूर्ति-पूजा के विरोधी हे, उन्हे यह अनुचित ओर आश्चर्य-जनक लगना ही चाहिए, किन्तु मुझे विश्वास हे कि सम्पूर्ण सभ्य तथा शिक्षित समुदाय को ऐसे लेख बडे अप्रिय लगे होगे क्योंकि इग्लेण्ड एक स्वतन्त्र देश है जहा शारीरिक ओर मानसिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ धार्मिक स्वतन्त्रता भी हे। वह दिन जा चुके जब ब्रिटेन के रहने वाले धर्म-विरोधी होते थे ओर गेर-ईसाइयो से नफरत करते थे।

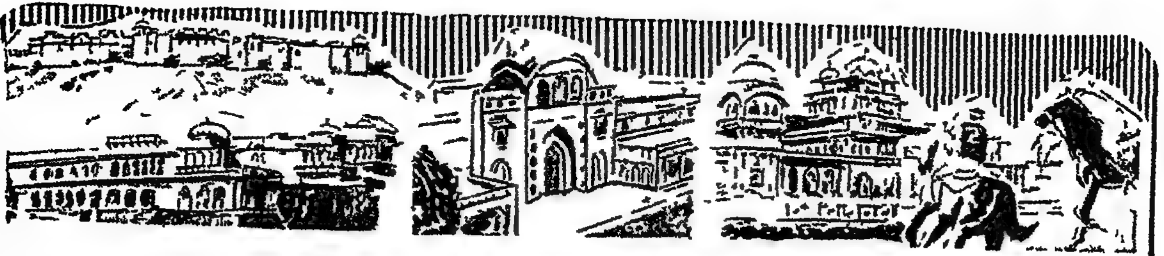
" यदि ईसाई भगवान कृष्ण की वास्तविकता को नही मानते तो हिन्दू लोग भी ईसा मसीह की कथा को झूठा मानते ह। यह केसे सम्भव ह कि यूरोप, मिश्र ओर रोम की धार्मिक मान्यताए तो सही हो और हिन्दुओ की धर्म-कथाये जो हजारो वप पूर्व की धार्मिक पुस्तको मे सुरक्षित हे, सरासर झूठी हो?

"यही भगवान कृष्ण जयपुर महाराजा के इष्टदेव हे। श्रीगोपालजी के नाम से वे उनकी मूर्ति को अपने साथ लाये है। किसी भी प्रकार का सासारिक कर्म करने के पहले महाराजा इनका पूजन करते है यहा तक कि बिना पूजन वे भोजन तक नही करते। प्रात ओर साय वे सुगन्धित पुष्प, तुलसी-पत्र और चन्दन भगवान के चरणो मे अर्पित करते हे। श्रीकृष्ण की पूजा की यह पद्धति सारे भारत मे प्रचलित है। मूर्ति तो केवल एक प्रतीक हे जिसकी पूजा मुख्यत मानसिक है।

" इस पूजा की तुलना मे ब्रिटेन के लोग जरा अपनी पूजा-पद्धति पर भी विचार करे और देखे कि उनके धार्मिक रीति-रिवाज भी इससे खाली नही हे। फिर म नही जानता कि क्यो इग्लैण्डवासी इससे चकित होते हे?

"मैने यह लेख केवल इसीलिए प्रकाशित कराया है कि इग्लैण्ड के शिक्षित जन अनभिज्ञ लोगो को बताने के लिये हिन्दू धर्म-ग्रन्थो का अवलोकन करे और द्रोही ईसाइयो तथा उनके मिशनरियो के दिलो-दिमाग से भ्रान्त धारणाओ को हटाये। उन्हे यह याद रखना चाहिए कि पानी से बेतिस्मा की रस्म अदा करना, लकडी के कास के सामने घुटने टेक कर आराधना करना ओर बादशाह की ताजपोशी के समय जैतून का रोगन लगाना भी ठीक वैसा ही हे जैसा जयपुर महाराजा का प्रतिदिन श्री गोपालजी की पूजन मे फूल व गगाजल काम मे लाना।"

कहने की आवश्यकता नही कि इस भारतीय सन्यासी के इस तार्किक, स्पष्ट और निर्भीक विवेचन से वह सारी प्रतिकूल प्रतिक्रिया मन्द होकर शान्त हो गई जो कुछ अखबारो ने महाराजा के धार्मिक आचार-व्यवहार और गोपालजी की मूर्ति की लन्दन मे शोभा-यात्रा को लेकर उभारने की कोशिश की थी। महाराजा को



उसके सलाहकारो ने बताया कि उनका लन्दन-प्रवास बडे धूम-धडाके के साथ बाअसर शुरू हुआ है, शहर मे उनके चर्चे है, अखबारो मे उनकी बडाई के हाल छपे है और जिन्होने थोडी बहुत खिलाफत करनी चाही, बाबा प्रेमानन्द भारती के लेख ने उनकी जबान पर भी ताला लगा दिया है।

जिस तिमंजिले बगले मे महाराजा का कयाम हुआ, वह जयपुर का एक छोटा-सा प्रतिरूप बन गया। "मोरेलॉज" नामक इस इमारत मे सारी हलचल का केन्द्र महाराजा माधोसिह था।

सम्राट से अनौपचारिक भेंट

"मोरेलॉज" एक शानदार तिमजिली इमारत थी जो एक खूबसूरत बाग के बीचोबीच बनी थी। इसमे चारो ओर काच का काम था, लेकिन जयपुर वालो को यह आमेर के शीशमहल के मुकाबले बहुत फीका लगा। यहा के काच बडे-बडे और सफाचट शीशे थे, जिनमे शक्ल तो खूब देखो, लेकिन वह नजारा जो आमेर मे दीयासलाई की एक तिल्ली जलाते ही देखा जाता है, यहा किसी भाव नही देखा जा सकता था। खवासजी बाबाजी का कहना था कि लन्दन का वह काच का काम "शोभा निवास" के सामने पानी भरता था। हा, जयपुर वालो को काच और चीनी के वह गमले बहुत भाये जो "मोरेलॉज" के बगीचे के "फर्न-हाऊस" या सावन-भादो मे सजे हुए थे और पुराने अग्रेजी चलन के मुताबिक बरामदे मे भी करीने से लगे हुए थे।

इस भवन की तीसरी मजिल के कमरो मे महाराजा के शागिर्दपेशा लोग ठहरे जिनमे खवासजी बाबाजी भी थे। दूसरी मंजिल पर स्वय महाराजा और खास-खास सरदार लोगो का कयाम था और नीचे, पहली मंजिल मे कर्नल स्विन्टन जैकब का, जो जयपुर-स्थित ब्रिटिश रेज़ीडेट के प्रतिनिधि-रूप मे गया था, डेरा था, उसके पास ही महाराजा के प्राईवेट सेकेटरी का दफ्तर रखा गया था। इमारत के नीचे तहखाने भी थे और, उनमे खान-पान का वह सब सामान भरा गया था जो जयपुर से ही महाराजा के साथ गया था।

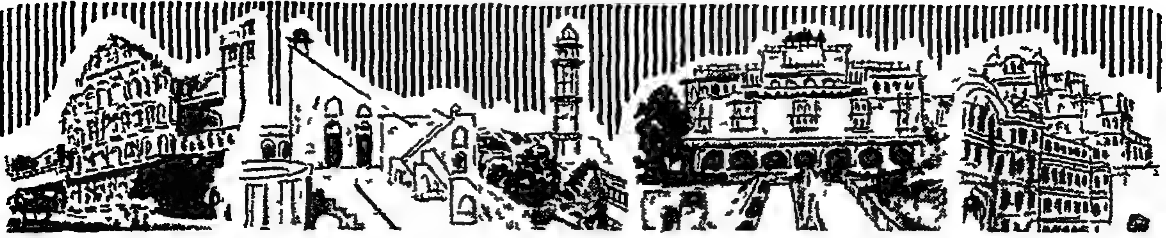
लेकिन यह इमारत जयपुर के श्रीजी के बडे अमले के लिये छोटी पडी। लिहाजा बगीचे मे कई "काठ के मकान" (टिम्बर हाऊस) खडे किये गये और इस पर भी पूरा न पडा तो पास ही एक और मकान किराये पर लिया गया जिसमे महाराजा का नामराशि सीकर का रावराजा माधोसिह, चौमू ठाकुर और दूसरे सरदार तथा कुछ अधिकारी ठहरे। लकडी के मकान भी अजीब थे। जो लोग उनमे ठहरे, उन्हे तेज हवा चलने पर हर बार भूकम्प का-सा अहसास होता और इस बात का खास ध्यान रखना पडता कि कही आग न लग जाये।

अग्रेज बहादुर और श्रीजी

महाराजा के आवागमन के लिये चार शाही गाडिया खास महल से "मोरेलॉज" मे तैनात कर दी गई थी। यह ऐसी गाडिया थी जिनका इस्तेमाल शाही परिवार के लोगो और मोअज्जिज मेहमानो तक ही सीमित रहा करता था। यह सब श्रीजी के बडप्पन की निशानी थी, लेकिन लन्दन पहुचने के दूसरे दिन ही सारे अमले पर यह भलीभाति प्रकट हो गया कि अग्रेज बहादुर के सामने श्रीजी की हैसियत आखिर कितनी है।

लन्दन मे महाराजा का पहला कार्यक्रम था भारत सचिव या सेक्रटरी फार इंडिया से भेट। इसके लिये "इडिया आफिस" जाना पडा। इस इमारत की सीढियो से भारत सचिव के कमरे तक लाल कपडा बिछा दिया गया था, लेकिन महाराजा जब वहा पहुचा तो उसका स्वागत करने के लिये दरवाजे पर भारत सचिव न था। उसका प्राइवेट सेकेटरी और पोलीटिक ए डी सी कर्जन वायली ही महाराजा की अगुवानी के लिये काफी समझा गया। महाराजा ने उनसे हाथ मिलाया और उस कमरे तक गया जिसमे भारत सचिव, लार्ड हैमिल्टन मुलाकात के लिये बैठा था। महाराजा कोई आधे घण्टे तक लार्ड हैमिल्टन के साथ रहा। उसने अपने कमरे से ही महाराजा को विदा दे दी और आने की तरह जाने के समय भी उन्ही दोनो अग्रेज अफसरो ने महाराजा को दरवाजे तक छोडा।

इसके बाद वापसी मुलाकात की रस्म अदायगी के लिये लार्ड हैमिल्टन भी "मोरेलॉज" आया और उसका



स्वागत करने के लिये खुद महाराजा दरवाजे पर खडा रहा, साथ लेकर भीतर आया, उस सुर्ख लाल कपडे पर होकर जो दरवाजे से महाराजा के कमरे तक इस "बडे लाट" के लिये बिछाया गया था। लार्ड हैमिल्टन पौन घटे महाराजा के साथ रहा और कई तरह की गुफ्तगू हुई। जब रवाना होने लगा तो महाराजा माधोसिह ने जयपुर के अपने परम्परागत ढग से उसका इत्र और फूलो से सत्कार किया और दरवाजे तक छोडने गये।

खवासजी बाबाजी ने इस मुलाकात की बात कहते हुए बताया था कि हिन्दुस्तान के इस "बडे लाट" के तौर-तरीके और महाराजा के व्यवहार को देखकर उन लोगो मे अच्छी कानाफूसी रही थी और अग्रेज सरकार का दबदबा सभी जान रहे थे।

जो हो, महाराजा माधोसिह अपने आप मे सभी की जिज्ञासा और कुतूहल का विषय तो था ही, उसकी उदारता और शान-शौकत के चर्चे भी खूब थे। इग्लैण्ड के अनेक गण्यमान्य लोग महाराजा से मिलने प्राय "मोरेलॉज आने लगे और महाराजा अपने प्राइम-मिनीस्टर बाबू ससारचद्र सेन को दुभाषिया बनाकर सभी से मिलने और बातचीत करने मे आनन्द लेने लगा। इन सभी मेहमानो का स्वागत-सत्कार देशी ढग से इत्र-फूल से ही किया जाता। "मोरेलॉज" मे जो भी, आता, महकता हुआ वापस जाता।

"लैडी दरबार"

महराजा के लन्दन पहुचने के दस दिन बाद वह तारीख आई—13 जून— जब बादशाह ने लन्दन आये हुए राजा-रईसो से मिलने के लिये "लैडी दरबार" का आयोजन किया था। इस दरबार की मुलकात तो रस्मी या औपचारिक थी, इसलिये महाराजा का जोर उस अनौपचारिक मुलाकात पर ज्यादा था जो उसी दिन बादशाह सलामत उनसे करने वाला था। अलग से मुलाकात का समय दिया जाना महाराजा ने शाही कृपा का ही सुबूत माना और बाबू ससारचन्द्र के साथ बकिघम महल रवाना हुआ। लन्दन मे उस दिन मूसलाधार पानी बरस रहा था।

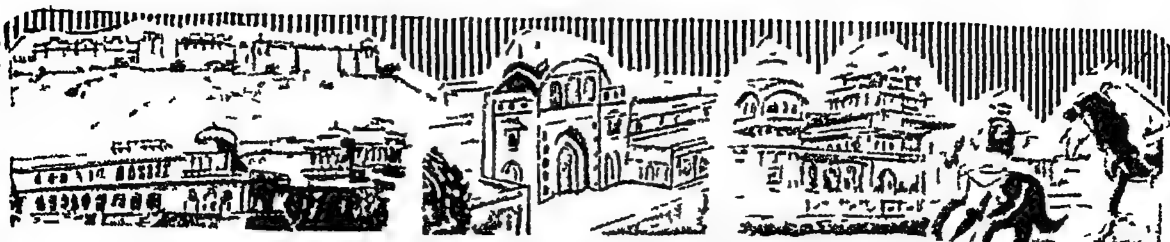
बकिघम महल मे लार्ड हैमिल्टन ने खूटेदार पाग धारण किये हुए महाराजा माधोसिह से हाथ मिलाया और कर्जन वायली उस कमरे मे ले गया जहा सप्तसागरा ब्रिटेन के सम्राट और साम्राज्ञी इन्तजार कर रहे थे। यह मुलाकात सचमुच बडी गैर-रस्मी हुई। सम्राट ने महाराजा से उसकी लम्बी यात्रा के बारे मे कई बाते पूछी जिसका जवाब महाराजा की ओर से बाबू ससारचन्द्र अग्रेजी मे उल्था करके देता रहा। बहुत खुलकर आपसी बातचीत हुई।

महाराजा से मिलकर सम्राट एडवर्ड सप्तम भी कुछ पुरानी यादो के मे खो गया। प्रिस आफ वेल्स की हैसियत से अपनी भारत यात्रा के दौरान वह जयपुर आ चुका था, लेकिन वह 25 वर्ष पुरानी बात थी। फिर भी बातचीत का जैसा सिलसिला चला, उसमे एक-एक बात याद हो आई। सम्राट ने बताया कि खाने के बाद जब महाराजा रामसिह को उसने हुक्का पीते देखा था तो किस प्रकार उसकी जिज्ञासा "गुडर-गुडर" के प्रति जागी थी। इस पर महाराजा ने उसे भी हुक्का चखने को कहा था और अच्छा लगने पर महाराजा ने वह हुक्का उसी को भेट कर दिया था।

खाट बनाम टेबिल

सम्राट को खातीपुरा की कोठी और उसके आगे जगल मे चौकडी भरते हरिणो के झुड भी याद आये जहा उसके लिये शिकार का इन्तजाम किया गया था। झालाणा के जगल मे शेर के शिकार की चर्चा भी आई, खास तौर से दोपहर के उस सादे खाने की, जो महाराजा रामसिह ने जगल मे एक खाट बिछाकर और उस पर सफेद चादर का दस्तरखान लगा कर ही परोसवा दिया था और शिकार की मशक्कत के बाद "प्रिस" ने उस देहाती "डाइनिग टेबिल" पर ही उसे मजे से खा लिया था।

सम्राट को बताया गया कि रामनिवास बाग मे जिस "एलबर्ट हाल" की नीव उसने लगाई थी, वह कभी



का वनकर तैयार है और जैसी इमारत वनी हे, वह सारे जयपुर शहर की नाक है। सम्राट ने इस इमारत मे लगाये गये म्यूजियम के वारे मे भी जानकारी ली ओर आमेर के महलो, हाथी की सवारी ओर वहा की प्राकृतिक शोभा को भी याद किया।

"घरु तोर की" इस मुलाकात से गद्‌गद् महाराजा माधोसिह फिर महल के "थ्रोन रूम" या सिहासन कक्ष मे आ गये जहा "लैडी दरवार" मे भाग लेने के लिये कोई चार हजार लोग जमा थे। भारत के दूसरे राजा-महाराजाओ के साथ महाराजा माधोसिह एक गैलरी मे वेठा। सम्राट ने यहा कोई दो घण्टे सवसे मुलाकात करने मे लगाये ओर खासखास मेहमानो से हाथ मिलाये जिनमे जयपुर का यह महाराजा भी था।

इसके तीन दिन वाद लन्दन से 40 मील दूर ऐल्डरशाट नामक स्थान पर सम्राट की ताजपोशी के मौके पर एक विशेष फौजी परेड का कार्यक्रम था। महाराजा भी इसे देखने गया और ब्रिटिश सेना की चुस्ती और फुर्ती से वडा प्रभावित हुआ। यही महाराजा की मुलाकात प्रिस आफ वेल्स (वाद मे सम्राट जार्ज पचम) और उसकी पत्नी से हुई।

'लंच' मे असहयोग

मेहमानो के लिये यहा दोपहर के खाने का भी इन्तजाम किया गया था ओर प्राय सभी राजा-महाराजा और दूसरे अमीर-उमरा जो हिन्दुस्तान से गये थे, इस खाने मे अग्रेजो के साथ थे। "लेकिन श्रीजी के तो अहद था कि विलायत मे वे श्रीगोपालजी के प्रसाद के अलावा ओर कही कुछ नही खायेगे-पियेगे," खवासजी बाबाजी ने बताया था, "इसलिए उन्होने इस लच मे कोई हिस्सा नही लिया और लन्दन लौटकर ठाकुरजी का ही महाप्रसाद पाया।"

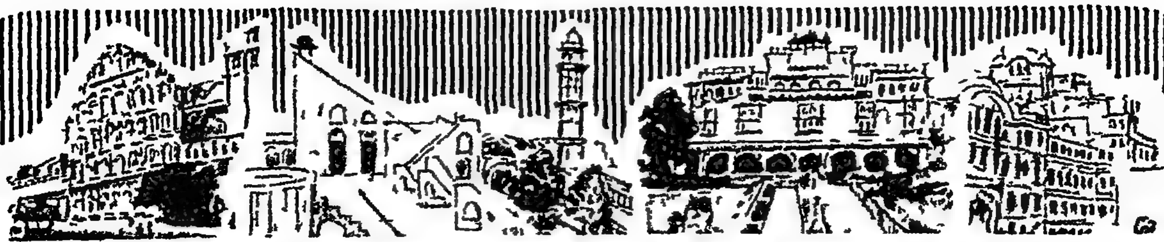
जहा तक खाने-पीने का सवाल है, महाराजा ने अपने इसी वतीरे को वरकरार रखा। रायल एशियाटिक् सोसायटी ने भारत के रईसो के सम्मान मे एक और आयोजन किया। करीव 300 मेहमान थे। हीरे-जवाहरातो की चमक-दमक वाले भारतीय राजा-महाराजाओ के उस समाज मे महाराजा माधोसिह भी बहुमूल्य मोतियो से "लडा-लूम" अपनी हल्की आसमानी रग की पाग धारण कर गया जरूर, लेकिन खाया-पिया कुछ भी नही।

एक दिन महाराजा और उसके दल के लोग विजली के खेल देखने गये —"इलेक्ट्रिक वर्क्स एक्सपेरिमेन्ट्स।" जयपुर ने तब तक गैस की रोशनी का ही उजाला देखा था, इसलिए यह तमाशा सभी के लिये काफी दिलचस्प था। ताजपोशी की खुशी मे लन्दन के वाजार विजली से खूव सजाये गये थे और चकाचौंध के साइन वोर्डों की कलावाजिया जयपुर वाले रुक-रुक कर देखते चलते थे।

सम्राट की ताजपोशी के दिन के इन्तजार मे महाराजा और उसके दल के लोगो का काम अव लन्दन की सैर करना और वहा के दर्शनीय स्थानो को देखना ही रह गया था।

लदन के दर्शनीय स्थानो के भ्रमण के सिलसिले मे महाराजा माधोसिह ब्रिटिश लोकसभा या "हाउस आफ कामन्स" भी देखने गया। भारत के भूतपूर्व वायसराय, प्रसिद्ध लार्ड कर्जन का प्राइवेट सेक्रेटरी, लारेस गाइड था। लोकसभा मे चलने वाला बहस-मुबाहसा तो स्वभावत उसके लिए अटपटा और विचित्र था, लेकिन ससद भवन की सुन्दरता, भव्यता और उस पर बने हुए विशाल घटाघर की जयपुर के महाराजा ने बेहद तारीफ की।

महाराजा और उसके दल के लोग घुडदौड देखने के लिए एस्काट भी गये और औपनिवेशिक सेनाओ के निरीक्षण मे सिख तथा अफ्रीकी सैनिक दस्तो की सलामी ली। फिजी के सैनिक दस्तो ने एक युद्ध-नृत्य प्रस्तुत किया जिसकी बडी सराहना हुई और महाराजा ने अपनी खुशी का इजहार करने के लिए उन्हे पाच पौण्ड इनाम देने की घोषणा की।



घूमने-फिरने के इस कम के साथ महाराजा जहा सम्राट एडवर्ड की ताजपोशी के दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था, वहा अचानक यह खवर मिली कि सम्राट वीमार है और उसे तन्दुरुस्त करने के लिए आपरेशन करना पडेगा। इस कारण 26 जून के लिए तय मुख्य समारोह भी स्थगित कर देने की घोषणा हो गई। वादशाह सलामत की वीमारी का निदान था "एपेन्डिसाइटीज" या आत का वढ जाना।

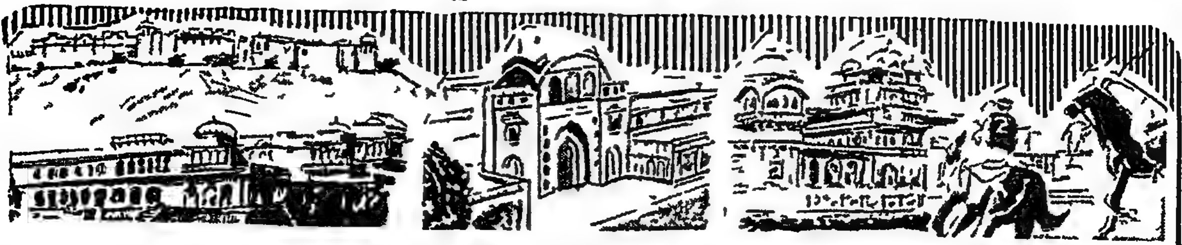
महाराजा को जैसे ही यह मालूम हुआ, ताज के प्रति अपनी वफादारी और सहानुभूति जताने मे कोई कोर-कसर न छोडी। शुरू मे सम्राट की तवीयत के बारे मे कोई अधिकृत घोषणाये नही की जाती थी, ना ही कोई वुलेटिन निकलते थे। इसलिए महाराजा ने अपने निजी मेडिकल आफीसर को यह ताकीद कर दी थी कि वह रोजाना वकिंघम महल जाये और सम्राट की वीमारी पर महाराजा की ओर से चिता प्रकट करते हुए उसकी तवीयत का हाल दरयाफ्त कर आये। चूंकि समारोह स्थगित हो गया था, दूसरे राजा-महाराजा स्काटलैण्ड, वेल्स या अन्य इलाको मे घूमने चले गये थे। कितु, महाराजा माधोसिंह लदन मे ही रहा क्योकि "जव तक वादशाह सलामत को पूरी तरह आराम न हो जाये और यह चिता दूर न हो, सैर-तफरीह को मेरा जी विल्कुल नही चाहता" था। वह स्वय भी रोजाना वकिंघम महल जाने लगा जहा "विजीटर्स वुक" मे अपने दस्तखत कर अपनी चिता और फिक्र की सनद वना आना उसने जरूरी समझा था।

विदेश मत्री का "एटहोम"

उधर शाही परिवार और समारोह के मुतजिम लोगो को यह चिता थी कि इस मुवारक मौके पर लदन आये हुए राजा-महाराजाओ और दूसरे मेहमानो को सम्राट की वीमारी से कोई निराशा न हो। इसलिए मुख्य समारोह को छोडकर अन्य सभी कार्यक्रम पूर्व-निश्चय के अनुसार वरकरार रखे गये। 30 जून को स्पिटहैड मे व्रिटिश सामुद्रिक पोतो का "रिव्यू" था और 1 जुलाई को औपनिवेशिक सेनाओं की समारोहिक परेड। पहले समारोह मे तो महाराजा माधोसिंह भी शामिल हुआ, लेकिन दूसरे के "पास" जो इण्डिया आफिस से आये थे, उसने अपने सरदारो और अधिकारियो को देकर उन्हे भेजना ही काफी समझा। महाराजा स्वय उस "एटहोम" मे शरीक हुआ जो व्रिटिश विदेश मत्री, लार्ड लैंसडाउन ने भारतीय राजा-महाराजाओं के सम्मान मे दिया था। कोई डेढ दर्जन भारतीय राजा-महाराजाओ के साथ नार्वे, स्वीडन और थाईलैण्ड के शाहजादे भी इस आयोजन की शोभा वढा रहे थे। महाराजा माधोसिंह देर तक इस मण्डली मे मौजूद थे, लेकिन मेल-मिलाप के वाद जव लोग खाने-पीने की टेंविलो की तरफ मुखातिव हुए तो वह लार्ड लैंसडाउन से रुखसत होकर "मोरेलाज" लौट आया।

2 जुलाई को महाराजा की मुलाकात साम्राज्ञी से होना तय था ओर व्रिटिश साम्राज्य की मलिका को उपहार मे देने के लिए जो वस्तुए उसने चुनी, वे जयपुर की दस्तकारी के नमूने थी। यह थी मात्र एक तश्तरी और प्याला, जो दोनो पीतल पर मीनाकारी की वेहतरीन चमक-दमक दिखाते थे। मलिका ने उन्हे स्वीकार करते हुए महाराजा को वताया कि वह अव रोजाना कॉफी पीने के लिए इन्ही का इस्तेमाल करेंगी।

दूसरे दिन ही ताजपोशी के सिलसिले मे सवसे अधिक तडक-भडक का आयोजन था, प्रिस आफ वेल्स का लैवी दरवार। ईंडिया आफिस मे इसके लिये वहुत वडे पैमाने पर तैयारिया की गई थी। व्रिटेन के वीरो और अन्य इतिहास-पुरुषो की मूर्तियो से सुसज्जित तिमंजिली इमारत का भवन खास तोर से इस प्रकार सजाया-सवारा गया था कि भारतीय रग और शान-शोक्त का पूरा परिचय मिले। चारो ओर फूलो की सजावट, जगह-जगह वर्फ के वनावटी पहाड जिनके वीच-वीच मे वृक्ष खडे थे ओर मोटे शीशे से वनी छत को इस तरह ढक दिया गया था कि सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्र भारतीय नीलाकाश मे अपने-अपने स्थान पर चमक रहे थे। यह सव विजली का करिश्मा था जिसकी चकाचोंध मे वर्फ के पहाडो की शोभा भी देखते ही वनती थी। मण्डप की चकाचोंध मे यदि कोई कसर रह गई थी तो वह भारतीय राजा-रइसो की चित्र-विचित्र



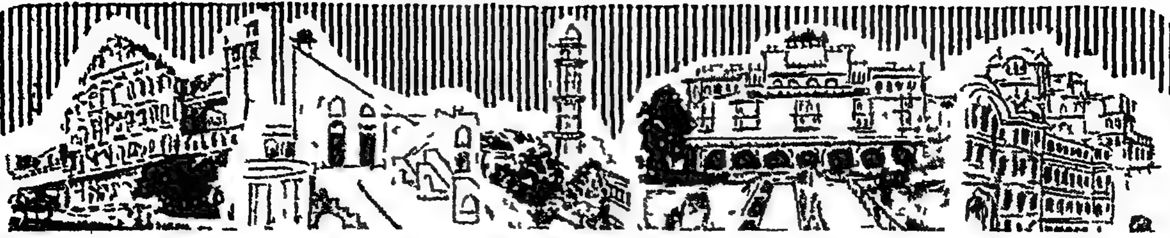
पोशाको और उन पर दमकते हीरे-जवाहरातो से पूरी हो गई थी। इस नरेंद्र मण्डली मे महाराजा माधोसिंह अपनी कसूमल खूटेदार पाग पर जरी के सिरपेच के साथ शोभायमान था। जरी के घेरदार भारी-भरकम जामे पर पीठ से ढाल लटक रही थी। हीरे, मोती और पन्ने के कण्ठो से सीना ढका था जिनके बीच-बीच मे वह तमगे झाक रहे थे जो उसने इस अवसर पर अपनी महत्ता दिखाने के लिए लगाये थे। वास्तव मे यह शाही शान शौकत का नजारा उस देश की महत्ता ही अधिक जता रहा था जिसके सम्राट की ताजपोशी के लिए यह सारी चमक-दमक वहा इकट्ठा हुई थी। कोई तीन हजार मेहमान इस शानदार जश्न मे शरीक थे। आधी रात के लगभग जब यह दरबार समाप्त होने लगा और मेहमान लोग अल्पाहार के लिए खाने की मेजो की ओर वढे तो महाराजा माधोसिंह ने प्रिस आफ वेल्स से हाथ मिलाकर विदा मागी और अपने निवास स्थान के लिए रवाना हो गया।

पाच लाख को भोज

ताजपोशी की खुशी मे ब्रिटिश सम्राट की ओर से लदन के अलग-अलग स्थानों पर गरीवो को भोजन भी कराया गया। कुल मिलाकर कोई पाच लाख गरीबो ने यह भोजन पाया। अपनी ज्योणारो अथवा बडे पैमाने पर आयोजित सामूहिक भोजो के लिए विख्यात जयपुर के महाराजा ने इस शाही उदारता की बडी सराहना की। यह स्वाभाविक भी था क्योकि महाराजा भी अपने यहा आये दिन जप-हवन, वरणी-पाठ इत्यादि करने वाले ब्राह्मणो के बडे-बडे भोजो और हेडो- हजारो आदमियो के सामूहिक जीमण— मे सहज रुचि और रस लेता था। चार लाख रुपये के व्यय से आयोजित गरीबो की इस दावत को महाराजा के छोटे कर्मचारियो ने भी देखा तो उन्हे जयपुर की "ज्योणार" का लदनी सस्करण ही जैसे देखने को मिला। खवासजी वावाजी ने भी प्रिस आफ वेल्स का दरबार तो नही देखा था, लेकिन लदन की यह ज्योणार अवश्य देखी थी और इसके लिए उसकी टिप्पणी यही थी "अगरेज लोग भी जीमबा-जिमावा का पक्का छै। म्हे तो देख र आया छा। आपणे तो थोडा-सा अगरेजी पढ्या क लोग जीमवा सै नाक चढावा लाग्या, पण अगरेजा का मुलक मै ही या बात कोनै। दुनिया नै भेली कर जिमाया-चुठाया नही तो फेर खुशी ही काई हुई।" (अगरेज लोग भी जीमने-जिमाने मे पक्के है, हम तो देखकर आये है। अपने यहा तो थोडी अगरेजी पढी कि लोग ऐसे सामूहिक भोजो से नाक चढाने लगते है, लेकिन अगरेजो के देश मे भी ऐसी बात नही है। खुशी के मौके पर दुनिया को बुलाकर खाना-पीना न किया तो फिर खुशी ही क्या।)

चुगली और सफाई

खवासजी वावाजी ने ही वादशाह सलामत की वीमारी पर महाराजा की असाधारण चिता की एक और व्याख्या की थी। उनका कहना था कि प्रतिदिन वकिघम महल मे जाकर अपनी सहानुभूति और वफादारी का ढिंढोरा पीटना महाराजा के लिए इसलिए भी आवश्यक हो गया था कि "आप जाणो, चुगलखोर तो सबलै ही होवे छै" —चुगलखोर तो आप जानते है, सब जगह होते है। कुछ ईर्ष्यालु और विद्वेषी लोगो ने महाराजा की धर्म-परायणता और खान-पान के कडे परहेज से रुष्ट होकर भारत-सचिव जैसे प्रभावशाली अधिकारियो और शाही परिवार के लोगो के कान भरना शुरू कर दिया था और तोहमत यहा तक लगाई गई कि जयपुर का राजा इगलैण्ड और यहा के लोगो से सख्त नफरत करता है, तभी तो वह हाथ माजने के लिए मिट्टी तक हिन्दुस्तान से साथ लेकर चला है। इस चुगली के जवाब मे महाराजा की ओर से प्राय यह स्पष्टीकरण दिया जाता कि वे अपने धर्म के बडे पाबद है। बडे श्रीजी (महाराजा रामसिंह) इगलैण्ड की मलिका विक्टोरिया को धर्म-दृष्टि से बहिन मानते थे और भारतीय रिवाज के अनुसार भाई का बहिन के घर किसी चीज से वास्ता नही होता। खवासजी बावाजी का कहना था कि इस युक्ति-युक्त उत्तर से चुगलखोरो की एक न चली और सभी विरोधियो को खामोश हो जाना पडा।



हम नही कह सकते कि इस चुगली और महाराजा की ओर से दी जाने वाली सफाई मे कितनी सचाई है, किंतु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि महाराजा रामसिंह ने 1857 के सिपाही विद्रोह मे अग्रेजो की हार्दिक सहायता की थी और कई अग्रेज अफसरों को उन अशाति के दिनो मे अपने महल मे सुरक्षित रखा था। जयपुर के शासक ने तब भारत मे अग्रेजो और उनकी सत्ता को वनाये रखने के लिये जो-कुछ किया था, उसे केवल 45 वर्ष वाद उसके उत्तराधिकारी की इग्लैण्ड यात्रा के अवसर पर लदन की राजसत्ता और राज-परिवार ने अवश्य ही भुलाया नही होगा। महाराजा माधोसिंह के प्रति जैसी मान-मर्यादा तव वहा दिखाई गई, वह भी इसी वात की ताईद करती है।

विद्या व वैदिक ज्ञान-विज्ञान की ज्योति

सम्राट के स्वास्थ्य लाभ की कामना करते हुए महाराजा माधोसिह जब इग्लैण्ड के बडे-बडे रईसो से मेल-मुलाकात बढाने और दर्शनीय स्थानो को देखने मे अपने लदन-प्रवास के दिन पूरे कर रहा था, तभी राजाशाही की चमक-दमक के वीच विद्या और विज्ञान की वह ज्योति भी प्रखर हुई जो जयपुर की राजसभा के प्रधान, विद्या-वाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा के रूप मे उनके साथ थी। वेदो की वैज्ञानिक विवेचना और सनातन धर्म के शाश्वत स्वरूप के प्रतिपादन मे विद्या वाचस्पतिजी की वक्तृता अनूठी थी और उनके मौलिक चितन एव अनुसधान के विषय मे तत्कालीन इग्लैण्ड के सस्कृत विद्वान भी थोडा-वहुत सुन चुके थे। ऐतिहासिक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सस्कृतज्ञ अग्रेजो को जव यह सूचना मिली कि पण्डित मधुसूदन ओझा जयपुर महाराजा के साथ आया है तो उन्होने पण्डितजी को निमत्रण भेजा और महाराजा ने सहर्ष इसे स्वीकार कर उन्हे कैम्ब्रिज जाने की अनुमति दे दी।

पण्डितजी की यह यात्रा वास्तव मे बडी अहमियत की साबित हुई। सस्कृत को ससार की सबसे समृद्ध भाषाओ में गिनते हुए भी अग्रेज विद्वान इसे एक मृतभाषा मानते थे। उन्होने जब विद्यावाचस्पतिजी को धडल्ले से सस्कृत मे बातचीत करते और व्याख्यान देते सुना तो दातो तले अगुली दवा गए। सस्कृत की जीवनी-शक्ति और प्रभाव उनके सामने सशरीर खडा था। फिर विद्यावाचस्पतिजी ने वेदो के गूढ रहस्यो का जैसी मौलिकता ओर सरलता से उद्घाटन किया, उससे सभी मुग्ध हो गए। वैदिक धर्म और विज्ञान पर पण्डित मधुसूदन ओझा के प्रभावशाली भाषण ने विलायत मे प्राच्य-विद्या-रसिको पर एक ऐसी छाप डाली जो वहुत समय तक कायम रही। यह महत्त्वपूर्ण भाषण, वहुत वर्षों पहले, जयपुर के एक सस्कृत मासिक मे प्रकाशित भी हुआ था।[2]

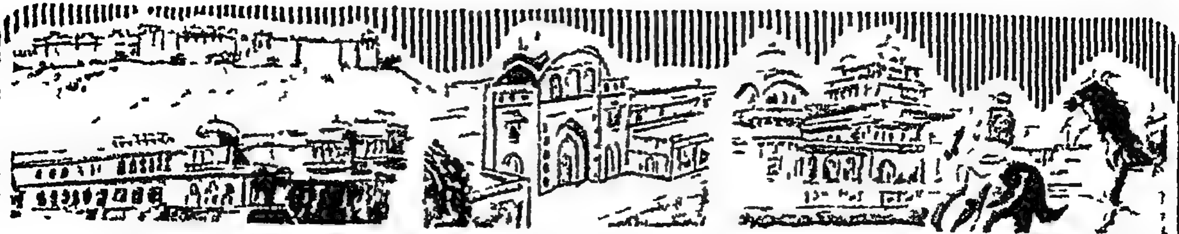
लदन के इण्डिया आफिस का पुस्तकालयाध्यक्ष, टामस पहले से ही विद्यावाचस्पतिजी की धाक मान चुका था। वह स्वय सस्कृत का अच्छा विद्वान था। विद्यावाचस्पतिजी के प्रथम दर्शन होने पर उसने उनसे यह व्यग्यात्मक प्रश्न किया था

> शृणोमि लक्ष्म्या मधुसूदन युत
> पश्यामि तुत्वामिह चैकमागतम्।
> मन्ये भवन्त विबुध विवेकिन
> कुतस्तवनैषीन्न सहश्रिय भवान्।।

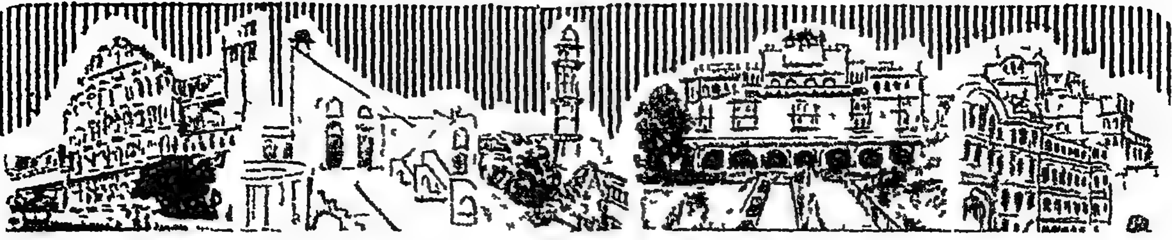
—मैने तो सुन रखा था कि मधुसूदन लक्ष्मी-युक्त है, किंतु मै देख रहा हू कि यहा तो मधुसूदन अकेले ही आये है, लक्ष्मी को साथ नही लाये। मै तो आपको बडा विद्वान और विवेकवान मानता हू और यह समझ नही पा रहा हू कि आप लक्ष्मी को अपने साथ लेकर क्यो नही आये?

इस व्यग्य का उत्तर तत्काल दिया गया। पण्डित मधुसूदन ने इसके प्रत्युत्तर मे यह श्लोक कहा

2 'सस्कृत रत्नाकर' मासिक



विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा, जिनके भाषण और वार्त्तालाप ने इंग्लैण्ड में अपनी अलग ही धूम मचा दी थी



मधुसूदनस्य दृष्ट्वा सरस्वती
लालने विशेष रुचिम्।
रोषात् क्वचिदपसृप्ता लक्ष्मी-
मनुनेतुमत्र सोभ्यात्।।

—सरस्वती के लालन मे मधुसूदन की विशेष रुचि देखकर लक्ष्मी कुद्ध होकर भाग गई और उसी को मनाने के लिए मधुसूदन यहा तक आया है।[3]

महामहोपाध्याय प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के अनुसार वेदधर्म विषयक पंडितजी की सस्कृत वक्तृता को सुनकर यूरोपियन अन्वेषक विद्वानो का कहना था कि 'बिल्कुल नई बाते है।' इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप ओझाजी ने अपनी वक्तृता का शीर्षक रखा था—'अतिनूत्नम, नहि नहि अति प्रत्न रहस्यम्'—अर्थात 'बहुत ही नया, नही नही, बहुत ही पुराना रहस्य'।[4] कहते है कि कोई जब उन्हे यह कहता कि आप नई बात कह रहे है तो वे बहुत अप्रसन्न हो जाते थे और कहते थे कि वेदादि को जानने-समझने की कुछ परिभाषाए हैं जो कालवश विस्तृत हो गई है। उन परिभाषाओ को समझ लेने पर उपलभ्यमान वेद भाष्य से ही सब कुछ मिल सकता है, नये भाष्य की आवश्यकता नही है।

कैम्ब्रिज का प्रोफेसर सी बेडाल और उसकी विदुषी पत्नी भी इस भारतीय विद्वान के अनन्य प्रशसक बन गए और उन्होंने उनका बडा स्वागत-सत्कार किया। पण्डितजी को सारे विश्वविद्यालय का भ्रमण कराया गया।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्राच्य-विद्याविद् प्रोफेसर मेकडोनैल्ड से भी सभवत विद्यावाचस्पतिजी का पत्राचार द्वारा पूर्व परिचय था। व्यक्तिश जब वे उनसे मिले तो वे भी उनके व्यक्तित्व और पाण्डित्य से प्रभावित हुए बिना न रहे। दोनो विद्वानो मे देर तक सस्कृत मे वार्तालाप होता रहा, वेदो पर चर्चा हुई। प्रोफेसर मेकडोनैल्ड और प्रोफेसर बेडाल, दोनो ही विद्यावाचस्पतिजी के वर्चस्व से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होने ऐसे विद्वान के सरक्षक, महाराजा माधोसिह को भी केम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे आमत्रित करने की इच्छा प्रकट की। विश्वविद्यालय की ओर से पण्डितजी के साथ ही महाराजा के नाम निमत्रण भेजा गया।

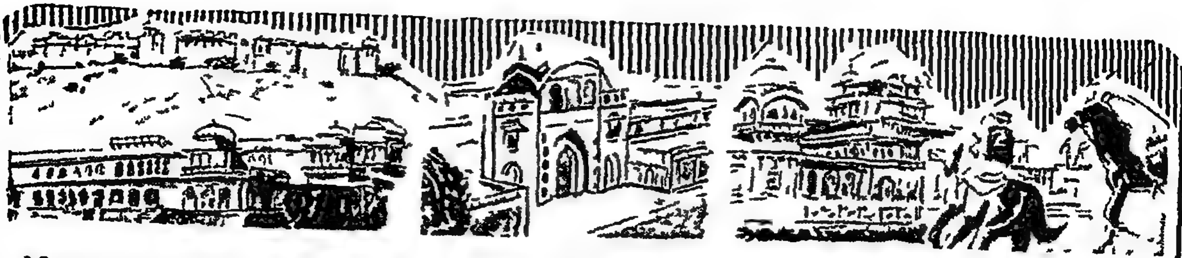
समाचारपत्रो की टिप्पणिया

जयपुर से गये हुए भारतीय विद्या और ज्ञान-विज्ञान के इस राजदूत के व्यक्तित्व और विद्वता की चर्चा तत्कालीन समाचारपत्रो ने भी करना आवश्यक समझा। "दी सन" ने अपने 21 जुलाई, 1902 के अक मे लिखा "पंडितजी आक्सफोर्ड के प्रोफेसर मेकडोनैल्ड से मिले और प्रोफेसर मेकडोनैल्ड को उनसे परिचय पाकर बडी हार्दिक प्रसन्नता हुई। पिछले रविवार को पडितजी को प्रोफेसर सी बेडाल और उनकी पत्नी ने कैम्ब्रिज आमत्रित किया था और उनका वहा हार्दिक स्वागत किया गया था। कैम्ब्रिज के प्राच्यविद्या विशेषज्ञ को यह देखकर आश्चर्य था कि पण्डितजी धारा प्रवाह शुद्ध सस्कृत मे बातचीत कर रहे थे। ऐसा अब भारत मे भी दुर्लभ है। प्रोफेसर बेडाल अपने भारतीय मेहमान के अगाध ज्ञान से बडे प्रभावित हुए।"

"दी वेस्ट मिनिस्टर गजट" ने अपने 26 जुलाई के अक मे एक "हिन्दू विद्वान लन्दन मे" शीर्षक के साथ यह टिप्पणी दी

"ताजपोशी के लिए लन्दन आने वाले गणमान्य व्यक्तियो मे एक हिन्दू विद्वान की उपस्थिति की ओर अभी तक किसी का ध्यान नही गया है। यह विद्वान भारत-विख्यात है जो वस्तुत वैदिक ज्ञान और दर्शन का एक मानवीय भण्डार है। इसका नाम है पण्डित मधुसूदन ओझा। धाराप्रवाह सस्कृत मे उसके वार्तालाप से

3 प मधुसूदन आझा का संक्षिप्त परिचय म म गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पृष्ठ 14-15
4 ब्रह्म सिद्धान्त प मधुसूदन ओझा काशी, 1961 पृष्ठ 10



कैम्ब्रिज के प्राच्यविद्या विशारद भी बडे प्रभावित हो चुके है।"

कनाट को उपहार

पण्डित मधुसूदनजी से कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का निमत्रण पाकर महाराजा ने बीस अगस्त का दिन वहा जाने के लिए तय किया। यह बात 30 जुलाई या उसके बाद की है। इसके पहले 5 जुलाई को महाराजा ड्यूक और डचेज आफ कनाट से मिलने गया। उन्हे जयपुर की पीतल की मीनाकारी को दो डिबिया, एक सिगरेट बाक्स और एक पानदान भेट किये। इन उपहारो को ड्यक और डचेज ने बहुत सुन्दर बताया और देर तक उनकी सराहना करते रहे।

महाराजा और उनके हमराही रीजेन्ट पार्क मे जन्तुशाला देखने भी गये। जयपुर मे तब तक चौडे रास्ते के छोर पर जहा अब "नया दरवाजा" है, "नाहरो के पीजरे" थे जिनमे बद शेरो को नगर-निवासी देख सकते थे। रामनिवास बाग का चिडियाघर तब बन ही रहा था। लदन की उस प्रसिद्ध जन्तुशाला को देखकर सभी जयपुर वाले विस्मित रह गये। अनेक भारतीय पशु-पक्षी भी थे और खवासजी बाबाजी का कहना था कि "जिनवरो" के आराम का भी पूरा ख्याल रखा गया था। जो जानवर जैसी आवहवा से आया था, उनके लिए वैसी ही ठण्डी या गरम आवहवा उसके पिजरे मे बनाई गई थी। दरियाई शेर याने हिप्पो और अफ्रीका के जिर्राफ जैसे जानवर जयपुर वालो ने पहली बार ही देखे थे और भगवान की माया को आखे फाड-फाड कर देखते ही रह गये थे।

मीना बाजार

इन्ही दिनो ताजपोशी के उपलक्ष मे मलिका महारानी ने एक नुमायश-कारोनेशन मार्केट-का उदघाटन किया। इसमे बिकी किया जाने वाला सामान महगा था और मकसद यह था कि जो भी मुनाफा आये, वह बच्चो के अस्पताल मे लगाया जाए। मुगल बादशाह अकबर के मीना बाजार की तरह इसमे सब दूकानदार भी औरते ही थी। महाराजा माधोसिंह भी इस बाजार को देखने गया और सामान खरीदने मे भी वह किसी भारतीय रईस से पीछे न रहा।

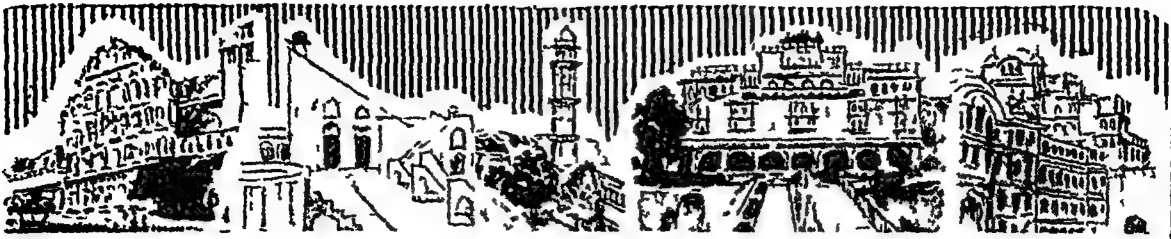
ऐसी ही एक और नुमायश लदन से सात मील दूर, क्रिस्टल पैलेस मे चल रही थी---पेरिस एक्जीबीशन। जयपुर वाले इसे भी देखने गये। यहा पुष्प प्रदर्शनी थी, नाच-गान के आयोजन थे, आतिशबाजी के खेल और जादू के तमाशे थे। एक चबूतरे पर तो जलती आग के बीच एक स्त्री बैठी थी और उसे कोई आच ही नही आ रही थी।

महाराजा ने ऊलविच का शाही तोपखाना, लन्दन का बडा अस्पताल और रायल ओपेरा हाऊस भी देखे और लन्दन के विश्वविख्यात फोटोग्राफर से अपना फोटो उतरवाया। प्रिस आफ वेल्स से मिलने गया और 5 अगस्त को ब्रिटिश प्रधानमत्री, ए जे बैलफोर से पहली मुलाकात की। इस मुलाकात मे दुभाषिये का काम किया जयपुर के एक्जीक्यूटिव इजीनियर, कर्नल स्विन्टन जैकब ने।

प्रधानमत्री से भेट

प्रधानमत्री ने अकाल के समय महाराजा के सहायता कार्यों की भूरि- भूरि सराहना की ओर कहा कि अच्छे वक्त मे रुपया बचा लेना ओर बुरा वक्त पडने पर उसे खर्च कर देना ही उसका सबसे अच्छा उपयोग होता है, लेकिन पता नहीं क्यो, हिन्दुस्तान के बहुत से राजा- महाराजाओ का इस ओर ध्यान ही नही रहता'

ब्रिटिश प्रधानमत्री ने महाराजा से दरयाफ्त किया कि उन्होने इग्लेड की सैर की या नही। इस पर महाराजा का युक्तिपूर्ण उत्तर था "सेर-- मपाटे में कही अच्छा यहा के मोअज्जिज लोगो से मिलना हे। फिर, हम तो सम्राट की आज्ञा से यहा आए हे, इसलिए बेहतर यही हे कि लन्दन मे ही रहे आर पेरिस व स्काटलड की सेर न करते फिरे।"



महाराजा की एक ओर महत्त्वपूर्ण मुलाकात औपनिवेशिक सचिव, जोसेफ चैम्बरलेन के साथ हुई। राजपूतो की वीरता और शौर्य पर चर्चा चल पडी। अगले दिन वापसी मुलाकात के लिए चैम्बरलेन भी "मोरेलॉज" आया। महाराजा ने आर्थर चैम्बरलेन को मन्त्रिमडल मे लिये जाने पर उसके पिता को वधाई दी ओर इत्र व पुष्पमाला से सत्कार कर जोसेफ चेम्बरलेन को विदा किया। भारत का भूतपूर्व वायसराय, लार्ड नाथब्रुक भी दो वार महाराजा से मिलने आया।

इस तरह अगस्त का पहला सप्ताह वीत चला। 9 अगस्त को सम्राट एडवर्ड की ताजपोशी की रस्म वाकायदा होने वाली थी ओर सव लोग वडे चाव से इसका इन्तजार कर रहे थे।

ताजपोशी और सम्राट को उपहार

महाराजा और उनके दल को लन्दन मे रहते कोई दो महिने हो चले थे। आखिरकार वह मुवारक दिन आ पहुचा जिसके लिए इगलिस्तान की राजधानी मे भारतीय राजा- महाराजाओ के साथ कई एक यूरोपीय शासको ओर शाहजादो का भी यह जमघट लगा था। 9 अगस्त को लन्दन के ऐतिहासिक वेस्टमिनिस्टर एबी मे सम्राट एडवर्ड सप्तम की वाकायदा ताजपोशी हुई और इस जश्ने मुवारक मे महाराजा माधोसिह ने भी पूरी तैयारी और ठसक से भाग लिया।

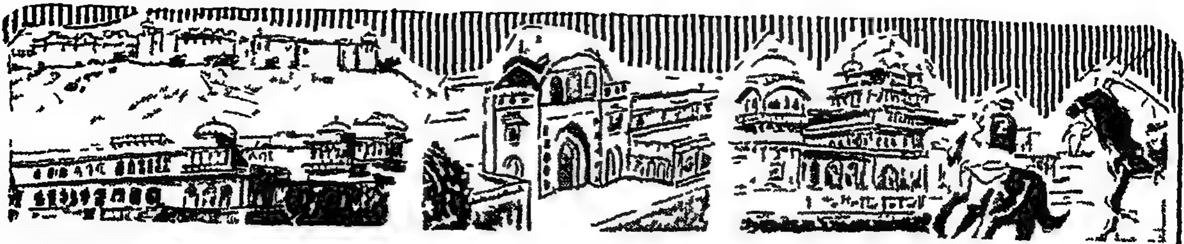
महाराजा की यात्रा के मोखिक टीकाकार, खवासजी वावाजी ने वताया था कि ताजपोशी की रस्म के लिए दोपहर वारह वजे का समय नियत था, लेकिन शाही सवारी को देखने के लिए उस दिन शहर मे सवेरे से ही लोगो का भारी हुजूम था ओर पहले से ही लोग ऐसे मुकामो पर जा वेठे थे जहा से उन्हे वादशाह और मलिका अच्छी तरह दिखाई दे। लन्दन मे उस दिन कुछ वैसा ही "आनन्द- उछाह" नजर आता था जैसा हमारे यहा होली- दीवाली को होता है। "लेकिन वाहरे, अग्रेज जाति, क्या सलीका और तहजीव थी! बाजारो मे आदमी समाता नही था, फिर भी क्या मजाल कि इतनी भव्वड मे भी कही कोई गडवड हो!!"— खवासजी बाबाजी ने अपनी याददाश्त ताजा करते हुए कहा था।

उस दिन महाराजा माधोसिह मुह अधेरे ही उठ गया और समारोह मे जाने की तैयारी मे लग गया। पोशाकियो ने महाराजा को "स्टार आफ इण्डिया" का चुगा अथवा "गाउन" धारण कराया। इस पर जी सी एस आई के शाही खिताव का "स्टार" यानी तमगा लगाया गया। सिर पर जयपुर की खूटेदार पाग शोभा दे रही थी। यह पोशाक वेहद भारी- भरकम थी, लेकिन उस दिन तो इसे पहनना अहद जरूरी समझा गया। फिर महाराजा वेस्टमिनिस्टर एवी के लिए कोई चार घटे पहले ही रवाना हो गया था और भीड से रास्ता जाम हो जाने के कारण समारोह के वाद तीन घण्टे पहले अपने निवास-स्थान को लौट भी न सका था। करीब- करीव आठ घण्टे इस पोशाक ने महाराजा को काफी थका दिया था। नतीजा यह हुआ कि अगले दो दिनो मे महाराजा ने "मोरेलॉज" मे ही आराम फरमाया, किसी कार्यक्रम मे भाग नही लिया।

शाही सवारी

खवासजी वावाजी को वेस्ट- मिनिस्टर मे ताजपोशी की रस्म देखने का सौभाग्य नही मिला— मिल भी नही सकता था। इण्डिया आफिस से महाराजा जयपुर को इस समारोह के सिर्फ पाच "पास" आये थे और "मोरेलॉज" मे तो महाराजा का अपना मेला जुडा था। वडे- बडे लोग ही छूट गये, फिर बेचारे खवासजी वावाजी का नम्बर कैसे आता! खैर, जयपुर वालो का यह जमघट न्यू स्काटलैड यार्ड पर जमा जहा भारी भीड की धक्कमपेल मे उन्होने शाही सवारी को उसी तरह देखा जैसे देखने वाले जयपुर मे तीज, गणगौर या दशहरे की सवारी देखा करते है।

ताजपोशी की खुशी मे उस रात लन्दन मे विजली की रोशनी की वेढव चकाचौध थी और सारा शहर



आदमियो का समन्दर वना हुआ था। खवासजी वावाजी और उनके हमराही भी यह रोशनी और मेला देखने गए थे और वह नजारा उन्हे कल की सी वात की तरह याद था।

महाराजा के यात्रा- विवरण से पता चलता है कि सम्राट एडवर्ड और मलिका एलेक्जेन्ड्रा की सवारी का जुलूस ठीक ग्यारह वजे तोपो की गडगडाहट के बीच वकिंघम महल से रवाना हुआ था। घण्टे भर मे यह वेस्टमिनिस्टर एवी पहुचा और करीब एक घण्टा ही वहा सारी रस्मे पूरी करने मे लगा। सम्राट ने अजील हाथ मे लेकर शपथ ली कि पार्लियामेट द्वारा वनाये गये कानूनो और उसके दूसरे नियमो के अनुसार शासन करेगा। इसके बाद जैतून का तेल मले जाने की परम्परा निभाई गई और सम्राट ने शाही पोशाक धारण की। हाथ मे अगूठी और बूट मे शाही महमेज पहिनाई गई, कमर मे तलवार वाधी गई और राज्य- शासन का मुगदर सम्राट के हाथ मे थमाया गया। आर्कविशाप यानी वडे पादरी ने फिर आशीर्वचन कह कर सम्राट को ताज पहनाया। अन्त मे प्रिन्स आफ वेल्स ने अपने शाही पिता की कदमबोसी की और राज्यारोहण के इस औपचारिक समारोह का समापन हुआ। तोपो ने सलामी दी और वादशाह व मलिका की सवारी वापस वकिघम महल के लिए रवाना हुई।

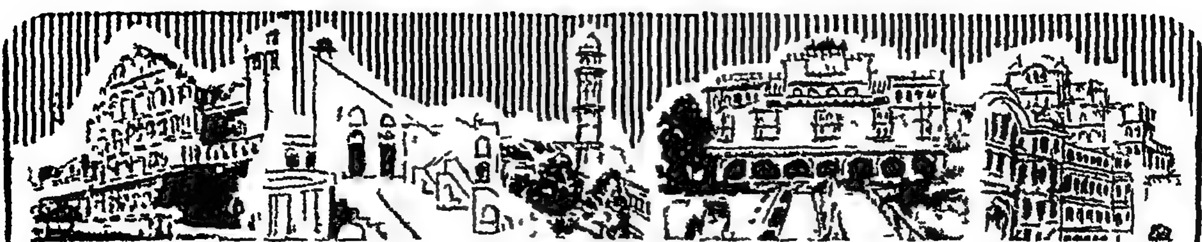
वेस्टमिनिस्टर के इस दरबार मे भाग लेने के बाद महाराजा माधोसिह ने दो दिन तक आराम किया और तीसरे दिन प्रिन्स आफ वेल्स से फिर मुलाकात करने गया। इसके वाद सम्राट से विदा लेने के लिए एक और मुलाकात का कार्यक्रम था। चूकि अब जयपुर लौटने की बेतावी हो रही थी, महाराजा ने सम्राट से इस आखिरी मुलाकात को ज्यादा से ज्यादा असरदार बनाने की कोशिश की ताकि जयपुर और उसके महाराजा का रुतबा इग्लैड और शाही परिवार की नजरो मे ऊचा रहे।

दो दाढ़ी वाले

स्वय दाढी वाले खवासजी वावाजी ने वताया था कि यह दो दाढी वालो— सम्राट एडवर्ड और महाराजा— की जबर्दस्त मुलाकात थी। अपनी लन्दन- यात्रा की याददाशत के लिए महाराजा ने झुक कर जब एक कीमती जडाऊ तलवार सम्राट को नजर की तो एक तरफ उसकी अपनी घनी दाढी तलवार को छू रही थी तो दूसरी तरफ सम्राट के फैलते हुए वाजुओ के बीच उसकी दाढी उस राजसी उपहार पर लहरा रही थी। सम्राट को भेट की गई इस तलवार की मूठ मे करीब एक- एक इच के हीरे- नगीने जडे थे और फौलाद असली दमिश्क की ढली हुई थी। यह उपहार जयपुर के उस मशहूर सिलेहखाने मे से सम्राट के लिए चुन कर ले जाया गया था जो महाराजा के पुरखो ने मुगलो के दौरदौरे के वक्त वनाया और सवारा था। इस तलवार की कीमत सस्ताई ओर वेफिक्री के उस जमाने मे भी दस हजार पौण्ड कूती गई थी।

वकिघम महल मे महाराजा से यह भेट स्वीकार कर सम्राट एडवर्ड प्रकट रूप से भी प्रभावित हो गया। उसने तत्काल कहा कि अगले दिन भारतीय सेना की समारोहिक परेड मे वह इसी शानदार तलवार को कमर मे वाधकर जायेगा। महाराजा की ओर से उसके प्रधानमत्री, वावू ससारचन्द्र सेन ने सम्राट को इसके लिए धन्यवाद दिया। तभी मलिका एलेक्जेन्ड्रा ने भी उन पीतल की मीनाकारी की वस्तुओ की फिर तारीफ की जो महाराजा पहले ही भेट कर चुके थे। वोली कि महाराजा के दिये हुए प्याले और रकावी को वह रोजाना काफी पीने के काम मे ले रही है।

बातचीत के दौरान सम्राट ने फिर अपनी जयपुर यात्रा के सस्मरण सुनाये। जयपुर शहर की तारीफ की और शेर की शिकार को तो रह-रह कर याद किया। सम्राट ने महाराजा को अपनी और मलिका की तस्वीरो के तोहफे दिये और महाराजा के साथ गये हुए खास- खास सरदारो के लिये आठ तमगे या मैडल भी। इनमे एक विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा के लिए था। पण्डितजी ने ताजपोशी के अवसर पर सस्कृत के कुछ श्लोक लिखकर अगरेजी अनुवाद सहित सम्राट को भेजे थे। इसके लिए उन्हे अलग से एक धन्यवाद-



पत्र भी भेजा गया।

भारतीय सेना की परेड

महाराजा अगले दिन भारतीय सेना की समारोहिक परेड भी देखने गये जिसकी सलामी लेने के लिए सम्राट अपनी भेंट मे प्राप्त जयपुर की तलवार बाधकर आया था। यह परेड 13 अगस्त को बकिंघम महल के अहाते मे ही हुई थी। ताजपोशी के सिलसिले मे यह आखिरी जल्सा था। परेड के वाद सम्राट ने भारतीय राजा-महाराजाओं से हाथ मिलाकर उन्हे विदाई दी। कुल पन्द्रह "कारोनेशन मैडल" भी सम्राट ने यहा बाटे जिनमे एक महाराजा माधोसिह के लिए था।

महाराजा ओर उनके हमराहियो को ताजपोशी के वाद से ही जयपुर लौटने की लगी थी और अब तो यह वेतावी ओर वढ गई थी, लेकिन स्वदेश वापस जाने के लिए भी लम्वी- चोडी तैयारिया जरूरी थी, खास तौर से उस कामयावी और धूमधाम के वाद जो विलायत मे महाराजा की रही थी। महाराजा ने एक सरदार, राजा उदयसिह और कुछ कर्मचारियो की 14 अगस्त को ही लन्दन से रवानगी करा दी ताकि वे वम्बई पहुच कर वापसी की समुद्र- पूजन ओर दूसरे कामो का जरूरी इन्तजाम कर सके। एक ओर एडवान्स पार्टी लिवरपूल भेजी गई। यह पार्टी "ओलम्पिया" जहाज से रवाना होकर मार्सेलीज मे महाराजा से जा मिलने वाली थी।

महाराजा के दल मे अव सो से भी कम लोग रह गये थे। इग्लैड मे अभी 5-6 दिन का मुकाम और था। इस अर्से मे महाराजा ने थियेटर देखा और वेस्ट मिनिस्टर का विशाल ऐतिहासिक गिरजाघर भी तसल्ली से फिर देखने गये।

केम्ब्रिज मे

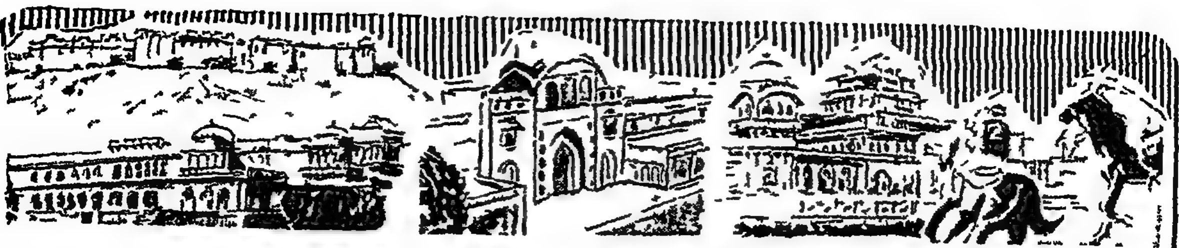
20 अगस्त को केम्ब्रिज विश्वविद्यालय देखने का कार्यक्रम पहले ही बन चुका था। पण्डित मधुसूदनजी इसके निमित्त थे। पण्डितजी तथा दूसरे लोगो के साथ महाराजा विश्वविद्यालय मे गये। वहा के म्यूजियम, ट्रिनिटी कालेज, क्वीन्स कालेज तथा दूसरी सस्थाओं को घूम- फिर कर देखा। केम्ब्रिज मे पढने वाले भारतीय विद्यार्थियो ने महाराजा को एक मानपत्र भी भेट किया ओर महाराजा ने अपनी ओर से वहा के प्रोफेसरो और विद्यार्थियो को एक "टी- पार्टी" दी।

अगले दिन लन्दन मे महाराजा का आखिरी कार्यक्रम था इण्डिया आफिस के लिए अपनी फोटो खिचवाना। जी सी एस आई का चुगा या गाउन पहिन कर यह तस्वीर उतरवाई गई। 22 अगस्त को महाराजा ने "मोरेलॉज" मे उनकी खिदमत करने वाले अगरेज शागिर्दपेश लोगो को इनाम देने के लिए एक सो पोंड का चैक वख्शीश किया ओर इगलिस्तान से भारत के लिए प्रस्थान किया गया।

सागर पर तैरता जयपुर

लन्दन के विक्टोरिया स्टेशन पर महाराजा को विदा करने के लिए वही सारी औपचारिकताए बरती गई जो आगमन के समय निभाई गई थी। "मोरेलॉज" से महाराजा जव स्टेशन पर पहुचा तो रेलगाडी तक सुर्ख कपडा विछा मिला ओर सव लोग इत्मीनान से रेल मे सवार हुए। भारत सचिव का पोलीटिकल ए डी सी कर्जन वायली महाराजा को विदा करने आया और डोवर तक साथ गया। कैले बन्दरगाह पर महाराजा के लिए पूर्ववत् स्पेशल रेलगाडी तैयार खडी थी जिससे मार्सेलीज पहुचना था। जैसे ही महाराजा पहुचा, यह स्पेशल वहा से रवाना हो गई क्योंकि प्रस्थान का मुहूर्त भी यही था।

खवासजी वावाजी ने वताया था कि फ्रास मे वापसी का यह सफर श्रीजी ने मनचाहे ढग से किया था— वैसे ही जैसे हर साल गर्मियो मे जयपुर से हरिद्वार तक का करते थे। स्पेशल महाराजा की मर्जी के मुताविक ठहरती और चलती थी। वैसे कुल तीन जगह गाडी को ठहराया गया। सबसे पहले डारसी, जहा सब लोगो ने



नहर के बहते पानी मे स्नान किया। इसके बाद शावी, जहा से रात एक बजे रवाना होकर गाडी सवेरे मार्सेलीज पहुच गई। "ओलम्पिया" जहाज पहले ही लिवरपूल से यहा पहुच चुका था और महाराजा के आने का इन्तजार कर रहा था। वापसी दरियाई सफर शुरू करने के मौके पर महाराजा ने जहाज के कप्तान कैप्टेन आसबर्न को अपनी एक तस्वीर इनायत की। यह लन्दन मे खिचवाई गई तस्वीरो मे से एक थी।

जहाज भूमध्य सागर मे चल पडा और दो दिन बाद, 27 अगस्त को मैसीनिया के जलडमरूमध्य मे पहुच गया। यह महाराजा की सालगिरह का मुबारिक दिन था। सब लोग जयपुर को याद करने लगे जहा इस दिन सवेरे ही तोपो के धडाको ने सारे शहर को सालगिरह का ऐलान किया होगा, ब्राह्मणो की टोलिया बरणी-पाठ और हवन करती होगी और मन्दिरो मे भेट चढाई जा रही होगी। महाराजा के हमराहियो ने "ओलम्पिया" मे भी सालगिरह का जल्सा धूम-धाम से मनाने का फैसला किया। पूरे जहाज को रग-बिरगी ध्वजा पताकाओ से सजाया गया और बीचो-बीच जयपुर का पचरग झण्डा फहराया गया। जयपुर तो दूर था, लेकिन ओलम्पिया उस दिन सागर पर तैरता छोटा-सा जयपुर ही बन गया था, जिसमे सारी हलचल ठीक वैसी ही थी जैसी जयपुर मे सालगिरह के दिन होती।

'दरबार ने बख्शी'

महाराजा ने बाकायदा सालगिरह का दरबार किया जिसमे सबसे पहले सरदारो, फिर आला अफसरो और दूसरे लोगो ने झुक-झुक कर नजरे पेश की। जहाज के चालको और दूसरे कर्मचारियो की तरफ से कैप्टेन आसबर्न ने भी इस दरबार मे आकर महाराजा को मुबारकबाद दिया। महाराजा ने उसे एक कानोमीटर घडी इनायत की जो लन्दन मे ही खरीदी गई थी। इस घडी पर खुदा हुआ था "जयपुर दरबार ने बख्शी।"

महाराजा इस दिन सबसे पहले जहाज के उस कैबिन मे गये थे जो श्रीगोपालजी का मन्दिर बना हुआ था। सालगिरह की भेट मे उन्होने अपने इष्टदेवता को 43 सोने की मोहरे चढाई और गोटे के हार का प्रसाद पाया। महाराजा के हमराहियो और जहाज के कर्मचारियो को मिलाकर "ओलम्पिया" मे कुल 139 यात्री थे जो सभी दावत मे शामिल हुए।

जहाज के "म्यूजिक रूम" ने इस दिन दीवानखाने का काम किया। सारे दिन और देर रात तक वहा गाना-बजाना चलता रहा और महफिल मे महाराजा भी काफी देर तक बैठा रहा।

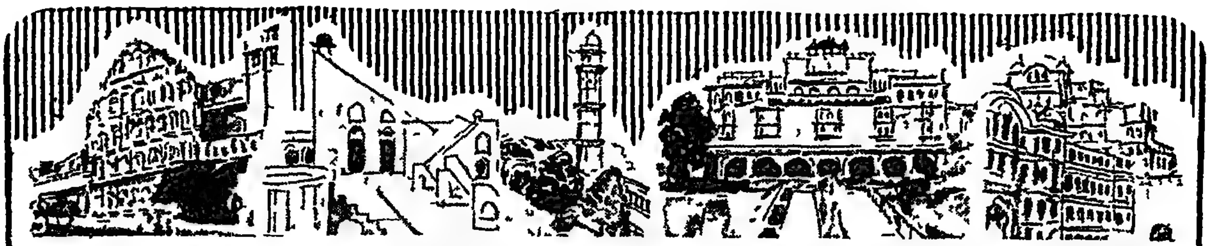
30 अगस्त को जहाज स्वेज नहर मे दाखिल हो गया तो आबहवा भी बदल गई। सबको बडी गर्मी सताने लगी और हफ्ते भर तक समुद्र मे चल लेने के बाद बहुत से लोग "सी-सिकनेस" या सामुद्रिक बीमारी से भी मादे नजर आने लगे। महाराजा ने जब बेहद गर्मी महसूस की तो श्रीगोपालजी के मन्दिर मे भी बिजली का पखा लगाने का हुक्म दिया गया।

भादौं का महीना चल रहा था और दो दिन बाद गणेश चतुर्थी का पर्व पडता था। इसलिए जहाज के लाल समुद्र मे दाखिल होते-होते महाराजा ने दूरबीन से दूज का चाद देखा। गणेश चतुर्थी का चन्द्र-दर्शन परम्परा से निषिद्ध है, लेकिन यदि दूज का चाद देख लिया जाय तो चतुर्थी का चाद देखना भी अनिष्ट का कारण नही बनता, ऐसी मान्यता है।

पाच दिन बाद "ओलम्पिया" अदन के ब्रिटिश बन्दरगाह मे पहुच गया और उसी समय वहा के किले से इक्कीस तोपो की सलामी महाराजा के सम्मान मे दागी गई। अदन से बम्बई और जयपुर तार भेजे गये जिनसे दोनो जगह महाराजा के पहुचने की पक्की इत्तला हो गई।

मानसून: तूफान

अदन से आगे महाराजा की यात्रा का आखिरी दौर था, लेकिन यही सबसे ज्यादा जोखिम का भी साबित



हुआ। अगस्त का महीना, मानसून के पूरे जोर का महीना होता है, खास कर अरबसागर तो, जहा से पश्चिमी मानसून उठता है, इन दिनो बेहद डावा-डोल और अशान्त हो जाता है। "ओलम्पिया" इस सागर मे बढने लगा तो जैसे बडे- बडे भवरो मे फसता जा रहा था। जहाज की चाल तूफान के मारे डगमगा रही थी और उस ऊबड-खाबड हाल ने सबको चिन्ता मे डाल दिया। एक वार तो जब जहाज के तख्तो के नीचे पानी आ गया तो सभी यात्री घबरा उठे। साथ वालो का यह हाल देखकर महाराजा ने जहाज के कप्तान से पूछताछ कराई और कप्तान ने इत्मीनान दिलाया कि इस तूफान का सबब सिर्फ मानसून का उठाव है जो शाम तक कम हो जायेगा।

लेकिन यह तूफान कम नही हुआ और अगले दिन तो सागर ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया। बडी-बडी भीमकाय लहरे दोनो ओर से आकर जहाज से टकराने लगी, सब तरफ से शोर उठने लगा जैसे मौत घेराव कर रही हो। खवासजी बाबाजी कहते थे कि विलायतो के सातो समन्दरो मे ऐसा भयकर तूफान कही न देखा था, जैसा हमारे अपने हिन्दुस्तान से लगे इस अरव सागर मे देखा। देश अब दूर नही था, लेकिन इस विनाश के ताण्डव मे तो एक-एक पल भारी हो रहा था। लोग पिछली सारी खुशिया भूल कर खैर मना रहे थे।

शाम होते-होते तो एक बहुत बडी तरग इतने जोरो से टकराई कि जहाज के डेक का एक जवर्दस्त लट्ठा पल मे चकनाचूर हो गया और जहाज मे कुछ पानी भी भर गया। सारी रात लोगो ने आखो मे निकाली और सवेरा हुआ तो महाराजा के खासा रसोवडे (रसोईघर) मे भी पानी आ गया। रसोवडे के मुलाजमान तो एकवारगी घबरा गये। हर चेहरे पर चिन्ता, उदासी और मायूसी छाई थी।

महाराजा स्वय इन हालात से कम परेशान न था। तूफान के दोनो दिन उसने उपवास रखा और अपने इष्ट देवता, गोपालजी महाराजा का ध्यान करता रहा। अगले दिन राधा अष्टमी थी। तूफान का जोर अब काफी कम हो गया था। गोपालजी की कृपा मानकर सवने तसल्ली की सास ली। महाराजा ने नियमानुसार ठाकुरजी को भेट चढाई और प्रसाद पाकर "कासा जीमा"—भोजन किया।

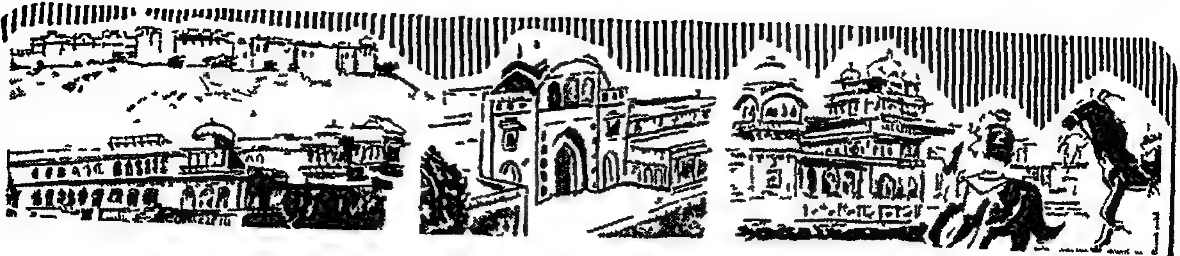
बम्बई अब दूर नही था, 12 सितम्बर को "ओलम्पिया" वहा पहुचने वाला था। महाराजा ने सफर तमाम देख जहाज के कप्तान आसवर्न, इजीनियर और एक बडे अधिकारी को मीनाकारी के काम के तीन लाकेट बख्शे। जहाज के दूसरे मुलाजमान के लिए इनाम के 100 पौंड अलग से बख्शीश किये गये।

और अब बम्बई आ पहुचा। सलामी की तोपे छूटी और महाराजा अपोलो बन्दरगाह पर जहाज से उतरा। यहा फिर विधि-विधान से समुद्र का पूजन किया गया जिसके बाद वेकटेश्वर स्टीम प्रेस और वम्बई जैन सभा की ओर से मानपत्र भेट किये गये। इतनी लम्बी यात्रा और विदेश-प्रवास मे महाराजा ने अपनी रियासत के ध्येय—वाक्य —यतो धर्म स्ततो जय — का जिस खूबी और कडाई से पालन किया था, उसकी भूरि-भूरि प्रशसा के साथ महाराजा का अभिनन्दन किया गया। जयपुर के सैकडो लोग, सामत-सरदार, मुसाहिब और ओहदेदारो के अलावा बम्बई के सेठ-साहूकार, व्यापारी-व्यवसायी इस अभिनन्दन के समय वहा मौजूद थे और महाराजा की अगुवानी कर रहे थे।

जयपुर की ओर

अपोलो बन्दरगाह से महाराजा कोलाबा स्टेशन आया, जहा 'वेटिग रूम' मे वम्बई की विख्यात थियेट्रिकल कम्पनी, नौरोनी धनजी भाई, की ओर से सगीत का आयोजन किया गया था। इस कम्पनी की ओर से भी महाराजा को मानपत्र भेट किया गया। करीब तीन घण्टे यहा ठहर कर महाराजा और उसके सभी "इग्लैण्ड रिटर्न्ड" सहयात्री उस स्पेशल रेलगाडी मे सवार हुए जो उन्हे ठीक चार महीने और चार दिन वाद अपनी जन्म-भूमि, जयपुर, मे लौटाने वाली थी।

महाराजा की यह वापसी रेल-यात्रा भी महाराजाओ के ही योग्य थी। 13 सितम्वर को अहमदावाद



स्टेशन पर महाराजा की सरबराह या आतिथ्य का प्रबन्ध ईडर दरवार की ओर से किया गया था। प्लेटफार्म पर ही खास तौर से एक शामियाना लगाया गया था जिसमे महाराजा ने दोपहर का भोजन किया और रवाना होने से पहले एक हजार रुपया ईडर दरबार के कर्मचारियो को इनाम मे वख्शीश किया। आगे, मारवाड जक्शन पर 'नोकूटी मारवाड के धणी' जोधपुर नरेश सरदारसिह और सर प्रतापसिह ने जयपुर–नरेश की पेशवाई की। अजमेर स्टेशन पर किशनगढ दरबार की ओर से स्वागत का इन्तजाम किया गया था और फुलेरा जक्शन तो जयपुर रियासत की हद मे ही पडता था। वहा दो हजार से भी अधिक की भीड प्लेटफार्म पर जमा थी और ज्यो ही स्पेशल वहा पहुची, महाराजा का जय-जयकार किया गया। रियासत के ओहदेदारो और मुलाजिमो ने यहा श्रीजी को नजरे पेश की। फुलेरा से जयपुर महज डेढ घण्टे का रास्ता और था।

वापसी राजधानी मे

जयपुर आया और इसके साथ ही रिआया का वह हुजूम जो चार महीने से अपने हुजूर साहब की एक झलक देखने के लिए बेताब था। 14 सितम्बर, 1902, चार महीनो के ऊपर पाचवा दिन था जव महाराजा अपनी ऐतिहासिक विलायत यात्रा से ऐसे जोश-खरोश और उत्साह-उमग के साथ वापस आया जैसे पुराने राजा लोग किसी जय-यात्रा से लौटते थे। जयपुरवासियो का जोश भी हिलोरे ले रहा था। स्टेशन के प्लेटफार्म पर रियासत के बडे-बडे सरदार, जागीरदार, कौसिल के मैम्वरान, ओहदेदार और मुलाजमान कायदे से महाराजा की अगुवानी के लिए खडे थे और आम जनता की भीड को पुलिस के लोग बमुश्किल आगे आने से रोक पा रहे थे। उन दिनो जयपुर के विश्वविख्यात हवामहल के सामने चलने वाले महाराजा कॉलेज और कालेजिएट स्कूल के विद्यार्थी हाथो मे फूलो के गजरे लेकर कतारबद खडे थे और उनके बीच-बीच मे फहर-फहर फहरा रहे थे वे झण्डे जिन पर अगरेजी मे "वेलकम होम" और "लाग लिव दी महाराजा" जैसे स्वागत-वाक्य लिखे हुए थे।

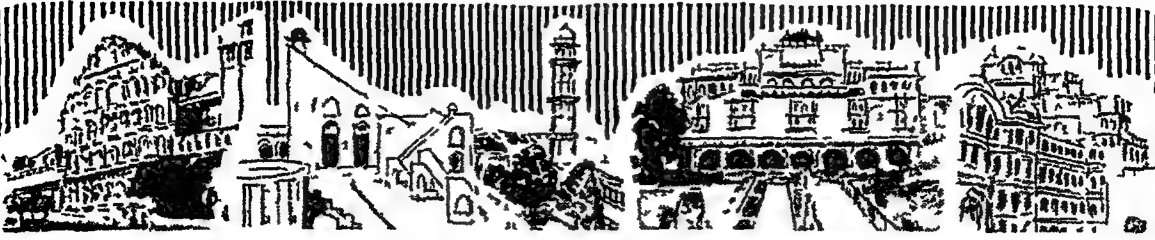
रेलवे स्टेशन से हथरोई की कोठी (अब राजस्थान स्टेट होटल) तक सडक के दोनो ओर फौज के जवान कतार बाधे खडे थे और महाराजा का सामान लादने के लिए, जिसकी विविधता और पैमाने ने लदन वालो को भी चौंधिया दिया था, जयपुर ट्रासपोर्ट कोर की एक सौ घोडा-गाडिया स्टेशन के बाहर तैनात थी।

जैसे ही महाराजा की स्पेशल प्लेटफार्म पर आई, विद्यार्थियो ने "लाग लिव दी महाराजा" के नारे लगाये और यह अगरेजी के नारे आम जनता के "माधोसिह महाराजा की जय" के वुलद नारो मे मद पड गये। तोपों के धडाको और फूलो की बौछार के बीच ज्योंही महाराजा अपने "सैलन" श्रीमाधवेन्द्र विमान, से बाहर निकल कर प्लेटफार्म पर विछे हुए कालीन पर आए, सब ओर से "कार्डन" टूट गए और ऐसी भिचा-भिची हो गई कि महाराजा को अपनी गाडी तक पहुचने मे अच्छा खासा वक्त लग गया। महाराजा की सवारी जब हथरोई की कोठी मे दाखिल हुई तो नाहरगढ के किले से फिर पच्चीस तोपो के धडाके हुए जिनसे सारा शहर जान गया कि श्रीजी का प्रवेश कोठी मे हो गया है।

मुहूर्त, बीस दिन बाद

इस प्रकार महाराजा जयपुर तो लौट आया, लेकिन अपने राजमहलो मे उसका प्रवेश अभी होना था। दरअसल विलायत-यात्रा से औपचारिक वापसी तो इसी प्रवेश से मानी जानी थी। चूकि शहर ओर महल मे दाखिल होने का शुभ मुहूर्त बीस दिन बाद मिलता था, महाराजा तव तक हथरोई की कोठी मे ही रहा और वही सरदारो-जागीरदारो और दूसरे लोगो की नजरे कबूल करता रहा। 4 अकटूवर को जव मुहूर्त आया, महाराजा की सवारी शहर जयपुर मे दाखिल होने के लिए रवाना हुई।

उस दिन की धूमधाम का क्या कहना! मेरे मोहल्ले के खवासजी बाबाजी तो रह-रह कर उन दिनो आर उन वातो को याद करते ही थे, जयपुर मे अब भी कुछ लोग हो सकते है जिन्हे वह दिन, वह वाते हल्की-फुल्की



याद हो। महाराजा की वापसी पर अपनी खुशी जाहिर करने के लिए दूकानदारो ने जैसे दीवाली मनाई थी। सभी दूकाने खास तौर से सजाई-सवारी गई थी। बाजारो, दूकानो और मकानो की छते स्त्री-पुरुपो और वच्चो से खचा-खच भर गई थी। महाराजा कॉलेज से महाराजा सस्कृत कॉलेज तक सिरेहड्योढी बाजार मे विद्यार्थियो की कतारे लगी थी जिनके सामने मेजो पर फूलो के ढेर और हारो के अम्बार थे और थी जगह-जगह "वैलकम होम" की ध्वजा-पताकाए।

हथरोई की कोठी से सबसे पहले श्रीगोपालजी महाराज का रथ निकला। कोठी के दरवाजे तक महाराजा 'तख्ते-खा' कही जाने वाली विशेष पालकी मे बैठकर आया और पच्चीस तोपो की सलामी के साथ खासा हाथी पर सवारी हुई। घोडो पर सवार ताजीमी सरदार महाराजा के आगे-आगे चल रहे थे और उनके आगे कायदे से सारा लवाजमा—हाथी, घोडे, प्यादे, रथ और पालकी आदि आदि।

रगो और फलो का समा

कोठी से अजमेर रोड (अव मिर्जा इस्माइल रोड) होकर महाराजा की सवारी सागानेरी दरवाजे या शिवपोल से शहर मे दाखिल हुई। ब्रिटिश रेजीडेण्ट काब यह सवारी देखने के लिए जौहरी बाजार की एक ऊची हवेली पर पहले ही जा बैठा था। महाराजा ने रास्ते मे ही उसका अभिवादन स्वीकार किया। माणकचौक चौपड पर तो रगो और फूलो का समा वघ गया। स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थी फूल बरसाते जाते थे और "लाग लिव दी किग" की झडी बाध रहे थे। महाराजा के हाथी का हौदा पूरा फूलो से भर गया। सवारी जव सिरहड्योढी दरवाजे से होकर चन्द्रमहल पहुच गई तो फिर सलामी की पच्चीस तोपे छोडी गयी।

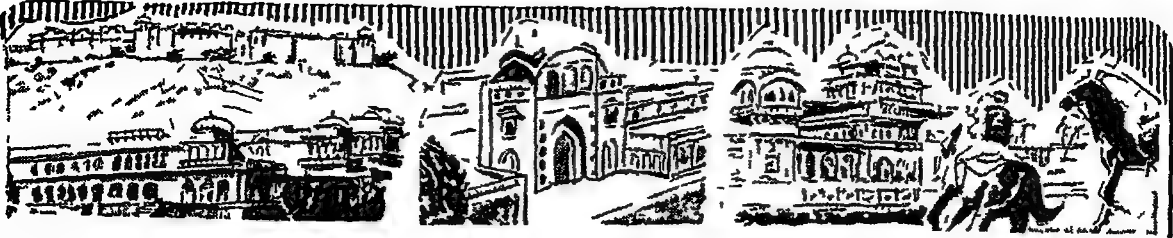
घर पहुचने के बाद महाराजा का पहला कार्यक्रम था मन्दिरो मे जाकर भगवान को भेट चढाना। ब्राह्मणो ने जो श्रीजी के विलायत प्रस्थान करने के दिन से बराबर वरणी पर बैठे थे, आज ही अपने पाठ समाप्त किए थे। महाराजा ने उनसे शान्ति-जल लिया और "जयपुर के वास्तविक राजा" भगवान गोविन्ददेव के मन्दिर मे जाकर भेट चढाई। फिर पच्चीस तोपे छूटी तो सारा शहर जान गया कि महाराजा अव सव कामो से निवट कर आराम फरमाने पधार गये है।

पुरानी चाल और रस्म

एक दिन ठहर कर, 6 अक्टूबर को दीवानेआम मे दरबार था। ब्रिटिश रेजीडेण्ट, काब ने पहले अगरेजी मे अपना भापण पढा। इस तकरीर का उर्दू तर्जुमा किया महाराजा के प्रधानमन्त्री, बाबू ससार चन्द्रसेन ने। रेजीडेण्ट ने कहा था

"सिवाय हम लोगो के जो यहा मौजूद है और कोई खास तौर से यह नही जानता कि जश्न-ताजपोशी मे शरीक होने के लिए फरमान शाही की तामील मे जयपुर की पुरानी चाल और रस्मो मे किस कदर तजावुज करना पडा। हम लोग इस खुशी और मुवारक मौके पर सफर विलायत से आपको अपनी दारूल-सल्तनत (राजधानी) और अपनी रिआया मे अमनो-अमान के साथ वापस आने की मुबारकवाद देने के लिए इस दरवार मे जमा हुए है और कह सकते है कि आपका विलायत जाना हर तरह से कमाल ओर वेहद कामयाबी का सवव हुआ है।"

महाराजा की ओर से बोलते हुए वाबू ससारचन्द्र सेन ने उन मुश्किलात की चर्चा की जिनका विलायत जाने मे उनको सामना करना पडा था। दरियाई सफर के पेचीदा मामले को तय करने मे जो दिक्कते पेश आइ, वाबू साहव ने उनका ब्यौरा न देना ही मुनासिब समझा क्योंकि "आप सुनते-सुनते थक जायेगे"। उन्होने कहा "वम्वई से रवाना होने के बाद ही हमे समन्दर तूफानी हालत मे मिला। उस तूफान को वर्दाश्त करने के वाद हमे अपने पुरखो की अक्लमन्दी पर ताज्जुब हुआ जो दरियाई सफर से जानबूझ कर वचे रहते थे, लेकिन वे लोग भी अपने फर्ज को अदा करने के लिए अपने वादशाह की रहीमाना फर्मान नही रखते थे।"



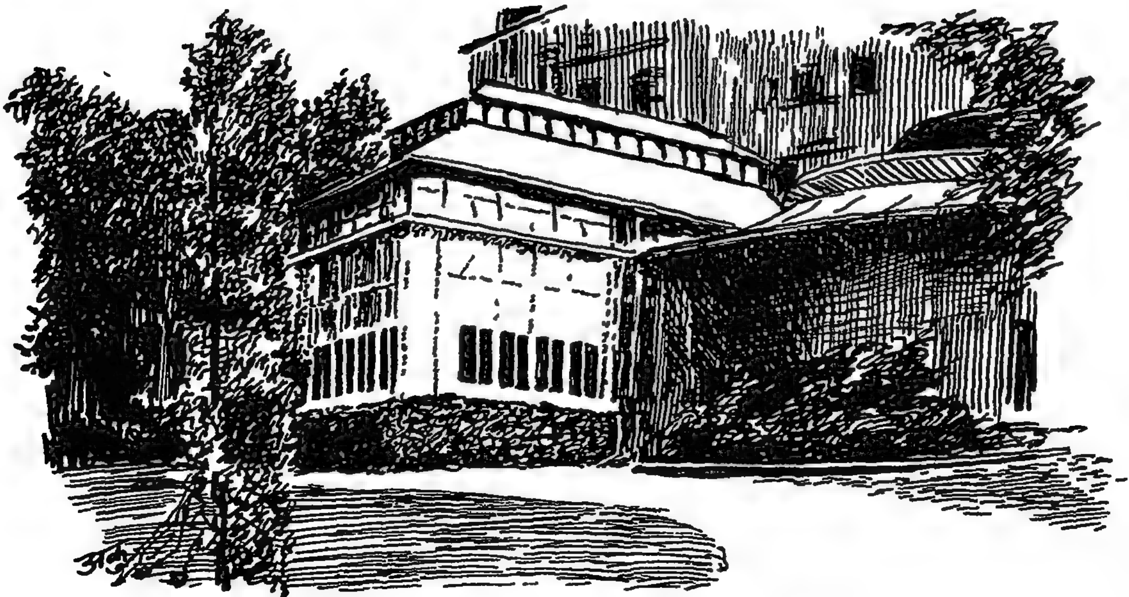
महाराजा की ओर से हाजरीन दरबार को यकीन दिलाया गया कि "फरमान शाही की तामील और वफादारी जाहिर करने के अलावा हम किसी और मकसद को लेकर इतनी तकलीफे कभी बर्दाश्त नही करते।"

'अजमत और शराफत का मुल्क'

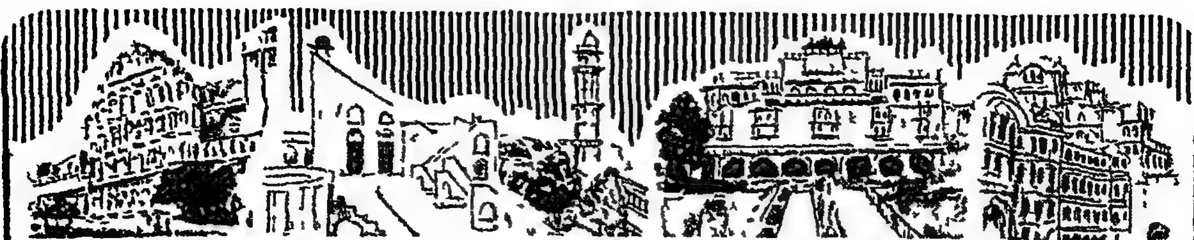
इग्लैण्ड मे अपनी आवभगत और मेहमानी को नाकाबिले बयान बताते महाराजा के उद्‌गार यह थे "ऐसा मालूम होता है कि हम किसी ऐसे मुल्क मे गये थे जहा लताफत, अजमत और शराफत के सिवा कुछ नजर नही आता। जो नक्शा हमारे दिल पर छा गया है, वह कभी दूर नही होगा।"

इन तकरीरो के बाद दरबार मे नाच-गाना शुरू हुआ। जयपुर के विख्यात गुणीजनखाने के कलाकारो ने अपनी कला से महाराजा का अभिनन्दन और आम दरबार का मनोरजन किया। फूलमाला और इत्र से परम्परागत सत्कार कराने के बाद ब्रिटिश रेजीडेट और दूसरे अगरेज अधिकारी दरबार से रुखसत हुए। आखिर मे महाराजा ने हाजरीन दरबार की नजरे कबूल की। इस दरबार के बर्खास्त होने के साथ ही महाराजा माधोसिह की इग्लैण्ड विलायत यात्रा की यह सच्ची और दिलचस्प कहानी भी खत्म हो जाती है।

□□□



मोरे लाज– लन्दन की वह कोठी जिसमें महाराजा माधोसिह सदल बल ठहरे थे



परिशिष्ट-6

जयपुर का ध्वज और राज्य-चिन्ह

जयपुर के राजाओ के प्रधान राजमहल-चद्रमहल-के ऊपर आज भी पचरग ध्वज फहराता है। यही पचरग 1949 मे जयपुर रियासत का राजस्थान मे विलय होने तक राजकीय ध्वज था।

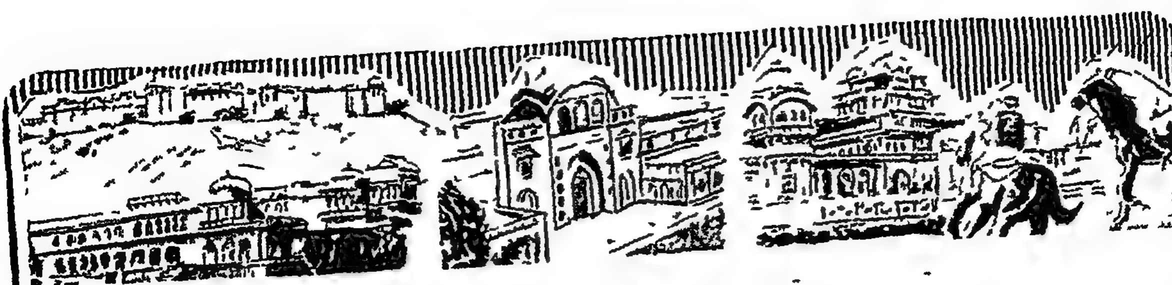
जयपुर के राजा कछवाहा क्षत्रिय हैं, जो अपने आपको भगवान श्रीरामचद्र के पुत्र कुश के वशज मानते है। अयोध्या के राजा राम का ध्वज श्वेत था और रामायण के अनुसार इस पर कचनार का वृक्ष या झाड अकित था। सस्कृत के विख्यात कवि भवभूति ने भी अपने 'उत्तर रामचरित' नाटक मे आयोध्या के ध्वज को "कचनार ध्वज" ही वताया है। यह भी उल्लेखनीय है कि भवभूति ईसा की सातवी शताब्दी मे हुआ था और वह पद्मावती का निवासी था, जो उस समय कछवाहो के राज्य नरवर के निकट ही थी। जब कछवाहोने नरवर से चलकर ढूँढाड मे अपने नये राज्य की नीव डाली तो उन्होने इस प्राचीन उल्लेख के आधार पर अपने ध्वज मे भी "झाड" अकित कराया और उनकी मुद्रा पर भी झाड ही अंकित हुआ। जयपुर के रुपये को इसीलिये झाडशाही कहा जाता था।

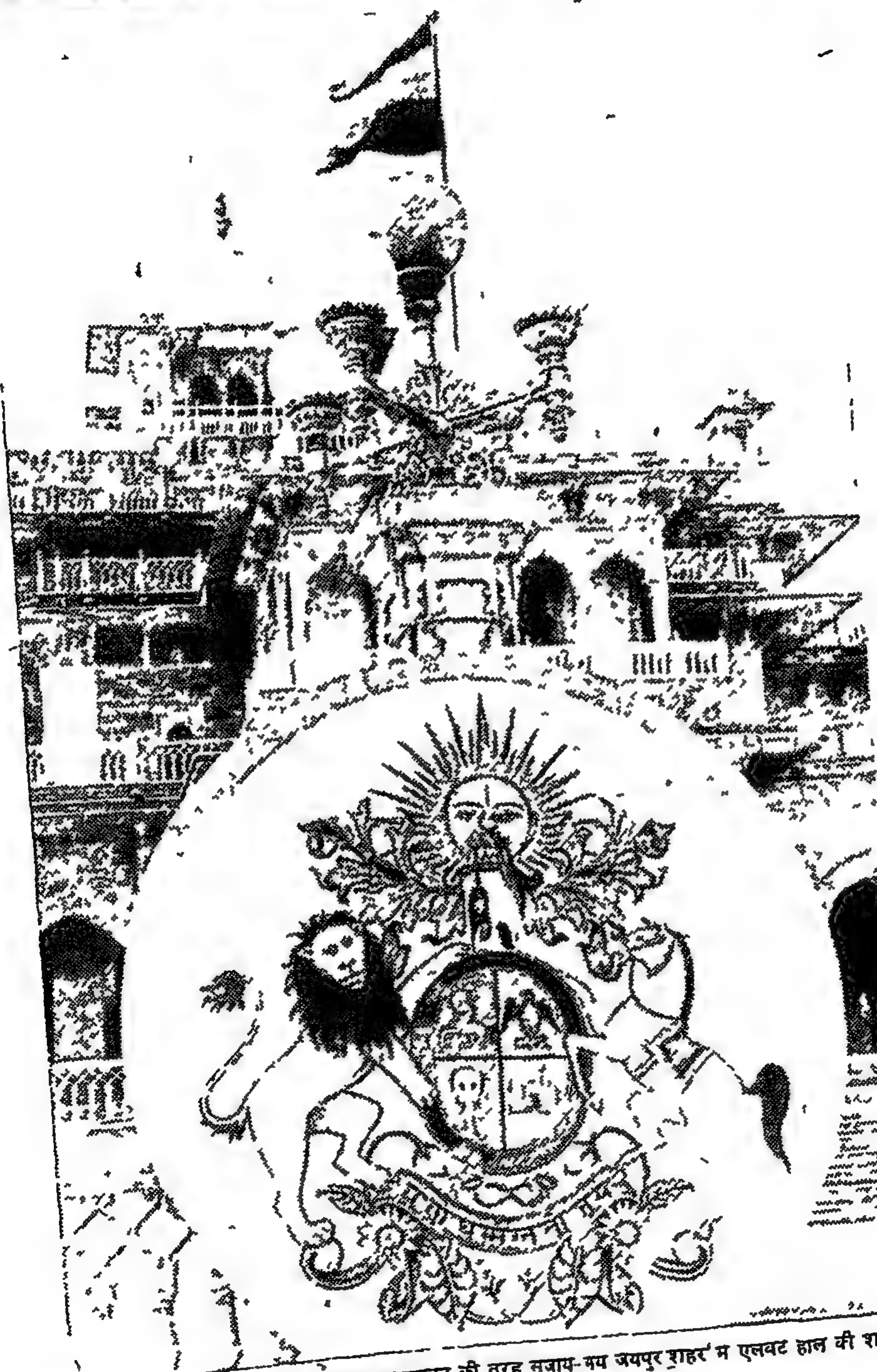
अकवर के जमाने मे तूरान के शाह ने कावुल पर हमला किया था। आकमणकारियो का मुकावला करने के लिए वादशाह ने आमेर के राजा मानसिह को भेजा। तूरान के शाह की मदद के लिये उत्तरी ईरान के पाच पठान अमीर भी आये थे। इन पाचो अमीरो को रोकने के लिए राजा मानसिह ने चौमू के ठाकुर मनोहरदास को ससैन्य भेजा। स्वय राजा मानसिह शाह के विरुद्ध गया। दोनो ही को विजयश्री मिली। ठाकुर मनोहरदास ने पाचो पठान अमीरो के झण्डे छीन लिये थे। ये उसने अपने राजा को भेट किये और यह भी आग्रह किया कि इन पाचो रगो को मिलाकर जो ध्वज वने, उसे इस विजय की स्मृति और आमेर राज्य का नया ध्वज माना जाए। राजा मानसिह को भी यह तजवीज भा गई और उसने मनोहरदास से कहा कि यह पचरग ध्वज केवल इस विजय की याद ही नही दिलायेगा, वरन् जिस प्रकार कचनार का झाड हमे अयोध्या की याद दिलाता आया है, वैसे ही ये सूर्यवशी कछवाहो के लिये सूर्य भगवान का प्रतीक बन जाएगा। सूर्य की किरणो मे यद्यपि रग तो सात होते हैं, किन्तु इन्द्रधनुप मे पाच ही देखने मे आते हैं। उषा काल मे भी क्षितिज पर पाच ही रग बारी-बारी से देखने मे आते हैं-गुलावी, लाल, सुनहरा, नीला और सफेद। यही पाच रग गायत्री के पाचो मुखो के है और गायत्री व्रह्मा की शक्ति है। योगी भी तत्त्व रूप से यही पाच रग बताते है।

मानसिह ने इन पाचो रगो से वना हुआ ध्वज आमेर का ध्वज माना और अयोध्या का प्रतीक- कचनार का झाड-रुपये, मुहर तथा पेसो पर अकित किया जाने लगा।

पचरग को अपने राज्य का ध्वज मान लेने के वाद राजा मानसिह ने ही पचरग मे रगो का कम भी निर्धारित किया था। वेगनी और काला रग तो दिखते ही नही, इसलिये इन्हे नही रखा गया और सुनहरी की जगह सफेद ने ले ली। इस प्रकार लाल, सफेद, पीले, हरे और नीले रगो को मिलाकर आमेर-जयपुर का पचरग ध्वज वना।

जयपुर बसाये जाने के वहुत पहले जव सवाई जयसिह को औरगजेब से "सवाई" की उपाधि या खिताब मिला तो झण्डे पर एक चौथाया झण्डा और चढाया गया। कुछ समय बाद तो आमेर का राज "सवाई जयपुर" वन गया और उसका ध्वज य़ो सवाया रहा। यह ध्वज 1930 के बाद तक तिकोना ही था, किन्तु महाराजा मानसिह द्वितीय ने इसका आकार आयताकार कर दिया और रगो का कम भी बदल कर लाल, पीला, सफेद, हरा और नीला कर दिया। राजस्थान बनने तक जयपुर का यही ध्वज था, जो अपनी विशेषता और विशेपाधिकार के रूप मे जयपुर के राजा आज तक अपने निवास- स्थान पर फहराते है।





राजकुमारी प्रेमकुमारी के विवाह (1948ई) के अवसर पर दुल्हन की तरह सजाये-गये जयपुर शहर में एलबर्ट हाल की शानदार इमारत पर पचरंगा ध्वज और नीचे राज्य-चिन्ह



जयपुर के पचरग के सबध मे पण्डित हनुमान शर्मा ने भी लिखा है कि आमेर का प्राचीन झण्डा कचनार अंकित था,[1] क्योकि अयोध्या के राम राज्य के श्वेत ध्वज मे भी कचनार ही अंकित था। वाल्मीक रामायण के अयोध्या काण्ड मे भरत को ससैन्य अपनी ओर आते देखकर लक्ष्मण ने राम को कहा था-

एषवै सुमहान् श्रीमान विटपी च महाद्रुम ।
विराजते महासैन्ये को विदारध्वजो रथे।।

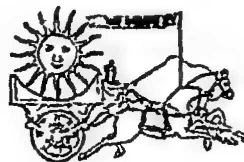
(सर्ग 96, श्लोक 18)

इन इतिहास- लेखक के अनुसार राजा मानसिह ने जब पचरग को अपने राज्य का ध्वज बना लिया तो आमेर का प्राचीन झण्डा ठाकुर मनोहरदास को प्रदान कर दिया गया, जो "अब ना थावत सरदारो के ठिकानो म पूजित होता है।"

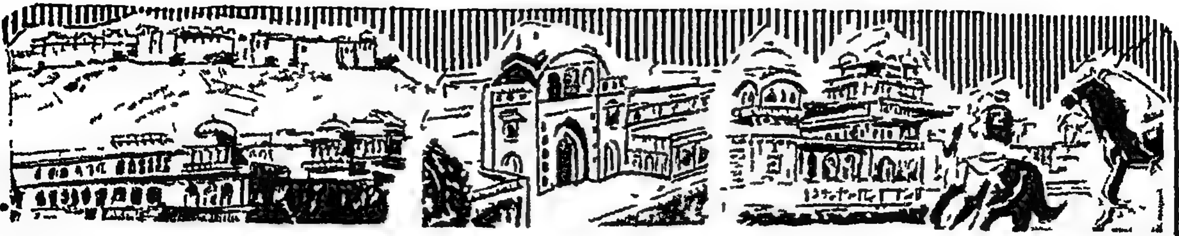
जयपुर रियासत का ध्येय-वाक्य था "यतो धर्मस्ततो जय " जो इस पुस्तक के आवरण पर अंकित राज्य चिन्ह (कोट आफ आमर्स) मे सुरक्षित था। इसमे भी महाराजा मानसिह द्वितीय (1922-1949 ई) ने परिवर्तन किया था। महाराजा माधोसिह ने (1880-1922ई) राज्यचिन्ह मे सबसे ऊपर अपने इष्टदेव गोपालजी या राधा-गोपालजी की युगलछवि अंकित कराई थी। यह राज्यचिन्ह गगाजी और गोपालजी के मदिरो मे कलापूर्ण तुलसी के बिम्बो पर भी अंकित है। महाराजा मानसिह ने उसके स्थान पर सूर्य और एक हेलमेट या शिरस्त्राण रखा। राज्यचिन्ह मे एक ओर सिह तथा दूसरी ओर घोडा है। इसके मध्य मे अश्व, हस्ती, गरुड और दुर्ग है। शक्ति और सत्ता के इन प्रतीको के साथ राज्यचिन्ह मे नीचे "यतो धर्मस्ततो जय " अंकित है।

ध्वज और राज्य-चिन्ह के अतिरिक्त चंवर और मोरछल भी राजसी प्रतीक थे। राजा और रानी के पीछे जो सरदार- सामत इन्हे लेकर खडे होते थे, विशिष्ट अवसरो पर उनका यह विशेषाधिकार था- "खवासी"। इनके अतिरिक्त एक सरदार महाराजा की सालगिरह, राजतिलक और अन्य अवसरो पर "हूमा का पख " लेकर भी खडा होता था। हूमा को बहिश्त (स्वर्ग) का परिन्दा माना जाता है। यह दुर्लभ पक्षी पूर्वी द्वीप समूह मे पाया जाता बताया। ईरानियों और मुगलो का ऐसा विश्वास रहा है कि इस पख की छाया मे बैठने या खडा होने वाला राज-वैभव का अधिकारी होता है। आमेर-जयपुर मे हूमा का पख रखने की प्रथा मुगल दरबार से ही आई होगी।

जयपुर के राजाओ के लिए राज्य-चिन्हो मे माही-मरातिब का भी विशेष महत्त्व रहा क्योकि ये मुगल बादशाह से प्राप्त विशेष सम्मान-सूचक प्रतीक थे। राजाओ की सवारी मे माही-मरातिब और "धौंसा"- एक घोडे पर एक ही डडे मे बजाया जाने वाला नक्कारा- लवाजमे के अनिवार्य अग होते थे। पखे-अडाणी तो लवाजमे मे गिने ही नही जाते थे, क्योकि वे बहुत होते थे। जयपुर के सामान्य नागरिको की बरातो तक मे पखो और अडाणियो की भरमार हो जाती है। ये राजसी वैभव के द्योतक तो है ही, शान-शौकत के प्रदर्शन के लिए भी उपयुक्त है। रगीन और जर्क-बर्क पोशाको मे जब सुनहरी काम के पखे और अडाणी लेकर लोग बरात मे चलते है तो जुलूस की शोभा और बढ़ जाती है। □□□



[1] नाथावतों का इतिहास, जयपुर, 1937 पृष्ठ 102-103



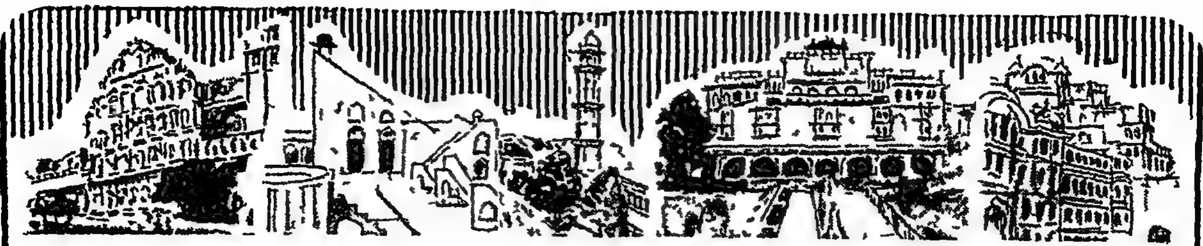
राज सवाई जयपुर

(मार्च, 1949 से पूर्व)

पिलानी
पटियाला
बीकानेर
झुंझुनू
कोटकासिम
खंडेला
कोटपूतली
सीकर
अलवर
श्रीमाधोपुर
रींगस
जोधपुर
आमेर
भरतपुर
साँभर
दौसा
जयपुर
फुलेरा
सांगानेर
हिन्डौन
नरेना
किशनगढ़
चाकसू
गंगापुर
अजमेर
निवाई
करौली
मालपुरा
टोंक
सवाईमाधोपुर
श्रीमाधोपुर
ग्वालियर
देवली
बूंदी
कोटा

जनसंख्या 24 लाख

क्षेत्रफल 16,081 वर्गमील



संदर्भ ग्रंथ सूची

सस्कृत

ईश्वर विलास महाकाव्यम्, कविकलानिधि देवर्षि श्रीकृष्ण भट्ट विरचितम्, राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर,1958।

जयपुर वैभवम्, साहित्याचार्य भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, जयपुर, 1947।

सस्कृत रत्नाकर (मासिक), जयपुर।

हिन्दी

बुद्धि विलास बखतराम साह कृत, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर 1964। यह 1770 ई की रचना है।

भोजनसार, गिरिधारी कवि रचित। इस ग्रथ की एकमात्र प्रति पूना के भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इस्टीट्यूट मे सुरक्षित है। गिरिधारी को सवाई जयसिह के दरबार मे कवि बताया जाता है। कोई उसे खासा रसोवडे से सम्बद्ध मानते है। 1739 मे यह रचना उसने जयपुर नगर की स्थापना के बारह वर्ष बाद की थी।

जयपुर (नाथावतो) का इतिहास (पहला भाग), हनुमान शर्मा, चौमू (जयपुर), कृष्ण कार्यालय, चौमू। 1937।

प्रत्यक्ष जीवनशास्त्र, हीरालाल शास्त्री, अनुपम प्रकाशन मन्दिर प्रा लिमिटेड, खेजडे का रास्ता, जयपुर, 1970।

पूर्व-आधुनिक राजस्थान, रघुवीरसिह, डी लिट राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, 1951।

ब्रजनिधि ग्रथावली, स पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी ए , काशी नागरी प्रचारिणीसभा, 1933।

बिहारी सतसई, लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, भारतवासी प्रेस, दारागज, इलाहाबाद, 1950।

राजस्थानी चित्रकला, रामगोपाल विजयवर्गीय, विजयवर्गीय कला मण्डल, जयपुर, 1953।

ब्रज की कलाओ का इतिहास, पुरुषोत्तमदास मित्तल, ब्रजसाहित्य मण्डल, मथुरा।

मत्स्य देश का इतिहास, जयपुर के पोथीखाना मे हस्तलिखित रूप मे उपलब्ध। यह विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझा ने वर्तमान शताब्दि के तीसरे दशक मे तैयार कराया था।

महान् मुगल अकबर, विसेण्ट ए स्मिथ, डा राजेद्रनाथ नागर का अनुवाद, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1967।

महाराजा मानसिह, मुशी देवीप्रसाद, जोधपुर।

आइने-अकबरी, प्रथम खण्ड, ब्लाखमान का अनुवाद, कलकत्ता, 1873।

राजस्थानी निबन्ध सग्रह, सौभाग्यसिह शेखावत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, 1974।

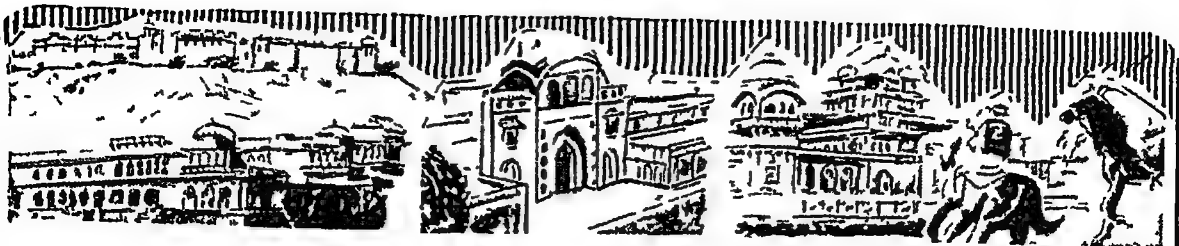
मरू श्री (त्रैमासिक), जनवरी-जुलाई, 1982, चूरू।

सवाई जयसिह, राजेन्द्र शकर भट्ट, नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 1972।

राजलोक, महाराजा माधोसिह की पत्नियो और पडदायतो (उप पत्नियो) के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी देने वाली यह हस्तलिखित पुस्तिका पोथीखाने मे है।

वीर-विनोद, कविराजा श्यामलदास, उदयपुर। 1886 ई मे मेवाड राज्य द्वारा चार खण्डो मे प्रकाशित यह ग्रथ अब अनेक पुस्तकालयो मे उपलब्ध है।

प्राचीन भारतीय मनोरजन, मन्मथराय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1956।



राजस्थान के हिन्दी साहित्यकार, स्वागत समिति, 32 वा अ भा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, जयपुर, 1944।

ब्रज का इतिहास, द्वितीय खण्ड, श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी, अ भा ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा 1958।

सवाई जयसिह चरित, कवि आत्माराम, महाराजा सवाई मानसिह (द्वि) सग्रहालय, जयपुर, 1979 ई ।

पद्माकर—श्री, ओरगावाद, 1959।

जयपुर की सस्कृत साहित्य को देन, डा प्रभाकर शास्त्री, पब्लीकेशन स्कीम, जयपुर, 1980।

प मधुसूदन ओझा का सक्षिप्त परिचय, म म गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, जयपुर।

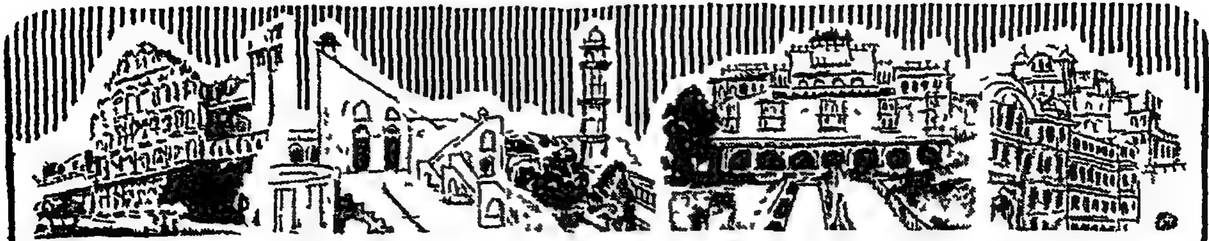
ब्रह्म सिद्धान्त (खण्ड 3), डा वासुदेवशरण अग्रवाल (सपादक), काशी, 1961 ।

जयपुर-नरेश की इग्लैण्ड यात्रा, शिवनारायण सक्सेना, जयपुर, 1922 ।

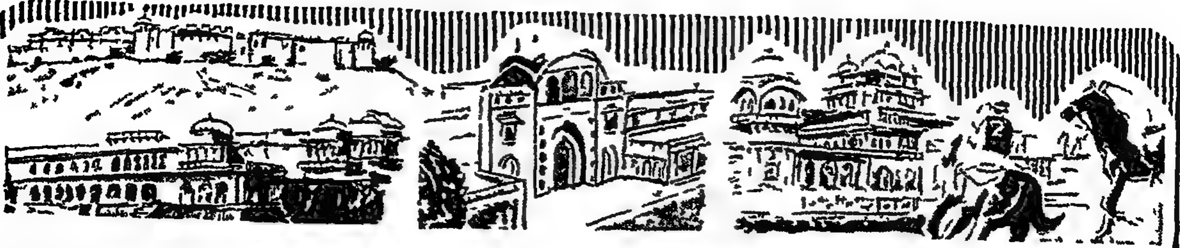
वश भास्कर—सूरजमल मीसण, बूदी।

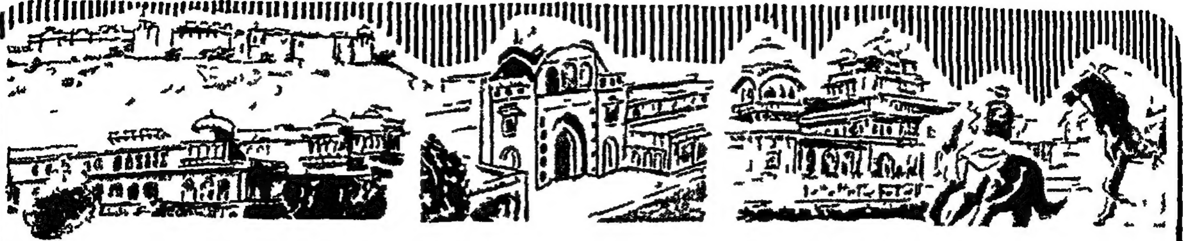
ENGLISH

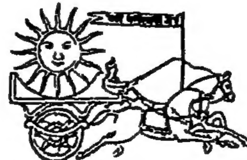
Notes On Jaipur,H L Showers, Jaipur 1909 (I) and 1916 (II)
Cultural Heritage of Jaipur, J N Asopa (Edit) Jaipur 1979
History of Jaipur City, A K Roy, Manohar Publications New Delhi, 1978
Gen Amar Singh's Diary (manuscript), Kanota House JAIPUR
Sir Purohit Gopinath's Diary (manuscript) Purohitji Ka Bagh, Jaipur
Jaipur and its Environs, Harnath Singh, Raj Educational Printers, Jaipur
A Guide To Jaipur and Amber, B L Dhama Jaipur 1955
Literary Heritage of the Rulers of Amber and Jaipur,
G N Bahura (Editor) Maharaja Sawai Man Singh II Museum, City Palace, Jaipur, 1976
Annals and Antiquities of Rajasthan (Vol II) James Tod London, 1832
Studies In Indian Painting, Nanalal Chaman Lal Mehta,
D B Taraporewala Sons & Co Bombay 1926
A Brief History of Jeypore, Thakur Fateh Singh Chanpawat, Moon Press, Agra, 1899
History of the Jaipur State Dr M L Sharma, Rajasthan
Instiute of Historical Research, Jaipur 1969
The Fall of the Mughal Empire (Vol III) J N Sarkar, Calcutta
Raja Man Singh of Amber, R N Prasad, The World Press Private Ltd , Calcutta 1966
Jaipur and the Later Mughals, H C Tikkiwal, Jaipur, 1974
A Political History of Jaipur, Brook, Jaipur
Proceedings of the State Council, Jaipur (Manuscript), K C Mukerji, Hathi Babu Ka Bagh, Jaipur
Discovery of India, Jawahar Lal Nehru, Signet Press, Calcutta
The Jaipur Observatory and its builder, A H Garret, Pioneer Press, Allahabad, 1902
Indian Architecture, Percy Brown, Bombay 1942
A Princess Remembers, Gayatri Devi and Santha Ramarau, Vikas Publishing House (Private) Ltd , New Delhi, 1982
The Jaipur Album, Editors, K L Ajmera and J L Jain Rajasthan Directories Publishing House, Jaipur, 1935
The Indian Review, April 1945, Madras
Commerce, Bombay, 1945



अनुक्रमणिका









नन्दकिशोर पारीक

जन्म 3 सितम्बर, 1926, जयपुर।

शिक्षा : बी०ए०, एलएल०बी०, विशारद।

जयपुर के दो मूर्धन्य विद्वानों – सर पुरोहित गोपीनाथ और पुरोहित हरिनारायण विद्याभूषण – के सान्निध्य के कारण विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य, इतिहास व लेखन में रुचि। विद्याभूषणजी के आशीर्वाद से 1944-46 में मासिक 'पारीक' का सम्पादन-प्रकाशन। चालीस वर्ष पुराने जयपुर से 1945 में 'चांदनी' नामक साहित्यिक व निजी मासिक का प्रकाशन।

1946 से दैनिक 'लोकवाणी', जयपुर तथा 'स्टेट्समैन', नई दिल्ली के माध्यम से दैनिक पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश व एक दशक तक इन दोनों पत्रों से सम्बद्ध। 1954 में राजस्थान जन-सम्पर्क सेवा में प्रवेश कर 1981 में सयुक्त निदेशक के पद से सेवा-निवृत्ति। 1979 में राज्य सरकार द्वारा लेखन व पत्रकारिता में विशिष्ट योग्यता के लिए पुरस्कृत। सेवा-निवृत्ति के बाद लगभग डेढ़ वर्ष तक 'राजस्थान पत्रिका' जोधपुर सस्करण के स्थानीय सपादक।

हिन्दी व अंग्रेजी में कला, सस्कृति व इतिहास सम्बन्धी विषयों पर तीन सौ से अधिक लेख प्रकाशित। पारीक को जयपुर, इसके गली-मोहल्लों, साहित्य-सस्कृति, लोक और लीक से गहरा लगाव है। 1972 से 'नगर परिक्रमा' के माध्यम से जयपुर के आसनभूत जन-जीवन के विविध अनछुए सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक और सास्कृतिक पक्षों का उद्घाटन।

सम्प्रति 'राजस्थान पत्रिका' से सम्बद्ध।

मुख्य वितरक एव विक्रेता
सुबोध साहित्य सदन
सी-117, मगल मार्ग, बापूनगर, जयपुर